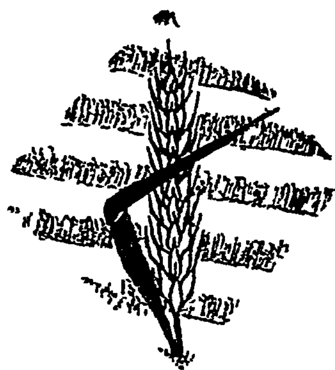


प्रथम संस्करण



मुद्रक
प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स,
लाल दरवाजा, बाजार सीताराम, दिल्ली

भूमिका

जिस दिन इस कृषि प्रधान देश के विशाल वक्ष पर परकीयों ने आक्रमण करके छल-कपट से अपनी सत्ता के खेमे गाड़े थे, उसी दिन से यहां की धरती बांझ होती चली गई. जिस धरती में प्राचीन काल में बढ़िया से बढ़िया फसलों को पोषण देने की शक्ति थी उसी धरती ने स्वतः फसलों का शोषण करना आरम्भ कर दिया. सभ्यता का नया दौर चला और उस दौर की [illegible] ने जीवन का रुख गांवों की ओर से शहर की ओर को कर दिया. शहरों की उन्नति के नाम पर गांवों का ह्रास होने लगा, और फल यह निकला कि सर्वोत्तम काम कृषि-कर्म को लोग सबसे हीन कर्म मानने लगे, और धीरे धीरे इसी रमक में शहर आबाद होने लगे तथा गांव बर्बाद.

फिरंगियों का जब से भारत पर अधिकार हुआ तभी से उन्होंने भारतीयों को अपनी सेवा के लिये गुलामी का काम सौंपा और अनाज, आदि यूरोप से मंगाना आरम्भ कर दिया, साथ ही गांवों की आर्थिक स्थिति इतनी बिगाड़ दी कि लोग गांवों में कभी सुख न पा सकें. फिर जिस समय विश्व युद्ध आरम्भ हुआ तो भारतीयों को सेना में भरती करने की घोषणा कर दी गई. गांवों की दशा बिगड़ जाने से किसानों की आर्थिक स्थिति भी बिलकुल बिगड़ गई थी, फलतः किसानों ने खेती का काम छोड़ अधिकाधिक संख्या में सेना में भरती होना आरम्भ कर दिया.

इस प्रकार विश्व युद्ध के कारण भी भारतीय कृषि कर्म को अत्यधिक धक्का लगा और खेती बाड़ी बिगड़ती चली गई. समूचे देश में कई एक भयावह अकाल पड़े. इन अकालों का सामयिक कारण चाहे कुछ भी रहा हो किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि खेतों की प्रजनन शक्ति इतनी बिगड़ चुकी थी कि उनमें अन्न उपजाने योग्य बल ही नहीं रहा था. कृषि कर्म की अव्यवस्था के कारण इस देश की सारी ही आर्थिक व्यवस्था छिन्न विच्छिन्न हो गई. देश दासता की शृंखलाओं में और भी बुरी तरह से बन्ध गया.

अपने गुलामी के दिनों में भारतवर्ष पूर्ण रूपेण दूसरे देशों

पर आधारित हो गया, साथ ही साथ परकीय सत्ता ने देश के किसानों को इतनी बुरी तरह आर्थिक जजीरों में जकड़ दिया कि वे पेट भरने के अलावा कुछ भी करने योग्य न रहे. इस कारण से भी सारी व्यवस्था कुरूप होती चली गई. और जिस दिन से किसानों के हृदय में खेती वाड़ी को छोड़कर और काम अपनाने की भावना पैदा हुई तब ही से खेती की अवनति और भी जोर पकड़ गई.

लेकिन आज समय बदल गया है, भारत स्वतंत्र हो चुका है. राष्ट्र के प्रत्येक घटक को देश की उन्नति के लिये काम करना चाहिये. हमारा कर्तव्य है कि हम देश को हर प्रकार से उन्नत करने के लिये परिश्रम करें. यदि हमारे परिश्रम में तनिक भी असावधानी होगी तो निश्चित ही हमारा देश प्रगति करने के स्थान पर अवनति की ओर ही बढ़ेगा. इसमें कोई संदेह नहीं कि जब से देश की जनता में स्वतंत्र भावना का संचार हुआ है तभी से उसमें कर्तव्य परायणता भी आई है. किन्तु वास्तव में उस भावना के लिए जितने काम की आवश्यकता है उतना श्रम अब भी नहीं हो रहा है.

किसानी कर्म की उन्नति के लिये पिछले कई वर्षों में अनेक सफल प्रयास किये गए. भारत सरकार की ओर से भी

इस ओर पर्याप्त प्रगति की गई है लेकिन फिर भी उससे कई गुना अधिक श्रम की आवश्यकता अभी वर्तमान है. भारतीय किसानों को नई नई खोजों के अनुसार बताये गये प्रयोगों पर ध्यान देना चाहिये. जब तक वे इन बातों पर ध्यान नहीं देंगे तब तक कृषि कर्म कभी भी उन्नत नहीं हो सकता.

खेती बाड़ी के ऊपर अनेकानेक विद्वानों ने कुछ पुस्तकें लिखी हैं किन्तु मुझे ऐसा आभास होता है कि उन सारी पुस्तकों में माननीय विद्वान लेखकों ने पाण्डित्य का अधिक प्रदर्शन किया है, जिसके कारण वे पुस्तकें उन्हें मान प्रदान करने या पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाने में चाहे कितनी भी सहायक सिद्ध हुई हों लेकिन साधारण किसान के लिये उन पुस्तकों से कोई लाभ नहीं हो पाया. ऐसा लगता है कि उन पुस्तकों को समझने के लिये किसानों को युग युगों तक साहित्य का अध्ययन करना पड़ेगा.

किसान विकास माला की जो बड़ी-छोटी पुस्तक-पुस्तिकायें मैंने तैयार की हैं, उनमें चाहे बड़े विद्वानों के लिये सामग्री उपलब्ध न हो लेकिन साधारण किसानों को उससे पूरा लाभ हो सकता है, ऐसा मेरा विश्वास है. वास्तव में किसानी पुस्तकें इतनी सरल होनी चाहिएं जिनकी भाषा अनपढ़ या थोड़े

पढ़े-लिखे किसान सुन-पढ़कर उन्हें भली-भांति समझ सकें. विकास माला की इन पुस्तकों में इसी बात का सबसे अधिक ध्यान रखा गया है.

आधुनिक कृषि विज्ञान किसान विकास माला साहित्य की सर्वोच्च पुस्तक है जिसमें खेती, बाड़ी, बागबानी, के विषय का पूरा पूरा विवरण है. पुस्तक में जहां हर बात को कलात्मक चित्रों द्वारा समझाया गया है, वहां उसमें हर प्रकार की नई नई खोजों का भी समावेश किया गया है. मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक किसानों के लिए पर्याप्त उपादेय सिद्ध होगी.

१३२, गली बताशा,
चावड़ी बाजार, दिल्ली

स्नेहाधीन
रामेश्वर अशान्त

दो शब्द

भारत जब से स्वतन्त्र हुआ है तभी से अपने देश की स्थिति को अन्तर्राष्ट्रीय समाज में सुदृढ़ करने का समूचा उत्तरदायित्व हमारे ऊपर ही आ पड़ा है. ऐसे समय में देश को कृषि की दृष्टि से उन्नत करना अत्यन्त आवश्यक है. आज तक हिन्दी में अच्छे कृषि साहित्य का अभाव बुरी तरह खटकता रहा है, जिसकी किसानों को बड़ी आवश्यकता है.

सारा विश्व आज सभ्यता की दौड़ में बहुत आगे बढ़ गया है. इसी प्रकार संसार के किसानों ने भी पर्याप्त उन्नति कर ली है, जिसका भारत में अभी बड़ा अभाव है. स्वाधीन भारत के एक प्रकाशक होने के नाते हमने भी इस बात पर गम्भीरता से विचार किया, और यह सोचा कि अच्छे खोजपूर्ण कृषि-साहित्य का प्रकाशन हमें करना चाहिए. यह विचार आते ही हमने ऐसा

साहित्य तैयार करने के हेतु अच्छे लेखकों की तलाश आरम्भ की.

उन्हीं दिनों हिन्दी के प्रसिद्ध तरुण लेखक और समाज सेवी श्री रामेश्वर अशान्त अखिल भारतीय किसान परिषद् का संगठन कर रहे थे. हमने उनसे कृषि-साहित्य तैयार करने का निवेदन किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और वे उसी काम में जुट गए. उन दिनों उन्हें भारतवर्ष के बहुत से गांवों में घूमने का अवसर मिला. वे किसानों से मिले और उन्होंने उनकी कमियों को स्वयं देखा.

इस प्रकार भारत भर के अगणित खेतों का पर्यटन करके, अगणित हिन्दी-उर्दू और अंग्रेजी के कृषि ग्रंथों का अध्ययन करके योग्य लेखक ने जो बहुत ही सरल और उपयोगी तरीके से कृषि-साहित्य तैयार किया वह हमने बहुत ही लगन के साथ किसान विकास माला के अन्तर्गत प्रकाशित कर दिया है. विकास माला की प्रत्येक पुस्तक उपयोगी चित्रों के द्वारा समझाई गई है.

आधुनिक कृषि विज्ञान हमारी किसान विकास माला की सर्वोत्तम पुस्तक है. इसे तैयार करने में जहां लेखक को पर्याप्त अनुसन्धान और श्रम करना पड़ा है वहां हमें भी इसे प्रकाशित करने में कम परिश्रम नहीं करना पड़ा है. लगभग साढ़े सातसौ पृष्ठ के इस ग्रंथ में लेखक ने कृषि के सभी आवश्यक अंगों का विस्तार

से वर्णन किया है, जिन्हें सैकड़ों सुन्दर चित्रों से सजाया गया है.

इस ग्रंथ को तैयार करने के उपलक्ष में हम लेखक के आभारी हैं और आशा करते हैं कि कृषि का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी समाज और किसानी कर्म करने वाले बन्धुओं के लिये पुस्तक समान उपयोगी रहेगी ·

कृपाकांक्षी
प्रकाशक

विषय-सूची

खाद की आवश्यकता, खाद के मूल तत्व, प्राणिज खाद, गोवर की खाद, भेंड़ वकरियों की मेंगनियां, सोन खाद, हड्डियों की खाद, खलियाँ, पेड़ पत्ती की खाद, पत्तों की खाद, खनिज की खाद, चूने की खाद, नमक की खाद, मिश्रित खाद, कीचड़ की खाद, वनस्पतियां, कंकड़ की खाद, कूड़े की खाद, साबुन की खाद, रासायनिक खाद, नत्रजन युक्त खाद, अमोनियम सल्फेट, पुटाश मिश्रत खाद, प्रस्फुरिक युक्त खाद, सुपर फास्फेट, गंधित पोटाश.

गन्ना, मक्का, ज्वार, वाजरा, जौ, चना, दाल, मूंग, उड़द, अरहर, तूअर, मोठ, तिल, मूंगफली, अलसी, सरसों, धान, गेहूँ, साग-भाजी.

जलवायु, मिट्टी और खेत, खेत की तैयारी, वीज और बुवाई, खाद देना, जुताई, सिंचाई, निकाई, कटाई.



विषय प्रवेश

वास्तव में कृषि कर्म बड़े ही उत्तरदायित्व का कार्य है. क्यों कि समूचे देश का भाग्य पूर्ण रूपेण कृषि कर्म पर ही आधारित रहता है. समस्त संसार के इतिहास का यदि वारीकी से अवलोकन किया जाय तो पता लगेगा कि मानव ने सभ्यता का प्रथम कार्य यदि कोई आरम्भ किया तो वह कृषि कर्म ही था. युग युगों से मानव कृषि कर्म में नये नये अनुसन्धान करता हुआ निरन्तर आगे बढ़ रहा है.

जिस समय मानव को भूख का अनुभव हुआ और जंगली फलों से वह अपनी सन्तुष्टि नहीं कर पाया तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो धरती की छाती मे से कुछ और भी पदार्थ उत्पन्न

किये जा सकते हैं जिनके द्वारा उदर पूर्ति और भी आसान हो जाय. लेकिन इसका आरम्भ कैसे हुआ यदि इस पर दृष्टिगत करें तो स्पष्ट है कि जब तक किसी भी व्यक्ति को किसी बात का विशेष अनुभव नहीं होता तब तक अनुसन्धान की आवश्यकता नहीं पड़ती.

कल्पना की उड़ान यदि ली जाये तो उसमें से भी एक तथ्य प्राप्त हो जाता है. उसी के अनुसार हमारा विचार है कि कभी कोई फल खाकर किसी व्यक्ति ने जब गुठली भूमि पर फेंक दी होगी और उचित वर्षा का जल तथा उपयुक्त भूमि पाकर उस गुठली ने कुरा छोड़ दिया होगा तथा कुछ दिनों के पश्चात् जब उस कुरे का पेड़ बनकर फल देने लगा होगा तो मानव को अनुभव हुआ होगा कि इसी प्रकार से गुठली अथवा बीज भूमि में डालकर उस जैसे पेड़ पौधे उगाए जा सकते हैं.

इस प्रकार मानव के आदिकाल में एक अनुभव का समावेश हुआ होगा और उसी अनुभव के आधार पर दिन प्रति दिन मानव ने अपनी सहज बुद्धि के अनुसार नई नई खोजें भी की होंगी जिससे युग युगों के पश्चात् मानव ने उन्नत खेती के भी दर्शन किये होंगे. इसी प्रकार उन्नत खेती हर साल नया रंग लेकर नए अनुसन्धानों के द्वारा नई होती चली गई.

विश्व के प्रसिद्ध अनुसन्धान-वेत्ताओं तथा इतिहासज्ञों का मत यद्यपि इस बात पर एक नहीं है कि सभ्यता का आरम्भिक विकास कौन से देश से हुआ. किन्तु फिर भी यह एक कटु सत्य है कि खेती का आरम्भ और विकास भारतवर्ष से ही हुआ. प्राचीनकाल में भारतवर्ष खेती की सर्वोच्च शृंखला पर आसीन

था जिसके अनेकानेक उदाहरण हमारे सामने आज भी वर्तमानहैं .

यदि अन्य अनेकानेक वातों को छोड़कर कपास की ओर ही दृष्टिपात करें तो यह पता लगते देर न लगेगी कि एक दिन भारतीय समाज का वह गौरव पूर्ण था जिस दिन समस्त संसार के वैज्ञानिक भारतीय कपास के द्वारा तय्यार हुए कपड़े को अपलक देखते रह जाते थे और लाख चेष्टाएं करने पर भी उस जैसा बारीक और बढ़िया कपड़ा बुनने में समर्थ नहीं हो पाते थे.

इतिहास के बहुत पुराने स्वर्णिम पृष्ठों की बात भी छोड़ दीजिये, मुगल शासन जिस समय भारतीयों की छाती पर मूंग दल रहा था, भारतीय कलाकारों को उनकी कला का उस दिन वह उपहार दिया जाता था जिसके द्वारा कला का निर्माता या तो सदा के लिये अंगभंग विक्षिप्तावस्था को प्राप्त हो जाता था या सदा के लिये शमसान की गोदी में जाकर सो जाता था. यदि देखा जाय तो उस समय भारतीय कला अपनी सर्वोच्च उन्नति प्राप्त करने के पश्चात भी अत्याचारियों के हाथों में कठपुतली की तरह नाच रही थी.

औरंगशाह का शासनकाल था, किसी भारतीय किसान ने अपने खेत की उपजाई हुई कपास के द्वारा अपने ही घर पर हाथ की कती और बुनी मलमल का एक थान उसे भेंट किया. बादशाह ने वह मलमल का थान ज्यों का त्यों ही महलों में भेज दिया और कहला दिया कि हमारी प्रिय पुत्री आज उसे ही धारण करके हमारे सामने आए. जिस समय उस थान की साड़ी बांधकर वह बादशाह के सामने आई तो औरंगजेब अत्यन्त क्रोधित होकर

बोला कि इतनी बारीक साड़ी पहन कर आने के लिये किसने कहा था, जिसमें से शरीर नग्न प्रतीत होता हो. यह सुन उस लड़की ने बताया कि उसने उस थान को सात बार लपेट कर साड़ी बांधी है.

इस पर औरंगजेब को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने कपड़े की परीक्षा की तो देखा वास्तव में मलमल का वह थान इतना बारीक था कि सम्पूर्ण एक मुट्ठी में आ सके. इससे यह पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि उस समय कपास की खेती इतनी बढ़िया की जाती थी कि उसका धागा इतना बारीक बनाया जा सके जिससे ऐसा मलमल का थान तय्यार हो. किन्तु समय के साथ ही साथ उस प्रकार की उन्नत खेती दिन पर दिन अवनत होती चली गई. भारत का दुर्भाग्य था कि मुगल शासन के तुरन्त बाद उनके सहज स्वभाव और सरल विचार धारा के ऊपर अंग्रेजों का शासन स्थापित हुआ. आंग्ल शासनकाल में भारतीय किसानों को इस प्रकार से दबा दिया गया कि वे अपने मस्तिष्क से काम लेकर ठीक प्रकार से खेती न कर पायें.

यदि आज की अवनत खेती की ओर नजर डालें तो हम तुरन्त ही यह जान लेंगे कि खेतिहर व्यक्तियों ने जब से धरती की उपेक्षा करना आरम्भ किया है तभी से धरती ने उनकी उपेक्षा करनी आरम्भ कर दी. यह एक कटु सत्य है कि धरती के ऊपर जितना परिश्रम किया जाता है खेती भी उतनी ही अच्छी और उन्नत होती है.

भारतीय किसान उस उदार संस्कृति के अनुयायी थे जो कर्तव्य में विश्वास करती है. वास्तव में वे लोग धरती से कुछ भी

प्राप्त करने से पूर्व धरती के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करने में विश्वास करते थे और उसी के अनुसार अपने श्रम-परिश्रम से तथा उचित उपयुक्त रीति से धरती को श्रमदान देते थे तथा उसी के द्वारा धरती प्रसन्न होकर मानव को पोषण देने योग्य खाद्य उत्पन्न करती थी. कर्तव्य जितने श्रम से पूर्ण होता था किसान उसी के अनुसार फल भी प्राप्त करता था.

युग परिवर्तित हुआ भारत भू पर परकीयों का सूर्य उदित हुआ और जिस समय भारतीय दीपक पर विजली का लट्टू चमका तो दीप की लौ फीकी पड़ गई. लोगों ने समझा शायद यह प्रकाश उनके जीवन को अधिक चमकाएगा. उसी में वे दीपक के प्रकाश को खो वैठे. किन्तु उस प्रकाश ने मानवीयता को नष्ट करके दानवीयता को जन्म दिया और भोले भारतीयों को अपने पाश में ऐसा जकड़ लिया कि वे अपनी वुद्धि से एकदम दूर हो गए.

, अधिकार और कर्तव्य का संघर्ष था जहां भारतीय किसान कर्तव्य मे विश्वास रखता था वहां उसके ऊपर अधिकार की छाप लगा दी गई. किसान को अनुभव हुआ कि वह संसार की समूची वस्तुओं का भोग करने के लिए ही संसार मे आया है, फिर भूमि तो जड़ है उससे कुछ भी उपजा लेना हमारा अधिकार है और उसी अधिकार के अन्धड़ में कर्तव्य का दीपक वुझ गया.

जिस दिन एक वड़े रोमन दार्शनिक श्री इपिक्यूरियस ने यह नारा लगाया 'कि खाओ पियो और मजे करो, क्योंकि कल मर जाना है,' उस समय से ही लोगों में स्वार्थ पनप गया और कर्तव्य की भावना कुंठित हो गई. और जब उसी विचारधारा के अनुयायी

भारतीय किसानों पर छाए तब से भारतीयता परकीयता में परिणत हो गई.

किसानों ने भूमि के प्रति कर्तव्य निभाना छोड़ दिया और बिना कर्तव्य करे ही वे धरती से अपने पालन पोषण के साधन प्राप्त करने का प्रयास करने लगे जिसके कारण फसल धीरे-धीरे बिगड़ती चली गई और आज हम देखते हैं कि उसी भावना ने भारत को एक ऐसे चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है जहां प्रकाश नहीं है. भारतीय किसान स्वतन्त्र होने के पश्चात् प्रकाश को बाहर की ओर खोज रहा है. उसकी आंखें ऐसी ओर लगी हुई हैं जिस ओर भारतीय अंशुमाली की रश्मियों ने ही प्रकाश फैलाया है.

यह प्रकाश हम यदि परिकीय चश्मा उतार कर देखें तो देश में ही प्राप्त हो जायेगा. वास्तव में जो लोग जिस रंग का चश्मा आंखों पर चढ़ा लेते हैं संसार की समस्त वस्तुएं उन्हें उसी रंग की प्रतीत होने लगती हैं. किन्तु विचारणीय बात केवल इतनी ही है कि वह रंग उन वस्तुओं का मौलिक है क्या ? उत्तर मिलता है नहीं.

महात्मा गांधी ने कहा था Go back to the villages गांवों को वापिस जाओ. इसके अर्थ थे भारतीय संस्कृति को अपनाओ, जो कर्तव्य को अधिकार से बड़ा मानती है. स्वर्गीय मुखर्जी ने भी एक बार किसानों से कहा था कि धरती को श्रम दो तब वह तुम्हें अन्न देगी. इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि खेतिहर जितना भी परिश्रम करेंगे, उस श्रम के अनुसार ही उन्हें फल की प्राप्ति होगी.

एक बात बहुत ही सीधी सादी सी है कि कोश चाहे भी जितना बड़ा हो किन्तु यदि उसमें से केवल व्यय होगा और उस व्यय की पूर्ति नहीं होगी तो निश्चित ही एक दिन वह कोश स्वत्वहीन हो जायगा. यही बात धरती के साथ लागू होती है कि धरती से जो कुछ भी प्राप्त किया जाता है, यदि उसकी पूर्ति धरती में नहीं की जायेगी तो निश्चय ही धरती एक दिन अपना उपजाऊपन खो बैठेगी.

साथ ही साथ श्रम भी उपयुक्त रीति से होना चाहिए. यदि श्रम तो किया जाय किन्तु उचित रूप से न किया जाए तो वह व्यर्थ ही नहीं जाता वरन हानिप्रद भी सिद्ध होता है. यह भी एक छोटी सी बात है, किन्तु समझने की कि यदि तिजूरी को खोलने के लिये गलत चाभी लगाई जाए अथवा अधिक श्रम करके चाभी को उलटा घुमाया जाए तो जहां श्रम व्यर्थ जाता है वहां तिजूरी का भी खराब होने का भय बना ही रहता है.

प्रस्तुत पुस्तक में हम साधारण तौर पर ऐसा वर्णन देंगे जिसके अनुसार बढ़िया प्रकार की अच्छी से अच्छी खेती की जा सके. किसानों को चाहिए कि वे इस श्रमपूर्ण खोज से अधिक से अधिक और अच्छे से अच्छा लाभ उठाने का प्रयास करें जिससे कि हमारा देश एक बार फिर समस्त संसार को सही और बढ़िया खेती का ज्ञान देने में पूर्ण रूपेण समर्थ हो.



भूमि की जातियां

जिस प्रकार की भी खेती करने की आवश्यकता हो उसके लिये अनुकूल भूमि का चुनाव करना बहुत ही महत्वपूर्ण है. यदि भूमि का ठीक चुनाव नहीं किया जाता तो फसल कभी भी अच्छी नहीं उतर सकती वरन् खराब हो जाती है.

अतः किसानों को यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि उनके पास भूमि है तो उसी की मिट्टी के उपयुक्त फसल वहां पर बोएं. जहां भूमि का चुनाव करने की आवश्यकता हो वहां जिस चीज की फसल उसे प्राप्त करनी हो उसके लिये उपयुक्त, वैसी ही भूमि का चुनाव करना चाहिए. यदि इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता तो फसल कभी भी अच्छी नहीं उतर पाती.

भूमि में विभिन्न स्थानों पर भेद पाया जाता है और उस भेद की दृष्टि से ही किसानों को उसमें फसल पैदा करनी चाहिए, क्योंकि बहुत सी फसल ऐसी होती हैं, जिन्हें खाद का कोई तत्व लाभदायक होता है, दूसरी फसल के लिये वही हानिकारक भी हो सकता है. इस प्रकार हानि होने की सम्भावना रहती है.

यदि देखा जाय तो भूमि का अच्छा या बुरा होना ही फ़सल पर प्रभाव डालता है. वैसे तो हर प्रकार की भूमि को हर प्रकार की फसल के लिए उर्वरा बनाया जा सकता है. किन्तु फिर भी फसल के लिये अनुकूल मिट्टी वाली भूमि का चुनाव करना

चाहिए जिससे कि परिश्रम भी कम हो और साथ ही साथ फ़सल भी अच्छी उतरे.

वैसे साधारणतः मिट्टी दो प्रकार की होती है - एक केवाल और दूसरी बलथल. केवाल भूमि वह होती है जो शीघ्र ही गरम नहीं होती तथा जहां पानी ठहर जाता है और बलथल वह भूमि होती है जहां पानी नहीं ठहर पाता और वह गरम भी शीघ्र हो जाती है. इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब भूमि केवल बलथल ही होगी उसमें बालू ही बालू होगी और इस कारण से वहां किसी प्रकार की उपज सम्भव नहीं हो सकती.

प्रायः देखा गया है कि जो कछार भूमि होती है उसमें खाद की कोई आवश्यकता नहीं होती. क्योंकि इस भूमि में जो इधर-उधर से खाद का पानी बहकर आता है वह मिश्रित हो जाता है और इस प्रकार वह भूमि स्वतः ही खादमय हो जाती है तथा उसमें खाद के सारे ही गुण आ जाते हैं. यह तो एक कटु सत्य है ही कि जितने भी खादमय पानी होते हैं वह फसल के लिये बड़े लाभदायक रहते हैं. इसी कारण से कछार की भूमि खादमय हो जाती है.

इस प्रकार खेती करने से पूर्व हमेशा मिट्टी को देख लेना चाहिए कि वह वास्तव मे किस प्रकार की मिट्टी है और उसी के अनुसार उस मे खेती करनी चाहिए. इस बात का ध्यान रखने से खेती बाड़ी करने वालों को न तो अधिक परिश्रम ही करना पड़ता है और न ही किसी परेशानी का सामना करना पड़ता है.

बहुत सी भूमियां ऐसी होती हैं जहां पर घास पात एकत्रित होकर सड़ जाता है, वे भूमियां खेती बाड़ी के लिए बड़ी उपयोगी रहती हैं. जहां पर कीचड़ अधिक होती है वे भूमियां भी खाद मय हो जाती हैं और कहीं कहीं तो वहां की मिट्टी केवल खाद के ही काम में भी लाई जाती है.

धान वाली जो निम्न भूमि होती है उसे चौर भूमि कहा जाता है. इस भूमि में भी खाद अधिक होती है. इस कारण से यह खाद के भी प्रयोग में लाई जाती है. जहां की भूमि में उपजाऊपन की कमी हो यदि वहां की मिट्टी में इस प्रकार की मिट्टी का मिश्रण कर दिया जाता है तो वह भूमि उपजाऊ हो जाती है.

मिट्टी की यदि जांच की जाए तो उससे यह आसानी से ही पता लग जाता है कि उस में खाद आदि किस अनुपात में हैं? इसके लिये थोड़ी सी मिट्टी खोद कर जलानी चाहिए. मिट्टी को जलाने में उसकी तौल जितनी भी कम हो जाए तो समझ लेना चाहिये कि उस मिट्टी में उतनी ही खाद थी. फिर जली मिट्टी को पानी में घोलना चाहिये. उस समय जो मिट्टी पानी में घुल जाए वह साधारण मिट्टी होती है तथा जो नीचे बैठ जाए वह रेत होती है.

जिस समय मिट्टी को जमाया जाय यदि उस समय उसमें से दुर्गन्ध न आए तो समझना चाहिए कि उसमें उदभिज खाद का मिलाव है. और यदि उसमें से दुर्गन्ध निकले तो जान लेना चाहिए कि उसमें प्राणिज खाद का सम्मिश्रण है. इसी प्रकार यदि मिट्टी फटने लगे तो उसमें चूना अधिक

होता है और यदि तीव्र गैस सी आवे तो समझना चाहिए कि उसमें रासायनिक खाद अधिक है.

वैसे तो भूमि की अनेकानेक जातियां हैं किन्तु इन सब में प्रमुख दुमट, मटियार और बालू हैं. इनके अतिरिक्त काली चिकनी मिट्टी बहुत सी फसलों के लिये बहुत ही उपयोगी होती है. यद्यपि खेत की अच्छी तैयारी के द्वारा मिट्टी को हर फसल के लिये थोड़ा बहुत उपयोगी बनाया ही जा सकता है किन्तु फिर भी जो भूमि जिस फसल के लिये अच्छी हो उसकी खेती उसी में करनी चाहिये.

भारत भर में मिट्टियों के जो भेद किये गए हैं उनमें से प्रमुख का संक्षिप्त में नीचे विवरण दिया जाता है. शेष मिट्टी इन्हीं की उपशाखाएं होती हैं और इन्हीं की दृष्टि से उनका प्रयोग भी करना चाहिए.

१. दोमट – खेती बाड़ी में इसी भूमि को सर्वोत्तम मानते हैं. क्योंकि इसकी मिट्टी में लगभग हर प्रकार की खादें मिली रहती हैं और इसी कारण से इस मिट्टी में हर प्रकार की खेती की जा सकती है. साधारणतः इस मिट्टी में वायु और पानी का प्रवेश आसानी से हो जाता है, साथ ही साथ इस भूमि में यह भी विशेषता होती है कि यह न तो अधिक ऊष्ण ही रहती है और न ही अधिक ठण्डी रहती है. जिस समय यह भूमि सूख जाती है तो सख्त नहीं होती और रेत की भांति नितान्त गीली भी नहीं रहती.

२. बलुआ-दोमट – इस मिट्टी में रेत और दोमट का मिश्रण होता है. गुणों की दृष्टि से इसे रेत और दोमट के

मध्य में माना जाता है. इस भूमि में लगभग ७० प्रतिशत रेत आदि होती हैं तथा शेष चिकनी मिट्टी होती है.

३. **मटियार-दोमट** – इस जाति की भूमि में लगभग ७० प्रतिशत भाग चिकनी मिट्टी का होता है तथा ३० प्रतिशत भाग रेत आदि का होता है. वैसे यह मिट्टी मटियार और दोमट के मिश्रण की अर्थात् दोनों की मध्य वर्गीय मानी जाती है, तथा वैसे ही इसमें गुण होते हैं.

४. **मटियार** – इस जाति की मिट्टी काली, चिकनी और कड़ी होती है. कड़ी होने के कारण इसमें वायु का प्रवेश ठीक नहीं हो पाता. वैसे तो यह देर में ही गर्म तथा देर में ही ठंडी हो पाती है, किन्तु इसमें कड़ाई अधिक होने के कारण पेड़-पौधों की जड़ें आसानी से पूर्ण रूपेण नहीं फैल पातीं. इस मिट्टी में खाद पर्याप्त मात्रा में मिली होती है. इस मिट्टी में एक बड़ा दोष यह भी होता है कि जब यह तड़क जाती है तो और भी गीली हो जाती है, जिसके कारण पौधों को बड़ी हानि होती है. इस मिट्टी में लगभग १० प्रतिशत तो रेत आदि का भाग होता है और शेष ६० प्रतिशत भाग चिकनी मिट्टी का होता है. बहुत सी फसलें इस मिट्टी में अच्छी पैदावार देती हैं.

५. **कंकरीली** – इस जाति की मिट्टी को निकृष्ट माना गया है, क्योंकि इसमें चूने के कंकर बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं, जहां इनकी मात्रा १५ प्रतिशत तक हो वहां तो भूमि को सुधारा भी जा सकता है किन्तु जहां इससे अधिक मात्रा हो वहां भूमि का सुधरना असम्भव हो जाता है. इस मिट्टी में खादमय पदार्थ बहुत ही कम होते हैं, साथ ही पानी को सोखने की शक्ति भी इस मिट्टी

में बिल्कुल नहीं होती. इस कारण से इसमें पेड़-पौधों की जड़ें भी गहरी नहीं फैल पाती. यह भूमि खेती बाड़ी के लिये बहुत ही खराब रहती हैं.

६. बलुआ – इस मिट्टी मे यह विशेषता होती है कि यह शीघ्र ही ठण्डी तथा शीघ्र ही गर्माई को ग्रहण कर लेती है, पानी को अधिक मात्रा में और शीघ्र सोख लेती हैं तथा इसमें अधिक शक्ति का अथवा अधिक गहरा हल चलाने की आवश्यकता नहीं होती. इस मिट्टी में १० प्रतिशत तो केवल रेत होती है, १० प्रति शत तक चिकनी मिट्टी की मात्रा होती है तथा शेष अन्य प्रकार की मिट्टी का सम्मिश्रण होता है. इसमें खाद्य पदार्थ जरा कठि-नाई से ही पैदा हो पाते हैं.



जुताई

खेत की अच्छी जुताई करना खेती वाड़ी का एक महत्व पूर्ण अंग है क्यों कि खेत की जैसी जुताई होगी वैसी ही वहां पर फसल की पैदावार भी होगी. यह बहुत ही निश्चित सी बात है. इस सब का कारण यह है कि जुताई करने से मिट्टी नरम व पोली हो जाती है, साथ ही साथ सारी मिट्टी मिल कर एकसार भी हो जाती है. मिट्टी में जो कड़ाई होती है वह नष्ट हो जाती है. इस से पौधों की जड़ों को इच्छानुसार फैलने में बड़ी आसानी होती है.

खेत की मिट्टी की जाति को देख कर ही जुताई करनी चाहिए. अर्थात जिस भूमि में कड़ाई अधिक हो उसकी जुताई अधिक गहरी, और जिस में कड़ाई कम हो उसकी कम गहरी जुताई करनी चाहिए. अच्छी जुताई से भूमि में पानी को सोखने की शक्ति आ जाती है तथा उसमें आवश्यक प्रकाश का भी ठीक प्रवेश हो जाता है. ये दोनों ही बातें फ़सल के लिये वरदान सिद्ध होने वाली हैं, और फसल को लाभ पहुंचाती हैं.

जुताई करना इस लिये भी आवश्यक होता है कि उससे मिट्टी खुद कर ऊपर की ओर आ जाती है, जिस से कि उसमें धूप लगती है तथा वह खुली हवा में पड़ी रहती है. इस कारण से उस में जो कीड़े आदि फसल को हानि पहुंचाने वाले जीव जन्तु होते हैं, उनका नाश हो जाता है. यदि भूमि में दीमक होती है तो वह भी नष्ट हो जाती है.

यदि खेत की गहरी जुताई नहीं की जाती तो खेत की भीतरी भूमि कड़ी रहती है और इस कड़ाई के कारण पेड़ पौधों की जड़ें आवश्यकतानुसार मिट्टी के भीतरी भाग में नहीं फैल पातीं. वरन् ऊपर के ही भाग में अधिक फैल जाती हैं. ऐसी दशा में पेड़ पौधे अपनी आवश्यकता की पूर्ति योग्य पूरी खाद्य सामग्री प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो पाते और इस प्रकार फ़सल जहां घटिया प्रकार की उत्पन्न होती है वहाँ कम भी होती है. जुताई अच्छी हो जाने से भूमि की भीतरी कड़ाई जाती रहती है, और वह नरम हो जाती है जिससे कि जड़ें पूर्ण रूपेण उसमें फैलने में समर्थ रहती हैं.

जिस भूमि की जाति खेती वाड़ी की दृष्टि से बुरी मानी जाती है, ऐसी भूमि को तो बढ़िया बनाने के लिए अच्छी गहरी जुताई अत्यन्त आवश्यक है ही किन्तु जो भूमि अच्छी भी होती है उसकी जुताई सदा गहरी ही करनी चाहिए. इससे एक बड़ा लाभ यह भी है कि भूमि के भीतरी भाग में जो खादमय तत्व विद्यमान रहते हैं, गहरी जुताई कर लेने पर वे भी भली भांति पेड़-पौधों के काम में आ जाते हैं, इस कारण से ऐसे स्थानों पर फिर खाद का व्यय भी पर्याप्त कम हो जाता है.

वैसे तो जिस प्रकार की फ़सल हो जुताई भी उसी की दृष्टि से कम और अधिक गहरी तथा एक बार और अनेक बार करनी होती है, किन्तु साधारणतः हर प्रकार के खेत की जुताई गर्मियों के दिनों में कर देनी चाहिए तथा उसे खुला छोड़ देना चाहिए. फिर उसे प्रयोग में लाने से पूर्व इसकी पुनः जुताई कर लेनी चाहिए. जिस समय वर्षा का समय आए तब भी खेत की गहरी

जुताई अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होती है, क्योंकि इस समय की जुताई से भूमि में इतना फोकापन आ जाता है कि वह वर्षा का जल लेकर पर्याप्त नमी को ग्रहण कर लेती है, तथा खाद तत्वों को शीघ्र ही पौधों के प्रयोग में आने योग्य बना देती है.

जुताई करने से पूर्व भूमि की जाति को भी भली भांति देख लेना चाहिए कि वह कैसी है, तथा उसी की दृष्टि से योग्य जुताई करनी चाहिए. अर्थात् यदि भूमि अधिक कड़ी होती है तो जुताई भी गहरी करनी होती है और यदि भूमि रेतीली होती है तो जुताई हल्की करनी होती है. कड़ी भूमि की जुताई कई बार करनी चाहिए और रेतीली भूमि की जुताई अधिक वार करने की आवश्यकता नहीं होती, अतः उथली और कम वार ही करनी चाहिए.

जुताई के लिए भूमि का कुछ नम होना तो अच्छा रहता है किन्तु जो भूमि गीली रहती हो उसकी जुताई नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसी भूमि जुताई करने से खराब हो जाती है और खेती योग्य नहीं रहती. ऐसी भूमि की जुताई उस समय करनी चाहिए जब मौसम में गर्माई हो और मिट्टी कुछ शुष्क सी हो जाए. साथ ही साथ जिन खेतों की मिट्टी में घास पात अधिक रहता हो वहां पर इस घास-पात को नष्ट करने के लिये जुताई कई वार और गहरी करनी चाहिये. जो भूमियां अधिक कड़ी और शुष्क रहती हों उनकी जुताई भी अधिक गहरी और आवश्यकतानुसार अधिक वार करनी चाहिए.



खेत की तैयारी

किसी भी फसल की खेती करने से पूर्व चुनी हुई भूमि को योग्य बना लेना अत्यन्त आवश्यक है. क्योंकि फसल हर दृष्टि से इसी पर अधारित रहती है. अर्थात यदि खेत की आवश्यकतानुसार योग्य तैयारी हो जाती है तो फसल बढिया: और अच्छा फल देती है. और यदि योग्य तैयारी नहीं हो पाती तो जहां फसल घटिया प्रकार की हो जाती है, वहां कम भी उतरती है .

जो भूमि जंगल के रूप में हो आर उसे खेती वाड़ी के काम में लाना हो तो पहले उसके ऊपर बड़े परिश्रम की आवश्यकता होती है. अर्थात सर्व प्रथम तो जंगल को पूर्ण रूप से साफ़ करना चाहिये, फिर इसके पश्चात भूमि की बहुत ही गहरी जुताई कर के उसमे से कंकर पत्थर और पेड़-पौधों की जड़ों को भली भांति छांट कर निकाल देना चाहिए इसी के साथ साथ भूमि को समतल कर लेना भी अत्यन्त आवश्यक है. अर्थात जो टीले हों उन्हें तोड़ कर उनकी मिट्टी को आवश्यकतानुसार गढ़ों में इस प्रकार से भरना चाहिये कि वह भूमि समतल हो जाए.

जहां पर भी खेत की तैयारी की जाय वहां पर पानी के निथार का भी ठीक प्रबन्ध कर देना अत्यन्त आवश्यक है. जिससे कि आवश्यकता से अधिक पानी खेत में कहीं भी खड़ा

न रह पाए. क्योंकि इस प्रकार से खड़ा रहने वाला पानी खेत की मिट्टी को इतनी गीली बना देता है कि उस में आवश्यकतानुसार वायु और प्रकाश का प्रवेश नहीं हो पाता तथा ऐसी दशा में फसल खराब हो जाती है.

जुताई आदि करते समय यह देख लेना चाहिए कि यदि उस भूमि में पानी भरा रहता है तो उसका कारण क्या है. अर्थात यदि ढालवां होने के कारण ऐसा हो तो तैयारी के समय दूसरी ओर ढाल बना कर उस पानी को निकाल देने के लिये ठीक प्रबन्ध करना चाहिये और यदि भूमि भीतर से गीली हो तो उसमें भीतर की ओर बन्द नालियां बना कर पानी के निकास का ठीक प्रबन्ध करना चाहिए. कहीं कहीं पर पाइप बोर करके भी पानी के निथार का ठीक प्रबन्ध किया जाता है. इस के लिये लोहे का एक बड़ा पाइप लेकर उसमें बहुत से छेद चारों ओर करके उसे यदि भूमि में इस प्रकार से गाड़ा जाए कि उस का एक सिरा कुछ नीचे की ओर ढालवां होकर किसी नाले की ओर हो तो पानी इस में होकर स्वतः ही निथर जाता है.

जिन स्थानों पर खेत की तैयारी के समय पानी के निथार का ध्यान नहीं रखा जाता वहां भीतरी भूमि गीली रहती है. जिस के कारण पौधों की जड़ें गल जाती हैं और फलतः पेड़ पौधे जल कर सूख जाते हैं. वृक्षों की जड़ें केवल नमी ही चाहती हैं. जिस से उन्हें भूमि से अपनी खाद्य सामग्री प्राप्त करने में सुविधा रहती है. आवश्यकता से अधिक नमी या पानी का अभाव इन पेड़ पौधों की जड़ों के लिये पूर्ण रूप से अभिशाप ही सिद्ध होता है.

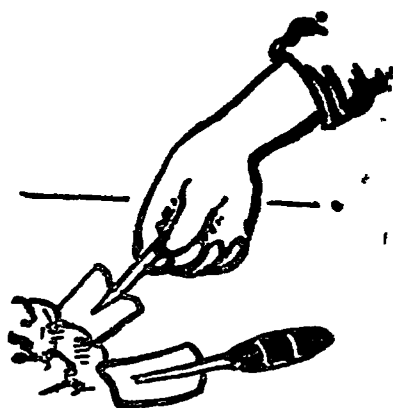
खेत की मिट्टी में पानी भरा रहने से एक हानि यह भी बड़ी होती है. कि पौधों के भीतरी भाग को गर्माई बिलकुल नहीं मिल पाती क्यों कि जो गर्माई धूप द्वारा आती है वह तो वहां के पानी को भाप बनाने में अपनी शक्ति को खो बैठती है. जब पेड़ों को उपयुक्त गर्माई नहीं मिलती तो पौधे बढ़ना छोड़ देते हैं. साथ ही साथ एक बात और भी होती है कि खेत में जो खाद डाली जाती है उसमें कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो भूमि में ही गर्माई पाकर ठीक प्रकार से सड़ते हैं. पानी का भराव इन्हे भी सड़ने नहीं देता और फलतः इनसे फसल को लाभ के स्थान पर हानि ही होती है.

खेत की तैयारी के ही समय यह देख लेना चाहिये कि भूमि में दीमक तो नहीं लगी है. यदि दीमक कम हो तो उसका उपाय करना चाहिए, यदि दीमक सारी ही भूमि में लग गई हो और उससे छुटकारा पाना कठिन जान पड़े तो वहां की ऊपरी मिट्टी को जला डालना चाहिए. साधारणत. गहरी जुताई करके यदि मिट्टी को खुला छोड़ देते हैं या उसमें धूप लगने देते हैं. तो भी दीमक से सहज ही छुटकारा मिल जाता है.

जिस भूमि में पूर्व में भी कोई फसल ली गई हो वहां पर भूमि की तैयारी के समय ही खेत में से पुरानी जड़े आदि छांट छांट कर निकाल देनी चाहिये. जिससे कि वे फसल के बढ़ने में कोई किसी प्रकार की भी बाधा न डाल पाएं, उसी

समय जो घास पात उग रहा हो उसे भी सावधानी से समूल नष्ट कर देना चाहिये.

इस प्रकार खेत की तैयारी बड़े ही ध्यान के साथ करनी चाहिये. ऊपर बताई गई हर बात का समान ध्यान रख कर ही यह सब कार्य बड़ी ही समझदारी से सम्पादित करना चाहिये. जिससे कि आगे किसी भी हानि की संभावना न रहे और खेतिहर पूर्ण सुविधा पूर्वक खेती बाड़ी कर सके.



निराई गोड़ाई

खेती करने वालों को निराई गोड़ाई का वहुत अधिक ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है. यदि इनका ध्यान नहीं रखा जाता तो फसल खराव उतरती है. निराई-गोड़ाई सदा फसल की जाति और उसकी आवश्यकता के अनुसार ही करनी चाहिए.

निराई को ही निकाई और निंदाई भी कहा जाता है. यह अधिकतर खुरपियों से ही की जाती है, किन्तु फिर भी कहीं कहीं पर इसके लिये भी पृथक पृथक हल प्रयोग मे लाये जाने लगे हैं. निराई करना अत्यन्त आवश्यक इस कारण से है कि खेतों में जिस समय बीज जम जाता है तथा कुरे फूटने लगते हैं, उस समय खेत में जंगली घास खरपतवार आदि उग आती हैं. जो कि भूमि में से उस खाद्य पदार्थ को बांट खाती हैं जो निर्धारित मात्रा में बीज के लिए ही दिया गया होता है.

इस प्रकार फसल का खाद्य पदार्थ व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है जिससे कि किसान को कोई लाभ नहीं हो पाता वरन् उसे हानि का ही सामना करना पड़ता है. खरपतवार के बीज वायु के साथ उड़ कर आ जाते हैं तथा स्वतः ही खेत से नमी प्राप्त करके उग आते हैं. इनके कारण खेत की नमी भी पर्याप्त मात्रा में नष्ट हो जाती है. जिसके कारण उपजाए गए पौधे नमी की कमी से खराव हो जाते हैं.

अतः जिस समय भी ये खरपतवार अथवा अन्य कोई घास पात खेत में दृष्टिगत हो तो निराई करके इन्हें तुरन्त ही नष्ट कर देना चाहिए. निराई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए. जहां जहां भी यह खरपतवार आदि हों वहां पर खुरपे खुरपियों से इन्हें उखाड़ डालना चाहिए. उखाड़ते समय यह भी भली भांति ध्यान रखना चाहिए कि एक तो इनकी जड़ें मिट्टी में भीतर न रह जाएं वरन् खरपतवार समूल नष्ट हो, दूसरे जो पौधे खेती के लिये लगाए गए हैं उनकी जड़ों को किसी प्रकार की भी हानि न हो पाए. अर्थात निराई का कार्य बहुत ही सावधानी से संपादित करने की विशेष आवश्यकता होती है.

बहुत से किसान जो इसका महत्व नहीं समझते उन्हें फ़सल में बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ती है और जो लोग असावधानी से निराई करते हैं उन्हें भी कम हानि नहीं उठानी पड़ती, अतः इस कार्य को जहां महत्व देकर खरपतवार आदि से रक्षा करना आवश्यक है वहां सावधानी भी कम आवश्यक नहीं.

निराई करने के दो ढंग हैं जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एक हल के द्वारा तथा दूसरा खुरपियों के द्वारा. जहां पर बीज को छिटका कर बोया गया हो वहां निराई खुरपियों से ही की जाती है, किन्तु जहां पर बुवाई पंक्तियों में ठीक व्यवस्थित रूप से की गई हो वहां पर यह निराई हल के द्वारा ही ठीक प्रकार से की जा सकती है.

इस प्रकार से हम देखते हैं कि निराई खेतों के लिये अत्यन्त ही आवश्यक क्रिया है, जिसके बिना बढ़िया और अच्छी खेती

नहीं की जा सकती. यह निराई आवश्यकतानुसार कई स्थानों पर कई फ़सलों में दस और बारह बार तक की जाती है, तब कहीं जाकर फ़सल खरपतवार आदि से पीछा छुड़ाने में समर्थ हो पाती है.

निराई की ही भांति खेत को गोड़ना भी अत्यन्त आवश्यक है. बहुत से स्थानों पर जब खेत की ऊपरी मिट्टी सूख जाती है तो उसमें दरारें सी पड़ जाती हैं. जिनके द्वारा भूमि का भीतरी जल इन दरारों के द्वारा ऊपर को आकर उड़ जाता है और भूमि की भीतरी नमी नष्ट हो जाती है. जिन स्थानों पर खेतिहर लोग गोड़ाई पर ध्यान नहीं देते वहां पर उन्हे बड़ी हानि उठानी पड़ती है.

बहुत से ऐसे स्थान होते हैं जहा के खेतों में कृत्रिम सिंचाई की आवश्यकता होती है. वहां पर विशेषतः खेत की ऊपरी मिट्टी फट सी जाती है. वहां निराई के पश्चात् आवश्यकतानुसार बराबर गोड़ाई करते रहना चाहिए. इस गोड़ाई से खेतों की भूमि पर्याप्त भुरभुरी हो जाती है और ऊपरी दरारें भी नष्ट हो जाती हैं. इससे पानी मिट्टी द्वारा ही सोख लिया जाता है. व्यर्थ ही उड़ नहीं पाता.

गोड़ाई करने के लिये साधारणत: खुरपे, फावडे अथवा काटे या हेरो आदि का प्रयोग किया जाता है. इससे एक बड़ा लाभ यह भी होता है कि मिट्टी में गर्मी और वायु का प्रवेश हो जाता है तथा भूमि भुरभुरी हो जाती है. वायु और गर्मी का प्रवेश फसल के लिये वरदान सिद्ध होता है. साथ ही जब मिट्टी भुरभुरी हो जाती है तो उसमे पेड़-पौधों की जड़े

वहुत ही आसानी से फैल जाती हैं. तथा उनके काम में कोई वाधा नहीं पड़ती इससे भी फ़सल को वहुत लाभ होता है.



मिट्टी चढ़ाना

वहुत सी फ़सलें ऐसी भी होती हैं जिनमें निराई गोड़ाई के अतिरिक्त मिट्टी चढाने का कार्य भी किया जाता है. मिट्टी चढ़ाने से वहुत सी फ़सलों को दुगने तक वढते देखा गया है. यह कार्य भी विशेषत: खुरपे या फावड़ों से ही सम्पादित किया जाता है. खेतों में मिट्टी चढाने का कार्य कुछ ही फ़सलों के लिये किया जाता है. इसके कारण संक्षेप में नीचे दिये जाते हैं.

(१) खेतों में जव मूंगफली लगाई जाती है तथा उसमें फल आने का समय होता है तो उसकी टहनियों के ऊपर मिट्टी चढाई जाती है, जिससे कि फल अच्छे वढ़ें. मूँगफली के फल क्योंकि मिट्टी के भीतर ही वढ़ते हैं. इस कारण मिट्टी को पोला करके मिट्टी चढ़ानी होती है. जिससे कि फल सरलता से वढ़ते रहें.

(२) आलू, हल्दी और अदरक आदि की जहां फसल लगाई जाती है वहां भी मिट्टी चढाना अच्छा रहता है क्योंकि इनके तने तथा टहनियां भूमि में ही अपना खाद्य पदार्थ एकत्रित करते हैं. अतः यदि इनकी टहनियां और तने पर मिट्टी चढ़ा दी जाती है तो वह पोली रहने के कारण इन टहनियों तथा तनों को योग्य पदार्थ एकत्रित कतने में सहायक सिद्ध होती है.

(३) जिन फसलों में मिट्टी चढाने की आवश्यकता हो वहां चढाकर साधारण नालियों के निर्माण के द्वारा अतिरिक्त पानी को बहुत ही सरलता से निकाला जा सकता है.

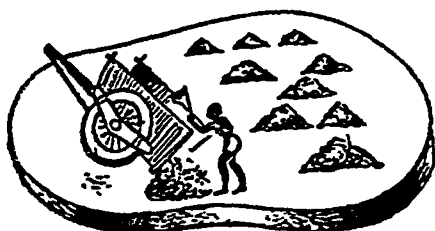
(४) जहां कुम्हडे आदि की खेती की जाती है वहां पर किसानों ने देखा होगा कि इन की टहनियों में कई जगह गांठें निकल आती हैं. यदि इन गांठों पर ठीक ढंग से मिट्टी चढ़ा दी जाती है तो इनमें से जड़ें फूट निकलती हैं. तथा वे अन्य जडों को अधिकाधिक योग्य पदार्थ पौधे में पहुंचाने में बड़ी सहायक सिद्ध होती हैं.

(५) गन्ने में मिट्टी चढाने का कार्य कई बार करना पड़ता है क्योंकि इसके पौधे के निचले भाग मे मिट्टी के पास ही जड़ें निकल आती है. जितनी बार पेड़ जड़ें छोड़े उतनी ही बार इन पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए. ऐसा करने से वे जड़ें भली भांति भीतर ही भीतर पल कर बढ़ जाती है और पौधों को बड़ा बल प्रदान करती हैं.

(६) मक्का आदि के बहुत से ऐसे भी पौधे होते है, जिनका ऊपरी भाग कुछ भारी होता है और तीव्र हवा चलने पर उनको

गिरने का भय रहता है. ऐसे पौधों को सहारा देने के लिये भी मिट्टी चढ़ाई जाती है.

इस प्रकार हम देखते हैं कि बहुत सी फसलों में मिट्टी चढ़ाने का कार्य भी अत्यन्त आवश्यक होता है. यदि इस पर ठीक ध्यान नहीं दिया जाता तो निश्चित ही फ़सल ख़राब उतरती है. गन्ने की फसल तो कभी कभी इतनी अधिक मात्रा में गिर जाती है कि किसान हाथ मलता रह जाता है. अतः जहां जिन फसलों में मिट्टी चढ़ाना आवश्यक हो वहां इस क्रिया पर पूर्ण ध्यान देना चाहिये.



सिंचाई

पेड़-पौधे सिंचाई की दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं. अर्थात एक तो वे जो भूमि की ऊपरी सतह से जल ग्रहण करते हैं. तथा दूसरे वे जिनकी जड़ें भूमि मे इतने नीचे तक चली जाती हैं कि वे स्वतः ही पानी नीचे से खेंच लेती हैं. जिनकी जड़ छोटी होती हैं उन्हें ऊपरी कृत्रिम सिंचाई की आवश्यकता होती है. इसी कारण से उनके लिये सिंचाई अति आवश्यक भी है.

वास्तव में सिंचाई की आवश्यकता इसलिये होती है कि पेड़ पौधों की जड़ें जो भी योग्य पदार्थ भूमि से प्राप्त करती हैं, वह तब तक खींच नहीं पातीं जब तक कि भूमि मे पर्याप्त नमी न हो. नमी ही खाद को इस योग्य बनाती है कि यह जड़ो के प्रयोग मे ठीक प्रकार से आ सके और नमी के कारण ही खाद के तत्वों का वह घोल बन पाता है जो कि जड़े खींच कर पौधों को पहुंचाती हैं और जिनके द्वारा पौधों मे बल आ पाता है.

वैसे भी यदि देखा जाय तो बिना जल के पौधा किसी भी हालत मे जीवित नही रह सकता. पौधे की जड़ें जो भी कार्य करती है वह सब जल की सहायता से ही करती है. जल के अभाव मे जड़े कोई भी कार्य किसी प्रकार से भी करने मे पूर्ण असमर्थ रहती हैं. जब तक पेड़ पौधे भूमि के भीतरी भाग

से जल प्राप्त करने योग्य नहीं हो जाते तब तक या जो स्वभाव से ही ऊपरी जल चाहते हैं उनकी पानी की पूर्ति करने के लिये सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है.

सिंचाई तो खेती के लिये अत्यन्त आवश्यक है ही किन्तु साथ ही साथ उसमें यह देख लेना भी अत्यन्त आवश्यक है कि खेत में कितने पानी की आवश्यकता है, क्योंकि अधिक पानी भी फसल को खराब कर डालता है, अतः पानी आवश्यकतानुसार ही खेतों में रहना चाहिये. जहां पानी अधिक होता है उसे कुछ अंशों तक जुताई के द्वारा कम किया जा सकता है.

जिस समय सिंचाई की जाती है उस समय खेत की समूची सतह एक प्रकार से बंध सी जाती है. ऐसी दशा में भूमि के भीतर उचित वायु और प्रकाश का प्रवेश नहीं हो पाता वरन् रुक जाता है. ऐसे समय में सिंचाई के बाद ही गोड़ाई कर देनी चाहिए. यह गोड़ाई उस समय करनी चाहिये जब कि पानी थोड़ा सूख सा जाए. गोड़ाई से एक बड़ा लाभ यह भी हो जाता है कि पानी उड़ नहीं पाता वरन् पोली हो जाने के कारण खेत की मिट्टी उसे भली भांति सोख लेती है.

खेतों की सिंचाई साधारणतः दो प्रकार से होती है. एक तो प्राकृतिक रूप से, तथा दूसरे कृत्रिम रूप से. वर्षा के द्वारा जो सिंचाई हो जाती है उसे प्राकृतिक कहते हैं, तथा जो किसानों को साधन प्रसाधनों के द्वारा करनी पड़ती है उसे कृत्रिम सिंचाई कहते हैं. जहां जिस समय वर्षा होती है, वहां उस समय अन्य किसी प्रकार से सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु जहां वर्षा का अभाव हो अथवा उचित समय पर वर्षा न हो वहां कृत्रिम

सिंचाई की आवश्यकता होती है. अतः इसका ठीक ध्यान रखना चाहिए.

खेतों में जो सिंचाई की जाती है वह मुख्यत. तीन बातों पर आधारित रहती है. इसमें सर्व प्रथम क्रम ऋतु का है, अर्थात् जैसी ऋतु होती है उसी की दृष्टि से खेतों में सिंचाई करनी होती है. फिर भूमि की जाति का अन्तर पड़ता है, अर्थात् बलुआ जाति की भूमि में सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है तथा अ य जाति की भूमियों में कम सिंचाई की. फिर फसल की जाति देखनी होती है कि किस जाति के पौधे कितनी सिंचाई मांगते हैं, सिंचाई उसी दृष्टि से करनी होती है.

सिंचाई के लिये जो जल प्राप्त होता है वह सब वर्षा से ही प्राप्त होता है. किन्तु इसमे भेद इतना सा है कि कहीं पर कभी तो वह जल सीधा वर्षा से ही प्राप्त होता है तथा कभी कहीं कुछ अन्य साधनों के द्वारा प्राप्त हो पाता है. जैसे वर्षा के दिनों मे जो जल भूमि सोख लेती है वह तो सीधा ही माना जाता है किन्तु जो वह जाता है तथा तालाव आदि मे एकत्रित हो जाता है और आवश्यकता पड़ने पर जब उसके द्वारा सिंचाई की जाती है तो वह अन्य साधनो के द्वारा प्राप्त माना जाता है, किन्तु होता वह भी वर्षा का ही जल है.

जिस समय वर्षा होती है तो कुछ पानी तो मिट्टी अपनी शक्ति के अनुसार-सोख लेता है तथा कुछ पानी बहकर निकल जाता है. जो वर्षा हल्की बूंदों की होती है वह खेतों के लिये अधिक लाभ-दायक सिद्ध होती है क्योंकि खेत उसे आसानी से सोख लेते हैं

तथा जल खेतों के बाहर बह नहीं पाता, किन्तु जो जल तीव्रता से बरसता है वह अधिक लाभकर इसी कारण से नहीं हो पाता कि वह वह जाता है.

जिन जिन स्थानों पर वर्षा कम होती है वहां वहां पर खेतों में कम नमी रहती है तथा अधिक सिंचाई की आवश्यकता रहती है किन्तु, जिन स्थानों पर वर्षा अच्छी और अधिक हो जाती है वहां पर भूमि में आवश्यकतानुसार पर्याप्त नमी रहने के कारण उतनी ही कम सिंचाई की आवश्यकता रहती है. सिंचाई इसी दृष्टि से करनी चाहिये.

वर्षा का जो जल वह वहकर नदी, तालाव, नहर, कुए, वावड़ी अथवा झरने आदि में एकत्रित हो जाता है, वही वाद में जव वर्षा का अभाव होता है और पेड़-पौधे जल की मांग दर्शाते हैं तो सिंचाई के प्रयोग में लाया जाता है. इस कारण से जल के ये ही सारे के सारे स्थान एक प्रकार से सिंचाई के साधन माने जाते हैं. इन्हीं के द्वारा किसान अपने जल के अभाव की पूर्ति करते हैं.

किसानों को जो पानी सिंचाई के लिये कुओं, तालावों, पोखरों अथवा नहरों आदि से प्राप्त करना हो उसके लिये अपनी सुविधा देख लेनी चाहिये. अर्थात् यदि पानी अधिक नीचा हो तो पम्प आदि लगाकर पानी प्राप्त करना चाहिए और यदि ऊंचा हो तो चरस अथवा रहट आदि के द्वारा प्राप्त करना चाहिए. जहां से नालियां वनाकर ही पानी के द्वारा सिंचाई की जा सके वहां उचित रीति से नालियों आदि का प्रबंध करना चाहिये.

हमारे देश में कुओं से सिंचाई का काफी काम चलता है. ये कुए भी दो प्रकार के होते हैं, एक तो ऐसे जो गर्मियों में भी जल देते रहते हैं तथा दूसरे वे जो गर्मियों में सूख जाते हैं और जल देना वन्द कर देते हैं. जिन कुओं में केवल वर्षा का ही जल भर कर आया होता है वे अधिक जल नहीं दे सकते, किन्तु जिनके भीतर से स्रोत फूटे हुए हों वे कुए हमेशा पानी देते ही रहते हैं. सिंचाई के लिये स्रोत वाले गहरे कुए ही अच्छे होते हैं.

कहीं कहीं पर सिंचाई के लिये ट्यूब वैल भी प्रयोग में लाए जाते हैं. लेकिन यह ट्यूब वैल ऐसे स्थानों पर ही सफल हो पाते हैं जहां नदियों के कछार हैं. अन्य स्थानों पर ये सफल सिद्ध नहीं हो पाए हैं. ट्यूबवैल तैयार करने के लिए भूमि में एक छह इंच तक का मोटा पाइप गाड़ा जाता है और फिर पम्प के द्वारा अथवा अन्य प्रकार से उससे पानी प्राप्त किया जाता है. जहां जहां पर टयूबवैल सफल हो पाया है वहां वहां पर किसानों का पर्याप्त श्रम बच जाता है.

खेती वाड़ी करने वाले किसानों को यह भी अवश्य पता रहना चाहिए कि जिस कुए से वे सिंचाई करना चाहते हैं, उसमें से कितना पानी प्राप्त किया जा सकता है. अर्थात् कुए मे जिस वेग से स्रोत के द्वारा जल आता हो उसी वेग से जल निकालने से कुए मे जल भरा भी रहता है और सिंचाई भी हो जाती है. अपने सिंचाई के साधन का ठीक ठीक अन्दाज रखने से किसान को यह पता रहता है कि किस स्थान से सिंचाई के लिए कितना जल उपलब्ध हो सकता है.

साधारणतः सिंचाई तीन प्रकार की मानी जाती है. उत्तम, मध्यम और न्यून. जो सिंचाई चार इंच तक की जाती है उसे उत्तम, जो दो इंच तक की जाती है उसे मध्यम और जो एक इंच तक की जाती है उसे न्यून कहते हैं. किसानों को मिट्टी की जाति, ऋतु और फ़सल की जाति की दृष्टि से ही आवश्यकतानुसार उत्तम, मध्यम अथवा न्यून प्रकार की सिंचाई करनी चाहिये.

जहां पर भी सिंचाई के लिए कुए आदि बनाने का विचार हो वहां पर यह देख लेना अत्यन्त आवश्यक है कि उस स्थान की ऊंचाई कितनी है क्योंकि सिंचाई का स्थान सदा खेत की सतह से पर्याप्त ऊंचा होना चाहिए. यदि ऐसा नहीं होता है तो खेतों में पानी का पहुंचाना सम्भव नहीं हो पाता. यदि वे स्थान खेतों की सतह से अधिक ऊंचा रहता है तो जो जल सिंचाई के लिए निकाला जाता है वह आसानी से बहकर नालियों के द्वारा खेतों मे पहुंच जाता है. और उसके लिये विशेष श्रम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती.

जिस स्थान से सिंचाई करनी हो वहां पर बड़ी नाली बना देनी चाहिये और उसी में से ऐसी छोटी नालियों का निर्माण करना चाहिये जो ठीक प्रकार से पानी को क्यारियों तक पहुँचा दे. जिन खेतों में सिचाई करनी हो उनमें सिंचाई से पूर्व ही क्यारियां बना लेना आवश्यक है. और फिर उन क्यारियो मे ठीक प्रकार से ऐसी नालियां बना लेनी चाहियें जो सम्पूर्ण खेत में आवश्यकतानुसार समान वितरण करने में समर्थ हो.

कहीं कहीं पर बरहे लगा कर भी खेतों में पानी पहुँचाया जाता है. जहां जहां बरहों के द्वारा नालियों में पानी पहुँचाते हैं, वहां वहां पानी को नालियों में बंद करते रहना चाहिये साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि पानी जिधर से छोड़ा जाता है, उधर की भूमि उसे शीघ्र सोख लेती है. और इस कारण से ऐसे स्थानों पर कीचड़ हो जाती है. अच्छा तरीका यही है कि छोटे छोटे बरहों के द्वारा पानी खेत की नालियों में पहुँचाया जाय.

जिस समय पानी सिंचाई के लिये छोड़ा जाय उसी समय यह देख लेना चाहिये कि बरहे या नालियां ठीक प्रकार से निर्मित भी हो पाती हैं अथवा नहीं. क्योंकि यदि इनमे कोई खराबी रह जाती है तो खेत की सिंचाई ठीक प्रकार से नहीं हो पाती और दूसरी बात यह भी है कि पानी और श्रम व्यर्थ ही बरबाद जाते हैं. अतः सुविधानुसार अच्छे और उपयुक्त बरहे तथा नालियां बनाकर सिंचाई करनी चाहिये.

वास्तव में मिट्टी के ऊपर सिंचाई का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है. क्योंकि मिट्टी के अन्दर जो पानी रहता है उसके कई रूप होते है. एक तो ऐसा पानी होता है जिस के साथ पर्याप्त मात्रा में रासायनिक पदार्थों के अणु मिले होते हैं. ऐसे पानी को किसान लोग रासायनिक पानी मानते हैं. यदि थोड़ा सा विश्लेषण कर के देखें तो हम देखेंगे कि कई बार पानी के अन्दर रासायनिक तत्वों को मिलाने से उन पदार्थों की शक्ति पानी में आ जाती है.

दूसरे कुछ पानी ऐसा भी होता है जो कणों के रूप में मिट्टी में मिला रहता है. मिट्टी के जो छोटे छोटे कण होते हैं यह जल उनके चारों ओर लिपटा रहता है. और जिस समय इस जल की अधिकता होती है, यह ऐसे स्थानों पर भी भर जाता है जहां वायु का स्थान हो किन्तु जो पानी इससे भी अधिक मात्रा में दिया जाता है वह रुक नहीं पाता वरन वह जाता है. अतः सिंचाई इतनी ही करनी चाहिये कि पानी मिट्टी द्वारा सोख लिया जाय. न तो इस से अधिक करनी चाहिये न कम.

जिस समय भी सिंचाई की जाय उसके बाद ही खेत की गोड़ाई कर देनी चाहिये जिससे कि मिट्टी भली भांति पानी को सोख ले वास्तव मे गोड़ाई सिचाई के लिये शक्ति वर्द्धिनी मानी गई है.

सिंचाई करते समय जो पानी धीरे धीरे रिस रिस कर खेतों की मिट्टी में प्रवेश करता है, वह नीचे जाकर खाद के पदार्थों में मिल जाता है. और फिर उपयोगी तत्वों को ग्रहण कर के धीरे धीरे सतह की ओर आता है. जिस समय यह खाद तत्व मिश्रित जल सतह पर आ जाता है तो खाद तत्वों को सतह के पास छोड़ कर भाप बनकर उड़ जाता है. इस प्रकार खाद के जो उपयोगी तत्व ऊपर को आ जाते हैं, पौधों की जड़ें उन्हें शीघ्र ही ग्रहण कर लेती हैं.

सिंचाई करते समय यह पूरी तौर से ध्यान रखना चाहिये कि जल खेतों में आवश्यकता अनुसार थोड़ा थोड़ा करके ही सींचा जाय जिससे कि यह मिट्टी के द्वारा ही सोख लिया जाय,

बाहर वह न सके. अधिक पानी सींचने से वह बह तो जाता ही है साथ ही साथ मिट्टी को इतना गीला कर जाता है कि उसमें वायु और प्रकाश को ठीक प्रकार से ग्रहण करने योग्य शक्ति नहीं रहती, दूसरी बात यह भी है कि पानी जितना भी अधिक दिया जाता है उतने ही अधिक खाद तत्व घुल घुल कर गाढ़े रूप में ऊपर आ जाते हैं जिससे कि पौधे जल्दी से उन्हें पचा नहीं पाते और इस प्रकार वे व्याधि ग्रस्त हो जाते हैं. साथ साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि खेत में जो सिंचाई की जाय तो सिंचाई का जल खेतों के बाहर न बह जाय. क्योंकि जहां इस जल के बह जाने से पानी और श्रम का अपव्यय होता है वहां पानी के साथ ही साथ खेत में से एक बड़ी मात्रा मे खाद तत्व भी बह जाते हैं, जिससे कि खाद का भी अपव्यय होता है.

पानी को कुए आदि से निकाल कर खेतों तक पहुंचाने के लिये जो विभिन्न शक्तियां काम मे आती हैं, उन में से प्रमुख नीचे दी जाती है.

१ – मनुष्य

२ – बैल या अन्य पशु

३ – कोयले या तेल से चलने वाला इन्जन

४ – हवा का पंखा

५ – बिजली की मोटर

किस स्थान पर सिंचाई के लिये कौन सा साधन प्रयोग मे लाया जाय यह किसान को अपनी सुविधा अनुसार देख लेना

चाहिये. छोटे मोटे स्थानों पर तो मनुष्य या पशु के द्वारा ही जल खींचकर प्रयोग में लाया जा सकता है. किन्तु बड़े खेतों की सिंचाई के लिए आवश्यकतानुसार अच्छे से अच्छे साधन प्रयोग में लाने चाहियें.

सिंचाई करने के लिए किसानों को यह भी देख लेना चाहिए कि फसल के लिए सिंचाई में कितना व्यय करना उचित है और उसी की दृष्टि से व्यय करना चाहिए. यदि व्यय अधिक हो गया और फसल उतना पैसा न दे सकी तो खेती का लाभ ही क्या है. यह किसानों को भली भांति समझ लेना चाहिए.



पानी का रासायनिक विश्लेषण

यह तो सभी जानते हैं कि तरल पदार्थों में पानी सर्वाधिक पतला होता है और पानी के बिना मनुष्य ही नहीं वरन् संसार भर का कोई भी प्राणी किसी प्रकार भी जीवित नहीं बच सकता. वैसे यह भी सत्य है कि जो पानी स्वच्छ होता है उसमें न तो कोई स्वाद ही होता है और न ही उसमें किसी प्रकार की गन्ध होती है. साथ ही साथ यह भी निश्चित है कि इसका कोई रंग भी नहीं होता.

जो पानी रासायनिक तत्वों में मिश्रित हो जाता है उसमें उन्हीं रासायनिक तत्वों के गुण और अवगुण आ जाते हैं. इसी प्रकार हम देखते हैं कि जो जल वर्षा के द्वारा भूमि पर आता है उसमें वायु मण्डल के अन्दर विद्यमान अनेकानेक रासायनिक तत्वों का मिश्रण हो जाता है. इनमें नत्रजन की प्रमुखता होती है. और इसीलिये वर्षा का पानी खेतों के लिए शेष सभी प्रकार के पानियों से अच्छा माना गया है.

जो पानी अनेकों स्थानों से होकर बहता है उसके अन्दर भी अनेकानेक प्रकार के तत्व मिश्रित हो जाते हैं. बहते पानी की राह में खाद पांस आदि जो भी सड़ गल रही हो उसके खादमय तत्व पानी अपने साथ ले लेता है. और वह सब खेत के लिए अत्यन्त लाभदायक रहता है, साथ ही साथ इसमें अनेक प्रकार की

विलायन शक्ति आ जाने से खेतों के लिए यह बड़ा लाभदायक रहता है. कभी कभी यह भी देखा गया है कि जिस समय पानी अलग स्थानों से बहकर आता है तो पेड़-पौधों के लिए हानिकारक व्याधियों के तत्व भी अपने साथ बहाकर ले आता है और जिस समय यह तत्व खेत की मिट्टी में मिश्रित हो जाते हैं तब स्वभावानुसार पौधे उन्हें ग्रहण कर लेते हैं और व्याधिग्रस्त हो जाते हैं.

प्राकृतिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो दो प्रकार का जल प्राप्त होता है, एक मीठा तथा दूसरा खारा. उसका भी सबसे बड़ा कारण यही होता है कि उसके अन्दर मीठा और खारा बनाने वाले तत्व विद्यमान रहते हैं. जिन्हें ग्रहण करके ही पानी खारा या मीठा हो जाता है.

मीठा पानी विशेषतः पीने के ही काम मे लिया जाता है क्योंकि खारा पानी पीने में अच्छा स्वाद नहीं देता किन्तु खेती बाड़ी के लिये यह बात उलटी है. अर्थात खेतों में खारा पानी ही सर्वोत्तम माना गया है, मीठा पानी नहीं. उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि खारे पानी के अन्दर वे रासायनिक तत्व विद्यमान रहते हैं जो खेती बाड़ी के लिये अत्यन्त लाभकर सिद्ध हुए हैं.

पानी के अन्दर जो भाग घुले पदार्थ के होते हैं उनका थोड़ा सा विश्लेषण हम नीचे देते हैं. वे सब एक लाख भाग पानी के अन्दर पाये जाते हैं.

झरनों का जल —	घुले पदार्थ २८ भाग
नदी और तालाब का जल —	१० भाग

गढ़ों कुओं का जल —	२४४ भाग
वर्षा का जल —	३ भाग

यह देखा गया है कि जिस भूमि में पानी भरा रहता है. वह देर मे ही गरम और देर मे ही ठन्डी होती है. इसी सिद्धान्त पर हम देखेंगे कि जो खेत भली भांति आवश्यकतानुसार सींच दिए जाते हैं उन्हें पाला नहीं मारता क्योंकि तरी रहने के कारण ये रात्रि को जल्दी ही ठन्डे नहीं होते. किन्तु जिन खेतों मे आवश्यकतानुसार सिंचाई नहीं हो पाती रात्रि को वे जल्दी ही ठन्डे हो जाते है और रात को उन्हें पाला मार जाता है.

सिंचाई फसल की दृष्टि से भिन्न भिन्न प्रकार से की जाती है. इसी प्रकार जो सिंचाई फलों के पेड़ों में की जाय वह बिलकुल ठीक इस रीति से करनी चाहिए कि वह पानी शीघ्र ही सीधा जड़ों मे पहुँच कर प्रयोग मे आ सके. बागबानी करने वाले प्राय पेड़ के नीचे गोड़ाई मे थावला बना देते है जिस से वह पानी सीधा जड़ों मे नहीं पहुँचता. इस के लिये सदा थांवले जड़ से लगभग एक फुट की दूरी पर दोनों ओर बनाने चाहिये. ऐसा करने से पानी सीधा जड़ों मे पहुँचता है.

एक तरीका इस मे पानी देने का यह भी है कि पेड़ों की जड़ के आस पास मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये और पेड़ से लगभग एक फुट की दूरी पर घेरा बना कर लगभग एक फुट चौड़ा थांवला चारों ओर बना लेना चाहिए. फिर इसमे जो पानी भरा जाता है वह सीधा जड़ों में ही पहुँचता है, जिससे

कि पेड़ बलिष्ठ होता है और उसमें फल भी अच्छे ही आते हैं.

तने के पास जल भरने से एक बड़ी हानि यह भी होती है कि पीड़ गल जाती है और उसमें अनेक प्रकार की व्याधियां भी लग जाती हैं. इन्हीं स्थानों पर पीड़ के कीटाणुओं का भी आक्रमण हो जाता है और फल यह निकलता है कि समूचे बाग को नष्ट होते देर नहीं लगती. एक बात यह भी ध्यान रखनी चाहिए कि जब जब पेड़ का ऊपरी फैलाव बढ़ता जाय उतनी ही चौड़ाई नालियों की भी बढ़ाते जाना चाहिए जिससे कि जल पूरी मात्रा में आवश्यकतानुसार जड़ों को प्राप्त हो जाए.

सिंचाई के लिये जो गोल नाली बनाई जाय उसमें खूब अच्छी गुड़ाई करके ही पानी भरना चाहिए, जिससे कि वह जल पूर्ण रूप से पेड़ों के काम में आ जाए. यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो पानी व्यर्थ ही उड़ता रहता है और पेड़ों के उपयोग में ठीक प्रकार से नहीं आ पाता. साथ ही साथ भूमि की सतह क्योंकि पानी पड़ने पर सख्त हो जाती है, उसमें वायु और प्रकाश का प्रवेश नहीं हो पाता. अतः उस नाली की अच्छी गोड़ाई कर लेनी अत्यन्त आवश्यक है.



अच्छी खाद

भारतीय जीवन में जिस प्रकार खेती अत्यन्त आवश्यक है, उसी प्रकार से खेती के लिये खाद भी उतनी ही आवश्यक है. हम देखते हैं कि खाद के बिना खेती बाड़ी नहीं की जा सकती. एक पुरानी कहावत है—

खाद पड़े तो खेत, नाहीं तो कूड़ा रेत.

किसी ने ठीक कहा है कि खाद के बिना मिट्टी कूड़े और रेत के समान ही रहेगी, इससे अधिक कुछ नहीं हो सकती. न ही उससे किसी प्रकार की उपज की आशा रखनी चाहिये. एक पुरानी कहावत भी है—

खाद देव तो होई खेती, नहिं तो रहि नदिया की रेती.

वास्तव में ठीक ही तो है कि खेती खाद देने से ही हो सकती है अन्यथा खेत की मिट्टी नदी की रेत के समान ही रहती है, इससे अधिक उसका कोई उपयोग नहीं.

इस कारण से हमें खेत के अन्दर खाद की अत्यन्त आवश्यक अंग के रूप में आवश्यकता अनुभव होती है. खेत की मिट्टी के अन्दर कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जिनका सहारा पाकर बीज कुरा फेंकता है और बढ़ कर पौधे के रूप में खड़ा हो जाता है.

जो खेत बोने से पूर्व शुष्क और भद्दा सा दीखता है वही बो देने के कुछ दिन पश्चात हरियाली से भर कर आंखों को सुख पहुंचाता है और हृदय में स्फुरण उत्पन्न करता है.

ऐसा देखते ही मस्तिष्क के अन्दर स्वतः एक प्रश्न उठता है कि यह हरियाली धरती के कुछ पदार्थों के मिश्रण की रुपान्तर है या कोई बाहरी वस्तु खेत में आ गई है. हम देखते हैं, वे हरे पौधे बाहर से नहीं आए वरन् मिट्टी के ही अनेकानेक पदार्थों के सम्मिश्रण के रुपान्तर हैं.

खाद की आवश्यकता—

अब देखना यह है कि खेतमें से ऐसी कौन सी वस्तु बीज को प्राप्त हो गई जिससे कि वह पौधा बन बैठा ? यह देखने से स्पष्ट हो जाता है कि मिट्टी में से कोई पदार्थ पौधे के साथ अवश्य जा मिला है. इससे यह सिद्ध होता है कि मिट्टी में से वह पदार्थ अवश्य ही कम हो गया होगा और जब तक उस पदार्थ की पूर्ति मिट्टी में नहीं की जायगी तब तक वह मिट्टी अन्य बीजों से वैसे ही पौधे बनाने में पूर्ण समर्थ नही हो पायेगी.

जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में जब किसी पदार्थ की कमी हो जाती है, उस समय शरीर रुग्न हो जाता है, तभी वैद्य या डाक्टर ऐसी औषधि उसे देते हैं जिससे कि उस पदार्थ की पूर्ति हो जाये, और रोग दूर हो जाता है. कोश चाहे धन से कितना भी भरा हो, उसमें से सदा व्यय करते रहने से एक दिन वह खोखा मात्र रह जायेगा. उसे खाली होने से रोकने के लिये

यह आवश्यक हो जता है कि उसमें से जो कुछ भी व्यय किया जाय समय समय पर उसकी पूर्ति भी की जाये.

खेत के बारे मे भी यही बात चरितार्थ होती है. खेत मे खाद प्रमुख पदार्थ के रूप में विद्यमान रहती है. खेत को यदि हम कोश के रूप मे देखे तो खाद उसमे भरे धन की भांति है. खेती के समय खेत मे से खाद का व्यय होता है.

यदि खाद को खेत मे से केवल व्यय ही होने दें और उसके बदले मे मिट्टी में और खाद न डाले तो खेत एक दिन खोखा हो जायेगा. और उसकी उत्पादन शक्ति नितान्त नष्ट हो जायेगी. इसे रोकने के लिये अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि खेत मे समय समय पर खाद देते रहे जिससे कि उसकी शक्ति नष्ट न हो और चिर स्थाई बनी रहे.

खाद अनेकों रूपों में होती है. जिस समय जिस खेत में मिट्टी को जिस पदार्थ की कमी अनुभव हो उसी प्रकार की खाद मिट्टी मे मिश्रित कर देनी चाहिए.

जब तक हम मिट्टी की कमियां खाद के द्वारा पूरी करते रहेगे तब तक खेत की मिट्टी निश्चित रूप से हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति करती रहेगी, क्योंकि धरती की उत्पादन शक्ति मे व्यय से जो छीजन आ जाती है वह खाद के द्वारा ही पूरी की जा सकती है.

जिस समय खेत की यह उत्पादन शक्ति शिथिल पड जाती है या मर जाती है उस समय खाद उसके लिए संजीवनी का काम

करती है. अतः मिट्टी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर समय समय पर इस खाद रूपी संजीवनी के द्वारा कमियों को दूर करते रहना चाहिए.

खाद में मूल तत्व —

विश्व में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसमें कोई न कोई मूल तत्व विद्यमान न रहता हो. मूल तत्व किसी भी पदार्थ के प्रमुख भागों को कहा जाता है, जिनका पदार्थ में होना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है. खाद में भी ऐसे ही कुछ मूल तत्व विद्यमान रहते हैं जिनकी आवश्यकता पौधों को होती है. वास्तव में पौधे कुछ ऐसे तत्वों के सहयोग से अपना पालन करते हैं जो खेत की मिट्टी में खाद के रूप में रहते हैं.

इन तत्वों में नत्रजन (नाइट्रोजन) एक ऐसा तत्व है जो खाद में विशेष स्थान रखता है. नत्रजन एक प्रकार का ऐसा गैस है जो वायुमण्डल में मिश्रित है और हमारे सांस के साथ शरीर में प्रवेश करता है, जिस प्रकार हम सांस लेते हैं उसी प्रकार पत्तों के द्वारा पेड़ और पौधे भी सांस लेते हैं. इस प्रकार नत्रजन वायुमण्डल में से पेड़ पौधों में प्रवेश करता है, किन्तु पेड़ पौधे पांत्तयों के द्वारा लिए गए इस नत्रजन की उतनी मात्रा सांस के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते.

इस प्रकार इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए नत्रजन को खींचने की शक्ति जड़ों को भी प्रदान की है, जिसके द्वारा नत्रजन मिट्टी मे से भी प्राप्त किया जा सकता है.

यह जड़ें नत्रजन को आसानी से पचालें इसके लिए मिट्टी मे नत्रिकाम्ल (शोरे का तेजाब) मिला देना चाहिए. नत्रिकाम्ल एक ऐसा मिश्रित पदार्थ है जिसे पेड़ और पौधों की मोटी और पतली जड़ें आसानी से खींच लेती हैं और पचा भी लेती हैं. मिट्टी में मिलाने के लिए नत्रजन के प्रत्येक मिश्रण को पहले नत्रिकाम्ल के रूप में परिणत कर लेना आवश्यक होता है जिससे कि इसका पूरा पूरा लाभ उठाया जा सके.

नत्रजन यद्यपि लाभदायक है तथापि अधिक प्रयोग में नहीं लाया जा सकता क्योंकि एक तो यह महंगा बहुत मिलता है दूसरे तेजाब होने के कारण इतना तीव्र होता है कि यदि पौधों पर गिर जाय तो पत्ते जल जाते हैं. इस कारण से इसका डालना अत्यन्त आवश्यक हो तो इसे बहुत से पानी में मिलाकर ही मिट्टी में मिश्रित किया जाता है.

नत्रजन का जो रूप वायु मण्डल में रहता है, वह जिस समय तीव्र बिजली चमकती है और वर्षा होती है, उस समय वर्षा के जल के साथ मिलकर नत्रिकाम्ल बन जाता है. इसी कारण से वर्षा ऋतु खेती के लिए लाभदायक समय और वर्षा का पानी सर्वाधिक उपयोगी माने जाते हैं.

नत्रजन के पश्चात् दूसरा क्रम अमोनिया का होता है. यह भी एक प्रकार की तीव्र गैस होती है. जो बहुत दूर से अपना परिचय दे देती है. अधिक देर सूंघने से जी घुटने सा लगता है. जिनके सम्मिश्रण से इसमें तीव्र गंध उत्पन्न हो जाती है. यही वह गैस है जिसे अमोनिया कहा जाता है. गैस के रूप में

यह पौधों को नहीं दी जा सकती वरन् इसे गंधक के साथ मिश्रित करके मिट्टी में मिलाना पड़ता है. गंधक के साथ मिल जाने पर यह ठोस पदार्थ बन जाता है जिसे गंधित अमोनिया भी कहते हैं.

यदि देखा जाय तो शोरा भी एक प्रकार से नत्रजन का ही मिश्रण होता है जो खारी मिट्टी से प्राप्त होता है. आजकल किसान इसका प्रयोग पर्याप्त मात्रा में करते हैं. नत्रजन और सोडे के मिश्रण से नत्रित पुटाश बनता है. आम तौर से जो शोरा पाया जाता है वह अधिकतर नत्रित पुटाश ही है. इन दोनों के मिश्रणों से पौधों को पर्याप्त नत्रजन प्राप्त हो जाता है.

मूत्र, विष्टा और गोबर जैसे पदार्थों में भी नत्रजन विद्यमान रहता है. इसी कारण से इनके द्वारा तैयार की हुई खाद खेती के लिए सर्वोपयोगी मानी जाती है. यदि खेत के अन्दर अन्य उपयोगी द्रव्यों की कमी न हो उस समय यदि आवश्यकतानुसार नत्रजन की खाद मिट्टी मे मिश्रित की जाये तो अत्यन्त उपजाऊ सिद्ध होती है.

यह खाद खेत के लिए बहुत उपयोगी होती है तथा मिट्टी की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करता है. यदि किसी खेत मे यह आवश्यकता से अधिक मात्रा में डाल दी जाती है तो पौधे इतने लम्बे बढ़ जाते हैं कि हवा के झोकों से भूमि पर गिर जाते हैं. अतः खाद आवश्यकतानुसार ही डालनी चाहिए जिससे खेती को कोई हानि न हो पाए.

खाद में पुटाश का भी महत्वपूर्ण स्थान है. यह खाद में किसी न किसी रूप में प्राप्त हो जाता है, वैसे पृथक अस्तित्व के रूप में इसका कहीं मिलना असम्भव है. इसका कार्य पौधो के अन्दर शक्ति निर्माण करना है. यदि मिट्टी मे इसकी कमी हो जाती है, तो उस खेत के पौधे अत्यन्त निर्बल और शक्तिहीन हो जाते हैं. जिस खेत के पौधे निर्बल होते दृष्टिगत हों उस खेत मे पुटाश तथा नत्रजन का मिश्रण अर्थात् नत्रित पुटाश डालना चाहिए. वैसे तो खेत की मिट्टी के अन्दर पुटाश पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है किन्तु फिर भी कभी २ ऐसी स्थिति आ जाती है जब कि खेत में पुटाश-युक्त खाद डालने की भी आवश्यकता अनुभव होती है. खेत की मिट्टी मे इसे ठीक प्रकार से मिश्रित करने के लिए गन्धित पुटाश ही प्रयोग में लाया जा सकता है.

पौधे को प्रस्फुरिक (फासफोरस) की भी अत्यन्त आवश्यकता होती है. इसके द्वारा पौधों में फल अच्छे आते हैं. यदि किसी खेत में प्रस्फुरिक की कमी हो तो फल अत्यधिक निर्बल और अशक्त होते हैं. यह पदार्थ विशेषतः हड्डियों में मिलता है. जगलों में कभी कभी आग सी जलती दिखाई देती है वह प्रस्फुरिक की चमक ही है. इसे प्रयोग में लाने के लिए हड्डियों को पीसकर गोवर आदि में मिला कर खेतों मे डालना चाहिए जिससे कि प्रस्फुरिक की कमी के कारण खेत की उपज निर्बल और कम न हो.

खाद मे चूने का होना भी अत्यन्त आवश्यक है. वैसे तो चूना बहुत कम पौधों का खाद्य है, किन्तु फिर भी मिट्टी में मिश्रित

हो जाने पर यह मिट्टी को भुरभुरा बना देता है तथा साथ ही साथ वह मिट्टी पौधों के लिए पाचक सिद्ध होती है.

इन पदार्थों के अतिरिक्त लोहा, मग्न और गंधक आदि भी कुछ ऐसे तत्व हैं जिनकी प्रत्येक पौधे को अत्यन्त आवश्यकता रहती है, किन्तु वह खाद के रूप में प्रायः डाले नहीं जाते क्योंकि खेत की मिट्टी में यह पदार्थ इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं कि मिट्टी और अधिक उनकी आवश्यकता अनुभव नहीं करती.

प्राणिज खाद—

गोबर की खाद — यदि भारतवर्ष का किसानी इतिहास उठाकर देखें तो यह बात स्वतः सिद्ध हो जायगी कि गोबर की खाद यहां सभ्यता के आरम्भ काल से ही प्रयोग में लाई जा रही है. समस्त संसार में भारत के वे पढ़े किसान भी इतने अनुभवी हैं कि खाद के रूप में गोबर का सबसे अच्छा प्रयोग करना जानते हैं. गांवों के अन्दर जलाने के लिए गोबर के उपले बनाने की भी प्रथा प्रचलित है जिसके कारण खाद में कमी आ जाती है. वैसे तो उपलों को जला लेने के पश्चात भी जो राख शेष बचती है वह भी खेती के लिए बहुत उपयोगी है. किन्तु मात्रा मे इतनी यह कम होती है कि पर्याप्त नहीं हो पाती, अतः गोबर को उपले न बनाकर खाद के रूप में प्रयोग मे लाना अधिक उपयोगी होता है, क्योंकि गोबर सबसे सस्ती और सबसे अच्छी खाद तैयार करता है. जल जाने के पश्चात गोबर का मूलतत्व नत्रजन तो वायु मे मिल जाता है और चूना शेष रह जाता है.

गोबर के अलावा कूड़े करकट को भी खाद के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है. कूड़े की खाद वास्तव में अनेक प्रकार के पदार्थों के सम्मिश्रण से बनती है जिनमें पत्ते रेत गोबर और मूत्र आदि का भी सम्मिश्रण होता है.

जहां कूड़े करकट आदि से खाद बनाकर खेतों की मिट्टी का संरक्षण किया जाता है वहां उस कूड़े करकट की खाद में यह देख लेना अत्यन्त आवश्यक है कि उसके अन्दर लीद मल-मूत्र आदि की मात्रा पर्याप्त है अथवा नहीं, यदि इन पदार्थों की उसमें कमी होती है तो वह खाद अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होती.

गोबर और विष्टा आदि की खाद भी कुछ कारणों से भिन्न भिन्न प्रकार की हो जाती है. जानवर जिस प्रकार का भोजन करते हैं उसी प्रकार का मल मूत्र भी देते हैं. साथ ही साथ उनके स्वास्थ्य का भी गोबर आदि पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है. अस्वस्थ जानवरों का गोबर खाद के लिये इतना अधिक उपयोगी नहीं जितना स्वस्थ जानवरों का. इसी प्रकार जानवरों की आयु का भी इस पर प्रभाव पड़ता है.

जितने छोटे जानवर होते हैं, उनके गोबर में नत्रजन, पुटाश, प्रस्फुरिक कम मात्रा में पाये जाते हैं. जवान जानवरों के गोबर में इनकी मात्रा बढ़ जाती है. और जिस समय जानवर बूढ़ा हो जाता है उस समय इन पदार्थों की मात्रा गोबर में और भी अधिक हो जाती है. उसी प्रकार से खाद में यह उपयोगी भी होते हैं.

वैसे तुलना की दृष्टि से देखें तो घोड़े की लीद के अन्दर यह तीनों पदार्थ गोबर से अधिक मात्रा में पाये जाते हैं. इसके

अन्दर पानी का भाग कम होता है और नत्रजन का अधिक, इससे यह बहुत शीघ्र सड़ जाता है.

भेड़ और बकरी की मेंगनियों में प्रस्फुरिक और नत्रजन अन्य सभी विष्टाओं से अधिक होता है. लेकिन इसमें पुटाश की कमी होती है. इसका मूल कारण यह होता है कि भेड़ के शरीर पर जो ऊन होता है उसके शरीर का पुटाश पर्याप्त मात्रा में खर्च हो जाता है.

एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये और वह यह कि गाय दिन भर में जितना गोबर देती है घोड़ा उतनी लीद नहीं देता. इस कारण से गाय का दिन भर का गोबर घोड़े की सारे दिन की लीद के बराबर नहीं होता है.

जानवरों के मल इतने उपयोगी नहीं होते जितना अधिक मूत्र होता है. भारत के किसान खाद बनाते समय जितना ध्यान मल का रखते हैं मूत्र का नहीं रखते. वास्तव मे यदि जानवरों को ठीक प्रकार से बांध कर उनके मूत्र को एक स्थान पर इकट्ठा करने का ठीक प्रबन्ध हो जाये तो जल या खाद मे मिला कर इससे प्रर्याप्त लाभ उठाया जा सकता है.

खेती करने वालों को यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि जहां पर जानवर बांधे जाएं उनके नीचे खेत की भी थोड़ी सी मिट्टी खोद कर बिछा दी जाये. मल मूत्र आदि निरन्तर उस मिट्टी के साथ मिश्रित होते रहेंगे और इस प्रकार वह मिट्टी भी कुछ दिनों के बाद में अच्छी खाद बन जाएगी.

अब हमें यह देखना होगा कि मूत्र के क्या क्या भेद हैं. वास्तव में जानवर जिस मात्रा में पानी पीता है उसी के अनुपात

से वह मूत्र देता है. और जल की मात्रा भी उसके अन्दर उसी के अनुपात से होती है. अगर ठीक प्रकार से तुलना की जाये तो इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि मूत्र में अधिक उपयोगी पदार्थ होते हैं और मल में कम. सबसे बड़ी बात तो यह होती है कि मल एक प्रकार से पचे हुये पदार्थ का शेष होता है. परन्तु मूत्र पचा हुआ एक हिस्सा ही है,

इस प्रकार से मूत्र में पाई जाने वाली पुटाश प्रस्फुरिक तथा नत्रजन को पौधा शीघ्रातिशीघ्र खेंच सकता है और पचा भी सकता है. वैसे भी जानवर जितना भी नत्रजन देता है उसमें से पचास प्रतिशत से अधिक मात्रा मूत्र में ही रहती है.

किसी खेत में यदि चारे की खेती की जाय और वह समूचा चारा किसी को न देकर अपने जानवरो को ही खिला दिया जाये तथा इन सब जानवरों का मल मूत्र आदि ठीक ढंग से उसी खेत में डाल दिया जाये तो उस खेत की मिट्टी इतनी शक्तिशाली बन जायेगी कि कितने ही वर्ष तक चारे का उत्पादन किया जा सकता है.

वास्तव में इसका मुख्य कारण यह है कि जानवर जितना भी नत्रजन, प्रस्फुरिक और पुटाश भोजन के साथ खा लेते हैं. वह सारा का सारा मल मूत्रादि मे दे देते हैं. और यही तीनो वह मुख्य तत्व हैं जिनकी खेत को सर्वाधिक आवश्यकता होती है. इसी कारण यह खेत के लिये उपयोगी होते हैं.

यदि ठीक प्रकार से आंकड़ों का सहारा लिया जाए, तो हम देखेंगे कि घोड़े की लीद से हमें लगभग २३ सेर नत्रजन प्राप्त हो जाता है. यह देखते हुए सिद्ध हो जाता है कि घोड़े की लीद

और मूत्र आदि खाद के लिये कितने आवश्यक हैं. वैसे भी घोड़े की लीद में पानी कम होता है. इस कारण यह जल्दी सड़ जाती है और इसलिये गरम खाद के नाम से प्रसिद्ध है. गोबर को ठंडा खाद माना गया है. क्योंकि गोबर में पानी अधिक होता है इसलिए इसके सड़ने में देर लगती है. गाय के गोबर से एक साल में साढ़े ३३ सेर के लगभग नत्रजन प्राप्त होता है.

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाय का गोबर और घोड़े की लीद तथा मूत्रादि खेती में अत्यन्त उपयोगी रहते हैं तथा खेत की मिट्टी को शक्तिवान बनाने में इनका बहुत बड़ा हाथ होता है.

भेड़-बकरियों की मेंगनियां — वैसे तो भेड़ बकरियों की मेंगनियों के प्रयोग के लिए ऊपर ही बता दिया गया है, किन्तु फिर भी यह बताना अत्यन्त आवश्यक है कि इनकी मेंगनियों के द्वारा खाद सुगमता से तैयार की जा सकती है, क्योंकि इनमें पानी की मात्रा बहुत कम होती है और इन्हें कूट कर मिट्टी में आसानी के साथ मिलाया जा सकता है. वैसे इन्हें कुचल कर पानी में मिलाकर किसी गढ़े में खूब सड़ा लेने से भी खाद तैयार हो जाती है. इसकी खाद खेत के पौधों को बल प्रदान करती है. विशेष रूप से गुलाब के पौधे, पान की बेलें, मूंगफली और तम्बाकू की खेती में इसका सर्वाधिक प्रयोग होता है.

सोन खाद — जहां खेती के अन्दर पशु पक्षियों के मल-मूत्रादि की खाद प्रयोग मे लाई जाती है वहां इन्सान का मलमूत्र आदि भी खाद के काम में लाया जाता है. बड़े-बड़े शहरों में नगर पालिकाएं अपने कर्मचारियों के द्वारा मनुष्यों के मलमूत्र आदि को एकत्रित करा के देहातियों को बेचने का प्रबन्ध करती

हैं. आजकल तो इसका कुछ कुछ प्रयोग होने लगा है, वरना देहाती लोग इसके खाद को प्रयोग मे लाने से हिचकिचाते हैं. उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इसमे दुर्गन्ध बहुत आती है. इस दुर्गन्ध से बचने के लिए सबसे बड़ा उपाय यह है कि इसमें चने, राख और मिट्टी का सम्मिश्रण कर देना चाहिये.

हम देखते हैं कि भारतीय किसानों का विचार यह है कि मनुष्य के मलमूत्रादि की खाद से जो भी खाद्य पदार्थ उत्पन्न किया जायेगा उस मे तामसी प्रवृत्ति विद्यमान रहेगी और उसके खाने वालों के मस्तिष्कों में भी तामसी प्रवृत्ति का ही उदय होता है. शायद इसी कारण भारतीय किसान इसे कम प्रयोग मे लाते हैं.

एक बात तो बहुत ही स्पष्ट है कि शहर के आस पास की. साग भाजियां, जिन्हें पर्याप्त मात्रा में खाद प्राप्त होती है उतनी अधिक स्वादिष्ट नहीं हो पातीं जितनी गांव की होती हैं. इसका मूल कारण यही है कि गांवों के लोग शौचादि से निवृत्त होने के लिए आस पास के खेतों में ही जाते हैं और इस प्रकार उनका मलमूत्रादि मिट्टी में मिलकर खाद मे परिणत हो जाता है. इससे उन खेतों की मिट्टी साग-भाजी को बढ़िया और अधिक स्वादिष्ट बनाने में स्वतः सहायक सिद्ध होती है.

आज का विज्ञान यह सिद्ध कर चुका है कि मनुष्य के मल-मूत्रादि को खाद के रूप मे बड़ी अच्छी तरह प्रयोग मे लाया जा सकता है.

चीन और जापान के अन्दर इस प्रकार की खाद का अत्यधिक प्रचलन है. उन लोगों का कहना है कि इस प्रकार की खाद

खेतों के अन्दर लाभकारी इसलिए सिद्ध होती है कि यह गरम है, और इसमें पानी भी अधिक है. किन्तु फिर भी एक बात ध्यान में रखने की यह है कि जहां यह खाद प्रयोग में लाई जाये वहां खेत में पानी की कमी न हो.

इस खाद को देहाती भाषा में सोन खाद कहा जाता है. वैसे तो यह खाद हर प्रकार की खेती के लिए लाभदायक है किन्तु विशेष रूप से साग-भाजी में और उसमें भी गोभी और आलू की खेती के लिए इसका प्रयोग अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है.

हड्डियों की खाद — प्रकृति ने जितने जीवधारियों को उत्पन्न किया है वे सभी किसी न किसी काम के लिए उपयोगी हैं. मरने के पश्चात् भी यदि कोई इनका उपयोग उठाना चाहे तो निश्चित ही यह लाभकारी सिद्ध होते हैं. जितने भी पशु-पक्षी मरते हैं उन सब की खाद तैयार करके यदि खेतों के काम में लाया जाये तो अन्य किसी भी खाद की कोई विशेष आवश्यकता अनुभव नहीं होती.

पाश्चात्य देशों में तो मरे हुए जानवरों के मांस तक से उपयोगी खाद बनाई जाती है, किन्तु भारत में अभी इसका प्रचलन नहीं है. यहां पर जितने भी जानवर मरते हैं, उनका मांस आदि या तो बाहरी देशों को बेच दिया जाता है या चील, कौवे और गृद्ध के लिए जंगलों में छोड़ दिया जाता है. यदि ठीक प्रकार से देखा जाए तो इन जानवरों के मांस से जो खाद बनाई जाती है वह खाद खेतों को अत्यन्त उपजाऊ बनाने में लाभदायक है.

यदि ऐसे मांस की खाद बनानी हो तो उसके छोटे छोटे टुकड़े करके मांस को मिट्टी के साथ सड़ा लेना चाहिए और जब

मिट्टी के साथ एक रस हो जाए तो खाद की तरह प्रयोग मे लाना चाहिये.

हड्डियों में जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, प्रस्फुरिक की मात्रा बहुत होती है इसलिए पौधों को पुष्ट करती हैं. हड्डी क्यों कि सख्त होती है यदि उसे यूं ही खेतों में डाल दिया जाए तो खाद का रूप प्राप्त करने के लिए उसे बहुत समय लग जाएगा. इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि मिट्टी हड्डी को गलाकर खाद बना देगी, किन्तु फिर भी समय अधिक लगेगा. इस कारण से यदि हड्डियों की खाद तुरन्त प्रयोग मे लानी हो तो उनको गला लेना आवश्यक है. इसके लिए एक विधि तो यह है कि बिना बुझे चूने के ऊपर हड्डियों का ढेर लगा देना चाहिये, और उसके ऊपर जली लकड़ी की राख बिछा देनी चाहिए, फिर ऊपर से पानी डालने पर वे बुझे चूने मे से जो गर्माई और भाप निकलेगी वह हड्डियों की सख्ती को गला देगी यह गर्माई काफी दिनो तक बनी रहती है.

दूसरी विधि यह है कि हड्डियों को कूट पीस कर तेजाब मे मिलाकर औंटा लेना चाहिए. ऐसा करने से तीन चार घंटे में ही हड्डियां घुल जाती हैं. फिर इसमे पानी मिला कर उसे खेतों में डाला जा सकता है. ऐसा करने से खाद जल्दी तैयार हो जाती है और उसका प्रभाव भी पौधों पर शीघ्र ही हो जाता है.

यह खाद खेत को पूर्ण शक्तिवान बनाए रखती है और मिट्टी में किसी प्रकार की भी निर्बलता नहीं आने देती.

खलियों की खाद — यद्यपि बिनौले को भी खाद के काम मे लाया जा सकता है. यद्यपि इसका चूरा गन्ने के लिए लाभदायक

है, तथापि क्योंकि यह जानवरों को खिलाया जाता है, इसलिए इसे अन्य उपयोग में नहीं लाना चाहिये.

कुछ खली ऐसी होती हैं जिनको जानवर नहीं खाते, उन्हें केवल मात्र खाद के प्रयोग में लाया जा सकता है, अन्य किसी काम मे नहीं. रेंडी की खली यदि खाद के रूप में प्रयोग में लाई जाए तो मूंगफली, आलू, गोभी, अदरक और शलजम के लिए यह बहुत उपयोगी रहती है. चाय की खेती में भी वृद्धि करने के लिए रेंडी की खली काम में लाई जाती है.

नीम की निमोली जिस समय कोल्हू में डालकर तेल के काम में लाई जाए उस समय इसकी खली शेष बचती है. इस खली को कड़वाहट के कारण जानवर नहीं खा सकता, अतः उसे खाद के काम में लाना चाहिए. इस खली में ऐसी शक्ति होती है जिसके कारण खेतों में लग जाने वाले छोटे-मोटे जीव जन्तु इसकी गंध मात्र से भाग जाते हैं. लेकिन नीम की खली में तेजी अधिक होती है, अतः जिस खेत में इसकी खाद का प्रयोग किया जाए उसमें पानी अधिक देने की आवश्यकता है.

इसी प्रकार सरसों का तेल निकाल लेने के पश्चात जो खली शेष रहती है वह भी एक अच्छी खाद के रूप में प्रयोग में लाई जा सकती है. प्रायः यह खली केवल जानवरों को ही खिलाने के काम में लाई जाती है, इस कारण अन्य खलियों से महंगी है. किन्तु फिर भी यदि इसकी खाद आलू, परमल, गोभी, चावल और गन्ने की खेती में दी जाए तो लाभदायक सिद्ध होती है. खली भी, ताजा खेतों में नहीं डालनी चाहिए वरना जड़ों के जलने

का खतरा रहता है. अतः खली को खूब सड़ाकर ही खेतों में डालना चाहिये.

पेड़ और पत्ती की राख — पेड़, पौधों और वृक्षों के जलने के पश्चात जो राख प्राप्त होती है, उसे कभी भी व्यर्थ नहीं फेंक देना चाहिए. यह राख खेतों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती है, लेकिन इस राख में चूने का हिस्सा अधिक होता है इसलिए कभी भी अधिक प्रयोग में लाने से यह राख पौधों को जला भी देती है. वास्तव मे राख को खेत के अन्दर उस समय छिड़कना चाहिए जब कि खेतों को कीड़े-मकोडे लगते दृष्टिगोचर हो. ऐसा करने से कुछ कीड़े तो नष्ट हो जाते हैं और कुछ खेतों को छोड़-कर भाग जाते हैं और खेती का समुचित संरक्षण भी होता है. राख बैंगन, सेम, परमल, उड़द, चावल, मिर्च, प्याज और अफीम के लिए बहुत उपयोगी होती है.

खाद के रूप मे राख का उपयोग बहुत ही सोच समझ कर ठीक मात्रा में करना चाहिये, जिससे कि पौधों के जलने का कोई भी भय न रहे अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि होगी.

पत्तों की खाद — पेड़ों के जो पत्ते बेकार हो कर या सूख कर भूमि पर जा गिरते हैं उनकी अच्छी खाद तयार की जा सकती है. हर गांव के आस पास बड़े बड़े पेड़ों के जगल होते ही हैं. प्रकृति की ओर से ऋतुराज बसन्त की हरियाली जिस प्रकार से पेड़ पौधों को हसी खुशी का वरदान देकर खुश हाल बनाने आती है उसी प्रकार जब पतझड़ की विभीषिका उनकी हंसी खुशी को छीन कर शुष्कता का अभिशाप देती है उस समय पेड़ों की पत्तियां बहुत बड़ी तादाद में भूमि पर आ गिरती हैं. यदि किसान

इन सब पत्तियों को एकत्रित करके खाद के रूप में काम में लें तो बहुत ही लाभदायक सिद्ध होंगी.

इन पत्तों को गोबर के अन्दर मिलाकर सड़ाने से खाद जल्दी तैयार हो जाती है. यदि वैसे भी घास, पौधों की जड़ें, सूखी हुई डालियां और पतझड़ से गिरे पत्ते तथा हरे पत्ते भी इकट्ठे करके बड़े बड़े गढों में भर कर सड़ाये जायें तो अच्छी खाद बन सकती है. खाद बनाने की विधि यह है कि गढ़ा खोद कर उसको चारों ओर से और पेन्दे में चिकनी मिट्टी से खूब अच्छी तरह कूट कर लीप पोत देना चाहिये जिससे कि मिट्टी इतनी सख्त हो जाये कि बनाये जाने वाली खाद के मूल तत्त्व कहीं गढ़े की मिट्टी ही न सींच ले. उसके पश्चात इन गढ़ों में घास पत्ती आदि डाल कर एक हल्की तह मिट्टी की डाल देनी चाहिये. इस प्रकार गढ़ों को ऊपर तक भरने में मिट्टी की कई तहों का हो जाना आवश्यक है. अन्दर भरने से पूर्व पत्तों आदि को भली प्रकार तर कर देना चाहिये, और फिर गढ़े को ऊपर से भी मिट्टी से ढक देना चाहिये.

जब तक पत्तों को अच्छी तरह से तर नहीं कर लिया जायेगा यह पत्ते नहीं सड़ेंगे और खाद भी तैयार नहीं होगी. यदि खाद और भी जल्दी तैयार करनी हो तो इन्हें तर करने के लिये जो पानी काम में लाया जाये वह गन्दी नालियों का सड़ा हुआ पानी हो तो और भी अच्छा है. पानी कभी अधिक भी नहीं डालना चाहिए वरना वह बह कर नीचे एकत्रित हो जायेगा और इस प्रकार से खाद जल्दी नहीं सड़ पायेगी.

यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये कि पत्ते आदि जब तक पूर्ण रूप से सड़ गल नहीं जायें तब तक उनकी खाद किसी

प्रकार भी नहीं बन सकती. और न ही खेत के लिये उपयोगी हो सकती है. यदि खाद बनाने को और भी शीघ्रता हो तो बहुत पुराना बुझा हुआ चूना पत्तियों के साथ मिश्रित कर देना चाहिये जो अपनी गर्माई से पत्तियों आदि को शीघ्र गला दे. यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि चूना ताजा न हो वरना पत्तियां जल जायेंगी और खाद अच्छी नहीं बन पायेगी.

पेड़ पौधों और पत्तों की बनी खाद खेती के लिये बहुत लाभदायक होती है अतः इनकी खाद ठीक प्रकार से तैयार करनी चाहिये. यदि अच्छी तरह गढ़े तैयार करके नौ दस मास तक इन्हें ठीक प्रकार से सड़ाया जाए तो खेती के लिए बहुत उपयोगी रहती है. यह खाद लगभग आठ दस महीने तक सड कर तैयार हो जाती है

खनिज की खाद —

खनिज पदार्थ भूमि से प्राप्त किया जाता है. वास्तव मे भूमि की मिट्टी में जो पदार्थ विद्यमान रहता है इसी मे से निकल कर अनेकानेक पदार्थ तैयार होते हैं. इस प्रकार उनमे से बहुत से पदार्थ ऐसे होते हैं, जिनका मिट्टी में मिला होना खेती बाड़ी के लिए अत्यन्त आवश्यक है. यद्यपि इन सारे पदार्थों की खेत की मिट्टी मे कोई आवश्यकता नहीं तथापि बहुत से पदार्थ ऐसे होते है जिनकी आवश्यकता मिट्टी को रहती ही है. यह पदार्थ जब खाद के रूप मे मिट्टी मे मिला दिये जाते हैं तो खेती मे पर्याप्त वृद्धि होती है.

चूने की खाद — वैसे तो चूना अन्य अनेकों काम में आता है किन्तु खेत में खाद के रूप में भी इसका उपयोग कम नहीं. खेतों में इसके प्रयोग का सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि जो पदार्थ खाद के रूप में खेतों में डाला जाता है, चूने के सम्मिश्रण से वह पौधों को अधिक जल्दी लगता है, अर्थात् उन पदार्थों से पौधा शीघ्रातिशीघ्र लाभ उठा सकता है. चूने में यह शक्ति होती है कि वह पौधों की जड़ों में जल्दी पहुंच जाए और साथ ही साथ उन पदार्थों के तत्वों को भी ले जाए जो खाद के रूप में डाले गए हैं. चूना खेत में निर्धारित परिमाण में ही प्रयोग में लाना चाहिए. अधिक चूना पौधों की जड़ों को भी जला देता है. जिस समय खेत मे बुवाई करनी हो उससे लगभग छह सात माह पूर्व पच्चीस सेर प्रति बीघा के हिसाब से चूना छोड़ना चाहिए.

एक रीति यह भी है कि ऐसा चूना जो बुझा हुआ न हो, लेकर पानी में बुझा लेना चाहिए. और फिर उसमें मिट्टी तथा गोबर मिश्रित करके कुछ दिन तक खुले खेत में छोड़ देना चाहिए. फिर इसके पश्चात जब बुवाई का समय आये उससे एक सप्ताह पूर्व ग्यारह मन प्रति बीघा के हिसाब से खेतों में डाल देना चाहिए.

चूना इतना तेज होता है कि दीमक आदि जो कीड़े-मकोड़े खेतों में लग जाते हैं उन्हें यह अविलम्ब नष्ट कर देता है और कीड़े-मकोड़े जो इसकी तेजी से नष्ट नहीं होते वे इससे बचकर भाग जाते हैं. चूने में यदि थोड़ा नमक मिलाकर मूंगफली, चना, तम्बाकू, केला तथा आलू बोया जाए तो अत्यन्त लाभदायक होता है. प्रायः चाय और पोस्त की खेती में इसकी खाद का पर्याप्त प्रयोग किया जाता है.

नमक की खाद — वैसे तो मिट्टी में भी थोड़ी बहुत मात्रा नमक की होती है लेकिन फिर भी बहुत सी भूमि ऐसी होती है जिनके अन्दर नमक का नितान्त अभाव होता है. ऐसी मिट्टी में खाद के साथ साथ नमक पहुँचना भी अत्यन्त आवश्यक होता है. जिस खेत मे मजबूत भूसा पैदा करना हो उस खेत में और चुकन्दर, नारियल और गोभी आदि की फसल के लिए चूना और नमक का चूर्ण भी बहुत उपयोगी होता है. गेहूं के खेत में इसका प्रयोग शोरा साथ मिलाकर करना चाहिए. नमक की खाद डालने से तम्बाकू के ऊपर तुरन्त प्रभाव पड़ता है, और इसकी पत्तियां मोटी हो जाती हैं. यदि आलू की खेती में भी इसका प्रयोग किया जाए तो आलू स्वादिष्ट और पतले चिकने छिलके का होता है. कपास अधिकतर पाले से खराब हो जाती है, नमक की खाद कपास में पाले से बचने योग्य शक्ति का निर्माण करती है. वैसे भी यदि देखा जाए तो नमक पौधों मे प्रायः हो जाने वाले अनेकानेक रोगों को नष्ट कर देता है और कीटाणुओ को मार देता है. जो खेत समुद्र के निकटवर्ती हों या जिन खेतों मे खाद अधिक हो अथवा मिट्टी में नमक की मात्रा पर्याप्त हो उन खेतों में नमक की खाद बिलकुल नहीं देनी चाहिए वरना नमक की मात्रा बढ़ जाने से पौधों की जड़ें गल जायेंगी और उपज को हानि होगी.

सोडे की खाद — खेत में खाद के रूप में सोडा भी पर्याप्त लाभदायक सिद्ध होता है. इसे ऐसी जगह में प्रयोग में लाना चाहिए जहां खाद की बहुत कमी हो. ऐसे स्थानों पर इसे डालने से सागभाजी और फूलों को अधिक लाभ होता है. इसे अधिकतर मिट्टी या गोबर की खाद में मिलाकर ही डालना चाहिए, वरना

इससे भी पौधों की जड़ों के जलने का पर्याप्त भय बना रहता है. कभी कभी छोटे मोटे कीटाणुओं को मारने के लिए भी सोडे का घोल प्रयोग में लाया जाता है.

शोरे की खाद — मिट्टी में एक प्रकार का खार मिला होता है. उस खार तत्व को यदि मिट्टी से पृथक कर लिया जाए तो उसी का नाम शोरा होता है. शोरे की खाद खेतों में तब प्रयोग में लाई जाती है जबकि उसका फल शीघ्र प्राप्त करना हो. इसकी खाद प्रयोग में लाते ही पौधे पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है, और पौधे बलशाली बनते हैं. इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि शोरे की खाद चिर स्थाई नहीं होती, लेकिन इसकी खाद शीघ्र फल दिखाने वाली होती है. इसलिए शोरे का प्रयोग खेत मे आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए. अन्यथा शोरा डालने से कोई विशेष लाभ नहीं होता और न ही एक बार का डाला हुआ शोरा दुबारा की गई खेती को लाभ पहुँचा पाता है. वैसे तो खेत को जोतने से पहले ही शोरा डाल देना चाहिए, किन्तु यदि ऐसा न हो पाए तो जिस समय बीज जम जाये और अंकुर फूट निकले उस समय भी खेत के अन्दर शोरा डाला जा सकता है. किन्तु शोरा बाद में डाला गया हो तो खेत को पानी की अधिक आवश्यकता होती है. अतः आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए. शोरा तीन मन प्रति बीघा के हिसाब से डाला जा सकता है, इससे अधिक नहीं डालना चाहिए. जिस खाद के साथ शोरा मिश्रित किया जाता है वह खाद फलों की खेती के लिये बहुत उपयोगी होती है. गेहूं तम्बाकू और अफीम की खेती के लिये भी शोरा मिश्रित खाद बहुत लाभदायक है.

शोरा बड़ी बड़ी नदियों के किनारे खाद के रूप मे पर्याप्त मात्रा में एकत्रित हो जाता है. समुद्र के किनारे भी इसकी कमी नहीं होती. नदियों के किनारे खार मिश्रित जो रेह नाम की मिट्टी मिलती है, उसमे भी शोरे की मिट्टी होती है. खाद की मिट्टी में भी जो भाग खाद का होता है वह सारा शोरा ही है, वास्तव में शोरा निकाला भी इसी मिट्टी से जाता है. मिट्टी को पानी में अच्छी तरह घोल कर उसमें से ऐसे भाग को पृथक कर दिया जाता है जो न घुला हो, फिर घुले हुए भाग को सुखा कर उसमे से शोरा प्राप्त कर लिया जाता है. यह खाद भी वास्तव मे मल मूत्रादि का मैल ही होता है. कहीं कहीं पर बहुत खारी मिट्टी होती है. उस मिट्टी को एकत्रित करके खाद के रूप मे प्रयोग में लाना चाहिए.

खारी मिट्टी की खाद भारतवर्ष मे बहुत पुराने समय से काम में लाई जाती है आजकल के बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने नत्रजन और पुटाश की खाद के लिए बहुत महिमा गाते है. यदि देखा जाय तो यह खाद अर्थात शोरा ही एक प्रकार से नत्रजन और पुटाश का पर्याप्त भाग प्राप्त हो जाता है शोरा हवा चलने से कुछ उड़ जाता है अत. इसे पानी मे मिला कर ऐसे समय पर खेतों में डालना चाहिये जब हवा कम हो और इसका घोल शीघ्रता से मिट्टी मे मिल कर पौधों को लाभ पहुँचा सके.

एक विधि यह भी हो सकती है कि खेत मे अच्छी सिंचाई कर दी जाए तथा जब मिट्टी पानी को सोख ले एवं थोड़ी सी नमी शेष रह जाए उस समय खार या शोरे का चूरा खेतो मे छिड़क देना चाहिए. इसके पश्चात जब शोरा ठीक प्रकार से मिट्टी में मिल जाये तब सिंचाई की बहुत आवश्यकता है

पौधा खेत की मिट्टी से नत्रजन पाकर बहुत शीघ्र बढ़ने लगता है, और यदि ऐसे समय पर सिंचाई की कमी हुई तो सारे का सारा खेत जल कर नष्ट हो सकता है. ऐसी तेज परिणाम देने वाली खाद बहुत ही ध्यान पूर्वक प्रयोग में लानी चाहिए, क्योंकि जहां यह लाभ पहुँचाने में अति शीघ्रता करती है वहां हानि भी जल्दी ही कर देती है. जिससे किसान के किये कराये पर पानी फिर जाता है.

जिस समय इस प्रकार की खाद खेतों में डाल दी जाती है उस समय पौधे जल्दी जल्दी बढ़ने लगते हैं. ऐसे समय में खेती को संतुलित रखने के लिए उसमें सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है. यदि किसानों के पास उस समय सिंचाई के लिए पर्याप्त जल न हो तो उन्हें शोरे की खाद का प्रयोग वर्षा काल के समय पर ही करना चाहिये, जिससे कि प्रकृति की ओर से दिये गये जल-वरदान का पूरा पूरा लाभ उठा सकें.

जो खेत सूख जाते हैं या मुरझाये से रहते हैं उन खेतों में यदि निर्धारित मात्रा में शोरे की खाद डाल दी जाये तो उन में एक साथ ही यौवन आ जाता है. जो खेत खार की कमी के कारण झुक जाते हैं तथा निर्बल हो जाते हैं वे शोरे की खाद का सहारा पाकर एकाएक ही मुस्करा उठते हैं. एक बात अवश्य ध्यान में रखने की है, वह यह कि जिस खेत में शोरे की खाद प्रयोग में लाई जाये उस खेत को दूसरी फसल के लिए तैयार करने में पर्याप्त परिश्रम की आवश्यकता है, क्योंकि ऐसा देखा गया है कि जिस खेत में जो फसल शोरे की खाद के द्वारा तैयार की जाती है वहां अगली फसल अच्छी नहीं हो पाती. यदि खेत की

फसल कटने के बाद ठीक प्रकार से जोत कर उस में नत्रिकाम्ल मिश्रित खाद दे दें तो मिट्टी ठीक हो जाती है. ऐसे खेतों में प्रस्फुरिक की खाद भी आवश्यक होती है. उसका कारण यह है कि शोरे के द्वारा पौधे खेतों की मिट्टी से अधिक से अधिक खाद प्राप्त कर लेते हैं और फसल में वृद्धि हो जाती है. साथ ही साथ उतने ही खाद्य पदार्थ मिट्टी में कम हो जाते हैं. प्रस्फुरिकाम्ल तथा कुछ अन्य खनिज की खादें इसकी पूर्ति कर देती हैं.

एक बात यह भी महत्व की है कि पैदावार को संतुलित रखने के लिए शोरे की खाद के साथ प्रस्फुरिक की कोई खाद भी अवश्य मिश्रित कर देनी चाहिए. ऐसा करने से प्रायः देखा गया है कि पौधे तो पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाते हैं किन्तु अन्न की उपज नहीं हो पाती है. साथ ही साथ यह भी देख लेना चाहिए कि निर्धारित परिमाण में शोरे की खाद एक साथ ही नहीं डालनी चाहिए वरन् थोड़ी थोड़ी तीन चार बार करके डालनी चाहिए. ऐसा करने से पौधे आवश्यकतानुसार ही बढ़ेंगे उससे अधिक नहीं और इस प्रकार उसी अनुपात से अन्न भी ठीक परिमाण में उपजेगा.

मिश्रित खाद

वैसे तो पृथक रूप से कुछ खादों के बारे में ऊपर बताया ही जा चुका है किन्तु बहुत सी खादें ऐसी भी होती हैं जो वास्तव में अपना अस्तित्व कुछ भी नहीं रखतीं. लेकिन इनके द्वारा अत्यन्त उपयोगी खेती होती है. उनकी गिनती रासायनिक खादों में नहीं की जाती किन्तु किसानों के पुराने अनुभवों के द्वारा खेत के लिये

जो खादें लाभदायक सिद्ध होती हैं या जिन जिन खादों के मिश्रण से यह खादें तैयार की जाती हैं वह खादें खेतों को लाभ पहुँचाती हैं. इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत खादें उपयोगी होती हैं, किन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिये कि जो खादें अनुभव के द्वारा उपयोगी सिद्ध हुई हैं उन्हें अवश्य ही प्रयोग में लाना चाहिये.

कीचड़ की खाद -- बड़े तालाबों या गढ़ों में पानी भर जाता है. इन स्थानों पर पानी की कुछ मात्रा सूख जाने पर कीचड़ शेष रह जाती है. ऐसे स्थानों से कीचड़ एकत्रित कर लेनी चाहिये और उसमें कुछ दिनों हड्डियों का चूरा डाल कर सड़ने देना चाहिये. थोड़े दिनों बाद इसे खाद के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है. फलों की खेती में इसका प्रयोग अत्यन्त उपयोगी माना गया है. जहां पर सीताफल की खेती करनी हो वहां पर कीचड़ की खाद या तालाब की मिट्टी बहुत उपयोगी सिद्ध होती है. ऐसी खाद का प्रयोग करने से सीताफल बहुत ही भरा हुआ और बड़ा आता है.

वनस्पतियों की खाद -- प्राय देखा गया है कि फल और वनस्पतियां खराब मौसम होने के कारण या कभी कभी किसानों की भूल से सड़ गल जाती हैं और खेती करने वाले इन्हें बेकार समझ कर फेंक देते हैं. वास्तव में इन गले हुए फल या वनस्पतियां सब का उपयोग उठाया जा सकता है. जो वनस्पतियां और फल गल जायें उनको एकत्रित करके भली प्रकार से कुचल कर खेत की मिट्टी में भली प्रकार से मिला देना चाहिये. ऐसा करने से जो तत्व इन फलों या वनस्पतियों में होते हैं वे मिट्टी में मिल कर उत्पादन में वृद्धि करते हैं.

कंकड़ की खाद — खेत के अन्दर से जितने भी कंकड प्राप्त होते हैं उनकी भी खाद तैयार हो सकती है. क्योंकि उन कंकड़ों में चूने की अधिक मात्रा विद्यमान रहती है. ऐसे कंकड़ों का चूरा बना लेना चाहिये, तथा गाय भैंस के मल मूत्र में मिला कर खेतों में डालना चाहिये. जिस समय खेत में बीज बो दिया गया हो, उसके पश्चात इस खाद का अधिक उपयोग है. इस खाद के पड़ने से खेत की मिट्टी जल अधिक चाहती है. अतः सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिये. यदि सिंचाई का ठीक प्रबन्ध न होगा तो खेतों में कोई लाभ न होगा.

कूड़े की खाद — साधारणत. सभी ना समझ किसान अपने घर के अथवा खेत के कूड़े करकट को बेकार समझ कर फेंक देते हैं. लेकिन ऐसा नहीं करना चाहिये वरन् एक अलग गढ़े मे उन सब को डाल कर सड़ाते रहना चाहिये. जो भी कूड़ा करकट निकले उस सब को इसी गढ़े मे डाल कर कभी कभी थोड़ी सी मिट्टी और जल डालने से यह सडता रहेगा. ऐसा कूड़ा करकट लगभग एक वर्ष मे सड़ जाता है. सड़ जाने के बाद इसे सुखा लेना चाहिये और खेती मे खाद की तरह प्रयोग में लाना चाहिए. यह खाद फल और फूलों के बाग बगीचे तथा अन्य साग भाजियों के लिये अच्छी सिद्ध हुई है तम्बाकू और लगभग हर प्रकार की फसल के लिये इसे प्रयोग मे लाया जा सकता है. यदि कूड़े की खाद मे गोबर, शोरा और नमक का भी थोड़ा थोड़ा चूरा मिला लिया जाये तो रबी की समूची फसलों के लिये यह बहुत लाभदायक होती है.

साबुन की खाद — जो साबुन सबसे सस्ता घटिया कपडे धोने का होता है, उसका घोल कभी कभी कीड़ों को नष्ट करने के काम

में लाया जाता है. जिन खेतों के अन्दर या पौधों के अन्दर कीड़े मकोड़े या दीमक आदि लग जाती है, उनमें इनको नष्ट करने के लिये साबुन का घोल काम में लाया जा सकता है. अधिक महंगा होने के कारण इसका प्रयोग अधिक नहीं किया जाता, लेकिन छोटे छोटे गमलों में इसका घोल डाल कर कीड़े मकोड़े नष्ट अवश्य किये जाते हैं. इसका घोल डालने से पेड़ पौधों की जड़ों में तेल और सोडे की मात्रा पहुँच जाती है, जिससे कि पेड़ पौधों के अनेकानेक रोग नष्ट हो जाते हैं.

रासायनिक खाद –

भारत वर्ष में रासायनिक खादों का बहुत कम प्रयोग किया जाता है क्योंकि यह अन्य खादों से महंगी पड़ती हैं. साथ ही साथ अभी हमारे देश के किसान इन खादों का ठीक प्रकार प्रयोग करना नहीं जान पाये है. आज का युग विज्ञान का युग है और दिन प्रति दिन नये नये आविष्कारों के द्वारा खेती के लिए भी नये २ प्रयोगों का नया निर्माण किया जा रहा है. इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत शताब्दियों की गुलामी से छूट कर ऐसे समय पर आजाद हुआ है जब कि उसकी प्रगति तथा उन्नति के स्रोत को परकीय सत्ताओं ने बन्द कर दिया है. तथापि उसे पूरा प्रवाहित करना भारतीयों का अपना कर्तव्य है. नए युग के नये नये आविष्कारों से किसान को भी लाभ उठाना चाहिए और जिन रासायनिक पदार्थों के द्वारा अन्य देशों के किसान खेती के अन्दर पर्याप्त उन्नति कर गए हैं, उन रासायनिक पदार्थों का लाभ उठाना चाहिए.

यदि हम ऐसा न करेंगे तो पिछड़े के पिछड़े ही रहेंगे. जितने भी रासायनिक पदार्थों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है उन सब को ध्यान मे रखकर उनका पूरा पूरा लाभ हर किसान को उठाना चाहिए. कभी एक पदार्थ तैयार करने में जो मैल निकलता है वह खाद के रूप में खेती में वरदान सिद्ध होना है. जैसे गन्ने का रस औंटाते समय खार. यह कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो किसानों को बिना कुछ भी व्यय किये ही प्राप्त हो जाते है और खेतों के लिए वरदान सिद्ध होते हैं. पहले तो ऐसी रासायनिक खादे काम में लाने के लिए भारतीय किसान को विदेशों पर आधारित रहना पड़ता था किन्तु अब हर प्रकार की रासायनिक खादे भारत ही मे तैयार कर ली जाती हैं. इस कारण से सस्ते दामों मे प्राप्त की जा सकती हैं. किसानों को यह खादे प्राप्त करके खेती की उन्नति करनी चाहिए.

यह पहले भी बता दिया गया है कि खाद में नत्रजन, पुटाश और प्रस्फुरिक तीन मुख्य तत्व होते हैं. इनके द्वारा भोजन प्राप्त करके पौधे बढ़ते हैं. यदि मिट्टी के अन्दर यह तीन तत्व न हों तो किसी प्रकार भी खेती नहीं की जा सकती. खेती करने वालों को यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि जिस प्रकार की खेती को इन तीनों तत्वों मे से किस तत्व की अधिक आवश्यकता होती है. उस खेत मे ऐसी ही खाद देनी चाहिए जिसमें उस तत्व का आधिक्य हो.

जो लोग इस बात का ध्यान नहीं रखते और उल्टी सीधी खाद भूमि मे डाल देते है वे हानि-अभिशाप के कोप भाजन बनते हैं, क्योंकि पौधों को खाद के जिस मूल तत्व की आवश्यकता

होती है, वे उसे न पाकर और पदार्थ पाते हैं जो लाभ की जगह हानिप्रद सिद्ध होते हैं.

जिन वैज्ञानिकों ने खाद के बारे में अनुसंधान किया है उनका कहना है कि २८ मन गोबर की खाद में ६ सेर नत्रजन, २॥ सेर पुटाश और लगभग ३॥ सेर प्रस्फुरिक की मात्रा होती है. अर्थात् इसका सम्पूर्ण भाग उपयोगी नहीं होता. वरन् लगभग आधा सेर प्रति मन ऐसा भाग होता है जो मूल तत्व में कहा जाए. अतः किसान को इन सारे मूल तत्वों का प्रयोग जानना अत्यन्त आवश्यक है और खेत में उसी प्रकार की खाद का प्रयोग किया जाए. ऐसा करने से खेती उन्नतिशील होगी और उपज बढ़ती चली जाएगी.

विदेशी कृषि — शास्त्रियों ने रासायनिक खादों का जो निर्माण किया है तथा उसके प्रयोगों की व्याख्या की, उसमें तत्त्व की बात यही है कि पौधों को जिस तत्त्व की आवश्यकता हो वह पूर्ण रूपेण प्राप्त हो जाए. यही खाद का उपयोग है, इसी रूप मे खाद का प्रयोग भी करना चाहिए. इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि यह काम आरम्भ में किसानों को कष्ट प्रद प्रतीत होगा किन्तु इसमे उन्नतिशील खेती का भाग्य छिपा है.

नत्रजन, पुटाश तथा प्रस्फुरिक तीन ही मूल तत्त्वों की खेत मे आवश्यकता होती है. इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण खेती का संचालन होता है. जिन खेतों के अन्दर आवश्यकतानुसार तीनों पदार्थ डाले जाते हैं, उन खेतों की उपज हर प्रकार से अच्छी और

अधिक होती है. यही कारण है कि खाद मे इन तीनों का होना आवश्यक बताया गया है. किसानों को इन्हे समझ कर इनके द्वारा लाभ उठाने का पूरा प्रयास करना चाहिए.

नत्रजन युक्त खाद — वड़े वैज्ञानिकों का मत है कि वायु-मण्डल की गैस में नत्रजन की मत्रा तीन चौथाई से भी अधिक है. प्राणियों के शरीर में नत्रजन की जितनी भी मात्रा श्वास के द्वारा जाती है, ज्यों की त्यों वाहर लौट आती है. इसकी आवश्यकता वास्तव में-पेड़ और पौधों को होती है.

वैसे तो कुछ वनस्पति शास्त्र के विशेषज्ञों का कहना है कि पेड़ पौधे पर्याप्त मात्रा मे श्वास के द्वारा नत्रजन को खींचते हैं. कुछ वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि पेड़ पौधे मनुष्य की ही भाति श्वास लेते हैं. यह सव कुछ सही होते हुए भी इसमे कोई सन्देह नहीं कि पेड़ पौधों को जितने नत्रजन की आवश्यकता होती है वह सारा नत्रजन पूरी मात्रा में पेड़ और पौधे श्वास के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते, इसी कारणवश भिन्न भिन्न प्रकार की खादे खेतों मे डाल कर इनमें नत्रजन पहुंचाया जाता है. जिससे कि पेड़ पौधे पनप सकें तथा वलिष्ठ रहे. कुछ अनुसधान करने वालों ने यह तीन तत्त्व पृथक गमलों मे डाल कर पौधे उगाए. एक गमले मे सारे ही पदार्थ डाले जिनकी पौधों को आवश्यकता होती है, दूसरे में प्रस्फुरिक तथा पुटाश डाला गया, तीसरे मे नत्रजन तथा पुटाश डाला गया और चौथे मे नत्रजन तथा प्रस्फुरिक डाला गया. जब उनका परिणाम देखा गया तो पता लगा कि पहले गमले में पौधा ठीक प्रकार से वढ़ा है, दूसरे गमले का पौधा थोड़ा सा उग कर नष्ट हो गया, तीसरे का पौधा

वैसे तो पूरी तौर पर बढ़ा किन्तु उसमें बीज नहीं आया तथा चौथे गमले वाला पौधा उग आने पर भी निर्बल और अशक्त रहा. इस प्रकार हम देखते हैं कि पौधों के लिए इन तीनों ही तत्त्वों की आवश्यकता है. जिन पौधों को नत्रजन प्राप्त नहीं होता वे उगने के तुरन्त बाद ही नष्ट हो जाते हैं. जिन्हें प्रस्फुरिक प्राप्त नहीं होता वे बढ़ते तो हैं किन्तु उनमें बीज नहीं आता और जिन पौधों को पुटाश प्राप्त नहीं होता वह पौधे निर्बल होते हैं. वैज्ञानिकों ने इसी प्रकार से यह भली भांति देख लिया है कि इन तीनों तत्वों को क्यों और कितनी आवश्यकता होती है साथ ही इन प्रयोगों से यह भी सिद्ध हो गया है कि नत्रजन को पौधे उतनी मात्रा में श्वास द्वारा कदापि नहीं खींच सकते जितनी कि उन्हें आवश्यकता होती है. निस्सन्देह कुछ फलीदार पौधे ऐसे होते हैं जो नत्रजन को वायुमंडल से खींच लेते हैं और जड़ों में एकत्रित कर लेते हैं. इनके द्वारा प्राप्त किया हुआ नत्रजन भी खाद के काम में लाया जा सकता है अन्य कोई भी ऐसे पौधे नहीं होते जो नत्रजन को वायुमंडल से खींच सकें. इसीलिए नत्रजन की खाद खेतों में डाल कर जड़ों के द्वारा यह तत्व पौधों में पहुँचाने पड़ते हैं. मटर के पौधे भी ऐसे होते हैं. जिनकी जड़ों पर कुछ ऐसे कीड़े पाए गए हैं जो नत्रजन को वायुमण्डल से खींच कर एकत्रित करते रहते हैं. प्रायः देखा गया है कि जिस खेत में मटर की खेती की जाए उसमें नत्रजन की जितनी भी मात्रा मटर बोने से पूर्व होती है, उससे कहीं अधिक इसकी फसल कटने पर मिलती है. किन्तु यह कीड़े मटर की खेती कट जाने पर जीवित नहीं रह पाते वरना जिस जिस फसल में मटर बोई गई हो

उस खेत में दूसरी फसल के लिए नत्रजन की खाद की कोई आवश्यकता नहीं है.

जिन खेतों में कार्वोहाईड्रेट तथा चूना कार्वनित नाम के दोनों पदार्थ होते हैं, उनमें ऐसे जीव जन्तु मिल जाते हैं, जो वायु मण्डल से नत्रजन प्राप्त करते हैं. जिन खेतों में इन दोनों पदार्थों का अभाव होता है उनमें यह जन्तु जीवित नहीं रह सकते. आजकल के अनुसंधानकर्त्ता इस बात का प्रयास कर रहे हैं कि खेतों के अन्दर जहां चूना कार्वनित तथा कार्वोहाईडेट का अभाव हो वहां पर आवश्यकतानुसार इन पदार्थों का सम्मिश्रण करके नत्रजन एकत्रित करने वाले न्तुओं को कृत्रिम रूप से बनाए रखा जाए. यदि यह परीक्षण कभी सफल हो पाए तो इससे खेतों को बहुत लाभ होने की सम्भावना है. बहुत से स्थानों पर यह मिश्रित पदार्थ खेतो मे डाल कर देखा भी गया है. जहा बहुत जगह किसानों को सफलता भी प्राप्त हुई है. जिन खेतों मे ऐसे जन्तु उत्पन्न किए गए उन खेतों मे वास्तव मे नत्रजन की कोई खाद डालने की जरूरत न पड़ी. वैसे कृषि अनुसंधानवेत्ता इन जन्तुओं को पालने की भी बहुत कोशिश कर रहे है जिसमे पर्याप्त मात्रा मे वे सफल भी हुए हैं.

वैसे तो वयुमण्डल मे नत्रजन और अम्लजन दोनों ही प्रकार की गैसें विद्यमान रहती हैं. कभी कभी वर्षा के समय पर जब तीव्र बिजली चमकती है उस समय नत्रिकाम्ल वायुमण्डल से तैयार होकर वर्षा के जल के साथ मिल कर खेतों मे आ गिरता है. इसी कारणवश वर्षा के समय बिजली का चमकना खेतों के लिए अच्छा माना गया है. अनेकानेक प्रयासों के पश्चात भी

आज तक कोई ऐसी विधि नहीं हो पाई है जिसके द्वारा दोनों के सम्मिश्रण के साथ ही बिजली की ऐसी गर्मी पहुँचाई जाए जिससे नत्रिकाम्ल तैयार हो सके. जैसा कि लोगों ने देखा है, वर्षा काल में वर्षा के जल के साथ ही साथ खेतों को लगभग पांच सेर नत्रजन प्रति एकड़ प्राप्त हो जाता है. इसी कारण वश खेती के लिए वर्षा के जल को सर्वोत्तम मानते हैं.

नत्रजन को जिन पदार्थों में मिला कर काम में लाते हैं उनमें कैल्शियम कार्बाइड (खटिक कार्बविद्य) आदि कई पदार्थ हैं. कैल्शियम कार्बाइड को बारीक पीस कर यदि पर्याप्त गर्म किया जाय, उस समय यदि नत्रजन इसके पास हो तो यह उसे भी अपने अन्दर मिला लेता है. जो नत्रजन वायु में रहता है उसे ताम्बे के बने साफ और सीधे पटों पर से गुजार कर वायु से पृथक किया जा सकता है. तत्पश्चात कैल्शियम कार्बाइड में मिला कर कैल्शियम सिनेमाईड नाईटोलिम तथा काल्कास्टोक नाम के पदार्थ तैयार कर लिए जाते हैं. इनमें २० प्रतिशत भाग वे बुझे चूने का होता है तथा यही भाग हवा में से पानी को अपनी ओर खींचता है तथा बुझने लगता है. उस समय इसमें गर्मी उत्पन्न होती है और नत्रजन एमोनियम का रूप लेकर उड़ जाता है. इस लिए इस पदार्थ को कभी भी खुला नहीं रखना चाहिए वरना इसमें से नत्रजन की मात्रा कम हो जायेगी. जब कभी किसी खेत में कैल्शियम सिनेमाइड प्रयोग करना हो तो इसे पहले मिट्टी में मिलाकर बुवाई से लगभग एक माह पूर्व खेत में डाल कर मिट्टी के साथ भली भांति मिला देना चाहिए. यदि इसके साथ इससे दस गुना सुपर फास्फेट भी मिला कर खाद

तैयार की जाए तो अधिक उपयोगी होती है. यह पदार्थ मूल रूप में बहुत हलका होता है. जिसके कारण इसमें से मूल तत्वों के उड़ जाने का पर्याप्त भय रहता है. इस लिए उसे अपने से दस गुने सुपर फास्फेट अथवा किसी भी खेतोचित मिट्टी मे मिला कर डालने से इसके उड़ने का भय जाता रहता है. वैसे भी इस प्रकार मिश्रण तैयार करने के बाद यदि थोड़ा पानी छिड़क कर यह पड़ा रहे तो खेतों में बखेरने तथा मिलाने मे सुविधा रहती है.

नत्रित सोडे को यदि सुपर फास्फेट तथा घुली हुई हड्डियों मे मिला दिया जाय तो नत्रिकाम्ल इससे पृथक हो जाता है. अतः इसे कभी भी इन खादों मे मिलाकर खेतों मे नहीं डालना चाहिये. किसानों को चाहिए कि वे बाजार से असली नत्रित सोडा ही ले क्योंकि नत्रित सोडे को खेतों मे डालने का एकमात्र उपयोग यही है कि पौधों को नत्रजन प्राप्त हो जाए. वैसे यदि देखा जाए तो सोडे की मात्रा से पौधों को कोई विशेष लाभ नहीं होता, किन्तु फिर भी सोडे मे नमक की ऐसी मात्रा होती है जो खेत की पुटाश को शीघ्र घुला देती है और इस प्रकार वह नत्रित सोडा खेत के पुटाश को इस योग्य बना देता है कि पुटाश मिश्रित किसी अन्य खाद की आवश्यकता नहीं होती. जो पौधा पुटाश चाहता है उसमे नत्रजन सम्बन्धी खाद की आवश्यकता नहीं होती वरन् नत्रित सोडे की खाद देने की आवश्यकता होती है. खाद के रूप में खेतों में गंधित एमोनिया डाला जाता है तो तीन वर्ष के पश्चात् ऐसी खाद की आवश्यकता होती है, जिसमे पुटाश का मिश्रण हो. इसका एक बड़ा कारण यह है कि गंधित एमोनिया खेत के अन्दर विद्यमान पुटाश को पौधों के काम मे आने

योग्य नहीं बना सकता, किन्तु नत्रित सोडे में यह एक भारी गुण होता है कि वह जहां पौधों को नत्रजन पहुंचाता है वहां मिट्टी में रहने वाली पुटाश को किसी भी प्रकार से पौधों के योग्य बना देता है. जिन खेतों के अन्दर नत्रित सोडे का प्रयोग किया गया हो उसमें केवल प्रस्फुरिक की खाद ही और डालनी होती है अन्य किसी रासायनिक खाद की आवश्यकता नहीं होती.

नत्रित सोडे का प्रयोग कई वर्षों तक निरन्तर किसी भी खेत में न होना चाहिए अन्यथा खेत की मिट्टी खराब हो जायेगी. और फसल भी ठीक नहीं उतरेगी. क्योंकि इसके प्रयोग से डाकर भूमि नम रहने लगती है और यदि भली प्रकार से सुखा कर इस भूमि को अच्छी तरह न जोता जाये तो खेत खेती के लिए भली प्रकार से तैयार नहीं हो सकता, फलस्वरूप फसल खराब उतरती है. जिस समय इसका प्रयोग करना हो तब इसमें आधा गन्धित अमोनिया और सुपर फास्फेट मिला लेना चाहिए जिससे कि खेतों में दरारें पड़ने का भय न रहे. नत्रित सोडे में नत्रजन ऐसे रूप में रहता है जिसे पौधों की जड़ें फौरन ही काम में ले लेती हैं. यही कारण है कि सागभाजी आदि की जिन फसलों को बहुत जल्दी ही तैयार करना हो या पौधों की वृद्धि बन्द हो गई हो अथवा कीड़े लगने या पाला पड़ने से फसल में कोई खराबी आ गई हो तो नत्रित सोडा खेतों में डालना बहुत लाभप्रद होता है. जब कभी भी नत्रित सोडे को किसी दूसरी खाद में मिलाना हो तो इस पक्की जगह पर फैला कर बारीक करके खूब अच्छी तरह मिलाना चाहिये. जिस समय इसकी मिली हुई खाद खेतों में डालनी हो तभी इसे ऐसे मिलाना चाहिए, इससे पूर्व नहीं,

वरना इसमें से नत्रजन की मात्रा कुछ कुछ उड़ जाएगी. साथ ही साथ इसके ऐसे डले बन जायेंगे जिनसे पौधे कोई विशेष लाभ नहीं उठा सकते.

नत्रजन सोडे को राख या चूने के साथ भी मिलाया जा सकता है. प्रायः देखा गया है कि जिस समय चूने या राख के अन्दर गन्धित अमोनिया मिलाया जाता है उस समय थोड़ा बहुत नत्रजन उड़ जाता है. लेकिन नत्रित सोडा यदि इसके साथ मिलाया जाए तो नत्रजन नहीं उड़ता. सुपर फास्फेट की खाद को छोड़कर हर प्रकार की खाद का नत्रित सोडे में मिश्रण किया जा सकता है.

वैसे नत्रित सोडा हमेशा फसल के आरम्भ में ही डाला जाता है और अन्य खादें तब डाली जाती हैं जब फसल बढ़ गई हो. इसलिए इसे किसी अन्य खाद के साथ मिलाने की आवश्यकता नहीं होती. प्रस्फुरिक की खाद ऐसी होती है जो पौधों के बढ़ जाने पर ही काम में लाई जाती है. गन्धित अमोनिया भी एक ऐसी खाद है जो नत्रित सोडे के समान ही शीघ्र फल देने वाली है. जिस समय गैस बनाने के लिए कोयले को जलाया जाता है उस समय कुछ नत्रजन अमोनिया होकर उड़ने लगता है. यह ऐसा पदार्थ है जो पानी में घुल जाता है, इसलिए यह पानी मे घोल कर ही निकाला जाता है तथा फिर वैज्ञानिक रीति से गन्धकाम्ल में मिला दिया जाता है. गन्धकाम्ल में मिलने के पश्चात दानेदार गंधित एमोनिया तैयार हो जाता है. इसमें लगभग २० प्रतिशत नत्रजन होता है. जो अच्छा और खालिस एमोनिया होता है उसमें २१ प्रतिशत नत्रजन होता है, किन्तु जो गंधित एमोनिया बाजार से खरीदा जाता है उसमे नत्रजन का भाग कम हो जाता

है क्योंकि व्यापारी लोग कभी कभी कुछ अन्य पदार्थों का सम्मिश्रण कर देते हैं.

गंधित एमोनिया के अन्दर कभी कभी एमोनिया सल्फोसायनाईड नाम का एक पदार्थ मिला होता है जो खेतों क लिए अभिशाप सिद्ध होता है. यदि इसके अन्दर इस पदार्थ के मिश्रित होने का सन्देह हो तो इसे पानी में घोल कर इसके अन्दर थोड़ा सा हरिद लोह (फैरिक क्लोराईड) डाल दें और जिस समय पानी का रंग गहरा लाल हो जाए तो समझ लेना चाहिए कि इसमें सल्फोसाईनाईड मिश्रित है. चूना चाहे कार्बनित ही हो एमोनिया से जो खाद का वास्तविक तत्व होता है उड़ने लगता है, इसलिए कभी भी चने के साथ या ऐसी खाद के साथ नहीं मिलाना चाहिए जो कंकड़ से बनी हो अथवा जिसमें चूना हो.

खेतों के अन्दर जितना चूना होता है गन्धित एमोनिया डालने से चूने का प्रभाव तो घट जाता है तथा गन्धित चूना बढ़ जाता है. गन्धित एमोनिता भी खेतों में इतना ही जल्दी प्रभाव डालता है जितना कि नत्रित सोडा. जिन खेतों के अन्दर गंधित एमोनिया का ही प्रयोग होता है उनमें ऐसी खेती नहीं की जा सकती जिनके पौधों को चूने की आवश्यकता रहती हो, क्योंकि गंधित एमोनिया के प्रयोग से खेत की मिट्टी अम्ल हो जाती है. गंधित एमोनिया यदि निरन्तर खेत में डालते रहे तो खेत में धीरे धीरे चूने की मात्रा कम होती चली जायगी. साथ ही साथ उसमें खटाई भी बढ़ जायगी. जहां इसका प्रयोग किया जाता है उन खेतों मे पौधों की जड़ अधिक नीचे नहीं जा पाती.

गेहूं की उपज में गन्धित एमोनिया इतना अच्छा सिद्ध नहीं हो पाया है जितना सोडा, यह फसल नत्रित सोडे के द्वारा तैयार होती है, वह गन्धित एमोनिया की अपेक्षा अच्छी पाई गई है. क्योंकि ऐसी खाद वाले पौधे अपनी जड़ों को नीचे तक फेंक सकते हैं और देर में पकते हैं जिसके कारण इन पर वर्षा न होने का भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु जौ के खेतों के अन्दर गन्धित एमोनिया को ही अधिक उत्तम माना गया है. पत्थर के कोयले में भी १ प्रतिशत भाग नत्रजन का विद्यमान रहता है. जिस समय कोयले को जलाया जाता है उस समय नत्रजन का यह भाग एमोनिया बन कर हवा मे उड़ने लगता है. जहां जहां बड़ी बड़ी भट्टियां होती हैं वहां वह अमोनिया धुएं को बाहर फेकने वाली चिमनियों में एकत्रित हो जाता है. जब कभी यह चिमनिया साफ की जाती हैं तो उनमें से काले रंग का काजल प्राप्त होता है. इसके अन्दर लगभग ५ प्रतिशत तक नत्रजन विद्यमान रहता है. यह मात्रा अधिकतम है वैसे प्रायः सामूहिक रूप से यदि देखें तो तीन प्रतिशत तक नत्रजन इसमें मिलता है. वैसे तो इतना कम नत्रजन होने के कारण नत्रजन की दृष्टि से यह काजल कोई विशेप लाभदायक नहीं होता है. परन्तु परीक्षण के द्वारा ऐसा देखा गया है कि इस काजल का सम्मिश्रण खेती के लिये वरदान सिद्ध होता है. काजल का रंग क्योंकि काला होता है अतः वह सूर्य की गर्मी को शीघ्र अपना लेता है. जिससे पौधों को पर्याप्त गर्मी प्राप्त हो जाती है और वह अधिक बढ़ जाते हैं.

अमोनियम सल्फेट — विदेशों मे अमोनियम सल्फेट की खाद से किसान बहुत लाभ उठाते है. भारतीय किसान इस रासायनिक

खाद का प्रयोग बहुत देरी से जान पाये हैं. कुछ दिन हुऐ भारत सरकार ने सिन्दरी नामक एक स्थान पर एक बहुत बड़ा कारखाना तैयार किया है जिसमें अमोनियम सल्फेट का खाद तैयार किया जाता है. लगभग एक वर्ष हुआ तब से इसके अन्दर इतना अमोनियम सल्फेट का खाद तैयार कर लिया जाता है जो प्रत्येक किसान को आसानी से प्राप्त हो सके;

अमोनियम सल्फेट भारतीय किसानों के लिए नया रसायन है अतः इसको प्रयोग में लाने से पूर्व इसके बारे में पूर्ण जानकारी रखना अत्यन्त आवश्यक है. जब यह पदार्थ विदेशों से कम और महंगा मंगाया जाता था, उस समय कम मात्रा में ही काम में लाया जाता था, इस कारण से इससे विशेष हानि की कोई सम्भावना नहीं रहती थी. अब क्योंकि यह बड़ी मात्रा में तैयार होने लगा है, इसस इसका प्रयोग भी साधारणतः सारे ही किसान करेंगे अतः इसका प्रयोग कहां किस प्रकार करना चाहिये जान लेना जरूरी है

यह एक ऐसा रासायनिक पदार्थ है जिसमें नत्रजन विद्यमान रहता है और नत्रजन खेती के लिए एक अत्यन्त उपयोगी रसायन है. भारत के खेतों में प्रायः नत्रजन की ही कमी पाई जाती है, और इसको पूरा करने के लिए हमें अनेक प्रकार की ऐसी खादें खेतों में पहुंचानी होती हैं जो नत्रजन मिश्रित हो, इसके अन्दर नाईट्रोजन ही नहीं होती वरन् ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो खेतों को और भी रसायन पहुंचाते हैं. जितने भी अन्य सेन्द्रिय

पदार्थ (ऐसे पदार्थ जो प्राणी और पौधों की इन्द्रियों से प्राप्त हों) पानी में नहीं घुल पाते और पौधों के काम में तब आ सकते हैं जब भली भांति सड़ जायें. इस प्रकार खेत मे देर हो जाती है. तथा यह खाद शीघ्रोपयोगी नहीं हो पाती. अमोनियम सल्फेट मे यह बात नहीं होती. वह पानी मे शीघ्र घुल जाता है और पौधों को तत्काल ही लाभान्वित करता है.

अमोनियम सल्फेट खेतों के लिये अत्यन्त लाभदायक होता है. किन्तु यदि यह ठीक प्रकार से प्रयोग मे न लाया जाये तो हानिकारक भी उससे कहीं अधिक हो जाता है. जिन किसानों ने इस रसायन का परीक्षण किया है, उनका कहना है कि कुछ समय तक इसका निरतर प्रयोग उपयोगी रहता है. किन्तु अधिक समय तक प्रयोग किया जाये तो फसल खराब आने लगती है. अतः यह देखना जरूरी है कि ऐसा होने का क्या कारण है.

अमोनियम सल्फेट मे एक पदार्थ सल्फेट नामका होता है. जिसमें तेजाब पैदा करने की ताकत होती है. खेतों के पौधे अमोनियम सल्फेट मे से आवश्यकतानुसार नत्रजन को खींच कर काम मे ले लेते है, और सल्फेट की मिट्टी मे तेजाब वाली ताकत रह जाती है जो अधिक मात्रा मे एकत्रित होने के पश्चात् पौधों को हानि पहुँचाने लगती है. वैसे भूमि मे अधिकतर यह स्थिति पैदा नहीं होती क्योंकि मिट्टी के अन्दर जो क्षार, चूना विद्यमान रहते हैं वे सल्फेट के साथ मिलकर मिट्टी मे तेजाब नहीं बनने देते. फिर भी कुछ खेत ऐसे होते है जिनमे क्षार और चूने की कमी होती है अतः इसकी पूर्ति के लिये अमोनियम सल्फेट का प्रयोग किया जाये. खेत मे यदि चूना पर्याप्त मात्रा मे नहीं

हो तो डाल देना चाहिए. साथ ही यह भी देख लेना चाहिए कि खेत में अम्लता तो नहीं है. चूना और क्षार डालने से अम्लता नष्ट हो जाती है.

वैसे भारत के खेतों में कुछ थोड़े से स्थानों को छोड़ कर चूना अत्यधिक मात्रा में विद्यमान रहता है. कुछ खेत तो ऐसे हैं जिनमें चूना अत्यधिक होता है. दूसरे ऐसे खेत हैं जिनमें चूना मध्यम मात्रा में होता है तथा कुछ ऐसे खेत हैं जिनमें चूना कम मात्रा में रहता है. जिन खेतों में चूने की मात्रा कम हो उनमें अम्लता रहती है. ऐसे खेतों में अमोनियम सल्फेट के साथ ही साथ सुपरफास्फेट खाद को मिला कर डालना चाहिए, जिससे कि खेत की मिट्टी को चूना मिल जाये जो सल्फेट से उत्पन्न होने वाली अम्लता को नष्ट कर दे. ऐसा करने से उपज अच्छी होती है.

अमोनियम सल्फेट में सोन्द्रिय पदार्थ नहीं होते वरन नत्रजन ही रहता है, इसी प्रकार सुपरफास्फेट में प्रस्फुरिक ही रहता है. भारतीय खेतों में मिट्टी की उर्वरा शक्ति को स्थिर रखने के लिए सेन्द्रिय खाद का प्रयोग भी अवश्य रहना चाहिए. केवल मात्र रासायनिक पदार्थों द्वारा तैयार की हुई खाद से हानि का भी भय रहता है. अतः गोबर आदि काम में लेते रहने से इन रासायनिक खादों की उपयोगिता बढ़ जाती है.

पुटाश मिश्रित खाद — कुछ सब्जियां ऐसी भी होती हैं जो नत्रजन और फास्फेट की खाद के साथ ही साथ ऐसी खादें भी चाहती हैं जिनमें पुटाश का मिश्रण हो. आलू, प्याज और मिर्च यह तीनों ऐसी सब्जी हैं, जिनमें नत्रजन और फास्फेट के साथ

ही लगभग पांच मन राख प्रति एकड़ डालनी चाहिए, लेकिन लकड़ी के कोयले की ही होनी चाहिए. इसमें लगभग चार प्रतिशत की मात्रा में पुटाश विद्यमान रहता है. इस राख के स्थान पर एक मन के लगभग पुटेशियम सल्फेट डालना भी उपयोगी रहता है.

प्रस्फुरिक युक्त खाद — पाठकों ने यह तो ऊपर के प्रकरणों मे देख ही लिया होगा कि प्रस्फुरिक युक्त खाद की क्या आवश्यकता है और इसकी पौधों को कितनी आवश्यकता होती है. यदि देखा जाय तो बीजों के अन्दर ही विशेषतः इसकी सबसे बड़ी मात्रा होती है. जिससे कि पौधे में फल फूल और बीज आयें. इसे दो प्रकार से खेती के प्रयोग में लाया जाता है.

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि हड्डियों के अन्दर प्रस्फुरिक का बहुत बड़ा अंश होता है. अतः हड्डियों का चूर्ण खेतों में बिखेर कर पौधों को प्रस्फुरिक पहुँचाया जा सकता है. आज के वैज्ञानिक युग में अनेकानेक प्रकार से हड्डियों को प्रयोग में लाने के लिए कई प्रकार की खादें बनाने का क्रम चल रहा है. जिससे कि इन व्यर्थ मे नष्ट हो जाने वाली हड्डियों से किसान पूरा पूरा लाभ उठा ले.

वैसे तो हड्डियों का चूरा करके खेतों में डाल देने से इसकी खाद तैयार की जाती है किन्तु उससे तुरन्त लाभ नहीं होता, क्योंकि उस चूरे को गलाने में पौधों के लिए काफी समय लगता है. इस प्रकार कई साल के पश्चात यह हड्डियों का चूर्ण पौधो के काम में आ सकता है. जब तक इसके सम्पूर्ण तत्व मिट्टी के साथ

नहीं मिल जाते तब तक पौधों को इससे कोई लाभ नहीं हो सकता इस कारण से प्रस्फुरिक की यह खाद खेती के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होती है जिसके मूल तत्व पौधों को तुरन्त ही लाभ पहुँचा सकें. जिन जिन खनिज पदार्थों में भी प्रस्फुरिक मिलता है वह भी एकाएक तुरन्त ही पौधों को लाभ पहुँचा सकता है.

कोई कोई तेजाब भी इसके लिए काम में लाए जा सकते हैं किन्तु उनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो अधिक व्ययप्रद हैं, इस कारण से खाद के काम में नहीं आते और कुछ ऐसे हैं जिनको यदि हड्डियों में मिश्रित किया जाए तो एक तीव्र हानिकारक गन्ध उत्पन्न कर देते हैं किन्तु गन्धकाम्ल एक ऐसा तेजाब है जो न तो ऐसी हानि ही पहुँचाता है और न ही महंगा है इस कारण से इसे प्रयोग में लाया जा सकता है.

हड्डियों को यदि गन्धकाम्ल के अन्दर डाल दिया जाता है तो वे स्वतः घुल जाती हैं. इसमें कुछ मात्रा नत्रजन की भी होती है. यह पदार्थ हड्डियों के मिश्रण से कुछ ऐसा बन जाता है जो खेतों में आसानी से बिखेरा नहीं जा सकता. अतः इसे गोबर के अन्दर मिला कर आसानी से काम में लाया जा सकता है. गोबर की बहुत बारीक खाद लेकर इसमें मिश्रित कर देनी चाहिए और फिर खेतों में इसका प्रयोग करना चाहिए.

सर्व प्रथम हड्डियों का बहुत बारीक चूरा कर लेना चाहिए और फिर गन्धकाम्ल में मिलाना चाहिए. यह चूर्ण मिलाने से पूर्ण गन्धकाम्ल में थोड़ा सा पानी भी डालना अच्छा होता है जिससे कि उसकी तेजी हलकी पड़ जाए. हड्डियां जितनी बारीक

बनेंगी उसका मिश्रण भी खाद के रूप में उतना ही अधिक उपयोगी रहेगा.

वैसे तो गन्धकाम्ल इतना तीक्ष्ण पदार्थ होता है कि किसी वस्तु पर गिर जाए तो उसे जला डालता है किन्तु खाद बनाने के लिए हलका गन्धकाम्ल काम में लाना पड़ता है. फिर इसमें पानी मिलाकर इसे और भी हलका बना लिया जाता है. साथ ही जब इसमें हड्डियों का सम्मिश्रण होता है, तो हड्डियों में विद्यमान रहने वाला एक प्रकार का चूना इसकी तेजी को नष्ट कर देता है और फिर इन दोनों के मिलने से प्रस्फुरित चूना बन जाता है.

सुपर फासफेट — यह भी किसी प्रकार के गन्धकाम्ल तथा हड्डियों का ही मिश्रण है. सुपरफासफेट तथा गन्धकाम्ल में घुली हुई हड्डियों के उपयोग में कोई अन्तर नहीं है. सुपरफासफेट को हड्डियों के अतिरिक्त और चीजों से भी बनाया जाता है.

जब कभी गन्धकाम्ल और हड्डियों का मिश्रण करना हो तब यह ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है कि गन्धकाम्ल उतना ही डाला जाये जो चूने को प्रस्फुरित चूना बना दे और शेष कुछ न रहे, अर्थात उसमें कोई ऐसी मात्रा न रह जाये जो पौधों के लिए हानिकारक सिद्ध हो. जिस समय सुपरफासफेट तैयार किया जाये उस समय यह ध्यान रखना चाहिए कि हड्डियों के अलावा जो पदार्थ डालना है उसमें लौह अम्लजिद और ऐलीमोनियम अम्लजिद न हो क्योंकि इनके होने से खाद मे यह कमी हो जाती है कि पानी मे नहीं घुल सकती और फिर खेतों के लिए बेकार हो जाती है. जो खाद पानी में ठीक

 1217

प्रकार से घुल नहीं पाती वह पौधों को तुरन्त कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती. अतः सुपरफासफेट भी ऐसा ही तैयार होना चाहिए जो पौधों को तुरन्त ही लाभ पहुँचा सके.

जो सुपरफासफेट बाजारों से खरीदा जाता है वह विश्वस्त दुकानदारों से ही लेना चाहिए जिससे कि खराब चीज न मिले. जहां जहां हड्डियों का चूरा सस्ता अच्छा और अच्छी मात्रा में प्राप्त हो जाये वहां खेती करने वाले को इसकी खाद स्वयं ही बनानी चाहिए जिससे कि उन्हें स्वयं उसके बारे मे पता भी रहे और खाद उपयोगी भी रहे.

प्रस्फुरिकाम्ल पौधों में पहुँचाने के लिये चट्टान और पत्थरों से खाद तैयार की जाती है. ऐसा करने के लिए प्रस्फुरिकाम्ल वाले पत्थरों को पीस लिया जाता है, और फिर उनमें कुछ और पदार्थ मिश्रित करके खाद के काम में लाया जाता है. किन्तु सुपरफासफेट ही है.

खेतों में जितनी खाद नत्रजन तथा प्रस्फुरिक की काम में लाई जाती है, उतनी पुटाश की काम में नहीं लाई जाती क्योंकि खेतों की मिट्टी के अन्दर पुटाश विद्यमान रहता है. वैसे भी पुटाश की, फसल के लिए कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती. खेतों के अन्दर जो भी पुटाश रहती है उसे पौधों के लिए उपयोगी बनाना आवश्यक है इसके लिए नत्रित सोडा काम में लाया जाता है. इससे यह लाभ है कि नत्रजन तो पौधों के सीधा काम में आ ही जाता है, शेष जो सोडा बेकार बचता है वह मिट्टी में उपस्थित पुटाश को घुलने योग्य बना देता है. जिन खेतों की मिट्टी चिकनी-

होती है उनमें पुटाश की मात्रा अधिक होती है. जितने खेतों की मिट्टी रेतीली होती है उनमें पुटाश कम होता है तथा और पुटाश डालने की आवश्यकता पड़ती है. जितने भी पौधे मीठे फल वाले होते हैं उनमे पुटाश की आवश्यकता होती है जिसके न मिलने से मिठास कम हो जाती है और पैदावार भी कम हो जाती है. नशाते तथा मीठे की आवश्यकता वाले पौधे गाजर, आलू आदि पुटाश की आवश्यकता अनुभव करते हैं, साथ ही पुटाश डालने से खेतों में कीट पतंग आदि भी नहीं लगते हैं.

पुटाश को खाद के रूप मे खेतों मे पहुँचाने के लिए गन्धित पुटाश प्रयोग मे लाया जाता है जो कि पौधों के तुरन्त काम मे आ जाता है. वैसे पुटाश अधिक मात्रा मे प्राप्त नहीं होता और प्राय पौधों आदि को जला कर जो राख होती है उसी मे वह मिलता है किन्तु राख भी अधिक मात्रा मे प्राप्त नहीं की जा सकती. इसके लिए जहां जंगलों मे पेड़ पौधों को जलाया जाता है वहां से राख एकत्रित कर लेनी चाहिए. घरों मे जो लकड़ी जलाई जाती है उनकी राख भी पुटाश की पूर्ति के लिए खेतों मे डालना उपयोगी है.

खेतों में शोरे को डाल कर भी पौधों को पुटाश पहुँचाया जा सकता है. इसे नत्रित पुटाश कहते हैं. पुटाश पहुँचाने के लिए एक प्रकार का नमक भी प्रयोग मे लाया जाता है जिसे स्ट्रेसफोर्ड भी कहते हैं जिसके अन्दर पुटाश की बहुत मात्रा होती है. स्ट्रेसफोर्ड जर्मनी मे पाया जाता है जिसे भूमि से खोद कर निकाला जाता है. यह खाद के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है. भारतवर्ष मे भी ऐसे कुछ खनिज पदार्थों की खोज की जा रही है जिनमें पुटाश अधिक मात्रा पाई जाती हो.

- खेतों में पुटाश सम्बन्धी जो खाद काम में लाई जाती हैं वे तीन प्रकार की हैं.

गन्धित पुटाश — यह पुटाश तथा गन्धकाम्ल को मिला कर बनाया जाता है. इसमें लगभग ४८ से ५१ प्रतिशत तक पुटाश की मात्रा होती है. भारतीय खेतों के लिये अन्य दोनों प्रकार के अर्थात हरिद पुटाश तथा गन्धित पुटाश मग्न से गन्धित पुटाश अधिक उपयोगी होती सिद्ध हुई है.

इस प्रकार हम स्वयं ही इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि कौन से पदार्थ में कितनी मात्रा पुटाश की होती है. जिस खेत में जितनी पुटाश की आवश्यक़ता हो उसका भी अनुभव के द्वारा सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है. तत्पश्चात उतनी पुटाश युक्त खाद खेतों में डालनी चाहिए.

पहले ऊपर बताया ही जा चुका है कि पुटाश बीज के लिए अच्छा होता है और वास्तव में बीज के लिये ही इसकी विशेष आवश्यकता होती है. समय समय पर जहां जहां भी जिस खेत में पुटाश की आवश्यकता हो वहां उसका प्रयोग उतनी ही मात्रा में ऐसे ढंग से करना चाहिए कि यह तुरन्त ही पौधों के काम में आ जाये. व्यर्थ ही बिना आवश्यकता के इसे खेत में नहीं डालना चाहिए. ऐसा करने से जहां फसल महंगी उतरती है वहां खेती को हानि भी होती है.



उन्नतिप्राप्त बीज

खेती जितनी अच्छे व बुरे बीज पर निर्भर रहती है इतनी अन्य किसी बात पर नहीं. यह बात बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है. जब तक इस बात पर ठीक से विचार नहीं कर लिया जाता तब तक खेती की समस्या का कोई भी हल प्राप्त करना इतना ही असम्भव है जितना खजूर के वृक्ष से छाया की आशा.

यह मूलतः सिद्ध सी बात है कि उपज उतनी ही अच्छी होगी जितना अच्छा बीज. कहावत भी प्रसिद्ध है, "जैसा बोओगे वैसा काटोगे" अर्थात जैसा बीज होगा वैसा ही फल प्राप्त होगा. अतः अच्छी पैदावार के लिए यह निश्चित है कि बीज अच्छा होना चाहिए.

बीज के बारे में अध्ययन करने के लिए सर्व प्रथम तो यह देखना आवश्यक है कि बीज वास्तव में है क्या ? उत्पादन-शक्ति का नाम ही बीज है. वैसे चाहे भी जिस आकार का हो और चाहे जिस पौधे का हो उसकी गठन लगभग एक सी ही होती है. भलीभांति देखने से यह तुरन्त पता लग जाएगा कि सागभाजी के ऊपर एक पतला छिलका होता है जो कि मोटा और कड़ा होता है तथा उसके पश्चात भीतर एक और छिलका होता है जो कि एक झिल्ली की भांति होता है तथा इसके भीतर बीज का वास्तविक मुलायम रूप लिपटा होता है.

उसके भीतर बीज प्रायः दो भागों में विभक्त रहता है तथा बीच से जुड़ा होता है, जो बीज को खोलने पर आसानी से पृथक किए जा सकते हैं. कुरा बीज के मध्य भाग से ही फूटता है. उसमें उत्पादन शक्ति निहित रहती है. गेहूं, जौ, सरसों आदि के दाने होते हैं.

इतना ही नहीं वरन् जब तक बीज में से निकली कोंपलों की जड़ें अपना भोजन धरती से स्वतः ले लेने की स्थिति में नहीं आ जातीं तब तक के लिए उनका भोजन बीज में ही रहता है. इसी भोजन के बल पर यह कोंपलें शक्तिवान हो धरती की छाती को फाड़ कर बाहर निकल आती हैं. और फिर न जाने कितने लोगों का पेट भर कर उस जैसी असंख्यों बीजों को जन्म देती हैं.

बीज में से अंकुर तब फूटता है जब कि उसे उसी के उपयुक्त भूमि, नमी, गर्माई तथा आक्सीजन प्राप्त हो जाय. यही कारण है कि बीज को बोने के पश्चात उस पर मिट्टी डाल दी जाती है, जिससे कि बीज गर्माई पाकर शीघ्र अंकुरित हो जाए. उसमें जुताई आवश्यक है जिससे मिट्टी पोली हो जाए, उसमें प्रकाश के प्रवेश से बीज को उपयुक्त आक्सीजन मिल जाए तथा खेत में समयानुसार छिड़काव किया जाता है जिससे कि बीज को नमी प्राप्त हो जाए. तब इन सब चीजों की सहायता से बीज अंकुरित होता है.

नमी पाकर वह फूल जाता है तथा ऊपर का कड़ा छिलका मुलायम हो जाता है जिससे वह फट जाता है. तब मिट्टी और

आक्सीजन के सहयोग से वीज के मध्य से अंकुर फूटता है तथा वही वढ़ कर पौधे का रूप धारण करता है.

वीजों के अंकुरित होने में तापमान का वड़ा हाथ होता है तथा उसी का प्रभाव वीज पर पड़ता है. वैसे तो हर प्रकार के वीज के लिए एक ही तापमान की आवश्यकता नहीं होती किन्तु फिर भी वीज की जातियों के अनुसार उन्हें पृथक पृथक तापमानों की आवश्यकता अवश्य होती है. वीज की जाति की दृष्टि से उन्हें उतना ही तापमान प्राप्त होना चाहिये अधिक या कम हो जाने पर पौधे या तो पनप ही नहीं पाते या गल जाते हैं.

बोने से पूर्व यह देख लेना अत्यन्त आवश्यक है कि वीज की उत्पादन शक्ति कितनी है? यदि वीजों में उत्पादन शक्ति की कण भर भी कमी हो तो भी वह अच्छी उपज नहीं दे सकता. साधारणत. यह शक्ति वीज मे अधिक समय तक स्थिर नहीं रह पाती और धीरे धीरे नष्ट हो जाती है. यह देखा गया है कि एक वर्ष तक तो वीज की यह शक्ति वीज मे ठीक प्रकार से स्थिर रहती है किन्तु इसके पश्चात् क्षीण होनी आरम्भ हो जाती है और तीन साल मे वहुत से वीजों की तो यह शक्ति विलकुल ही नष्ट हो जाती है.

यद्यपि सरसों, उड़द, मटर, मूंग आदि के कुछ वीज जो फली से प्राप्त होते हैं, उनकी यह उत्पादन शक्ति तीन चार साल तक रहती है तथापि वह क्षीण अवश्य हो जाती है. वैसे भारत भर मे अधिकांश वीज ऐसे ही होते हैं जिनकी यह उत्पादन शक्ति एक साल के पश्चात लगभग नष्ट ही हो जाती है. वास्तव मे उसका

कारण यह होता है कि बीज में अंकुर के लिए भोजन जमा होता है वह स्टार्च के रूप में होता है तथा अधिक समय तक टिक नहीं सकता, नष्ट हो जाता है. जिसकी वजह से या तो कुरे फूटते ही नहीं या फूटने के बाद भोजन न मिलने से जल जाते हैं.

इस प्रकार बीज जितना भी नया होगा उतनी ही अधिक अच्छी उससे पैदावार होगी जो कि हमेशा उसकी उत्पादन-शक्ति पर निर्भर रहती है. अतः एक साल से पुराना बीज तो बोना ही नहीं चाहिए. फिर एक बात और भी है कि बीजों के संग्रह करने के समय बड़ी देख रेख की आवश्यकता है.

बहुत से बीज तो ऐसे होते हैं जिन्हें यूं ही भरकर रखा जा सकता है किन्तु बहुत से बीज ऐसे भी होते हैं जिनमें राख या कोई अन्य रासायनिक पदार्थ मिलाकर रखना अच्छा होता है.

किसानों को जब भी कभी बीज मोल लेना हो तो परीक्षा करके ऐसे भण्डारों से लेना चाहिए जहां पर बीज केवल बीज के लिए ही उपजाया गया हो, और वैज्ञानिक ढंग पर उसका संग्रह किया गया हो. कहीं से भी, कैसा भी बीज ले लेने से फसल बिगड़ जाती है और फसल का बिगड़ जाना ही वास्तव में किसान की हत्या है.

इन बातों का ध्यान रख कर ही बीज मोल लेना चाहिए. एक बात और भी देखी गई है कि जब किसान किसी प्रकार के अच्छे बीज मोल लेकर बोने के लिए ले जाता है और वह कम पड़ जाता है तो वह उस बीज में अन्य प्रकार के देसी बीज मिला देता है, उससे उन्नतिशील बीज खराब हो जाता है तथा फसल

भी अच्छी नहीं उतरती. अत यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि उन्नतिशील बीज में अन्य बीज न मिलाया जाये. इस से बीज की जाति मे भी कोई खराबी नहीं हो पाती साथ ही उपज भी अच्छी हो जाती है.

उन्नतिशील बीज वास्तव मे नए ढंग से तैयार किये जाते हैं. बहुत से बीजों में मोटा दाना उपजाने का गुण होता है तथा बहुत सों में अन्य गुण होते हैं. इस प्रकार इनके गुणों का एक ही बीज में समावेश कर देना उन्नतिशील बीजों का बनाना कहलाता है. यह बीज बड़े ही परिश्रम से सरकार के कृषि विभाग द्वारा तैयार किए जाते हैं क्योंकि किसानों के लिए पृथक पृथक रूप से इनका तैयार करना असम्भव होता है. सरकार हर प्रकार से समर्थ अनुसन्धानकर्ताओं के द्वारा नई २ खोजों के आधार पर बड़े बड़े खेतों में वैज्ञानिक तरीकों के द्वारा बड़ी ही देखभाल के बाद यह उन्नतिशील बीज तैयार करती है. इन बीजों में अन्य बीजों की अपेक्षा अधिक उत्पादन शक्ति होती है. इनकी बुवाई बलवान मिट्टी मे भली प्रकार से करनी चाहिये.

यदि अच्छी मिट्टी में यह उन्नतिशील बीज बोये जायें तो अन्य बीजों की अपेक्षा ड्योढ़ी तक उपज दे देते हैं. इन बीजों मे विशेषत. गेहूं है. सरकार ने इसके विशिष्ट उन्नतिशील बीज लेकर उगाए है. यह बीज हर प्रात के कृषि विभाग से पूछताछ के पश्चात प्राप्त किये जा सकते है. किसानों को इनका अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये.

वास्तव मे देखना यह है कि उन्नतिशील बीज है क्या? किसी भी बीज की हर प्रकार की जातियां लेकर बो देने पर

इसका पता लग जाता है. जिस जाति का बीज सर्वाधिक उपज दे वही बीज सर्वोत्तम होता है. इसी प्रकार से कृषि वैज्ञानिक बीज की कुछ पृथक पृथक जातियों को एक साथ बोकर तथा उन के पौधों में एक वैज्ञानिक ढंग से एक दूसरे को मिलाकर नई जाति का बीज लेने का प्रयत्न करते हैं. इन वर्ण-संकर जातियों में जो बीज आता है उसका पुनः परीक्षण करके देखा जाता है, तथा जब वह अच्छा साबित हो जाता है तब उसका नं० रखकर उसका प्रचार करते हैं.

बीज खेती की उन्नति का आधार होता है. जब आधार ही दूषित हुआ तो सारी की सारी उपज दूषित हो जायेगी. अतः बीज का शुद्ध रखना अत्यन्त आवश्यक है.

जिस समय खेतों से बीज के लिए दाना रखना हो तो मिश्रित कभी नहीं रखना चाहिए. हर प्रकार की जाति का बीज पृथक रखना चाहिए, किसी दूसरी जाति के बीज मिल जाने पर सारा उन्नतिशील बीज भी नितांत अशुद्ध हो जायेगा. अतः उपज को काटते समय तथा बीज संग्रह करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए.

बीज संग्रह करते समय यह बात भी अवश्य देख लेनी चाहिए कि बीज में भूसा तो नहीं रह गया है. बीज भण्डार जितना भी संग्रहित करना हो उसे पूर्ण शुद्ध रखने के लिए ध्यान पूर्वक परिश्रम के साथ बीज की हर जाति को पृथक संग्रहित करना चाहिए तथा साथ ही छोटे और मोटे दाने को भी बिलकुल पृथक पृथक करके ही रखना चाहिए.

बीज को संग्रहित करने के समय भी बड़ा ध्यान रखने की आवश्यकता है. सदा इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए कि दाना टूटने न पाए और किसी जानवर या कीटादि के द्वारा कुतरा भी न जाए. जिन संग्रहालयों में इसकी कम देखभाल होती है वहां देखा गया है कि बीज बारीक आटे मे परिणत हो जाता है और इस प्रकार बीज बिलकुल ही नष्ट हो जाता है, तथा यह आटा किसी काम में भी नही आता.

बीज को खेतों मे बखेरते समय भी इस बात का बहुत ही ध्यान रखने की आवश्यकता है कि बीज को छान फटक कर बिलकुल साफ कर लिया जाये, जिससे उसमे अन्य कोई भी न तो बीज ही रह पाए और न ही उसका बुरादा, वरन् बहुत ही साफ तथा सुथरे बीज के दाने मात्र हो. ऐसा करने से फसल निश्चित ही अच्छी और सुधरी हुई होगी.

हमारे किसानों को चाहिए कि वे पुराने रूढ़िगत विचारों को त्याग कर उन्नतिशील बीजों का ठीक प्रकार से प्रयोग आरम्भ कर दें. यदि इस बारे में कोई बात समझ में न आए तो अपने पास के सरकारी कृषि विभाग से योग्य सहायता प्राप्त करते रहने से खेती उपज की दृष्टि से तो अच्छी रहती ही है साथ ही साथ जाति का सुधार भी होता रहता है.

गन्ने के बीज —

बहुत से गन्ने ऐसे देखे गये हैं जिनमें मिठास का नाम तक नहीं होता अर्थात वह फीके होते हैं तथा कुछ ऐसे होते हैं जिनमें

रस निकलता ही नहीं. इन सब बातों को देखते हुए यह निश्चय किया गया कि गन्ने का सुधार अत्यन्त आवश्यक है.

हमारे देश में अभी तक गन्ने की खेती का अधिक सुधार न होने का एक विशेष कारण और भी है, और वोह यह है कि यहां के लोग अन्य देशों की अपेक्षा अधिक अन्धविश्वासी हैं. और उसी अन्धविश्वास के आधार पर वह लोग परम्परागत चली आई खेती की रीति को जल्दी से छोड़ना नहीं चाहते. एक कारण यह भी है कि कुछ उन्नतिशील गन्ने फूल जाते हैं जिन्हें फूलने के कारण किसान बुरा समझने लगते हैं क्योंकि गन्ने की पुरानी कुछ जातियां ऐसी हैं जो फूल आ जाने के बाद अपने अस्तित्व को नष्ट कर लेती हैं. इसी कारण यहां के खेती करने वाले फूलने को अपशकुन समझते हैं. वह लोग यह नहीं जानते कि उन्नतिशील गन्ने के बीज बोने के पश्चात यदि गन्ना फूले तो अनुसन्धानवेत्ता उसमें से कोई और भी उन्नतिशील जाति उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं, तथा यह जाति कभी भी फूलने से रसहीन नहीं होती. वरन् अपना शुद्ध रसमय रूप स्थिर रखती है.

गन्ने की उन्नतिशील खेती के लिए जहां सरकार ने बहुत भारी धनराशि का व्यय किया है वहां कृषि विशेषज्ञों ने बहुत बड़े परिश्रम के साथ अपने आप को खेतों का कीड़ा बना कर जंगलों के निराशापूर्ण वातावरण में रहकर अनेकानेक कष्टों के पश्चात गन्ने की जो उन्नतिशील जातियां तैयार की हैं यदि ठीक प्रकार से प्रयोग में लाई जायें तो निश्चित ही अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होंगी.

देती है. रंग इसका भी न० १० की भांति ही सफेद होता है. किन्तु इसका दाना कुछ अधिक मोटा होता है. इसकी पैदावार लगभग पैंतिस मन तक हो जाती है.

मक्का नं० १७— इस जाति की मक्का भी देर में पकती है अर्थात वही नव्वे से लेकर सौ दिन तक मे तैयार होती है. इसके दाने का रंग दूधिया होता है और मोटाई में मंझली मोटाई का होता है. पैदावार इसकी भी लगभग तीस मन प्रति एकड़ ही वैठती है.

मक्का नं० ४१— इस जाति की मक्का का दाना लगभग शेष सभी प्रकार की मक्का के दानों से कुछ सजल और मोटा तथा कुछ कुछ गोलाई पर होता है. दोनों का रग हल्का पीला होता है. समय इसकी तैयारी में भी लगभग नव्वे से सौ दिन का ही लगता है. प्रति एकड़ इसकी पैदावार लगभग पैंतिस मन हो जाती है. उपरोक्त मक्का की उन्नतिशील जातियों को भिन्न भिन्न स्थानों पर वो कर देखा गया, जिससे यह पता लगा कि यह जातियां वहुत ही उपयोगी हैं. जव कहीं भी इनकी वुवाई करनी हो जलवायु भूमि और पानी की दृष्टि से ही जाति का चुनाव करके वोना चाहिए. ऐसा करने से इन उन्नतिशील जातियों का पूरा लाभ उठाया जा सकता है और खेतों की भी उन्नति की जा सकती है.

ज्वार के वीज—

ज्वार का वीज कई रंग का गोल गोलसा होता है. इसी कारण इसकी जाति रंग से ही पहचानी जाती है: यह तीन प्रकार के होते हैं. सफेद, लाल, मटमैला इन तीनों में सफेद ज्वार

अच्छी मानी गई है. ज्वार के दाने भुट्टे में भिन्न भिन्न रीतियों से लगते हैं, एक ढंग तो यह है कि भुट्टे में दाने अकेले अकेले ही लगते हैं, आपस में मिले नहीं होते तथा दूसरी रीति में दो दो दाने एक साथ रहते हैं. इस प्रकार एक दाने वाली जाति को इकदनिया तथा दो दाने वाली जाति को दो दनिया कहते हैं. एक दाने वाली ज्वार, दो दाने वाली ज्वार से तनिक मोटी-सी होती है. ज्वार के सुधार के लिए उत्तर प्रदेश की सरकार ने पर्याप्त कार्य किया है तथा वहां के बड़े बड़े कृषि-क्षेत्रों पर इन जातियों को बो बोकर कुछ उन्नतिशील जातियां भी निकाली हैं जो इन जातियों से सुधारी हुई हैं. ऐसी परिष्कृत जातियों का प्रयोग कहीं कहीं तो पर्याप्त मात्रा में होने भी लगा है. ऐसी उन्नतिशील जातियों में से कुछ नीचे दी जाती हैं.

ज्वार नं० ६—ज्वार नं० ६ की पैदावार प्रति एकड़ पन्द्रह मन तक पाई गई है. इसके पकने में लगभग साढ़े चार माह का समय लगता है. दाना मोटा होता है.

ज्वार नं० ८— ज्वार नं० ८ वी वहुत ही अच्छी प्रकार का परिष्कृत वीज माना गया है. यहां खेतों में लगभग पांच सेर प्रति एकड़ वोया जाता है तथा वीस मन प्रति एकड़ तक की उपज दे देता है. अन्य ज्वारों की अपेक्षा इसका पौधा कुछ लम्बा तथा भुट्टा वड़ा होता है तथा लगभग साढ़े चार माह में ही पक कर तैयार हो जाता है.

ज्वार नं० ५ टाल— दाना इस जाति का भी मोटा ही होता है तथा इसके पकने में भी अन्य जातियों की भांति ही लगभग साढ़े चार माह का समय लगता है. उपज प्रति एकड़ अट्ठारह मन तक दे देता है.

ज्वार नं० ५ शार्ट— वैसे तो ज्वार की यह जाति भी बहुत अच्छी है. उपज भी अट्ठारह मन प्रति एकड़ से अधिक ही दे देती है किन्तु इसके पकने में पांच से अधिक साढ़े पांच माह तक लग जाते हैं. अर्थात अन्य जातियों की अपेक्षा देर मे पकती है.

ज्वार नं० ३० सी— यह जाति भी उन्नतिशील जातियों में से है जिसकी उपज सोलह मन प्रति एकड़ तक पाई जाती है. पकने में इसे भी लगभग साढ़े चार माह लगते हैं.

इन उन्नतिशील जातियों को कहां कहां कैसे जलवायु मे बोना चाहिए यह अवश्य ही जान लेना चाहिए क्योंकि बीज भूमि के अनुपयुक्त होने पर उपज ठीक कहीं दे पाता अतः किसानों को अपने अपने क्षेत्रों के सरकारी कृषि विभाग से इस बारे मे सलाह लेते रहना चाहिए कि कहां पर कौनसा उन्नतिशील बीज अधिक उपयुक्त होगा.

बाजरे के बीज—

भारत में कुछ प्रान्त तो ऐसे है जिनका 'प्रधान खाजा बाजरा ही है. क्योंकि वहां पर इसी की खेती अधिकता से की जाती है. राजस्थान का अधिकाश भाग केवल बाजरे पर ही निर्भर रहता है. वास्तव में यदि देखा जाय तो बाजरा हमारे देश की सर्व-प्राचीन फसलों मे से एक है इस कारण से हमें यह देखने की अति आवश्यकता है कि हमारे देश में इसकी वही पुरानी जातियां प्रयोग में लाई जानी चाहिएं जो बोई जाती रही हैं अथवा उन्नतिशील जातियां उपयोगी होंगो. बाजरा तीन प्रकार का होता है. एक तो वह जिसकी बालों पर सींकुर नहीं होते

तथा दाना भी मोटा होता है. एक वह होता है जिसकी वालों पर सींकुर होते हैं तथा तीसरा वह जिसकी वालों पर सींकुर तो नहीं होते किन्तु उसका दाना अपेक्षा कृत छोटा होता है. सींकुर वाले में यह लाभप्रद वात देखी गई है कि सींकुर होने के कारण चिड़िया आदि परिन्दे वालों में से बाजरे के दानों को चुग नहीं पाते जिससे क्षति कम होती है. कृषि विशेषज्ञों ने इन सब वातों को देख कर वाजरे की भी कुछ ऐसी उन्नतिशील जातियां तैयार की हैं जो कि लाभदायक सिद्ध हुई है. उनमें से कुछ चुनी हुई जातियों की संक्षिप्त विशेषताएं नीचे दी जाती हैं.

वाजरा नं० ४—इसका दाना मोटे आकार का होता है. खेतों में प्रति एकड़ लगभग तीन सेर बीज वखेरा जाता है. पकने में लग भग तीन महीने का समय लेता है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ चौदह मन के लगभग हो जाती है.

वाजरा नं० ११— इसका दाना भी नं० ४ के समान ही वड़े आकार का होता है. खेतों में लगभग तीन सेर बीज प्रति एकड़ बोया जाता है, लगभग तीन महीने में ही पक कर तैयार हो जाता है. उपज की दृष्टि से यह जाति वहुत अच्छी है क्योंकि इसकी उपज लगभग तेइस मन प्रति एकड़ तक पाई गई है.

वाजरा नं० १२— आकार में इसका दाना भी मोटा होता है. बीज प्रति एकड़ लगभग तीन सेर ही बोया जाता है. तथा पकने में भी तीन महीने का समय ही लगता है. पैदावार इसकी बीस मन प्रति एकड़ के लगभग हो जाती है.

बाजरा नं० १७—इसके दाने का आकार वाजरा नं० ४, ११ और १२ की अपेक्षा छोटा होता है. इसका बीज भी अन्य

यह जातियां विशेषतः कोयम्वटूर मे तैयार की गई. गन्ने की जितनी भी जातियां होती थीं इन सब को लगाकर देखा गया और जांच पड़ताल के पश्चात तथा वैज्ञानिक रीति से नई जातिया तैयार की गईं, जो कोयम्वटूर गन्ने के नाम से प्रसिद्ध हुईं. इस जाति के गन्ने मे बहुत सी विशेपतायें है. भारत के लगभग सारे ही प्रान्तों मे कृषि क्षेत्रों मे लगाया गया और उससे परिणाम यह निकला कि कोयम्वटूर गन्ने की यह उन्नतिशील जातियां सभी प्रांतों के लिए समान रूप से उपयोगी है. इनमें गुड़, राब, और चीनी, शक्कर आदि भी अन्य जाति के गन्नों से अधिक प्राप्त होते है.

साधारणतः देखा गया है कि गन्ने के खेतो मे फनगी और कुछ अन्य प्रकार के कीटाणु लग जाते है और यह गन्ने के रस को तो चूसते ही हैं साथ ही साथ उसकी जाति को भी विगाड़ देते हैं जिससे गन्ने की खेती करने वालों को कठिनाई का सामना करना पड़ता हैं. किंतु गन्ने की यह उन्नतिशील जातिया अपने मे इतनी शक्ति रखती है कि इस प्रकार के कीटाणु उस पर नहीं लग पाते और न ही उसे कोई हानि पहुंचा सकते ह.

ऐसी उन्नतिशील जातियों मे दो प्रकार के गन्ने होते है. एक वह होते है जो वैसे तो पतले होते हैं छिलका भी उनका कड़ा नहीं होता किन्तु गुड़, राव, चीनी और शक्कर निकालने के लिए यही गन्ना सर्वोत्तम होता है. दूसरा गन्ना वह होता है जो देखने मे सजल और मोटा होता है साथ ही उसका छिलका भी कड़ा होता है यह गन्ना आम तौर पर शहरो के आस पास वाले गांवों मे गत्पन्न किया जाता है जिससे कि शहरो मे जल्दी भेजा

जा सके क्योंकि यह विशेषतः फलों की भांति चूसने के प्रयोग में अधिक लाया जाता है.

पतली जाति वाले गन्ने का छिलका क्योंकि पतला होता है इस कारण से उस पर कीटादि का आक्रमण अधिक सफल रहता है और जो गन्ना मोटी जाति का होता है उसका छिलका क्योंकि कड़ा होता है इस कारणवश कीटादि का आक्रमण उस पर निष्फल हो जाता है. वास्तव में मोटा छिलका कीटादि से कट नहीं पाता.

गन्ने की खेती करने वाले किसानों की सुविधा के लिये हम गन्ने की उन्नतिशील जातियों की सारणी नीचे देते हैं. जिनमें से ठीक चुनाव करके उपयुक्त स्थान पर बोने से निश्चित हीं गन्ने की खेती सुधरेगी.

कोयम्बटूर नं० २१३ और २१४

यह जाति शीघ्र पक जाती है तथा इसमें कीटादि भी नहीं लग पाते. इसका उपयोग यह भी है कि बाजार में मांग के समय जल्दी पकने के कारण दी जा सकती है. नं० २१३ का छिलका क्योंकि मोटा होता है इस कारण इसे जंगली जानवर आदि भी अधिक हानि नहीं पहुंचा पाते वैसे इसकी उपज नं० २१४ से अधिक देर में होती है.

इन उन्नतिशील कोयम्बटूर की जातियों में कोयम्बटूर नं० २३४, कोयम्बटूर नं० २३७, कोयम्बटूर नं० २८२, कोयम्बटूर नं० २६०, कोयम्बटूर नं० ३२०, तथा कोयम्बटूर नं० ४२१ भी अत्याधिक लाभदायक हैं.

इनमें से किसी भी जाति में फनगी एंव दीमक जैसे कीटाणु नहीं लग पाते इस कारण से यह अधिक सुरक्षित जातियां हैं. वैसे तो इन जातियों में कोयम्बटूर नं० २६० की उपज, और जातियों से लग भग अच्छी होती है किन्तु नवीनतम प्रयोग से पता लगा है कि कोयम्बटूर नं० ४२१ की पैदावार आज सबसे अच्छी होती है.

वैसे तो चूसने वाली जातियों में आसाम का सफेद पोंड़ा भी अच्छा रसयुक्त होता है किन्तु इसकी खेती अच्छी खाद देने से परिश्रम तथा विशेष स्थानों पर ही की जा सकती है अत. यह अति सर्वसाधारण के लिये कभी भी लाभ कर सिद्ध नहीं हो पाई है. यह देखते हुए इस जाति के गन्ने की खेती करने की सलाह नहीं दी जा सकती.

मक्का के बीज—

जिस प्रकार गेहूँ, गन्ने आदि के उन्नतिशील बीज तैयार किए गए इसी प्रकार अन्य अनाज के साथ मक्का के बीज भी तैयार किये गए हैं. प्रयोगों के द्वारा इनकी उत्पादन शक्ति का पता लगते ही कुछ स्थानों के किसानों ने इन बीजों को अपनाया है, किन्तु अभी भी जितना इन्हें अपनाना चाहिए उतना नहीं हो पाया है.

मक्का जातियों की दृष्टि से दो प्रकार की होती है एक देशी तथा दूसरी विदेशी. देशी मक्का जौनपुरी ही प्रसिद्ध है. वैसे मक्का में जो उन्नतिशील जातियां तैयार की गई हैं, वे बहुत ही उपयोगी हैं. विदेशी मक्का के बीज भी भारत में

कहीं कहीं बोकर देखे गए हैं जिनका भुट्टा अच्छा आता है यह अधिकतर शौकीन लोगों ने अभी तक अपने छोटे छोटे बाग बागीचों में ही बोकर देखे हैं. इसकी बहुत अधिक देख रेख करनी होती है. तब कहीं इसके कुछ पौधे ठीक रह कर फल पाते हैं. जहां इसकी देख रेख में तनिक भी कमी रह जाती है वहां यह नहीं फल पाती. इस कारण से अभी तक यह उपयोगी नहीं हो पाई है. अब मक्का के कुछ उन्नति शील बीजों की विशेषताएं देखनी चाहिएं जिससे कि सर्व साधारण को लाभ हो सके.

मक्का नं० ६—मक्का की यह जाति शीघ्र ही पक जाने वाली जाति है. इसके पकने में कम से कम सत्तर दिन तथा अधिक अधिक से अधिक नव्वे दिन तक ही लगते हैं. इसका दाना अधिक नहीं होता वरन् मंझली मोटाई का होता है तथा इसका रंग बिलकुल हल्दी सा गहरा पीला होता है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ तीस मन तक पाई गई है.

मक्का नं० १०— नं० १० की मक्का नं० ६ की मक्का से पकने में कुछ अधिक समय लेती है. अर्थात यह कम से कम नव्वे तथा अधिक से अधिक सौ दिन में जाकर पकती है. दाना इस मक्का का भी मंझला- मोटा अर्थात नं० ६ की मक्का के बराबर ही होता है, किन्तु इसका रंग पीला ना होकर दूधिया सफेद सा होता है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ पैंतिस मन तक पाई गई है.

मक्का नं० १२—मक्का की यह जाति भी शीघ्र नहीं पकती वरन् नं० १० की भांति ही पकने में नव्वे से सौ दिन लगा ही

चना डी ८– यह गुलाबी रंग का होता है तथा भुनाने के लिए ठीक है. चना–ई० बी०–२८– वैसे तो यह बहुत ही उच्चकोटि की जाति है किन्तु उगरा (विल्ट) रोग से यह नहीं बच पाती वह इसे शीघ्र लग जाता है. वैसे आज कल और भी उन्नतिशील ऐसी जातियां निकालने का प्रयास किया जा रहा है जिनमे विल्ट की बीमारी न लगे तथा चना मोटा हो. अर्थात जाति भी अच्छी हो और साथ ही रोग ग्रसित भी न हो पाए

दालों के बीज—

दालों का प्रयोग भी हमारे देश में किसी भी हालत में कम नहीं है. यही विचार कर यहां के कृषि विशेषज्ञों ने दाल की भी उन्नतिशील जातियां उत्पन्न की हैं. जो नीचे दी जाती है

मूंग—दालों में मूंग की दाल पर्याप्त प्रयोग होती है. इसकी दो जातियां होती हैं. एक तो शीघ्र पकने वाली तथा दूसरी देर से पकने वाली. उत्तर प्रदेशीय कृषि विभाग ने जो इसकी उन्नतिशील जातियां निकाली हैं उनमे से अच्छी २ जातियां नीचे दी जाती हैं.

मूंग न० १— इस जाति के मूंग का दाना छोटे आकार का होता है पौधा सीधा होता है तथा मूंग के दाने का रंग मैला हरा होता है. यह लग भग दो माह मे पक कर तैयार हो जाता है तथा इसकी पैदावार चार मन प्रति एकड़ तक हो जाती है.

मूग नं० २— इस जाति के मूंग का बीज मंझले आकार का होता है अर्थात न बड़ा न छोटा वरन् बीच का इसका पौधा सीधे ही स्वभाव का ही होता है. बीज का रग मैला हरा होता है.

इसकी उपज लगभग दो माह तक पक कर तैयार हो जाती है. इसकी पैदावार मूंग नं० १ से कुछ कम रहती है अर्थात तीन मन प्रति एकड़ तक हो जाती है.

मूंग नं० ५— वीज का आकार इस जाति के मूंग का भी मंझला ही होता है पौधे का स्वभाव सीधा होता है. तथा वीज का रंग मैला हरा होता है. इसकी उपज के पकने के समय भी दो माह ही है. इस वीज की पैदावार शेष सभी वीजों से अच्छी होती है. प्रति एकड़ पांच मन तक पाई गई है.

मूंग नं० ८— मूंग का वीज भी आकार में मंझला डील का होता है. इसके वीज का रंग हल्का वादामी होता है. पौधे का स्वभाव सीधा होता है. उपज लगभग चार मन प्रति एकड़ तक उतरती है.

मूंग नं० २३— मूंग की यह जाति देर से पकने वाली जाति है. इसके वीज का आकार मंझला होता है तथा रंग गहरा या काला हरा होता है पौधा स्वभाव से घना और सीधा होता है. इसकी फसल को पकने में लग भग तीन माह का समय लगता है. उपज इसकी भी चार मन प्रति एकड़ के लग-भग ही उतरती है. इनके अतिरिक्त मध्य प्रदेशीय कृषि-विभाग ने भी मूंग की कुछ और उन्नति प्राप्त जातियां उत्पन्न की हैं. उन मे से कुछ नीचे दी जाती हैं इन जातियों में कोपर गांव ई० वी० ३ और ई० वी० ६ ऐसी जातियां हैं जो शीघ्र पकती हैं. जलगांव एक ऐसी जाति है जो मंझोल पकती है. नं० ६ नं० १५ और नं० ३२ ऐसी जातियां हैं जो देर में पक कर तैयार

होती हैं. इन जातियों का थोड़ा हाल हम किसानो की सुविधा के लिए नीचे देते हैं.

कोपर गांव— इसको पकने में लगभग उतना ही समय लगताहै. जितना उत्तर प्रदेश नं० २ में लगता है किन्तु इसका बीज वड़ा और चमकीला होता है वैसे यह जाति जल्दी पकने वाली है. इस जाति के मूंग का बीज मध्य प्रदेश के लिए वड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ है. ई० बी० यह जाति भी शीघ्र पकनेवाली जाति ही है किन्तु इसके बीज का आकार कुछ छोटा होताहै जिसका रंग हरा हरा होता है पकने में लगभग ६५ दिन लग जाते हैं.

ञ० बी० ६— यह जाति भी शीघ्र पकने वाली जातियों में ही है किन्तु पकने में ई० बी० नं० ३ से लग भग एक सप्ताह अधिक ले लेती है इसका बीज वड़ा होता है रंग मे हरा और चमकीला होता है.

ई० बी० १६०— यह जाति वहुत देर से पकने वाली है. इसके में लगभग साढ़े चार माह से भी दो चार दिन अधिक ही लग जाते हैं. बीज इस जाति का भी छोटा और रंग मे हरा होता है. उन्नतिशील बीजों में भी यह देख लेना चाहिए कि कौनसा बीज किस भूमि के उपयुक्त है. वहीं उसकी बुवाई करनी चाहिए. वरना बीज उपयोगी सिद्ध नहीं हो पायगे. उड़द के बीज— उड़द भी मूंग की ही भांति दो प्रकार का होता है. एक तो जल्दी पक जाने वाला तथा दूसरा देरी से पकने वाला उत्तर प्रदेश ने जो इसकी उन्नतिशील जातियां निकाली हैं

उनके बीजों का हाल नीचे दिया जाता है उड़द के उन्नति शील बीजों में उ० प्र० उड़द नं० ४, ५, ११, ६, २१, २२, २६ और ३० सभी बहुत ही अच्छी उपज देने वाले बीज है परन्तु फिर भी हम इन में से भी कुछ छंटी हुई जातियां पृथक पृथक रूप से नीचे देते हैं.

उ० प्र० उड़द नं० ४— इसका बीज मंझली आकार का होता है अर्थात न बड़ा न छोटा. छिलके का रंग काला होता है. इसका पौधा चारों ओर को फैला हुआ सा होता है. लगभग सवा ढाई माह में इसकी फसल पक कर तैयार हो जाती है. पैदावार लगभग चार मन प्रति एकड़ तक हो जाती है.

उ० प्र० उड़द नं० ५— आकार में इसका बीज भी मंझले डील डौल का होता है. पौधा फैलावदार होता है. बीज का रंग काला होता है. इसके पकने में तीन सवा तीन महीने का समय लगता है. इसकी पैदावार अपेक्षाकृत अच्छी होती है अर्थात प्रति एकड़ छः मन तक हो जाती है.

उ० प्र० उड़द नं० १२— इसके बीज का डीलडौल भी मंझले आकार का ही होता है. बीज का रंग काला होता है. फैलावदार होता है. इसके पकने में भी तीन सवा तीन महीने का समय लगता है. इसकी पैदावार की प्रति एकड़ छः मन तक हो जाती है.

उ० प्र० उड़द नं० ३०—आकार मे तो इस जाति का बीज भी मंझला ही होता है किन्तु रंग इसका अन्य जातियों की भाति काला नहीं होता वरन् बादामी होता है. पौधा फैलावदार

जातियों की भांति ही लग भग तीन सेर प्रति एकड़ के अनुमान से बोया जाता है तथा लगभग तीन माह तक ही पक कर तैयार हो जाता है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ बीस मन तक हो जाती है.

बाजरा नं० १८— इसके दाने का आकार भी बाजरा नं १६ के दाने की भांति ही छोटा होता है. बीज बोने का अनुपात तीन सेर प्रति एकड़ है. तथा लगभग तीन माह में पक कर तयार भी हो जाता है. इसकी पैदावार अपेक्षा कृत कुछ कम अर्थात सोलह मन प्रति एकड़ के लगभग हो पाई जाती है. इन उन्नतिशील जातियों का ठीक ठीक लाभ उठाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अपनी भूमि की दृष्टि से अपने क्षेत्र के कृषि -विभाग से ठीक ठीक सलाह से कि कौनसी जाति उस खेत के लिए उपयुक्त है. ऐसा करने से बीज गलत जगह पर नहीं बोया जाता तथा उपयुक्त और लाभप्रद सिद्ध होता है.

जौ के बीज—

यदि अनाज के उपयोग का ठीक प्रकार से विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाय तो यह बात स्वतः ही सिद्ध हो जाएगी कि भारत भर में जितनी खपत गेहूं की है उतनी और किसी भी अन्न की नहीं, और गेहूं के बाद जो सर्वाधिक खपत का क्रम आता है वह जौ पर है. अर्थात गेहूं को छोड़ कर अन्य सभी प्रकार के अनाजों से अधिक मात्रा में जौ प्रयोग मे लाया जाता है जितने भी धार्मिक तथा सामाजिक कृत्य होते हैं उन सभी मे न्यूनाधिक मात्रा में इसका प्रयोग किया जाता है, विदेशों में भी इस का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाता है. कहीं कहीं पर इसे औषधि के

काम में लाया जाता है. राजस्थान में यह सर्वाधिक मात्रा में खाया जाता है. इसकी इतनी खपत को देखते हुए अन्यान्य अनाजों की भांति जौ की उन्नतिशील जातियां तैयार करना भी आवश्यक समझा गया है. उन्हीं में से कुछ उन्नतिशील जातियां नीचे दी जाती हैं.

जौ पूसा नं० २१—यह जाति पूसा में परीक्षण करके तैयार की गई है. यह सबसे अधिक प्रचलित भी है तथा इसी की ख्याति भी सर्वाधिक है. इसकी उपज लगभग सभी प्रान्तों में अच्छी हो जाती है. पूसा के परीक्षण कृषि क्षेत्रों पर इसकी पैदावार अड़तीस मन प्रति एकड़ तक देखी गई है. पूसा के अलावा उत्तर प्रदेशीय कृषि विभाग ने भी इसकी कुछ और जातियां तैयार की हैं. जिनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं.

कानपुर जौ नं० २५५, २५६— ये दो ऐसी उन्नतिशील जातियां हैं जिनमें सींकुर होता है. यह टूंडदार जातियां भी कहलाती हैं.

कानपुर जौ नं० ३०४—इस जाति मे यह विशेषता है कि इसमें न तो सींकुर ही होते हैं न भूसी ही निकलती है अर्थात विना भूसी तथा विना टूंडदार होती है.

कानपुर जौ नं० २९२— यह ऐसी जाति है जिसमें सींकुर तो होते हैं किन्तु भूसी नहीं निकलती अर्थात विना भूसी के होती है किन्तु टुंडदार होती है.

कानपुर जौ नं० २५१— इन सारी उन्नतिशील जातियों में उक्त जाति ही सर्वाधिक ख्याति प्राप्त जाति है. इस जाति के बीज में रस और मीठे की मात्रा अधिक होने से यह अत्यन्त

पौष्टिक होती है बीज भी बड़ा और भरवल होता है. उत्तर प्रदेश में जहां जहां जिस जिस कृषि क्षेत्र पर इस जाति के बीजों का निरीक्षण परीक्षण किया गया है इसकी पैदावार लगभग ३५ मन प्रति एकड़ तक प्राप्त हुई है. इस कारण से यह जाति अत्यन्त उपयोगी है तथा इसकी बढ़ोत्तरी करना प्रत्येक किसान का कर्त्तव्य है. वैसे तो जौ की अन्य उन्नतिशील जातियां भी अच्छी अच्छी ही है किन्तु कानपुर जौ नं० २५१ की पैदावार हर किसान को अधिक से अधिक इसलिए भी करनी चाहिए कि अभी इसकी मांग इतनी अधिक है जितना भण्डारों में बीज भी नहीं है. अतः यदि इसकी पैदावार बीज प्राप्त करने के लिए भी की जाय तो भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी. वैसे बीजों के बारे मे कृषि अनुसन्धान वेत्ताओं के द्वारा भिन्न भिन्न स्थानों पर और भी उन्नतिशील परीक्षण किए जा रहे है जो शायद और भी उन्नतिशील जातियां शीघ्र ही सामने रखे.

चने के बीज—

चने की खपत भी सारे भारत मे प्रचुर मात्रा मे होती है. कच्चा रहते यह साग-भाजी के काम मे आता है तथा पक जाने के पश्चात अनाज के रूप में प्रयोग मे लाया जाता है. अधिक उपयोगी होने के कारण भारत के सभी क्षेत्रों मे इसकी पर्याप्त खेती की जाती है. चना विशेषत. तीन प्रकार का होता है.

देशी चना— वैसे तो देशी चने की अनेकानेक जातियां है किन्तु पृथक करने से कोई लाभ नहीं अत: इन सब को मिला दिया गया है देशी चनों के दानो का रंग साधारणत काला,

लाल तथा पीला होता है. यदि जगह ठीक देख कर भूमि के अनुसार ही इसकी खेती की जाय तो पैदावार अच्छी होती है.

काबुली चना—काबुली चना दो प्रकार का होता है. एक का दाना आकार में देशी चने से लगभग दुगना होता है तथा रंग सफेद होता है. दूसरे का दाना तो देशी चने के लगभग बराबर ही होता है किन्तु रंग उसका भी सफेद ही होता है.

उन्नतिशील चना—चने के अच्छे उन्नतिशील बीज तैयार करने के लिए पूसा में परीक्षण किया गया जिसमें अनेक प्रकार के अच्छे बीज तैयार किए गए. इनमें—

पूसा चना नं० १७–२५ और ५८—इस समय अधिक प्रचलित हो रहे हैं. क्योंकि जहां इसका दाना भरा हुआ और सजल होता है वहां इनकी पैदावार भी बहुत अच्छी होती है. इन जातियों के अतिरिक्त कुछ उन्नतिशील जातियां मध्य प्रदेश के लिए वहां के अनुसन्धान विशेषज्ञों ने और निकाली हैं जो वहां की भूमि के उपयुक्त हैं. चना–नं० १०–चना नं०–१६२ चना–ए· १–८ (ई बी–२८+ वर्मा) चना आधार ताल नं०–५ चना–ढाका, और चना– वारंगल– वैसे इन उन्नति शील बीजों और कुछ अन्य बीजों के बारे में डा० जी० एस० भाटिया वनस्पति शास्त्री· मध्य प्रदेश के कथनानुसार निम्न बातें ध्यान में रखने योग्य हैं. चना आधार ताल नं० ५– उत्तरी जिलों के लिए योग्य है चना नं० १० (वारंगल) नागपुर क्षेत्र के योग्य है, उगरा (विल्ट) रोग कम लगता है.

होता है पकने में ही लगभग तीन सवा तीन महीने लगते हैं तथा पैदावार प्रति एकड़ लगभग चार मन हो जाती है. उत्तर प्रदेश की भांति मध्य प्रदेश कृषि विभाग के भी उड़द की कुछ उन्नतिप्राप्त जातियां निकली हैं. जिनमे से कुछ नीचे दी जाती हैं. मध्य प्रदेश उड़द नं० ५५, ५७, ६३, जलगांव, इन्दौर ३० बी १८ मध्य प्रदेश की उन्नतिशील जातियां मानी गई हैं. कुछ प्रमुख जातियों का हाल नीचे पृथक पृथक दिया जाता है.

मध्य प्रदेश उड़द नं० ५५—यह जाति नागपुर के कृषि क्षेत्रों के लिए उत्तम रही है इसके पकने मे लगभग पौने तीन माह का समय लग जाता है.

मध्य प्रदेश उड़द नं० ६३—इसके पकने मे भी लगभग पौने तीन माह का ही समय लगता है. यह वरार की ओर के कृषि क्षेत्रों के योग्य है.

मध्य प्रदेश उड़द ई० बी० ११०— इसकी उपज मध्य प्रदेश मे कहीं भी की जा सकती है इसके पकने में पूरे तीन महीने का समय लग जाता है.

उड़द के उन्नतिशील बीजों को भी वहीं बोना चाहिए जहां की भूमि उसके उपयुक्त है अन्यथा कोई लाभ नहीं होगा.

अरहर के बीज—

यदि देखा जाये तो भारत भर में उड़द और मूंग के पश्चात अरहर की दाल का ही नम्बर आता है. चावल खाने वाले अधिकतर अरहर की दाल के साथ खाना पसन्द करते हैं. दिल्ली और उत्तर प्रदेश की जनता इसका प्रचुर

मात्रा में प्रयोग करती है. इस कारण इसकी जातियों में भी सुधार करके उत्तर प्रदेशीय कृषि विभाग ने अनुसन्धान के द्वारा इसकी अनेकानेक उन्नतिशील जातियां उत्पन्न की हैं इनमें से उ० प्र० अरहर नम्बर १७, २३, ३१, ५१, मुख्य रूप में प्रचलित हैं. इनकी पैदावार वहुत से कृषि क्षेत्रों पर देखी गई है और उस दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हुई है. इसके अतिरिक्त कृषि विभाग ने वहुत सी और उन्नतिशील जातियां उत्पन्न की हैं जो पैदावार की दृष्टि से अच्छी होने के साथ साथ स्वाद की दृष्टि से भी जनता द्वारा पर्याप्त अपनाई गई हैं. इनमें से कानपुर अरहर नम्बर ४ वहुत ही जल्दी पकने वाली जाति है और जल्दी पकने के कारण पाला इसे कोई हानि नहीं पहुँचा पाता. उ० प्र० सरकार ने अरहर की जो और उन्नतिशील जातियां उत्पन्न की हैं उनमें उ० प्र० अरहर नम्बर ६, ३५, ६१, ६४, १०३, १०५, १११, ११२, ११६, १३१, और ६६३ की जो जातियां किसानों के सामने रखी हैं वह हर दृष्टी से उपयोगी सिद्ध हुई हैं. इनका दाना मोटा होता है तथा पकने के पश्चात इनका स्वाद मिठास लिए हुए होता है. इन सव वातों को देखते हुए हमारे किसान भाइयों को इसकी पैदावार अधिक से अधिक वढ़ानी चाहिए. अरहर की इन उन्नतिशील जातियों में से दो प्रमुख जातियां हम नीचे देते हैं जो हर दृष्टि से अच्छी सिद्ध हुई हैं.

उ० प्र० अरहर नं० ४—इस जाति के वीज का रंग मैला सफेद होता है. वीज का आकार छोटा होता है यह जाति शीघ्र पकने वाली जातियों में से एक है. वो देने के पश्चात इसके पकने में लगभग साढे पांच माह की आवश्यकता होती है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ १८ मन के लगभग वैठती है.

उ० प्र० अरहर नं० १७—इस जाति का बीज न अधिक छोटा होता है और न ही अधिक बड़ा वरन् मंझले आकार का होता है. इसके बीज का रग हलका भूरा होता है और पकने का समय दर्मियानी होता है. अर्थात इसकी फसल लग भग पौने नौ माह में पक कर तैयार होती है. इसकी पैदावार ३६ मन प्रति एकड़ तक होने के कारण बहुत अच्छी मानी गई है-

उत्तर प्रदेश अरहर नं० २३— इस जाति का बीज लग भग सभी उन्नति शील जातियों से अच्छा माना गया है क्योंकि इसकी पैदावार प्रति एकड़ ४० मन तक पाई गई है. इसके बीज का रंग काला तथा आकार में बड़ा होता है. इसका पकने का समय भी लग भग पौने नौ माह है.

उत्तर प्रदेश अरहर नं० ३१— इस जाति का रंग भी मैला सफेद होता है तथा डील डौल में इसका बीज मंझला होता है इसकी फसल देर में पकती है अर्थात सवा नौ माह के लगभग समय ले लेती है, इसकी पैदावार प्रति एकड़ ३० मन तक पाई गई है.

उत्तर प्रदेश अरहर नं० ५१— अरहर के इस बीज का रंग हलका भूरा होता है और आकार में मैला होता है. पकने मे यह भी विलम्ब से ही पकती है अर्थात लग भग सवा नौ माह ले लेती है.

अरहर के बीज भी जाति के अनुसार अन्य बीजों की भांति ऐसी भूमि पर बोने चाहिए जहाँ पर उनकी खेती ठीक प्रकार से हो सके.

तूअर के बीज—

सन् १९४३ और ४८ के बीच में मध्यप्रदेश कृषिविभाग द्वारा उस क्षेत्र में जो अनुसन्धान कार्य किया गया उसकी रिपोर्ट के अनुसार तूअर की जो उन्नतिशील जातियां उत्पन्न की गईं वे नीचे दी जाती हैं:—मध्य प्रदेश तूअर नम्बर १३१, १४८, १७५, क्रास ८६ (एन० पी० ८०× ई० बी० ३) क्रास १५८, ४ (ई० बी० ३+ ई० बी० ३८) हैदराबाद और निजामाबाद. इनमें से मुख्य मुख्य का कुछ हाल नीचे दिया जाता है.

मध्य प्रदेश तूअर नं० १४८— इस जाति की तूअर का बीज लाल होता है और मध्य प्रदेश में होने वाली अन्य जातियों से इसकी पैदावार कहीं अच्छी है.

हैदराबाद तूअर — इस जाति का बीज रंग में सफेद होता है और यह बरार के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हुइ है इसमें एक विशेषता और है कि इसमें उगरा नाम की बीमारी अधिक नहीं लग पाती.

तूअर क्रास ८६ (एन० पी० ८०×ई० बी० ३)—इस जाति के बीज मध्यप्रदेश के उत्तरी कृषि क्षेत्रों पर अधिक उपयोगी सिद्ध हुये हैं. इसके बीज का रंग सफेद होता है.

तूअर ई० बी० ३८—इस जाति के बीज में भी यह विशेषता है कि इसे उगरा (विल्ट) की बीमारी अधिक मात्रा में नहीं लग पाती इसके बीज का रंग लाल होता है, तूअर की ये सभी उन्नतिशील जातियां लग भग ६ माह में पक कर तैयार हो जाती हैं.

मोठ के बीज—

मध्य प्रदेश सरकारी कृषि अनुसन्धान विभाग द्वारा मोठ की जो उन्नति शील जातियां पिछले दस वर्षों में उत्पन्न की गई हैं उनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं.

मध्य प्रदेश मौठ नं० ८७, ८८. १३५ दौर जगुदन, और अलवार अधिक प्रसिद्ध बीज माने जाते हैं. जहां जहां इन के द्वारा खेती की गई वहां वहां ही अच्छा लाभ प्राप्त हुआ.

मध्य प्रदेश मौठ नं० ८८—इस जाति की मौठ पकने में लग भग चार माह का समय लेती है. नागपुर के जो कृषि क्षेत्र हैं वहां पर यह अधिक उपयोगी रही.

तिल के बीज—

तिल कई प्रकार का होता है लाल, सफेद, काला और बादामी. इनमें से लाल और बादामी रंग का तिल अधिकतर दक्षिण भारत में उपजाया जाता है. उत्तरप्रदेश की सरकार को कृषि विभाग ने इन्हीं जातियों में से कुछ सुधार करके उन्नति शील जातियां उत्पन्न की हैं. जिनका संक्षिप्त हाल नीचे दिया जाता है.

उ० प्र० तिल नं० १—इस जाति के तिल का बीज सफेद होता है इसमें तेल की मात्रा ४४.७ प्रतिशत के अनुपात से रहती है. पैदावार में यह ८ मन प्रति एकड़ के लगभग बैठता है.

उ० प्र० तिल नं० ६—तिल की इस जाति का बीज भी सफेद ही होता है किन्तु इसमें तेल की मात्रा ४६.२ प्रतिशत के अनु-

पात से होती है. इसकी पैदावार एक एकड़ में ६ मन के लग भग हो जाती है.

उ० प्र० तिल नं० ८— इस के बीज का रंग भी सफेद होता है इसमें तेल की मात्रा ४०.८ प्रतिशत के अनुपात से होती है तथा पैदावार एक एकड़ में ८ मन के लगभग बैठ जाती है.

उ० प्र० तिल नं० ४७— का बीज भी सफेद न होकर बादामी रंग का होता है जिस में तेल का परिमाण ४९.७ प्रति-शत के लग भग बैठता है पैदावार में यह लग भग ८ मन प्रति एकड़ उतरता है.

उत्तर प्रदेश तिल नं ४८— का रंग बादामी अथवा सफेद न हो कर काला होता है तेल की मात्रा इसमें लगभग ४९.० प्रति-शत के अनुपात से होती है और पैदावार प्रति एकड़ लग भग ८ मन हो जाती है.

मूंगफली के बीज—

उत्तर प्रदेशीय कृषि क्षेत्रों पर वैज्ञानिक रीत्यानुसार अनु-संधान करके मूँगफली की भी उन्नति शील जातियां उत्पन्न की गई हैं जिनमें से कुछ प्रमुख जातियों का विवरण और उनकी विशेषतायें संक्षेप में नीचे दिये जाते हैं.

उ० प्र० नं० १८— यह एक ऐसी जाति है जिसके बीज का रंग गुलाबी होता है बीज आकार में काला होता है इसके पौने का स्वभाव सीधा रहने वाला होता है पकने में लग भग सवा चार माह का समय लगता है. इसकी फलियों की पैदावार एक

एकड़ में लगभग २५ मन होती है छिलका लगभग २६.६ प्रतिशत के अनुपात से निकल जाता है अर्थात बीज ७३.४ प्रतिशत के अनुपात से बचता है इसके बीज में तेल की मात्रा २६,७ प्रतिशत के अनुपात से होती है.

उ० प्र० नं० २३—इस जाति के आकार में मंझला होता है तथा रंग गुलाबी होता है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ २७ मन के लगभग हो जाती है. इसमें से ३१.० प्रतिशत के अनुपात से छिलका निकल जाता है बीज ६६.० प्रतिशत के अनुपात के लगभग बैठते हैं इसके बीज में तेल की मात्रा लगभग ४६.२ प्रतिशत से होती है. पौधा सीधा ही उगता है तथा फसल लग भग सवा चार माह में पक कर तैयार हो जाती है.

उ० प्र० नं० २४०— इस जाति का बीज भी आकार में मझला और रंग से गुलाबी होता है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ २४ मन के लग भग बैठती हैं जिसमें से २८. ५ प्रतिशत की औसत से छिलका निकल जाता है इस प्रकार बीज लगभग ७१.५ प्रतिशत की औसत में बैठता है इस के बीज मे तेल की मात्रा लगभग ४८.० प्रतिशत के बैठती है. इसकी उपज को पकने मे लगभ ग सवा चार माह लगते हैं

उ० प्र० मूंगफली न० २५—इस जाति के बीज का आकार भी मंझला ही होता है तथा रंग गुलाबी होता है. इसका पौधा सीधा न होकर फैलावदार होता है उपज प्रति एकड़ ३६ मन के लगभग हो जाती है जिन मे से छिलका २८.७ प्रतिशत के अनुपात से निकल जाता है और बीज ७१.३ प्रतिशत बचता है जिससे

तेल की मात्रा ४८.७ के प्रतिशत के लगभग होती है. इसकी फसल के तैयार होने में साढ़े चार, पौने पांच महीने लगते हैं.

अलसी के बीज—

इनके बीजों से तेल भी निकाला जाता है और जो रेशे बचते हैं उन्हें कपड़े के प्रयोग में भी लाया जाता है. उत्तर प्रदेशीय सरकारी कृषि विभाग ने इसकी उन्नतिशील जातियां उत्पन्न की हैं जो नीचे दी जाती हैं.

उ० प्र० अलसी नं० ४७७—इसके बीज का रंग बादामी होता है तथा आकार छोटा होता है इसमें तेल की मात्रा लगभग ४०.५ प्रतिशत के बैठती है. फसल के पकने में लगभग साढ़े पांच महीने लगते हैं. यह २० मन प्रति एकड़ तक की पैदावार देती है.

उ० प्र० अलसी नं० ४८३—इसके बीज का रंग बादामी होता है तथा आकार छोटा होता है. इसमें तेल की मात्रा लगभग ३९.८ प्रतिशत होती है. फसल को पकने में लगभग साढ़े पांच महीने लगते हैं. इसकी पैदावार २२ मन प्रति एकड़ तक हो जाती है.

उ० प्र० अलसी नं० ११५०—इसके बीज का रग बादामी और आकार में बड़ा होता है. जिसमें तेल ३८.८ प्रतिशत के लगभग होता है. फसल लगभग पांच महीने में पक कर तैयार हो जाती है, इसकी पैदावार १३ मन प्रति एकड़ तक उतरती है.

उ० प्र० अलसी नं० ११९३—इसके बीज का आकार अन्य सभी जातियों से कुछ बड़ा होता है किन्तु रग बादामी ही होता है

जिसमें तेल की मात्रा ४०.७ प्रतिशत होती है. इसकी फसल पांच सवा पांच महीने में पक कर तैयार हो जाती है. तथा पैदावार लगभग १७ मन प्रति एकड़ तक वैठनी है.

उ० प्र० अलसी नं० ११६६—इसके वीज का भी आकार वडा होता है किन्तु रग मे कोई अन्तर नहीं होता वह वादामी ही होता है. इस में तेल की मात्रा लगभग ४४.२ प्रतिशत होती है. इसकी फसल के पकने में लगभग पांच सवा पांच माह का समय लगता है. इस की पैदावार भी लगभग १७ मन प्रति एकड़ ही वैठती है.

उ० प्र० अलसी नं० १२०६—इसके वीज का आकार वड़ा होता है, साथ ही इसके वीज के रंग में भी भारी अन्तर होता है. वीज वादामी रंग का न होकर दूधिया सफेद होता है. इसके वीज मे तेल की मात्रा लगभग ४३.१ प्रतिशत होती है. इसके पकने मे लगभग पांच सवा पांच महीने का समय लगता है.

इन जातियों के अतिरिक्त पैदावार की दृष्टि से पूसा अलसी नं० ११, १२, १२१ और १२४ भी अच्छी मानी गई हैं. जहां की जिस भूमि पर जो बीज ठीक हो वहीं पर उसे वोना चाहिए.

सरसों के वीज—

भारत में तो शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति हो जो सरसों के उपयोगों को न जानता हो. इसकी खेती भारत भर में प्रचुरता से की जाती है, इस कारण से उत्तर प्रदेशीय कृपि-विभाग ने इसके कुछ उन्नतिशील वीज उत्पन्न किये हैं. जिनमें से उत्तर प्रदेश सरसों न० १६ और ३० पर्याप्त मात्रा में उपजाई जाती हैं. इस की कुछ अन्य जातियां भी हैं जिनका हाल दिया जाता है.

उतर प्रदेश सरसों नं० २—इसके बीज का रंग भूरा होता है तथा आकार मंझला होता है. इसमें तेल की मात्रा ४१.१ प्रतिशत होती है. इसके पकने में लगभग पौने पांच माह का समय लगता है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ लगभग ११ मन होती है.

उ० प्र० सरसों नं० ३–इसके बीज का आकार मंझला तथा रंग भूरा काला होता है. इसमें तेल की मात्रा लगभग ३६.६ प्रतिशत होती है. इसके पकने में लगभग पौने पांच महीने लगते हैं तथा पैदावार लगभग २० मन प्रति एकड़ तक हो जाती है.

उ० प्र० सरसों नं० ५–इसके बीज का रंग भूरा काला होता है तथा आकार छोटा होता है. इसमें तेल की मात्रा लगभग ३७.२ प्रतिशत होती है. इसके पकने में लगभग सवा चार महीने का समय लगता है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ १६ मन तक हो जाती है.

उ० प्र० सरसों नं० ९—इसके बीज का आकार मझला तथा रंग भूरा काला ही होता है. इसके बीज में तेल की मात्रा लगभग ३८.९ प्रतिशत होती है. इसके पकने में सवा पांच महीने तक का समय लगता है क्योंकि सरसों की यह जाति देर से पकने वाली जाति है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ १७ मन तक हो जाती है..

उ० प्र० सरसों, नं० ११—इसके बीज का रंग भी भूरा काला ही होता है और आकार में मंझला होता है इसमें तेल की मात्रा लगभग ३६.२ प्रतिशत होती है. इसके पकने में लगभग पौने पांच महीने का समय लगता है. पैदावार की दृष्टि से यह

जाति सर्वोत्तम मानी गई है क्योंकि इसकी पैदावार प्रति एकड़ २६ मन तक पाई गई है.

धान के बीज

मध्य भारत में धान की उपज बढ़ाने के लिए सन् १९३१ में कुछ अनुसन्धान कर के वहां के किसानों को कुछ ऐसी जातियों के बीज दिये गये थे जो उन्नतिशील थे. उनसे खेती में पर्याप्त सुधार भी किया गया था. मध्य भारत की सन् ३२ की रिपोर्ट के अनुसार वहां पर लगभग सात सौ जाति का धान बोया जाता था. इस बारे में विचार किया गया क्योंकि इतनी अधिक जातियों को सुरक्षित रखना बहुत कठिन है और आगे चलकर पहचानना भी दुष्कर होगा. अत. बड़े ही परिश्रम के साथ इन सब जातियों मे से १७ सर्वोपयोगी जातियां पृथक निकाली गईं. लगभग दस वर्षों के सतत प्रयास के पश्चात इनमे से भी छटनी करके अत्यन्त अच्छी उपज देने वाली पांच जातियां निकाली गईं हैं.

इन अनुसन्धानों और संकरण के परिणाम स्वरूप कुछ निम्नलिखित जातियां अच्छी पाई गई हैं. इन जातियों को बोकर यदि खेती की जाय तो धान की उपज निस्सन्देह बहुत ही उन्नति प्राप्त कर सकती है.

रा. ३, सूल्ट्, गुरमटिया, १७ न० नुनगी, ११६ न० भोंदू परेवा, रा. ७, भाजन.

इन उपरिलिखित उन्नतिशील बीजों मे भी नं० ११६ भोंदू परेवा बहुत ही अच्छी जाति का माना गया है तथा लगभग सारी

ही मंमली जातियों से अच्छी उपज देने वाला है. इसका अधिकाधिक उपयोग करना धान की खेती को अधिकाधिक उन्नतिशील बनाना है.

धान के बीज में लाल चावल को कभी भी नहीं मिलने देना चाहिए. यह जंगली धान होता है जिसे करगा भी कहते हैं. खेतों में जब यह उग आता है तब इसे बालें आने तक नहीं पहचाना जा सकता क्योंकि इसकी डण्डी का रंग भी धान की डण्डियों का सा ही होता है, किन्तु इसकी बालों में लम्बे कसूल होते हैं, धान काले रंग के तथा चावल लाल रंग के होते हैं. इन्हें पहचानते ही खेत में से तत्काल ही हटा देना चाहिए वरना फिर उनका एकत्रित करना नितान्त असम्भव हो जाता है क्योंकि यह चावल बालों के पकने से पूर्व ही झड़ जाता है तथा फिर अपने आप ही पुनः दूने चौगुने वेग से उग कर चावलों की फसल में अनजाने कमी उत्पन्न कर देता है. अतः एक तो यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज बोते समय बीज में लाल धान बिल्कुल भी न हों. फिर उग आने पर पहिचानते ही इस (करगे) की निंदाई द्वारा सफाई कर देनी चाहिए.

वैसे इसके और भी उपाय परिश्रम एवं अनुसन्धान के द्वारा निकाले गए हैं, जिनके द्वारा इस जंगली धान (करगा) से बचाव किया जा सकता है. अनुसन्धान के द्वारा कुछ ऐसी जातियां तैयार की गई हैं जिनके पौधे छोटे होते हैं तथा वे आसानी से पहिचाने भी जा सकते हैं. वैसे इनका रंग भी बैंजनी सा होता है. इसकी जाति का धान तत्काल ही पहिचान लिया जाता है. इस प्रकार हानि से बचाव किया जा सकता है.

इन उन्नतिशील वीजों से लाभ अवश्य ही उठाना चाहिए जिससे कि खेती का सही अर्थों मे लाभ हो सके. इन वीजों के सही प्रयोग के लिए सदा अपने प्रान्त के कृषि विभाग से पूछ-ताछ करते रहना चाहिए, जिससे अन्य प्रकार के अनुसन्धानो का भी ज्ञान प्राप्त होता रहे.

संग्रहालयों में इसका वीज वहुत ही संभाल कर रखना चाहिए. जिससे कि उसे किसी प्रकार की क्षति न होने पाए. वीज सदा ही भिन्न २ जाति का पृथक पृथक रूप से संग्रहीत करना चाहिए, जिससे इसकी जातियां आपस में मिलने न पाये, अन्यथा उपज अच्छी नहीं होगी तथा वीज की जाति भी विगड़ कर मिश्रित प्रकार की हो जायेगी.

उन्नतिशील धान के वीजों से जहां भी इसकी खेती की गई है, अत्यन्त सफल रही है. यही कारण है कि ५३ ५४ में पर्याप्त चावल भारत के वाजारों मे प्राप्त हुआ और हो रहा है. इस चावल की जहां उपज अच्छी होती है वहां यह चावल खाने मे भी अत्यन्त स्वादिष्ट पाया गया है.

गेहूं के वीज--

अधिकांश अनपढ़ किसान लोग अच्छी खेती नहीं कर पाते क्योंकि वे गेहूं के वही वीज वोने का क्रम चलाये हुए हैं जो किसी कारण से उतर चुका है. नये उन्नतिशील वीज का प्रयोग वे नहीं करते. पूसा की ओर से सरकार ने गेहूं के ऐसे वीजों का भंडार एकत्रित किया है जो कि अत्यधिक उन्नतिशील सिद्ध हुए हैं. ये गेहूं वहुत ही वैज्ञानिक ढंग से उगाये गए खेत का वीज

होता है जिसे सरकार के भंडारों में बहुत ही अच्छे २ वैज्ञानिक ढंगों से संग्रहीत किया जाता है. विभिन्न प्रकार की मिट्टी एवं जलवायु के लिये इस गेहूँ के अलग अलग क्रम बने हैं भारत में खेती के लिए इनमें से पूसा गेहूँ नं० ४, पूसा गेहूँ नं० १२, पूसा गेहूँ नं० ५२, पूसा गेहूँ नं० ५४ तथा कानपुर गेहूँ नं० १३ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं.

इन उन्नतिशील बीजों का प्रयोग करके भारत की गेहूं की खेती वास्तव में बहुत अच्छी हो सकती है. जो लोग इन सब की ओर ध्यान नहीं देते, वे अपनी तो हानि करते ही हैं साथ ही राष्ट्र के साथ भी एक बड़ा द्रोह करते हैं. राष्ट्र हित तथा अपने लाभ को देखते हुए हर किसान को गेहूँ की खेती करने के लिये यह उन्नतिशील बीज ही प्रयोग में लाने चाहिए जिससे कि इस की जाति का सुधार हो और मोटा तथा लाभदायक अन्न उत्पन्न हो सके.

किसान प्रायः गेहूँ के साथ कुसुम, सरसों तथा सेहुँआ बोते हैं और ठीक भी है, इसके बिना उनका काम नहीं चल पाता. इस के लिए दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है. वह यह है कि जितना गेहूँ बीज के लिये रखना हो उसकी बुवाई पृथक करें जिसमें उसके अतिरिक्त और कुछ भी न बोया जाये और यदि बोया ही जाये तो उसकी कटाई पहले हो जाये जिससे कि बीज में अन्य किसी प्रकार का भी दाना मिश्रित न होने पाये. खेती परिश्रम का प्रतीक होती है. अतः खेती करने वाले को परिश्रम से न घबरा कर बीजों की शुद्धता को स्थिर रखना चाहिए. बीज जितना भी अधिक शुद्ध रक्खा जायेगा, खेती भी उतनी अधिक

सुधरेगी ही साथ ही साथ पैदावार भी उतनी ही अधिक वढती चली जायेगी.

उत्तर प्रदेश की सरकार ने सन् ४१ में कुछ क्षेत्रों में खेती करके उन्नतिशील बीजों के परिणाम देखे थे. उस समय पूसा नं० ४ की उपज कई स्थानों पर साढ़े पैंतीस मन प्रति एकड़ तक प्राप्त हुई थी. तभी से यह बात सिद्ध हुई कि पूसा नं० ४ के गेहूँ का बीज बहुत अच्छा है तथा किसानों को उसे प्रयोग में लाने से अधिकतम लाभ हो सकता है.

पूसा नं० ४ का जो गेहूँ होता है उसमें सींकुर नहीं होते, बाल पकने पर श्वेत होती है, दाना सुन्दर सुडौल और मोटा होता है. एक बात अवश्य है कि सींकुर न होने के कारण इसे जानवरों से बड़ा भय रहता है. जहां पर चिड़ियां अधिक होती हैं, वहां पर वे इसका दाना निकाल कर खा जाती हैं तथा जहां पर चौपाये होते हैं वहां पर वे इसे कुछ चर जाते हैं तथा कुछ नष्ट कर जाते हैं. इनसे इनका पर्याप्त बचाव रखने की बहुत बड़ी आवश्यकता है अन्यथा पका पकाया बीज नष्ट हो जाता है.

साग-भाजी के बीज—

जितने भी साग भाजी के बीज प्रयोग में लाये जाते हैं उनके लिये ध्यान में रखना चाहिए कि वे पूरे स्वस्थ हों, यदि बीज स्वस्थ होंगे तो वाड़ी स्वस्थ नहीं लगाई जा सकती और परिश्रम लगभग व्यर्थ ही जायेगा.

वास्तव में साग भाजी के बीज जितने ही नये होंगे उतनी ही अच्छी फसल देंगे और जितने पुराने होंगे उतनी ही खराब फसल

देंगे. अतः बीजों का नया होना अत्यन्त आवश्यक है. इसका सबसे बड़ा कारण यह भी है कि साग-भाजी के बीजों में जो उत्पादन शक्ति होती है, वह अधिक काल तक स्थिर नहीं रह पाती वरन् क्षीण हो जाती है.

कुछ साग भाजी के बीजों को छोड़ कर लगभग सारे बीजों की यह शक्ति ३ वर्ष के बाद प्रायः नष्ट हो जाती है तत्पश्चात यह बीज बोने योग्य नहीं रहते. किसानों की सुविधा के लिये तरकारी के बीजों की उत्पादन शक्ति की संक्षिप्त सारिणी नीचे दी जाती है-

प्याज तथा लहसुन–१ वर्ष.
पालक, गाजर, मूली, मक्का, मिर्च, मटर—२ वर्ष.
सेम, गोभी, भिण्डी, टमाटर और ककड़ी—३ वर्ष.
घिया, चुकन्दर और शलजम—४ वर्ष.
खरबूजा, बैंगन और तरबूज—५ वर्ष.

सदा इनको बोने से पूर्व देख लेना चाहिए कि बीज में कहीं भी कीट आदि व घुन न लगे हों, तथा जिन बीजों को बोया जाय वे पूर्णरूपेण नये, स्वस्थ और रोग रहित हों. जिससे कि फसल बढ़िया और अधिक उत्पन्न हो.



अजवायन

अजवायन का दाना लगभग सरसों के दाने के बराबर हो
है. यह गोल नहीं होता वरन् कुछ कुछ तिकोना सा होता है
इसका पौधा बड़ा विचित्र सा होता है, जिसके पत्ते स्थान स्थान से
कटे हुए और पौधा झाड़दार होता है. पौधे की ऊंचाई ढाई और
तीन फुट के लगभग ही देखी गई है.

जलवायु—

हर खेती के ऊपर जलवायु का बहुत ही तीव्र प्रभाव पड़ता है,
खेती करने से पूर्व यह ध्यानपूर्वक देख लेना चाहिए कि अमुक
जलवायु मे अमुक प्रकार की खेती हो भी सकती है या नहीं.
जिस स्थान का जलवायु गर्म हो वहां पर अजवायन की खेती
सम्भव नहीं क्योंकि इसके पौधे ऊष्णता कभी कभी सहन नहीं कर
सकते. एक तो गर्म प्रदेश में इसका बीज ही नहीं जमता और
यदि जम जाता है तो पौधे भी शीघ्र जल जाते हैं. यदि थोड़ी
बहुत पैदावार हो भी जाय तो अच्छी नहीं होती. इसी प्रकार
अजवायन तर हवा भी सहन नहीं कर सकती क्योंकि तरी में इस
के पौधे गिर जाते हैं तथा उनके गलने का अत्याधिक भय रहता
है. अतः इसकी खेती के लिए शीत एवं शुष्क जलवायु ही सर्वो-
त्तम माना गया है.

मिट्टी और खेत—

इसकी खेती भूड़ मिट्टी से लेकर दुमट भूमि तक में की जा सकती है. अन्य प्रकार की मिट्टियों में इसका बीज जम नहीं पाता. अतः इन्हीं मिट्टियों के खेत में अजवायन को बोना चाहिए. इसके पश्चात खेत की ऊंचाई नीचाई देखने की आवश्यकता होती है. अजवायन का खेत सदा ऊंचा ही रहना चाहिए या समतल होना चाहिए क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि जो भूमि अन्य भूमियों से नीची होगी या जिस भूमि में ढलान होगा वहां पर पानी अवश्य ही एकत्रित होजाएगा तथा पानी का अजवायन के खेत में एकत्रित हो जाने का अर्थ यह है उसकी खेती का नष्ट हो जाना. पानी एकत्रित हो जाने से इसकी जड़ें ही नहीं तने भी गल जाते हैं. अतः इसका खेत सदा ऊंचा ही रखना चाहिए जिससे कि ऐसी कठिनाइयों का सामना न करना पड़े जो समय समय पर कभी भी खड़ी हो जायें. खेत का चुनाव करते समय यह भी सावधानी से देख लेना चाहिए कि खेत पूर्णरूप से समतल तथा एकसार हो वह किसी दिशा में ऊंचा और किसी दिशा में नीचा नहीं हो क्योंकि जो भाग नीचा होगा उसी में पानी भर जाएगा और खेत को हानि पहुंचायेगा खेत में कहीं भी गढ़े या टीले भी नहीं होने चाहिए. फिर यह भी देख लेना आवश्यक है कि उस खेत में पहली फसल किसकी हुई है क्योंकि इसका भी पर्याप्त प्रभाव खेती पर पड़े बिना नहीं रहता है. प्रायः मकई काट लेने के पश्चात अजवायन बोई जा सकती है किन्तु ज्वार की खेती के पश्चात इसे कभी भी नहीं बोना चाहिये.

खेत की तैयारी--

खेत की तैयारी करने के लिये खेत की एक गहरी जुताई की आवश्यकता है, जिससे कि मिट्टी की सख्ती जाती रहे तथा वह ऊपर नीचे भी हो जाये. यदि उस भूमि में पिछली फसल में कुछ नहीं वोया गया हो तो भी मिट्टी मे घास फूंस जो उग आती है उसकी सफाई आवश्यक है. मिट्टी मे से सारी जड़ें बीन बीन कर निकाल देनी चाहिए जिससे कि अजवायन के पौधों को आगे चलकर अपनी खूराक में से निरर्थक घास फूंस तथा पौधों को मजबूरी से भाग न देना पड़े अजवायन वोने से पहले यदि मकई भी वोई गई हो तो भी कोई हानि नहीं है, मकई के पश्चात अजवायन वोई जा सकती है किन्तु इस दशा में भी अजवायन वोने से पूर्व खेत को जड़ों आदि से ठीक प्रकार से और अवश्य ही साफ कर लेना चाहिए. जब खेत में से संपूर्ण जड़ें आदि ठीक प्रकार से निकाल फेंकी जायें तब खेत के ऊपर गिड़ी या पाटा चला देना चाहिए जिससे कि खेत एक साथ ही समतल हो जाये न तो उसमें कहीं ऊंचा-नीचापन रहे और न ही उसमें कोई मिट्टी के ढेले या टीले से रहें क्योंकि वे भी उपज के लिये अत्यन्त हानि-प्रद सिद्ध होते हैं. मिट्टी के ढेले जब रह जाते हैं तो बीज यदि ढेले पर जमता है तो जड़ें इधर उधर ढेले के बाहर निकल आती हैं. और यदि कोने पर जमता है तो पौधा ढेले के इधर उधर टेढ़ा मेढ़ा खड़ा हो जाता है. दोनों प्रकार से ही हानि होती है और पौधे नष्ट हो जाते हैं, पैदावार पर प्रभाव पड़ता है. अतः सारे ढेलों को पाटा चला कर बराबर कर देना चाहिए.

बीज और बुवाई—

इस बीज में किसी भी घास आदि के बीज का सम्मिश्रण जल्दी से हो जाता है और जल्दी से वह इससे अलग भी नहीं हो पाता और फिर बीज के जम जाने पर अन्य बीज जब इसके साथ उग आते हैं तो अत्यन्त हानिकारक होते हैं. अतः किसी बारीक चलनी में छान कर पहले बीजों को भलीभांति साफ कर लेना चाहिए फिर अच्छी तरह फटक कर यह देख लेना चाहिए कि उसमें कुछ मिला न रह जाए फिर यह भी बात ध्यान में रहे कि बीज पुराना न हो. नये से नया हो. अजवायन के बीज का नया पुराना होना जरा कठिनता से पहचाना जाता है. अतः सावधानी की आवश्यकता है. कोशिश तो यह होनी चाहिये कि बीज पहले वर्ष का अपने ही खेत का हो जिसमें धोखे की कोई भी संभावना ही न हो. नया बीज हमेशा जल्दी जमता है और अच्छी पैदावार देता है पुराना बीज या तो जमेगा ही कठिनता से और यदि जम भी गया तो पौधे छोटे होंगे और पैदावार खराब होगी. इसका कारण यह है कि बीज की उत्पादन शक्ति दिन प्रति दिन क्षीण होती जाती है. तीन साल में तो लगभग समाप्त ही हो जाती है. अतः बीज जितना नया हो उतना ही अच्छा होता है फिर यह भी अवश्य देख लेना चाहिये कि बीज में धोखा तो नहीं हो गया है, क्योंकि कई बार ऐसा देखा गया है कि बीज में कीड़ा लग जाने से अथवा किसी और कारण से धोखा हो जाता है. ऐसा बीज कभी भूलकर भी नहीं बोना चाहिए वह जमेगा ही नहीं क्योंकि उसका सत निकल जाता है. जिस प्रकार प्राण निकल जाने पर मानस शरीर हड्डियों का ढांचा-मात्र रह जाता है एवं कुछ भी कर सकने

में असमर्थ होता है उसी प्रकार बीज भी फोका हो जाने पर मर जाता है. जब इसका बीज भली प्रकार से साफ कर लिया जाता है तथा उसमें और किसी प्रकार के बीज आदि रह जाने का भय नहीं रहता तब वह बोने योग्य हो जाता है. उस समय खेत को भली प्रकार से जोत कर उसकी मिट्टी को ठीक ढंग से समतल करके उसमें छोटी छोटी क्यारियां बना लेनी चाहिए. इन क्यारियों में अजवायन के बीजों को सावधानी के साथ बखेर देना चाहिए बखेरने के पूर्व बीजो में थोड़ी राख मिला देनी चाहिए तथा जब बीज क्यारियों में बखेर दिया जाता है तब उसके पश्चात खेत में मिला देना चाहिए क्योंकि जब बीज ऊपर रह जाता है तब या तो उसपर धूप पड़ती है या फिर चिड़िया आदि भी उसे ऊपर देख कर चुन जाती हैं. जब वह भलीभांति मिट्टी में मिला दिया जायेगा तब फिर ऐसा भय नहीं रहता अजवायन का बीज बोने के लिए एक समय निर्धारित किया हुआ है उस समय ही उसे बोना चाहिए यह एक पुरातन काल से चले आते अनुभव पर निश्चित किया गया है. पुराने समय से ही इसकी खेती करनेवालों ने देखा है कि इसके लिए कौनसा महीना सर्वोत्तम है. बोने के लिए यह समय नवम्बर के तीसरे सप्ताह के आरम्भ से दिसम्बर के अंतिम सप्ताह के अंत तक का है. इन दिनों में बोई हुई अजवायन ही लाभदायक सिद्ध होती है और किसी महीने में इसका बीज खेत में जमने से पूर्व ही नष्ट हो जाता है. पौधे यदि उग भी आते हैं तो कुछ पैदावार नहीं होती. इसी प्रकार बीज की मात्रा भी निश्चित ही होती है. अजवायन का अच्छा बीज एक एकड़ भूमि के खेत के लिए सवा सेर से लेकर दो सेर तक बोया जाता है. बीज चाहे जितना भी अच्छा और नया क्यों न हो कम से कम

सवा सेर तो बोना ही चाहिये फिर जितना कम बोया जायेगा पौधे उतने ही कम उगेंगे तथा उपज को हानि होगी. फिर बीज दो सेर से अधिक भी कभी नहीं बोना चाहिए वरना उपज घटिया प्रकार की तो होगी ही साथ ही साथ अच्छी भी नहीं होगी. वैसे अच्छा छंटा हुआ और नया बीज नहीं हो तो डेढ़ सेर प्रति एकड़ बीज ही अच्छा होता है. ऊपर लिखे नए ढंग से यह जब सारा बीज खेत में ठीक प्रकार से बो दिया गया हो उसके तुरन्त पश्चात खेत में पानी की आवश्यकता होती है अतः अविलम्ब सिंचाई कर देनी चाहिए. यह सिंचाई तीन इंच गहरी होनी चाहिए और सावधानी भी इसमें पूरी रहनी चाहिए क्योंकि तीन इंच गहरी सिंचाई न हो पाई तो बीज विलम्ब से जमेगा और यदि कहीं अधिक हो गई तो बीज के गल जाने का भी भय रहेगा अतः इस समय पर्याप्त सावधान रहने की आवश्यकता है. इसी प्रथम सिंचाई के ऊपर ही वास्तव में बीज का अच्छा जमना, बुरा जमना, जमना भी या न जमना सब आधारित रहता है. बीज पौधे को जन्म देने के लिए प्रथम खुराक इसी प्रथम सिंचाई के द्वारा प्राप्त करते हैं. इसमें विलम्ब भी नहीं होना चाहिए.

खाद देना—

जिस खेत में अजवायन की खेती करनी हो उस खेत को वर्षा के समय में खाली छोड़ देना उत्तम होता है उस समय उसमें किसी चीज की खेती न कर सकें तो मकई की खेती के बाद भी अजवायन बोई जा सकती है किन्तु सर्वोत्तम खेती तभी होती है जब वर्षा काल में भूमि को आराम मिल जाए फिर भूमि की कई बार गहरी जुताई करके इसमें खाद देनी चाहिए और खाद भी अज-

वायन का बीज बोने से दो माह पूर्व ही देनी चाहिए. अजवायन के लिए खाद उस समय लाभदायक होती है जब कि वह खेत की मिट्टी के साथ मिल कर एकरस हो जाए. खेत में गोबर का अत्यन्त गला सड़ा खाद डालना चाहिए जो शीघ्रातिशीघ्र ही मिट्टी में मिल जाय, यह खाद एक एकड़ भूमि में कम से कम दस गाड़ी और अधिक से अधिक पंद्रह गाड़ी तक डालना चाहिए. पंद्रह गाड़ी से अधिक खाद नहीं डालना चाहिए.

जुताई—

अजवायन के लिए प्रायः छः या सात जुताइयां पर्याप्त मानी जाती हैं. इनमे यह ध्यान रखना चाहिए कि आधी जुताइयां वर्षाकाल में एवं आधी उसके पश्चात की जावें. इस प्रकार फिर अजवायन का खेत सर्वोत्तम पैदावार देने के लिए तैयार हो जाता है.

सिंचाई—

बीज बो देने के तुरन्त बाद ही खेत मे एक सिंचाई तीन इंच गहरी कर देनी चाहिए इससे खेत की मिट्टी बिलकुल नर्म पड़ जाएगी तथा उस मिट्टी में मिल कर बीज से तुरन्त कुरा फूट आयेगा इस प्रकार इस सिंचाई के लगभग एक सप्ताह क पश्चात ही बीज जमना आरम्भ होता है और सब पौधे लगभग पन्द्रह दिन मे फूट निकलते हैं. फिर खेत की सिंचाई तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक कि खेत की भूमि चिट्टी (सफेद) न पड़ जाए जिस समय यह भूमि सफेद हो जाए उस समय एक हल्की सिंचाई की आवश्यकता होती है, जिसे देहाती भापा मे

घुट्टी भी कहा जाता है. यह सिंचाई एक इंच से डेढ़ इंच तक गहरी होती है. इस हल्की सिंचाई अर्थात् घुट्टी से भूमि में तरी पहुँच जाती है जो अजवायन की नई निकली कोमल जड़ों को पर्याप्त वल देती है. इस सिंचाई में यह वात ध्यान में रखनी चाहिए कि सिंचाई डेढ़ इंच से अधिक तनिक भी न हो वरना हानि होगी क्योंकि उस समय तक अजवायन की जड़ें कोमल होती हैं. तथा पानी अधिक पड़ जाने से उनका गलने का पर्याप्त भय वना ही रहता है. इस घुट्टी के पश्चात इसमें शीघ्र ही पानी देने की आवश्यकता नहीं होती. हां, यदि पौधों के उगने से खेत की भूमि फिर सफेद पड़ जाय तो एक हल्की एक इंच गहरी घुट्टी उसे फिर पिला देनी चाहिए फिर पानी लगभग वीस या पच्चीस दिन में ही देना चाहिए इससे पूर्व नहीं. यह सिंचाई भी तीन इंच गहरी ही होनी चाहिए इस प्रकार की सिंचाई का क्रम हर वीसवें दिन का वना देना चाहिए सिंचाई के क्रम में यह वात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि पौधों में जिस समय फूल आ जायें उस समय पर खेत को पानी की आवश्यकता अनुभव होगी ऐसे समय में मौसम की दृष्टि से अर्थात गर्मी हो तो तीन इंच तक और यदि हल्की सी ठन्ड हो तो दो से ढाई इंच तक गहरी एक सिंचाई अवश्य ही कर देनी चाहिए यह सिंचाई अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि यदि इस समय खेत को पानी नहीं मिला तो फूल सूख जायेंगे. फिर वर्षा का भी ध्यान रखना चाहिए. यदि वर्षा का पानी किसी कारण से अजवायन के खेत में खड़ा रह जाए तो उसे तुरन्त ही नीचे भाग की ओर निकाल देना चाहिए क्योंकि जीरा, अजवायन के खेत में पानी का चौबीस घन्टे से अधिक खड़ा रह जाना उपज के नष्टीकरण का मूल कारण वन जाता है.

अच्छी उपज के लिए कुल सात या आठ सिंचाइयों की ही आवश्यकता पड़ती है. इससे अधिक सिंचाई नहीं करनी चाहिए अन्यथा कठिनाई का सामना करना पड़ता है. साथ ही इसमे कमी भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि जब पौधों को पानी की आवश्यकता हो और वह उसे ठीक मात्रा मे न मिल जाए तो अजवायन का दाना पतला और छोटा रह जाता है. ठीक प्रकार से वह पनप नहीं पाता. ऐसी दशा में वह घटिया माल कहलाता है.

निकाई—

अजवायन की जड़ें मिट्टी को बहुत जकड़ लेती हैं. अत: एक माह के पश्चात निकाई करने से मिट्टी कुछ पोली हो जाती है. तो पानी को भी जल्दी सोख लेती है, तथा फिर मिट्टी जड़ों को फैलने से रोक भी नहीं सकती. फिर निकाई के समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अजवायन के पौधों के अलावा वहां पर खेत मे जो भी और पौधे उग आये हैं अथवा घास उग आई हो उसे तुरन्त ही छांट कर सावधानी से हटा देना चाहिए जिससे कि यह व्यर्थ के पौधे तथा घास किसी प्रकार भी पौधों का राशन न खा जायें. निकाई मे यदि इनको छांटने में असावधानी होती है तो अजवायन का दाना छोटा और घटिया किस्म का रह जाता है. फिर इसकी पैदावार भी कम हो जाती है, अत: इन महमानों को खेत में कभी भी नहीं टिकने देना चाहिए. निकाई के समय यह देख लेना चाहिए कि कहीं पर खेत मे पौधे एक स्थान पर घने तो नहीं हो गये हैं. यदि ऐसा हो तो उन्हें पतली खुरपी की सहायता से सावधानी के साथ उखाड़ कर खेत मे छः या सात इंच की दूरी पर गाड़ देना चाहिए पौधे कभी भी

सूर्य की रोशनी में नहीं उखाड़ने चाहिये वरन् प्रात. धूप निकलने से पूर्व, सायंकाल सूर्य छिपने के पश्चात ही ऐसा करना चाहिए या तब जबकि आकाश में बादल छाये हुये ही इसकी जड़ें कोमल होती है यदि धूप में नंगी हो जाती हैं तो पौधे मर जाते हैं अतः सर्वत्र यह कार्य अत्यन्त सावधानी से होना चाहिए वैसे उसके पौधों को मिट्टी में सख्ती से जमने भी नहीं देना चाहिए वरना उसमें बीज न आयेंगे किन्तु यह कार्य दूसरी निकाई के समय करने का है, उससे पूर्व नहीं. इसकी निकाई के लिए कोई निश्चित नियम तो नहीं किन्तु हां, जिस समय पौधे छः या सात इंच तक ऊंचे हो जायें उस समय इस दूसरी निकाई की आवश्यकता होती है. इन दो निकाइयों के पश्चात अजवायन में और निकाई की प्रायः कोई आवश्यकता नहीं होती. निकाई जब भी करनी हो तो यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सिंचाई के पश्चात ही हो जिससे मिट्टी तर हो जाए तथा पौधे की जड़ के टूटने का भय न रहे वरन् आवश्यकतानुसार वह खुरपी के साथ ही ऊपर को उठ आयें निकाई इस ढंग और सावधानी से होनी चाहिए कि खेत में कहीं भी गढ़े न पड़ें. पौधों को उखाड़ते समय यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि जड़ें बिल्कुल नंगी न निकाली जायें. वरन् उनके चारों ओर गीली मिट्टी लगी हो तथा जहां उन्हें पुनः गाड़ा जाये वहां पौधे के तने का एक तिहाई भाग भी मिट्टी में अन्दर की ओर गाड़ दिया जाए जिससे कि पौधा गिर न सके एवं खड़ा रहे.

कटाई—

इसका पौधा तीन फीट तक ऊंचा होता है जिस समय यह इतना ऊंचा हो जाता है तब इसमें दाने आ जाते है. थोड़े दिनों तक यह दाने यूं ही रहते हैं फिर पकने लगते हैं. जिस समय इनका रंग जीरे जैसा हो जाये तथा यह पके से प्रतीत हों तब इन्हें काट कर खलिहानों में एकत्रित कर ढेर लगा देना चाहिए यह प्राय: अप्रेल के अन्तिम दिनों तक पक जाती है. इसके पश्चात इसके पौधों को खेत में खड़ा नहीं रहने देना चाहिए वरना फसल खराब हो जाती है. खलिहान में इन्हें तीन चार दिन तक यूं ही पडे रहने देना चाहिए. इतने बीज मे उसका बीज कुछ सख्ती पकड़ लेता है तब हल्की और पतली छड़ी से धीरे धीरे आकर अजवायन को झाड़ लेना चाहिए. जिस समय इसे झाड़ा जाता है इस के सूखे पत्ते, देख के ऊपर की बारीक सी झिल्ली, ये भी इसी के साथ न्यूनाधिक मात्रा में झड़ जाते हैं. इन्हें इसमें से साफ करने के लिए सूप में फटक लेना चाहिए या जीरे की भांति ही हल्की हवा में खड़े हो कर ऊपर से डाले सारा फोकसा उड़ा देना चाहिए, ऐसा करने से अजवायन के साफ बीज पृथक निकल जायेंगे और फोकस सारा उड़ जाएगा अजवायन की प्रति एकड़, दस से बारह मन पैदावार हो जाती है.



धनिया

धनिये की खेती बीज के लिए करने वालों को हरी पत्तियां नहीं तोड़नी चाहिए वरना फसल पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और दाना भी नहीं होगा. यदि होगा भी तो थोड़ा होगा. अतः हरा धनियां लेने के लिए तो अन्य साग-भाजियों के साथ इसे बाड़ी में पृथक बो देना चाहिए. बड़े पैमाने पर खेती धनिये के दाने के लिए होती है, हरी पत्तियों के लिए नहीं.

जातियां--

इसकी दो जातियां मानी गई हैं. एक तो वह दाना जो मुलतान या उसके आस पास के क्षेत्र में तैयार किया जाता है. इसका दाना जरा मोटा और पक्के रंग का होता है. दाने का दल भी मोटा ही होता है किन्तु इसमें सुगन्धि बहुत कम होती है. पिसने में भी यह जरा परिश्रम अधिक चाहता है. स्वाद भी इस का कुछ कुछ कडुवापन लिए होता है. इस कारण लोग इसे अधिक काम में नहीं लाते और बाजार मे इसके दाम भी पूरे से नहीं मिल पाते. दूसरी जाति का दाना इसकी अपेक्षा छोटा होता है. रंग तेज हरा होता है. यह सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता है क्योंकि यह स्वाद में अच्छा होता ही है साथ ही इसकी सुगन्धि भी अत्यन्त तीव्र होती है जो लोगों के मन को भाती है. औषधियों के काम में भी यही लाया जाता है, मोटा दाना प्रयोग में नहीं लाया जाता. इसी कारण इसकी बिक्री भी अधिक होती है और

पैसे भी उस .ी अपेक्षा कहीं अच्छे मिलते हैं. यह कुछ प्राकृतिक ही है कि देखने में भी छोटे दाने का धनियां सुन्दर प्रतीत होता है और मोटे दाने का पुराना सा असुन्दर प्रतीत होता है. अत हमारे विचार से किसानों को यह छोटे दाने वाला धनियां ही बोना चाहिए, मोटे दाने वाला नहीं बोना चाहिए.

मिट्टी और खेत—

इसकी खेती के लिए कोई विशिष्ट प्रकार की जलवायु से आवेष्ठित भूमि ढूंढने की आवश्यकता नहीं पड़ती वरन् यह हर प्रकार के जलवायु में पैदा किया जा सकता है क्योंकि इसके पौधों पर किसी भी जलवायु का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता और इसका पौधा हर प्रकार के वातावरण को प्राय. आराम से सहन कर ही लेता है. वैसे तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि किसी किसी प्रांत में इसकी उपज बहुत अच्छी और किसी किसी में कम होती है तो भी इसे लगभग हर प्रांत में बोया जा सकता है. इसी प्रकार धनिये के लिए कोई विशेष प्रकार की भूमि होने का बन्धन नहीं है क्योंकि इसका पौधा हर प्रकार की भूमि से अपनी खूराक खींच ही लेता है किन्तु फिर भी इसमे कोई सन्देह नहीं है कि इसके लिए भूमि दुमट से लेकर भूड़ तक ही चुननी चाहिए. जिस भूमि में इसकी खेती की जाय वह डलों वाली न हो अर्थात् उसके बीच मे कहीं डले न पड़ते हों. ऐसी भूमि इसके लिए बुरी मानी गई है क्योंकि डले वाली भूमि में इसका बीज कभी भी नहीं जम पाता. अतः या तो ऐसी भूमि में धनियां बोना ही नहीं चाहिए या यदि बोना ही पड़े तो खेत मे से वे डले भली प्रकार से छांट-छांट कर निकाल देने चाहिए. धनिये का खेत ऐसे स्थान

पर देखना अधिक उपयोगी होता है जहां पास में नहर हो अथवा तरी अधिक हो. खेत का नीचा होना भी अच्छा नहीं होता उसमें पानी के अधिक आ जाने का भय रहता है. जब उसमें पानी अधिक आ जाता है तो पत्तों को गला देता है जिससे उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है.

खेत की तैयारी—

खेत को बहुत ही सावधानी से सपरिश्रम तैयार करने की आवश्यकता हैं. खेत की तैयारी पर किसान जितना अधिक परिश्रम कर लेता है उतनी ही खेती के समय उसकी कठिनाइयां कम हो जाती हैं. यदि धनिया बोने से पूर्व उस खेत में मकई बोई गई हो तो भी धनिया बोया जा सकता है किन्तु केवल तब ही जब कि मकई खूब अच्छी तरह पर्याप्त मात्रा में दिये गये गले-सड़े खाद के साथ बोई गई हो. ऐसी दशा में खेत की कई गहरी जुताइयां करने की आवश्यकता है फिर उसमें से मकई की सारी जड़ों को बीन-बीन कर निकालने की आवश्यकता है. इसी समय भी यदि खेत में ढले हों तो उन्हें भी भली प्रकार से साफ कर देना चाहिए और फिर खेत को तर करके छोड़ देना चाहिए. जिस खेत में धनिया बोने का विचार हो उस खेत को बरसात में बिल्कुल खाली छोड़ दिया जाय तथा उसमें कुछ भी नहीं बोया जाय. ऐसी दशा में खेत को तैयार करने के लिए उसमें बार-बार जुताइयां करते रहना अत्यन्त आवश्यक है. जुताइयों पर परिश्रम करने की जरूरत पड़ती है और वह इस कारण से कि मिट्टी जितनी अधिक भुरभुरी कर ली जायेगी धनिये के लिए उतनी ही अधिक उपयोगी होगी.

बीज और बुवाई—

बीज जब ले लिया जाय तब उसे किसी, धनिये से बारीक छिद्रों वाली चलनी के अन्दर से खूब अच्छी तरह से छान लेना चाहिए जिससे कि इसमें से अन्य छोटे बीज और कूड़ा-करकट निकल कर साफ हो जायें. फिर छाज के ऊपर फटक भी लेना चाहिए जिससे कि जो दाने फोके रह गए हों वे भी निकल जायें. इस प्रकार जब धनियां बिल्कुल साफ हो जाये तब उसे बोने के लिये तैयार करना होता है. इसे साबत नहीं बोया जाता वरन् इसके बीच में जो जोड़ होता है उस स्थान से इसके दो बराबर के टुकड़े करने होते हैं क्योंकि इनकी उत्पादन शक्ति इन दोनों भागों में बराबर होती है. थोड़े थोड़े दानों को किसी पत्थर की शिला पर डाल कर सूखे उपले से धीरे हाथ से रगड़ने से इसके ऐसे दो टुकड़े हो जाते हैं. इस प्रकार जब सारे दानों की ऐसी ही दो-दो फाड़े कर ली जायें तब यह बोने योग्य हो जाता है. वैसे तो प्रति एकड़ इसके ढाई तीन सेर बीज ही पर्याप्त होते है किन्तु कुछ कृषि-अनुसन्धान कर्त्ताओं का मत ऐसा भी है कि बीज सात आठ सेर बो दिया जाय तथा जब निकाई की जाय उस समय स्वस्थ पौधों को रख कर शेष सब की छंटनी कर दी जाय. कहीं कहीं पंजाब में तो लोग दस बारह सेर तक भी बो देते हैं और फिर बाद मे उसकी छंटनी कर देते हैं. बीज बखेरने से पूर्व खेत मे क्यारियां बना लेनी चाहिये तथा सम्पूर्ण खेत मे अनुपात से बीज की क्यारियों में छिड़कना चाहिए. बहुत सी जगह ऐसी होती हैं जहां सिचाई की आवश्यकता नहीं होती जैसे तराई के खेत. ऐसी दशा में क्यारियां यदि न बनाई जाये तो भी कोई

अन्तर नहीं पड़ता. धनिये के बीजों को जीरे और अजवाइन की भांति उथला ही छींटना चाहिए क्योंकि ये बीज छोटे होते हैं तथा इनमें इतनी अधिक शक्ति नहीं होती कि ये कुरे को अधिक नीचे से धरती के ऊपर निकाल सकें. ऐसी दशा में बीज नहीं जमते तथा नष्ट हो जाते हैं. बीजों को भली भांति खेत में छींट देने के पश्चात उन्हें उंगलियों से मिट्टी में मिला देना चाहिए अन्यथा चिड़ियां बीन बीन कर खा जायेंगी. इसे किसी भी ऋतु में बोया जा सकता है किन्तु फिर भी सर्वोत्तम फल प्राप्त करने के लिए इसकी बुवाई सितम्बर से आधे नवम्बर तक करनी चाहिए. बुवाई के लिये सर्वोत्तम समय यही माना गया है. इन महीनों में बोने से बीज बहुत अच्छा जमता है और फल भी पक कर भरा हुआ आता है. वैसे यदि धनियां और किसी ऋतु में बोया भी जाये तो भी यह बात ध्यान में रखनी ही चाहिए कि बीज तैयार करने वाली फसल को इन्हीं महीनों में बोया जाता है.

खाद देना—

यदि पहली फसल में मकई बोई जाय तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उस मकई की फसल में खाद खूब अच्छी तरह से दिया जाये. इससे लाभ यह होता है कि मकई काटने के बाद भी भूमि खादमयी रह जाती है जो कि अजवायन तथा धनियां दोनों के लिए अत्यन्त उपजाऊ सिद्ध हुई है. खाद यदि धनिये की फसल में देनी हो तो सौ सवा सौ मन के लगभग अर्थात् दस-बारह गाड़ी के लगभग प्रति एकड़ देना चाहिए, किन्तु यह खाद भी बहुत ही अधिक सड़े गले गोबर का होना चाहिए, हरा खाद पैदावार के लिए अच्छा नहीं होता.

जुताइयां—

यदि खेत में पहले मकई की फसल की हो तो उसकी कटाई के पश्चात खेत की एक गहरी जुताई करनी चाहिए जिससे कि खेत में अन्दर दवी हुई मकई की सारी जड़ें ऊपर आ जायें. उसके पश्चात् परिश्रम करके उन जड़ों को छांट कर खेत से निकाल फेंकना चाहिए. ये जड़ें कभी भी खेत मे नहीं रहनी चाहिए. वरसात के समय में खाली छोड़े हुए खेत को अच्छा छींटा पड़ने के वाद जोतते रहना चाहिए किन्तु यह ध्यान रहे कि यह जुताइयां गहरी नहीं वरन साधारण हों वरना निर्बल हो जायेंगी, इसकी जुताई इसी प्रकार करते रहना चाहिए जिस प्रकार गेहूं के खेत में करते रहते हैं. वर्षा के दिनों में ऐसी हल्की चार जुताइयां खेत के अन्दर कर देनी चाहिए. इससे मिट्टी, पानी पर्याप्त मात्रा में सोख लेती है और भूमि धनिये के योग्य तर हो जाती है. इसके पश्चात जब वर्षा समाप्त हो जाए तब खेत की पुनः जुताई करनी चाहिए. यह जुताइयां तीन हों. इन्हें करने का प्रयोजन यह होता है कि मिट्टी ठीक प्रकार से भुरभुरी कर ली जाये. जब खेत की मिट्टी भुरभुरी हो जाए तभी वह खेत धनिये के बोने के योग्य हो जाता है. सम्पूर्ण फसल के लिए कुल मिला कर सात जुताइयों की आवश्यकता होती है और वह भी गहरी जुताई नहीं वरन हल्की जुताई.

सिंचाई—

बीज बोने के तुरन्त ही सिंचाई की आवश्यकता होती है किन्तु धनिये के साथ यह नियम नहीं है. इसके खेत में तो प्रथम

सिंचाई उस समय करने की आवश्यकता है जबकि धनिये का पौधा डंठल छोड़ देता है अर्थात जब कुरा फूट कर मोटा हो जाता है जिसे तना कहा जा सके. कृषि अनुसन्धानकर्त्ताओं के अनुसार इसके तना भरने से पूर्व पानी देना हानिप्रद है. जब पहले पानी दे दिया जाता है तो इसके पत्ते चौड़े और अधिक बड़े हो जाते हैं तथा डंडल अर्थात तना निर्बल रह जाता है जिससे पौधा अधिक खड़ा नहीं रह पाता और बीज भी छोटा और निर्बल देता है. अतः तना निकलने से पूर्व भूल कर भी खेत में सिंचाई नहीं करनी चाहिए. यह प्रथम सिंचाई लगभग तीन इंच गहरी होनी चाहिए, इससे अधिक नहीं होनी चाहिए और कम भी नहीं होनी चाहिए क्योंकि अधिक पानी तो पत्तों को गला देगा और जड़ क्योंकि उसकी मूसला होती है पानी जब तक नीचे नहीं पहुँचेगा उसे जड़ कैसे प्राप्त कर पायेगी. अतः सिंचाई ठीक अनुपात से करनी चाहिए. प्रथम सिंचाई के बाद एक सिंचाई तब करनी चाहिए जबकि इस प्रथम सिंचाई को एक मास पूरा हो जाए. यह सिंचाई भी प्रथम सिंचाई जितनी गहरी होनी चाहिए क्योंकि एक माह में धरती पानी की आवश्यकता अनुभव करने लगती है तथा धनिये में पानी समय पर देना चाहिए अर्थात तब ही देना चाहिए जबकि पानी की उसे आवश्यकता हो. इससे पूर्व पानी देना उपज के लिए अत्यन्त हानिप्रद सिद्ध होता है. ऐसी दशा में तना अत्यन्त शीघ्रता से गल जाते हैं तथा फिर बीज नहीं आते. तीसरी सिंचाई की आवश्यकता तब होती है जबकि पौधों में धनिये का दाना आ जाता है जिस समय दाना आ जाये उस समय तुरन्त एक सिंचाई कर देनी चाहिए वरना पौधों के मुरझा जाने का या सूख जाने का पर्याप्त भय रहता है. किन्तु

यह सिंचाई गहरी नहीं होनी चाहिए, अर्थात यह लगभग डेढ़ इंच तक ही गहरी हो, अधिक नहीं. इन तीनों सिंचाइयों के पश्चात धनिये को अधिक सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं होती.

निकाई—

प्रथम निकाई खेत में प्रथम सिंचाई करने के दो सप्ताह पूर्व ही करनी चाहिए, जिससे कि खेत की मिट्टी पोली हो जाये तथा जब पानी दिया जाये तो पोली होने के कारण मिट्टी उसे तुरन्त ही सोख ले ऊपर न बहने दे. फिर इसी निकाई में यह भी ध्यान पूर्वक देख लेना चाहिए कि जितने महमान पौधों और घास ने इन धनियों के पौधों के साथ कुछ स्थान पर अधिकार कर लिया है. इन्हें तुरन्त ही उखाड़ फेंकना चाहिए. उखाड़ते समय यह देख लेना चाहिए कि वे जड़ से उखड़ें, जिससे उनकी दुबारा फूट आने की कोई सम्भावना ही न रहे. यदि उनकी जड़ें भीतर मिट्टी में रह गईं तो फिर सिंचाई होते ही उनका कुरा फूट आने का भय निरन्तर बना रहेगा. इसकी दूसरी निकाई तब करनी चाहिए जब कि दूसरी सिंचाई हो चुकी हो क्योंकि सिंचाई हो जाने के पश्चात भूमि तर हो जायेगी और ऐसी दशा में पौधों की जड़ अथवा तने के टूटने का अथवा पौधों को क्षति ग्रस्त होने की कोई सम्भावना नहीं रहेगी. यदि बीज अधिक बोये गये हों तो निस्सन्देह खेत में पौधों की बाढ़ सी लग जायेगी. ऐसी दशा में अच्छे अच्छे स्वस्थ पौधों को छोड़ कर अन्य निर्बल पौधों की छंटाई देनी चाहिए. जहां जहां भी पौधे घने हो गये हों वहीं

उनमें से निर्बल पौधों को समूल उखाड़ कर फैंक देना चाहिए तथा छांटे हुए स्वस्थ पौधों को नौ नौ इन्च की दूरी पर रोप देना चाहिए. यदि पौधों को उखाड़ कर पृथक पृथक रोपने का कार्य करना पड़े तो बहुत ही सावधानी से होना चाहिए अर्थात एक तो उखाड़ते समय उनकी जड़ तनिक भी न टूटने पाये तथा उसके साथ गीली मिट्टी लगी हुई आये और फिर यह स्थानान्तरण उस समय हो जब या तो भगवान भास्कर छिप गये हों, बादल हों अथवा सायं या प्रातः काल का समय हो.

कटाई—

इसकी फसल लगभग सात महीने में पक जाती है अर्थात ठीक समय पर बोई गई फसल अप्रैल तक पक कर तैयार हो जाती है. इसके पौधों को खलिहान में एकत्रित कर लेना चाहिए और तीन चार दिन तक हवा लगने देना चाहिए. तत्पश्चात पतली छड़ी की सहायता से इसके दानों को गिरा लेना चाहिए और दाना फटक कर साफ कर लेना चाहिए. इसकी कटाई में कोई विशेष कठिनाई का प्रश्न नहीं है. अतः इसके लिए कोई विशेष नियम भी नहीं है. हां, यह बात अवश्य है कि यह देख लेना चाहिए कि दाना पका भी है या नहीं. बिना पके ही पौधों को नहीं काटना चाहिए. इसकी पैदावार प्रति एकड़ बारह, पन्द्रह और बीस मन तक हो जाती है.

बीज लेना—

धनिये का बीज तैयार करने के लिये पहली बात तो यह ध्यान

में रखने की है कि इसकी बुवाई सितम्बर-अक्टूबर अर्थात आश्विन-कार्तिक के महीने में हो. फिर खेत में से स्वस्थ पौधे छांट कर दस-दस इन्च की दूरी पर लगा दिये जांय. जब सारी फसल को काटें तब इन पौधों के बीजों को पृथक छान-फटक कर तैयार करके रख लें, इन्हें बन्द बोतलों में डिब्बों में सील (नमी) से बचा कर रखना चाहिए.



जीरा

जातियां—

यह जाति से दो प्रकार का होता है, एक काला तथा एक सफेद. गुण वैसे तो लगभग दोनों के एक से ही हैं. फिर भी काले जीरे के स्वाद में थोड़ा कड़ुवापन होता है. देखने में असुन्दर सा प्रतीत होता है तथा सफेद जीरे में कुछ तो स्वाद अच्छा होता ही है साथ ही इसमें सुगन्धि की मात्रा काले जीरे से लगभग दो गुनी अधिक होती है. जीरा जितना अधिक सफेद, जितना बड़ा और मोटा होता है उतना ही अधिक पसन्द किया जाता है. घरों में सफेद जीरा ही प्रयोग में लाया जाता है. काला जीरा कहीं कहीं बहुत ही कम लोगों द्वारा पसन्द किया जाता है. मद्रास में ऐसे कुछ लोग हैं जो काला जीरा प्रयोग में लाते हैं. लाभ के दृष्टिकोण से किसानों को सफेद जीरे की ही खेती करनी चाहिए.

जलवायु—

इसकी खेती ऐसे स्थानों पर करनी चाहिए जहां की जलवायु शीत एवं शुष्क हो. जीरे के पौधे उतना ही जल चाहते हैं जितने को खूराक की भांति ले सकें. उससे कम अथवा अधिक दोनों ही अत्यन्त हानिकर सिद्ध हुये हैं. जिन स्थानों में शीत काल में

अधिक वर्षा हो वहां पर इसकी खेती से कोई लाभ नहीं हो पाता क्योंकि जब भी वर्षा कुछ अधिक हो जाती है तभी इसके पौवे गल जाते हैं. इस कारण से इसे ऐसे स्थानों पर बोना उपयोगी होता है जहां पर शीत काल में औसत दर्जे की वर्षा हो अधिक न हो. सूखे जलवायु की आवश्यकता इस कारण से है कि यह तरी को सहन करने में असमर्थ है. इसकी जड़ें तरी से गल कर नष्ट हो जाती हैं. यही कारण है कि तराई क्षेत्र में जीरे की खेती सफलता से नहीं की जा सकती.

मिट्टी और खेत—

हल्की दुमट मिट्टी से लेकर हर प्रकार की दुमट भूमि में जीरा बोया जा सकता है. वैसे तो अन्य प्रकार की भी किसी किसी मिट्टी मे इसकी उपज हो जाती है किन्तु ठीक प्रकार से नहीं हो पाती, इसी कारण से इसके लिये सर्वोत्तम मिट्टी दुमट ही मानी गई है. इसका खेत सदा ऊंचा ही होना चाहिए, कभी भी नीचा न हो क्योंकि वर्षा होने के पश्चात नीचे के खेतों मे पानी भर जाता है या रुक जाता है तथा जीरे के पौधे रुके हुए पानी को कभी भी सहन नहीं कर सकते, रुका हुआ पानी पौधों के लिये काल समान माना गया है. यदि कहीं भी जीरे के खेत मे कभी पानी रुका रह जाये तो समझ लेना चाहिए कि जीरा नष्ट हो गया. खेत मे पानी न रुक पाये इसके लिये यह बात भी सावधानी से ध्यान मे रखनी चाहिए कि खेत बिल्कुल एकसार हो. थोड़ा भी ऊंचा नीचा हो जाने से पानी के खड्डे हो जाने का भय रहता है. खेत का कोई भी कोना पानी का थोड़ा सा भी आश्रय-दाता बनने वाला न हो. इसका पौधा भूमि को पर्याप्त निर्बल

बना देता है. अतः इसे बोने से पूर्व यह देखना भी अति आवश्यक है कि उस खेत में इससे पूर्व किस वस्तु की उपज हुई है. सर्वोत्तम खेत तो वही होता है जिसमें इसे बोने से पूर्व ज्वार, मक्का या कपास की उपज ली गई हो.

खेत की तैयारी--

जिस खेत में जीरे की खेती करनी हो उससे पूर्व खरीफ की फसल में खेत में खूब अच्छी तरह से गोवर का खाद खूब सड़ा गला डाल कर उसमें ज्वार, मक्का या कपास की खेती की जाये. इससे जीरे की उपज के योग्य खाद उस खेत में स्वतः ही मिट्टी-मिश्रित हो जाती है फसल काट लेने के पश्चात जीरे को बोने से पूर्व खेत की तैयारी बहुत ही ध्यान पूर्वक और परिश्रम से होनी चाहिए. खेत की गहरी जुताई करके उसकी मिट्टी में से काटी गई फसल की जड़ों को चुन चुन कर निकाल देना चाहिए. इसके इसके पश्चात खेत में कई वार पट्टा चला कर उसे समतल कर देना चाहिए. खेत में न तो कोई छोटा-मोटा गढ़ा ही रहने पाये और न उसमें मिट्टी के ढेले ही रहें. इस बात का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि खेत में ऊंचा-नीचापन बिल्कुल भी नहीं होना चाहिए.

बीज और बुवाई--

सर्वोपयोगी बीज वह होता है जो पहले वर्ष में अपने ही खेत में तैयार किया गया हो क्योंकि उसके बारे में नया पुराना होने का कोई भी संशय हो ही नहीं सकता. जीरे की खेती में प्रयास यही होना चाहिए कि नये से नया बीज बोने को मिले. तीन साल से

अधिक का बीज वैसे भी ठीक नहीं होता. नया बीज शीघ्र और अच्छा जमता है तथा पुराना बीज या तो जम ही नहीं पाता और यदि जम भी जाता है तो ठीक नहीं जमता तथा विलम्ब से जमता है. यदि बीज बोने लिये बाहर से ही लेना पड़े तो उस समय एक तो यह बात देखनी चाहिए कि वहां जीरे की खेती बहुतायत से होती है या नहीं क्योंकि जहां पर जिस चीज का बाहुल्य होता है वह वहीं से सर्वोत्तम प्राप्त हो सकती है. फिर जगह जगह देख कर सबसे अच्छा बीज छांट लेना चाहिए. बीज जितना मोटा, बड़ा और सफेद होगा उतना ही अच्छा रहेगा. बीज में यह बात भी ध्यान पूर्वक देख लेने की है कि वह फोका तो नहीं है क्योंकि फोका बीज किसी भी हालत में नहीं जम सकता साथ ही अन्य बीजों को भी नहीं जमने देता.

बीज को खेत में बखेरने से पहले जितना भी अधिक से अधिक साफ किया जा सकता है कर लेना चाहिए. जितने भी फोके या घुने बीज हों उन्हें फैंक देना चाहिए. तथा साफ और अच्छे बीजों को पृथक निकाल लेना चाहिए फिर उन बीजों में कुछ ऐसे बीज होते हैं जो जीरे से मिलते हुए होते हैं किन्तु जीरा नहीं होते. उन्हें भी भली प्रकार से छांट कर हटा देना चाहिए. इसके पश्चात साफ बीजों में से भी अच्छे मोटे बीज छांट कर निकाल लेना चाहिए.

पैदावार अच्छी करने के लिये एक एकड़ भूमि में कम से कम दो सेर और अधिक से अधिक ढाई सेर बीज ही बोना चाहिए इससे कम या अधिक नहीं करना चाहिए अन्यथा व्यर्थ की हानि होती है. अधिक बो देने से पौधों की बाढ़ सी आ

जाती है, जिससे जीरे का बीज छोटा और निर्बल आता है तथा भूमि को भी निर्बल बनाता है. कम बोने से परिश्रम उतना ही होता है तथा पैदावार कम होती ही है, अतः बीज की मात्रा ठीक ही रखना चाहिए. बीज को खेत में बखेरने से पूर्व खेत में छोटी छोटी क्यारियां बना लेनी चाहिए और पूरे परिश्रम से उन्हें ठीक समतल बना लेना चाहिए, जिससे कि क्यारियां ऊंची नीची न रहें फिर तैयार किये हुये बीज को राख में या उपयोगी मिट्टी मिला कर उन क्यारियों में बीज छींट देना चाहिए. साथ ही साथ जब बीज क्यारी में बखेर दिया जाये तब तुरन्त ही उसे खेत की मिट्टी में अंगुलियों की सहायता से ऊपर नीचे करके मिला देना चाहिए.

जब सारा बीज खेत में बो दिया जाय तब उसके तुरन्त बाद ही एक सिंचाई की आवश्यकता होगी. अतः तीन इंच पानी की सिंचाई फौरन ही कर देनी चाहिए. यदि इस प्रथम सिंचाई में ढिलाई हो जाती है अथवा पानी कम या अधिक दे दिया जाता है तो बीज जम नहीं पाता. यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए.

भारतीय जलवायु की दृष्टि से बीज की बुवाई का समय भी अनुसन्धानकर्त्ताओं ने निश्चित किया हुआ है. अन्तिम आधे नवम्बर से लेकर जनवरी के प्रथम सप्ताह तक जीरा खेतों में बोया जा सकता है. जनवरी के प्रथम सप्ताह से अधिक देर इस के बोने में कभी नहीं करनी चाहिए. नवम्बर के तीसरे सप्ताह से पूर्व भी नहीं बोना चाहिए अन्यथा या तो बीज जमेगा ही नहीं और जमा तो न तो पैदावार ही अच्छी होगी न ही जीरे का बीज अच्छा लगेगा.

खाद देना—

खेत में जो खरीफ की फसल हो वह ज्वार और मकई की करें उस खरीफ की फसल मे पूरे परिश्रम के साथ खूब खाद देना चाहिए साधारण खाद देने की अपेक्षा उससे दस प्रतिशत अधिक खाद देना चाहिए और फिर वह भी खूब ही गला सड़ा खाद हो. इस फसल मे दिया हुआ खाद ज्वार मकई के कट जाने के पश्चात भी भूमि को जीरे के लिए उपयोगी खादमय भूमि बना देता है यदि यह किसी प्रकार से संभव न हो पाया हो और फसल काट लेने के पश्चात ही खाद देनी हो तो फिर खाद बहुत ही गला सड़ा गोबर का होना चाहिए ऐसी परिस्थति मे कम से दस और अधिक से अधिक पन्द्रह गाड़ी तक गोबर का अच्छा गला सड़ा खाद दिया जा सकता है. खाद कच्चा या हरा नहीं होना चाहिए अन्यथा जीरे की समस्त फसल के नष्ट हो जाने का भय है. वैसे अच्छे अच्छे कृषिकारों के अनुभव से तो यह सिद्ध हो चुका है कि जीरे के लिये जो खाद दी जाती है उसका सर्वोत्तम फल तभी प्राप्त होता है जब, कि खाद पहली फसल मे ही दे दिया गया होगा. फसल मे दिया हुआ खाद अधिक उपयोगी सिद्ध नही हो पाया है.

जुताईयां—

ज्वार और मकई की जब कटाई हो जाए उसके पश्चात बोए जाने वाले जीरे के लिए चार या पांच जुताइयों की आवश्यकता होती है. जब खरीफ की फसल काट ली जाए तब तुरन्त ही खेत की अच्छी गहरी जुताई करके उसमे से जड़ों की अच्छी

तरह से छांट कर निकाल देना चाहिये क्योंकि यदि जड़ें रह जाती हैं तो जीरे के लिए अत्यन्त हा।नप्रद मानी गई है फिर क्योंकि इसमे क्यारियां बनानी होती है और उन्हें समतल भी रखना होता है. अतः कई बार खेत में पाटा चलाना चाहिए जिससे कि खेत में कोई ढेला न रहे और साथ ही साथ मिट्टी भी पर्याप्त बारीक हो जाए ऐसा करने से क्यारियां सहूलियत से बन भी जायेंगी और उनको समतल करने में अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पडेगा.

सिंचाई

खेत में बीज बखेर देने के तुरन्त बाद ही एक तीन इंच सिंचाई कर देनी चाहिए. इसके पश्चात जबतक भूमि पर सफेद मिट्टी सी ना पड़ जाए तब तक दूसरी सिंचाई नहीं करनी चाहिए जब सफेद मिट्टी दृष्टिगत होने लगे तब तुरन्त ही सिंचाई कर देनी चाहिए किन्तु यह ध्यान रहे कि यह दूसरी सिंचाई हल्की हो अर्थात जल लगभग डेढ इंच गहरा दिया जाए. देहाती भाषा में इस प्रकार की सिंचाई को कहीं कहीं पर घुट्टी देना भी कहते हैं. जब खेत में यह घुट्टी दे दी जाती है तब बीज जमने आरम्भ हो जाते किन्तु यदि भूमि ऊपर से सूख जाए और तब तक पौध न जमे तो एक हल्की सी घुट्टी भूमि को देनी चाहिए इसके पश्चात पौध अवश्य ही जम जाती है. जब पौध जम जए तब लगभग दो सप्ताह तक सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं होती अतः दस पन्द्रह दिन तक खेत में पानी नहीं देना चाहिए. इस बीच पानी देने से जीरे की जड़ें गल जाती हैं. इतने दिन में ही पौधे लगभग तीन इन्च ऊंचे हो जाते हैं. जब पौधे तीन इन्च के हो

जायें तब इसमें हल्की सी अर्थात डेढ़ इन्च सिंचाई के पश्चात लगभग पांच या छः सिंचाइयों की और आवश्यकता होगी. सिंचाई करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि सिंचाई मे पानी गहरा न हो जाय. पानी की गहराई अधिक से अधिक डेढ़ इन्च ही हो इससे अधिक नहीं क्योंकि डेढ़ इन्च तक गहरा पानी खेत में खड़ा नहीं रह सकता वरन चौबीस घन्टे के भीतर धरती उसे सोख लेती है. चौबीस घन्टे से अधिक समय तक यदि पानी खेत में खड़ा रह जाता है तो निश्चित ही जड़ों को गला कर पौधों को नष्ट कर देता है. अतः सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान रखने की अति आवश्यकता है. जिस प्रकार हर पौधा पानी चाहता है. सिंचाई के अतिरिक्त यदि उसमें कभी वर्षा का जल भी किसी कारण से भर जाय तो उसे अविलम्ब नीचे की ओर निकाल देना चाहिए.

निकाई—

जीरे के खेत की निकाई तब करनी चाहिए जब पौधे ठीक प्रकार से जम जाये अर्थात उनकी ऊंचाई लगभग तीन चार इन्च तक की हो जाय. इसकी निकाई बहुत ही पतली खुरपी से करने की आवश्यकता है, जिससे कि घास, फूस तथा अन्य पौधे बीन बीन कर खेत से निकाल फैंके जांय. इसी के पास एक अन्य प्रकार के पौधे भी उग आते हैं जो देखने में बिल्कुल जीरे के पौधे की भांति ही दीखते हैं. इन्हें पहचानना जरा कठिन होता है. इन पौधों को तो केवलमात्र तभी पहिचाना जा सकता है जब कि पौधों पर फूल आ जाये क्योकि जीरे के पौधे पर तो छतरी की भांति फैला हुआ फूल का गुच्छा आता है और इन दूसरे पौधों

में बालों की सी शक्ल का लम्बा गोफा आता है. इसे कोई जीरा तथा ईसफगोल कहते हैं. ये पौधे जीरे के लिए अत्यन्त हानिप्रद होते हैं. इनकी जड़ों में इतनी शक्ति होती है कि जीरे की जड़ों तक को चूस जाती हैं. एक पहचान इसकी यह भी है कि इसकी पत्तियों में जीरे की सी सुगन्धि नहीं आती और फिर इसके पत्ते जीरे के पत्तों से अधिक काले और मोटे होते हैं. निकाई के समय अन्य प्रकार के घास-फूस व पौधों को तो खेत से हटा ही देना चाहिए, किन्तु इस प्रकार के पौधों को तुरन्त ही समूल निकाल देने की अत्यन्त आवश्यकता है.

कटाई—

गोफे का रंग पक्का हो जाए तथा दाने भी कुछ सूखने लगे तब जीरा कटाई के योग्य हो जाता है. इसके पौधे को काट कर एकत्रित कर लेना चाहिए तथा बराबर बराबर लगभग पचास पौधों का जुट्ट बांध बांध कर उन्हें एक जगह रख कर निरन्तर तीन चार दिन तक पसीजने देना चाहिए. पौधे को पूर्ण रूप से सूखने भी नहीं देना चाहिए क्योंकि यदि पौधा पूरा सूख जाता है जो फिर जीरे गोफे में से झाड़ना अत्यन्त कठिन हो जाता है. जीरे के छिलके जीरे को भी जकड़ लेते हैं. अतः इसके सूखने से पूर्व ही छड़ी या पतली बेंत के द्वारा जीरे को पौधे में से झाड़ लेना चाहिए जीरा निकाल लेने के पश्चात हल्की हवा में खड़े होकर इसे ऊपर से नीचे गिराने से इसका धोका उड़ जाता है तथा इस प्रकार जीरा साफ हो जाता है. इसको वैसे सूप से फटक कर भी साफ किया जा सकता है जीरा एक एकड़ भूमि में लगभग आठ मन तक प्राप्त किया जा सकता है.

बीमारी—

जीरे में कोई विशेष बीमारी तो नहीं होती जिसके निराकरण के बारे में विचार करने की आवश्यकता पड़े किन्तु कभी कभी खराब मौसम का इसके ऊपर बुरा प्रभाव अवश्य पड़ता है. जैसे जिस समय इसके पौधों पर फूल आए ही हों उस समय यदि तीव्र बिजली चमक जाए तो कभी कभी फूल जल कर झड़ जाते हैं या इतने निर्बल हो जाते हैं कि फिर जीरा पक ही नहीं पाता और सूख जाता है. यदि ऐसा खराब मौसम हो तो हल्की सी राख पौधों पर छिड़क देनी चाहिए इसका और कोई भी निराकरण नहीं है.



चना

खाद्य पदार्थों में गेहूँ के बाद कोई भोज्य पदार्थ आता है तो वह चना ही है. वास्तव में चना दाल वर्ग की वनास्पति ही है. यद्यपि भोजन में इसका प्रयोग उच्च श्रेणी में बहुत कम होता है किन्तु इसकी दाल से नाना प्रकार के मिष्टान्न तैयार होकर बड़े परिवारों के भोजनों की श्रीवृद्धि करते हैं. इस प्रकार चने का प्रयोग छोटे बड़े सभी परिवारों में विभिन्न रूपों में होता रहता है.

चने की उत्पादन लगभग सारे भारतवर्ष में होता है किन्तु पैदावार की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का नम्बर प्रथम श्रेणी में तथा पंजाब का दूसरी श्रेणी में आता है और इन्हीं प्रान्तों का उत्पादन ही सारे भारत की आवश्यकता का दो तिहाई भाग पूरा करता है. अन्यान्य प्रान्तों की अपेक्षा क्षेत्रफल और पैदावार की दृष्टि से बिहार प्रथम है इसका मुख्य कारण यही है. कि यहां की भूमि की उर्वरा शक्ति चने के लिए अत्यन्त अच्छी है.

चने के पौधे साधारण खेतों में डेढ़ दो फुट हाथ, उर्वर भूमि में सिंचाई होने पर दो ढाई फुट ऊंचे भी हो जाते हैं. चने का पौधा छोटा होते हुए भी अनेक शाखाओं से युक्त होता है और चने के फल जिन्हें होले या बूट कहते हैं बखेरवां लगे हुए होते हैं. बूटोंमें साधारणतया एक दाना होता है पर किन्हीं किन्हीं में दो दाने भी निकल आते हैं.

जातियां—

मटमैले अथवा कुछ पीलापन लिये हुए चने तो बहुतायत से मिलते ही हैं किन्तु इसके विपरीत जाति के अनुसार लाल, हरे, काले, नीले और सफेद चने भी होते हैं सन् १६१५ में एक कृषक महोदय को चने के ढेर में दो दाने गुलाबी चने के मिले और उन्हीं दो दानों से उन्होंने उसका फैलाव मध्यप्रदेश में किया. इस प्रकार गुलाबी चना भी एक जाति में आ जाता है. यह चना भूनने के लिए अधिक अच्छा साबित हुआ है.

चनों की दालें तो पीलापन लिए हुए ही होती है. यह अनेक रंग केवल ऊपरी छिलकों पर पाए जाते है. सफेद चने को काबुली चना भी कहा जाता है, इसका आकार अन्य चनों की अपेक्षा बड़ा होता है.

जलवायु—

किसी भी चीज की खेती करने के लिए उसके उपयुक्त जलवायु वाले स्थान ढूंढने पड़ते है. अन्यथा परिश्रम का अच्छा फल नहीं प्राप्त होता है. जलवायु की दृष्टि से गेहूं की अपेक्षा चने को अधिक उष्ण वातावरण की आवश्यकता होती है इसी लिए चनों की बुवाई गेहूँ से पहले ही करनी पड़ती है. इसके बीज अंकुरित होने के लिए भी ऐसा वातावरण होना आवश्यक है. वर्षा के दृष्टिकोण चना ४०-५० इंच वर्षा वाले स्थान में अच्छी तरह पैदा किया जाता है.

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि चना उष्ण जलवायु चाहता है इस लिए चने के पौधे अधिक सर्दी नहीं सहन कर

सकते हैं. अधिक सर्दी से चने के खेतों को हानि होने की सम्भावना रहती है. माघ-पूस के महीने में जिन दिनों अधिक सर्दी पड़ती है तथा ठन्डी हवांए ज्यादा तेज चलने लगती हैं तो किसान को अपने चने की खेती के लिए भय उत्पन्न हो जाता है. दुर्भाग्य से उन दिनों यदि पाला पड़ जाय तो चने के खेत के खेत नष्ट हुए विना नहीं रहते हैं.

चने की खेती करने के लिए जलवायु का अध्ययन भलीभांति कर लेना चाहिए तथा जहां तक सम्भव हो ऐसा स्थान खेती के लिए चुनना चाहिए जहां अधिक ठंडी हवाएं न चलती हों और पाला पड़ने की कम सम्भावना हो क्योंकि चने का पौधा ऊष्ण वातावरण में ही भली प्रकार फलता फूलता है.

भूमि और जुताई--

जिस प्रकार जलतायु की अनुकूलता खेती के लिये आवश्यक है. उसी प्रकार बीज के अनुसार अच्छी भूमि का चुनाव भी खेती का मुख्य अंग है. चने की खेती करने के लिए केवल बलुआ मिट्टी ही अच्छी नहीं होती है, इसके अतिरिक्त चना अन्य सभी प्रकार की भूमि में अच्छी तरह हो जाता है. दोमट और मटियार दोमट भूमि में चने की फसल अच्छी प्राप्त होती है सारांश यह है कि उन सभी भूमियों में जिन में गेहूँ पैदा हो सकता है चना भी भली प्रकार उत्पन्न किया जा सकता है इसके. अतिरिक्त उस हल्की भूमि में जिसमें गेहूं नहीं पैदा होते किन्तु चने की फसल हो जाती है.

चने की बुवाई के लिए गेहूँ की भांति परिश्रम युक्त महीन जुताई की आवश्यकता नहीं पड़ती है. छोटे मोटे ढेलों में भी

चने वो देने से फसल तैयार हो जाती है. यदि खेत मे चने वोने से पूर्व कोई खरीफ की फसल की गई हो तो फसल उठाते ही खेत की जुताई करके चना वो देना चाहिए. यदि वरसात मे कोई फसल खेत मे न हो तो एक वार हल तथा दो वार वखर चला कर चने का वीज डाला जा सकता है,

वीज और वुआई--

जैसा कि कहा जाता है जैसा वोओगे वैसा ही काटोगे यह एक कटु सत्य है. खेती करने वालों को वीज के चुनाव मे विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है. वहुधा ऐसा देखने में आता है कि ग्रामीण कृषक खेत पर अनवरत प्रयत्न करता हुआ भी अपने गाढ़े पसीने का पारिश्रमिक नहीं प्राप्त कर पाता. इसका एक मात्र कारण ज्ञान की कमी तथा साधनों का उचित प्रयोग न होना ही होता है.

चने की खेती करने के लिये खेत की तैयारी कर लेने के वाद कृषक को वढ़िया से वढ़िया वीज प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए. सरकार की तरफ से उत्तम खेती करने के लिए प्राय. सभी स्थानों पर वीज भंडार खोले हुये है इसलिए इन सरकारी भंडारों से वीज लेकर खेती करनी चाहिये. यदि किसी कारणवश सरकारी भडार से वीज न प्राप्त हो सके तो किसी कृषक से ही अच्छे वीज ले लेने चाहिये यदि वाजार से ही वीज खरीदने हों तो उत्तम से उत्तम वीज प्राप्त करने के लिए कुछ पैसों का मोह नहीं करना चाहिए.

अन्य फसलों की भांति चने के बीजों में भी विभिन्न जातियां और नम्बर पाये जाते हैं जिनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है.

उत्तरप्रदेश-- २८ एस ४, एन. पी. १७, २५, ५३, ५८, २, ६.

मध्यप्रदेश और मध्य भारत— ए. डी. ५, ६ नं० २८ धार २ (गुलावी) इन्दौर ४ व ७७७.

वम्बई-- नं० १८, १२, (भूरा) निफाड़ ८१६ (पीला)

पंजाव—टी १ (कावुली) नं० १७ (भूरा), सक्कर लाल नं० १५ (पीला)

चने हमेशा गेहूँ से पहले वोये जाते हैं इनके बोने का समय सितम्वर तथा अक्टूवर मास का है. पूर्व भारत के कुछ स्थानों में वुवाई कुछ दिन पहले की जाती है तथा पश्चिमी भागों में कुछ दिन वाद वोए जाते हैं. प्रति एकड़ के हिसाव से चने का वीज गेहूँ की तरह उतना अन्तर नहीं रखता है किन्तु फिर भी विभिन्न स्थानों में इसकी मात्रा में थोड़ा वहुत हेर फेर पाया ही जाता है. उत्तर प्रदेश में २०-२५ सेर प्रति एकड़ के हिसाव से वीज डाला जाता है किन्तु पजाव के किसान १५ सेर ही वीज वोते हैं इसके विपरीत मध्य प्रदेश में चने की खेती २५-३० सेर प्रति एकड़ के हिसाव से वीज वोकर की जाती है और वम्वई में लगभग २५ सेर ही वीज डाला जाता है. इस प्रकार चने के खेत में वीज की मात्रा कम ज्यादा होती रहती है. मिश्रित फसल में यह अन्तर इच्छानुसार घटाया वढ़ाया जा सकता है.

चने की वुवाई उसके साथ ली जाने वाली फसल पर वहुत कुछ निर्भर करती है क्योंकि चने की खेती गेहूँ, जौ, सरसों

अलसी आदि फसलों के साथ कर ली जाती है. पंजाब के कुछेक स्थानों पर चने की बुवाई छिटका कर की जाती है. छिटका कर बीज बोने के बाद हल चला दिया जाता है. वैसे चना कतारों में बोना ही उपयुक्त पाया गया है, कहीं कहीं हलों के चास से बीज गिराते हैं. नाली वाले हल से ही बुवाई करनी चाहिए जब गेहूं या जौ के साथ चने की फसल लेनी हो तो चने का बीज उनके बीजों के साथ ही मिला कर बो देना चाहिए.

सरसों या अलसी के साथ ही जब चना बोया जाये तो इनकी बुवाई कतारों में होनी चाहिए तथा दोनों फसलों की कतारें पृथक पृथक होनी चाहिए और प्रत्येक कतार में १०-१२ इंच का अन्तर पर्याप्त रहता है. सिंचाईवाले खेतों में यह अन्तर कुछ कम कर देने चाहिए किन्तु फिर भी छः इंच से कम नहीं होना चाहिए.

निंदाई—

वैसे तो चने की फसलें लेने के लिए विशेष रूप से निंदाई करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है. किन्तु पौधे जब कुछ बड़े हो जायें अर्थात जब इनकी ऊंचाई लगभग ६-७ इंच की हो उस समय पौधों के ऊपर की कोपलें अर्थात फुनगियां तोड़ना लाभप्रद रहता है. हमारे देश में चने का साग खाने का भी प्रचलन है. इस दृष्टि से इस प्रकार की तोड़ी गई कोपलें बाजार में बेच कर पैसे उठाये जा सकते हैं साथ ही साथ पौधों की बाढ़ भी अच्छी आती है.

कहीं कहीं पर इस प्रकार की खुटाई भेड़ बकरी चराकर भी कर ली जाती है. जानवरों द्वारा कोपलें चराने पर पौधों के जड़ से उखड़ जाने का भय रहता है. इसलिए मजदूर लगा कर ही

खुटाई करना लाभप्रद है. उन खेतों में जहां पर पौधों की वाढ़ तेज न हो कोपले तोड़ना विशेष लाभप्रद नहीं होता किन्तु अच्छी भूमि वाले खेतों में जहां पौधों की वाढ़ तेज हो कोपलें तुड़वाने से अच्छी फसल प्राप्त होती है. इस प्रकार जव निदाई की जाये तव खेत के अन्य घास फूस को उखाड़ डालना चाहिए साथ ही चने के वह पौधे जो किसी प्रकार व्याधि में ग्रस्त हो गए हैं उखाड़ डालना चाहिए.

सिंचाई—

जिन स्थानों पर नहरों से पानी प्राप्त होने की सुविधा प्राप्त हो उन स्थानों पर ही विशेष रूप से सिंचाई की जाती है. कहीं २ पर कुओं के द्वारा भी चने के खेत सींचे जाते हैं. वैसे तो चने का पौधा पानी नहीं मांगता है किन्तु दो वार सिंचाई कर देना लाभप्रद ही होता है.

जव किसी अन्य फसल के साथ चने की खेती की जाये तो इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि मुख्य फसल के अनुसार खेत की सिंचाई होती रहे. जैसे गेहूँ के साथ चने की खेती करने पर गेहूँ मुख्य फसल होती है तथा चना गौण. इसलिए मुख्य फसल के अनुसार ही खेत को खाद देनी चाहिए तथा सिंचाई करनी चाहिए.

खाद देना—

चने की खेती के योग्य भूमि वनाने के लिए खेतों में नत्रजन, स्फुट और सुपर फास्फेट अथवा हड्डी का चूरा देने की आवश्यकता पड़ती है. औसतन चने की उपज प्रति एकड़ ८ मन और भूसा

१० मन के करीब होता है. अच्छी सिंचाई से यह उत्पादन कुछ बढ़ भी जाता है अगर १२ मन की उपज पर खाद का हिसाब लगाया जाये तो बीज मे १४ सेर तथा भूसे मे ८ सेर यानी लगभग २२ सेर नत्रजन पड़ी. इतनी नत्रजन पहुँचाने के लिए खेत मे यदि गोबर का खाद देना है तो उसमे उपर्युक्त मात्रा के अनुरूप नत्रजन प्राप्त करने के लिए २०० मन गोबर का खाद देना होगा किन्तु चने की खेती मे छोटे छोटे कीटाणु खेत की भूमि की इस प्रकार गुड़ाई करते रहते हैं जिससे कि पौधों को पर्याप्त मात्रा में नत्रजन मिलता रहता है. इसलिये १०० मन खाद ही पर्याप्त होता है.

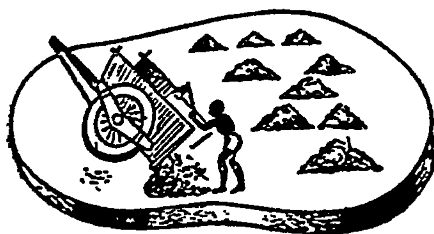
दाल की जाति की फसलों के लिये स्फुट की मात्रा खेत की मांग से लगभग चौगुनी डालनी चाहिए. खाद की गणना के अनुसार प्रति एकड़ ५ सेर स्फुट होता है किन्तु जैसा कि बताया गया है इसकी चौगुनी मात्रा अर्थात २० सेर स्फुट पहुँचे इतनी खाद खाद डालनी चाहिए. स्फुट पहुचाने के लिये सुपरफास्फेट अथवा हड्डी का महीन चूरा डाला जा सकता है इसकी मात्रा लगभग २॥ मन (ढाई मन) होनी चाहिए.

फसल लेना—

शहरों के निकट चने की खेती करने वाले किसान बहुधा हरे चने को ही बेच डालते है. लेकिन यदि पकी हुई फसल लेनी हो है तब पौधों को उस समय उखाड़ा जाता है जब न तो पूर्ण रूप से पक कर सूख गये हों और न ही कच्चे हों. यदि खेतों मे पूर्ण रूप से पौधों को पकाया जायेगा तो जब वे उखाड़े जायेंगे तो उनके

वीज [चने] खेतों में ही झड़ जायेंगे. इसलिए चने के पौधों को अपरिपक्व अवस्था में खलिहान में एकत्रित करना . चाहिए. अपनी अपनी सुविधानुसार मजदूर लगा कर अथवा परिवार सहित किसान चने के पौधों को उखाड़ सकता है. एक एकड़ के लिए ५ व्यक्ति पर्याप्त हैं.

चने को गहाई अर्थात् दांय चलाने की क्रिया गेहूँ के ही समान है.



अरहर

अरहर की दाल दालों के मध्य अपना एक प्रमुख स्थान रखती है. भारतवर्ष में यह दाल प्रायः सभी स्थानो पर बहुलता से उत्पन्न होती है किन्तु कानपुर की अरहर की दाल अपना एक विशेष ही महत्व रखती है. जिस प्रकार चमन के अंगूर, काश्मीर के सेब और नागपुर के सन्तरे प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार कानपुर की अरहर की दाल अपने जल्दी पकने के गुण तथा स्वाद के कारण ख्याति-प्राप्त है.

जातियां—

वास्तव में अरहर की दाल का मूल्यांकन इसके पकने की अवधि पर ही किया जाता है. कुछ दालें जल्दी पकती हैं और कुछ देर में. इसीलिए अरहर की दाल को दो श्रेणियों में गिना जाता है अर्थात जल्दी पकने वाली और देर से पकने वाली. ऐसा देखने मे आया है कि जिन दालों के बीज मोटे होते हैं वे प्रायः जल्दी पक जाते हैं परन्तु बीज की मोटाई पर ही यह बात पूर्णतया निर्भर नहीं होती. भूमि का असर भी दाल मे पकने के गुण की सीमा को घटा बढ़ा देता है. जिस खेत की मिट्टी में चूने की मात्रा पर्याप्त होती है उस खेत की दाल जल्दी पकने के गुण से सम्पन्न रहती है. इस प्रकार के अनुभव कृषि-विशेषज्ञों ने अपने अनेकानेक अनुसन्धानो द्वारा किये हैं.

अरहर को दल कर दाल निकालने की जो विधियां हैं उनसे भी दाल के ऊपर बहुत कुछ असर पड़ता है. कुछ किसान अपने घर में ही अरहर की दाल को दलाते हैं. दाल का छिलका पृथक करने के लिए अरहर को पानी में भिगो कर बोरों में दाब दिया जाता है. कुछ समय पश्चात जब उसमें अंकुर फूटने लगते हैं तो उसे धूप में सुखा कर दला जाता है. ऐसा करने से दाल छिलके से शीघ्रता से पृथक हो जाती है साथ ही दाल के दाने टूटते भी नहीं हैं किन्तु देखा गया है कि इस प्रकार से तैयार की गई दालें शीघ्रता से पकती नहीं हैं. कुछ कुओं का पानी दाल के पकाने में सहायक और बाधक होता है. बड़े बड़े कारखानों में दाल मशीनों के द्वारा तैयार की जाती है.

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि अरहर दो प्रकार की होती है. जल्दी पकने वाली अरहर के पौधे तीन चार फुट ऊंचे तथा देर से पकने वाली अरहर के पौधे छः सात फुट तक ऊंचे होते हैं. मध्य भारत, मध्य प्रदेश तथा दक्षिणी भारत के कुछ भागों में इस जाति की खेती होती है. दूसरी श्रेणी की अरहर उत्तर प्रदेश, उत्तर भारत तथा बिहार में पैदा होती है.

अरहर के पौधे भी दो प्रकार के ऊंचाई की दृष्टि से बताये जा चुके हैं किन्तु फैलाव की दृष्टि से भी उनमें दो जातियां होती हैं. एक जाति उस अरहर की होती है जिसके पौधे खड़े होते हैं तथा दूसरी जाति के पौधे छत्तेदार फैलते हैं. सुविधा की दृष्टि से तथा खेत की सफाई के हिसाब से खड़े पौधे अच्छे होते हैं. अरहर की फलियां इन्हीं पौधों पर गुच्छों के रूप में लगती हैं

तथा किन्हीं पर छितरा कर. फलियों में लगभग एक से लेकर सात तक अरहर के दाने होते हैं फलियो का रंग भूरा, हरा; हरा और काली धारी वाला पाया जाता है.

अरहर के पौधों की जड़ें जमीन मे काफी गहराई तक चली जाती हैं और इस वजह से वे न केवल पौधों को पानी प्राप्त करने में ही सहायता करती हैं अपितु जमीन के रसायनिक तत्व। को भी चूस कर पौधों को प्रदान करती है

जलवायु---

अरहर के बीज अपनी विशेष जाति के अनुसार ही जलवायु की मांग करते हैं अर्थात सब प्रकार की अरहर किसी एक विशेष जलवायु में नहीं पैदा की जा सकती. साधारणतया इसके बीज अकुरित होने तथा फलने से कुछ पूर्व तक के समय मे ऊष्ण और तर जलवायु चाहते हैं कुछ जातिया ऐसी भी पाई गई है जो सर्दी मे ही पक जाती है और कुछ सर्दी के बाद. जिन दिनो अरहर के पौधो पर फूल आ रहे हो उन दिनो आसमान का साफ होना कृषक के लिये सौभाग्य की बात है. इस अवसर पर यदि आकाश मेघाच्छादित हो जाये और पानी पड़ जाये तो लाभ की आशा सर्वथा नष्ट हो जाती है क्योंकि फूल आते समय यदि पौधो पर धूप पड़ती है तो फलिया काफी मात्रा मे और बीजदार लगती हैं. पाला भी अरहर की खेती का शत्रु है. जलवायु की दृष्टि से ३०-४० इंच वर्षा वाले स्थान अरहर की खेती के लिये उपयुक्त रहते हैं.

खेत की तैयारी--

अरहर की खेती करने के लिये दुमट मिट्टी ही श्रेष्ठ रहती है. भारी भूमि जिसमें पानी अच्छी तरह नहीं परजता हो खेती के लिए अच्छी नहीं होती. दुमट और मटियार दुमट में ही अरहर की खेती अच्छी रहती है.

यदि अरहर ज्वार बाजरे के साथ बोई जाए तो इसके लिए जुताई उतनी ही पर्याप्त होती है जो ज्वार बाजरे की खेती के लिए की जाए. यदि अरहर अकेली ही बोनी हो तो ग्रीष्म में एक बार हल और दो बार बखर चला देना चाहिए. वर्षा के दिनों में आषाढ़ के महीने में खेत में जो जंगली घास पात पैदा हो जाए उन्हें दबा कर नष्ट करने के लिए हल या बखर चला देना ठीक रहता है. यदि अरहर की खेती किसी अन्य फसल के साथ लेनी हो तो प्रति एकड़ लगभग दो सेर बीज पर्याप्य होता है. केवल अरहर की खेती करने के लिए एक एकड़ भूमि में सात सेर बीज डालना चाहिए.

बुवाई--

मिश्रित खेती जब ज्वार बाजरे के साथ की जाए तो अरहर को उन्हीं के साथ बो दिया जाता है किन्तु जब केवल अरहर की खेती की जाती है तो आषाढ़ के अन्त में बुवाई की जानी चाहिए. जो अरहर माघ में पकती हो उसको तो जल्दी बोना चाहिए तथा चैत में पकने वाली को कुछ देर से.

अरहर की बुवाई नाली वाले हल या अर्गड़े से कतारों में की जाती है. जब मिश्रित फसल के रूप में इसकी खेती की जाती है तब कभी कभी एक ही कतार में इसके बीज भी मिला दिये जाते हैं. सुविधा की दृष्टि से अलग कतारें बनाना ही अच्छा रहता है इसके लिए मुख्य फसल की दो तीन कतारों के बाद एक कतार अरहर की बोनी चाहिए.

केवल अरहर की खेती करने के लिए अरहर के बीज की जाति के अनुसार कतारों की दूरी निश्चित करनी चाहिए. मध्य भारत, मध्य प्रांत तथा दक्षिणी भारत में पैदा होने वाले अरहर के छोटे पौधे डेढ़ दो फुट की दूरी पर कतार बना कर खेती के लिए सुविधाजनक रहते हैं. किन्तु बड़ी जाति के पौधों के लिए कतारों का यह अन्तर कुछ अधिक रखना पड़ता है इसके साथ ही खेत की भूमि की उर्वरा शक्ति भी इस अन्तर के निर्धारण में सहायता करती है.

जिस अरहर के पौधे बड़ी और खड़ी जाति के हों, कमजोर भूमि में दो फुट और उर्वरा भूमि में डेढ़ फुट के अन्तर पर बोनी चाहिए. छत्तेदार और फैलने वाले पौधे ढाई तीन फुट के अन्तर पर ठीक रहते हैं.

बीज—

अरहर की खेती करने से पूर्व बीज के चुनाव में पर्याप्त साव-धानी की आवश्यकता है. अरहर के बीजों में 'र विल्ट' नाम की बीमारी बहुधा लग जाती है. इस बीमारी के बीज से तैयार हुआ पौधा अचानक सूख जाता है. इसलिए बीजों के चुनाव में

हमेशा सतर्क रहना आवश्यक है, क्योंकि जैसा भी बीज डालोगे वैसी ही पैदावार भी होगी. इसके लिए खड़ी अरहर टी. ५१ और छत्ते वाली टी. ८० उपयुक्त रहती है. उत्तर प्रदेश में सी. १७, ५१, ५६, ६६, १३२ आदि जातियां खेती के लिए उचित मानी गई हैं.

बीज के चुनाव में यदि किसी प्रकार की बाधा या अड़चन महसूस हो तो समीप के सरकारी कृषि भण्डार से अथवा प्रांतीय कृषि विभाग के कार्यालय से पूछ ताछ करने में संकोच नहीं करना चाहिए. बीज की खरीद सदा ही शासकीय बीज भण्डार से करना ही लाभप्रद है, यदि अन्यत्र कहीं से बीज प्राप्त किया जाये तो उसकी विश्वसनीयता पर सन्देह रहता है.

निंदाई-सिंचाई---

अरहर के पौधों की बाढ़ बहुत मन्द गति से होती है. इस लिए खेत के अन्दर अनावश्यक घास-पात नहीं बढ़ने देना चाहिए. कतारों के मध्य में कड़पा या डोरा डुंडिया चलाकर निंदाई की जा सकती है. निंदाई करते समय विल्ट वाले तथा व्याधि ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर खेत से पृथक नष्ट कर देना चाहिए. कतारों के मध्य में जहां पौधों की दूरी अपेक्षा कृत कम हो गई है उसे भी काट छांट करके ठीक करते रहना चाहिए.

अरहर के पौधों की जड़ें जमीन में काफी गहरी रहती है, इसलिए सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती.

जब अरहर की दाल की मिश्रित खेती मक्का, बाजरा या ज्वार के साथ की जाती है तो पहले मुख्य फसलों को काट लिया जाता

है तथा अरहर सब से बाद में काटी जाती है. रबी की फसल साथ अरहर की खेती का हेरफेर एक साल गेहूं, तथा दूसरे साल अरहर बोकर किया जाता है किन्तु जहां अरहर अकेली बोई जाती है वहां ज्वार या कपास के साथ इसका हेर फेर करना चाहिए.

अरहर के पौधों मे पाई जाने वाली मुख्य व्याधि विल्ट नाम का रोग ही है. यह रोग एक प्रकार से बीजो में ही पाया जाता है. इसलिए बीज का चुनाव करते समय ऐसी जाति के बीज खरीदने चाहिए जिन पर इस रोग का आक्रमण, जल्द न होता हो. यदि खेत के अन्दर इस रोग से ग्रसित कुछ पौधे दिखाई पड़ें तो उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए.

खेतों के अन्दर कुछ कीड़े भी इसकी फसल को हानि पहुँचाते हैं, हरे रग का एक रोंयेदार एक कीड़ा होता है तथा भूरे रग का कुछ कटे हुए परदार एक छोटा सा कीडा होता है. ये कीड़े फलियों मे घुस कर अरहर के दानों को नष्ट कर डालते है. चने के समान ही एक कीड़ा इसमे और पाया जाता है. कवच पंखी नाम का कीड़ा भी फलियों मे घुसकर फसल को खराब करता है. इस कीड़े के छोटे बच्चे दानों के अन्दर घुसे रहते हैं और जब अरहर अनाज भण्डारों मे भर दी जाती हैं तो अपनी वंश परंपरा को बढ़ाते हुये दाल को नष्ट करते रहते हैं.

इस शत्रु से बचाव करने के लिए एकमात्र सरल उपाय यही है कि अरहर को गोदामों मे भरने से पूर्व भली भांति सुखा लिया जाए और राख अथवा सेलखड़ी के पाउडर मे लपेट कर रखा जाए. अरहर को दाल का रूप दे देने से भी इस कीड़े से बहुत कुछ बचाव हो जाता है.

उड़द

अन्य दालों की अपेक्षा उड़द की दाल का महत्व भी कुछ कम नहीं है. पंजाव प्रांत में इस दाल का प्रयोग बहुतायत से होता है, मद्रास तथा बंगाल के निवासी भी इसे खाना पसन्द करते हैं. उड़द की दाल में पौष्टिक तत्व अन्य दालों की अतेक्षा कहीं अधिक होता है. इसकी दाल के पापड़ और वड़ी आदि भी स्वादिष्ट पदार्थों की वृद्धि करते हैं. वलदायक होने के कारण इसके भोज्य तत्वों की तुलना मांस के समान ही की जाती है. अधिक श्रम करने वालों तथा स्तनपायी माताओं के लिये लाभप्रद है.

उड़द की खेती सारे भारत में होती है. इसका पौधा डेढ़ दो फुट के करीव ऊंचा होता है. पौधे के तने, शाखाओं तथा पत्तों पर छोटे छोटे रोये होते हैं. ऐसे रोयें मूंग की दाल के पौधों पर नहीं होते. मूंग और उड़द के पौधों में यह भी अन्तर है, उड़द की फलियां लगभग डेढ़ दो इंच लम्बी होती हैं जवकि मूंग की फलियां इससे कहीं अधिक लम्बीं होती हैं. इसके वीज काले और हरे रंग के पाये जाते हैं जिन्हें वोलचाल की भाषा में काली उड़द और हरी उड़द कहते हैं. उड़द की दाल मूंग की अपेक्षा कुछ सफेदी लिये हुए होती है.

जातियां—

गणना की दृष्टि से उड़द की तीन जातियां पाई जाती हैं. वे उड़द जो जल्दी पकते हैं तथा जिनके वीज मोटे और काले होते

हैं, दूसरी प्रकार के उड़द वो होते हैं जो देरी से पकते हैं तथा इनके बीज छोटे तथा हरे होते हैं, कहीं कहीं इसे उड़दी भी कहते हैं, तीसरी प्रकार के उड़द भूरे रंग के पाये जाते हैं

बुवाई—

उड़द की खेती करने के लिये मूंग की अपेक्षा कुछ अधिक वर्षा वाले स्थान ही ठीक रहते हैं. साधारणतः ३५ इंच की वर्षा पर्याप्त होती है इससे अधिक वर्षा हानिप्रद रहती है. एक ओर जहां उड़द की खेती मूंग से कुछ अधिक वर्षा चाहती है कि इस के विपरीत वातावरण की दृष्टि से भी मूंग की तुलना में उड़द की खेती के लिये उष्ण वातावरण ही ठीक रहता है.

उड़द की बुवाई बीज के गुण तथा खेत की तैयारी के ऊपर निर्भर करती है. अकेली उड़द की फसल लेने के लिए ५-६ सेर प्रति एकड़ के हिसाब से बीज पर्याप्त होता है. किन्तु जब इसकी खेती किसी मिश्रित फसल के द्वारा की जाय तो प्रति एकड़ दो सेर बीज ठीक रहता है.

शीघ्र तैयार होने वाली उड़द को वर्षा के आरम्भ मे बो देना चाहिए अर्थात आषाढ़ के महीने मे. छोटी उड़द जिसे उड़दी भी कहते हैं धान के खेतों की फसल ले लेने के बाद अक्टूबर के महीने मे की जाती है. केवल उड़दी की फसल जुलाई मे ही बोई जाती है.

मिश्रित फसल के रूप से उडद का बीज अन्य फसल के बीज के साथ ही मिला कर बो दिया जाता है और जिस प्रकार उसकी बुवाई उचित होती है की जाती है. किन्तु केवल उड़द की खेती

जब करनी हो तो इसे कतारों में ही बोना चाहिए. कहीं कहीं पर छिटका कर भी बोते हैं, पर कतारों में बोना ही लाभप्रद है.

जब उड़द की बुवाई कतारों में की जाय तो प्रत्येक कतार में डेढ़ फुट का अन्तर होना चाहिए तथा उड़द के प्रत्येक पौधों में लगभग एक फुट का अन्तर पर्याप्त होता है.

बुवाई करने के लिए उत्तम बीज प्राप्त करना चाहिए. इसके लिए सरकारी कृषि भण्डार खुले हुए हैं. अपने खेत की फसल तथा तैयारी के अनुसार कृषि अधिकारियों से परामर्श करके सही नम्बर का बीज प्राप्त कर लेना चाहिए.

व्याधियां और शत्रु—

उड़द और मूंग में पाई जाने वाली व्याधियां और शत्रु कीड़े लगभग समान ही होते हैं. इनमें से कुछ विशेष हानिप्रद नहीं होते किन्तु कुछ कीड़े फ़सल को हानि भी पहुंचाते हैं. इसलिए खेती करने वालों को सदैव ही सतर्क रहना चाहिए और जब उनकी उत्पत्ति हो उन्हें तुरन्त नष्ट कर देना चाहिए, चाहे वो हानिप्रद हो अथवा नहीं क्योंकि शत्रु आखिर शत्रु ही है उसे छोटा बड़ा नहीं समझना चाहिए.

प्रथम प्रकार में पत्तों में पाया जाने वाला कवचपंखी नाम का कीड़ा होता है. वैसे यह कीड़ा कोई विशेष हानि नहीं पहुँचाता है किन्तु पत्तों में छेद करके उन्हें विकृत कर देता है.

दूसरी प्रकार का शत्रु कीड़ा भी अधिकतर पत्तियों में ही पाया जाता है. इसके शरीर पर बारीक बारीक रोयें होते हैं. इस लिए इसे बाल कीट भी कहते हैं. इसकी मादा एक ही पत्ते पर अनेकानेक अण्डों को रख देती है जिससे इसको सरलता से पहचाना जा सकता है. इस प्रकार जब पत्तों पर इसके अण्डे

अथवा छोटे छोटे कीड़े पाए जाये तो इन्हे चुनवा कर नष्ट कर देना चाहिए. इन बाल कीटों की एक विशेपता यह भी होती है कि यह प्रकाश पर बहुत शीघ्र आकर्पित हो जाते हैं. इसलिए इन्हे प्रकाश पर आकर्षित करके नष्ट किया जा सकता है.

पौधों पर पाई जाने वाली व्याधियों में हरदेवाली जिसे अंग्रेजी में रस्ट कहते हैं तथा दूसरी पत्तों पर सफेद धारी वाली व्याधि पाई जाती है. वैसे यह व्याधियां विशेष हानिकर नहीं होती है, किन्तु फिर भी इनके प्रति असावधानी नहीं बरतनी चाहिए और जिन पौधों पर यह व्याधियां पाई जायें उन्हें नष्ट कर डालना चाहिए.

जलवायु के परिच्छेद में बताया जा चुका है कि उड़द की फसल को यदि भूमि का वातावरण ठीक है तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती. किन्तु अधिक सूखे स्थानों पर जब उड़द की खेती की जाए तो वहां आवश्यकतानुसार एक या दो वार सिंचाई कर देना ही लाभप्रद है.

हेर फेर—

यदि उड़द की फसल अकेली ही करनी हो तो गेहूँ की खेती के साथ इसका हेर फेर अच्छा रहता है. किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि जब गेहूँ की खेती के साथ उड़द का हेर फेर किया जाए तो उड़द का बीज शीघ्र पकने वाली जाति का लेना चाहिए. जल्दी पकने वाले धान के खेतों मे भी उड़द की फसल ले ली जाती है. साधारणतया उड़द की मिश्रित फसल मक्का के खेतों मे ही ली जाती है.

भूमि की जुताई—

उड़द की खेती करने के लिए वो खेत जहां मक्का की फसल अच्छी आती है ठीक रहता है अर्थात दुमट मिट्टी उड़द की खेती के लिए उपयुक्त है. वलुआ दुमट में भी उड़द की खेती अच्छी हो जाती है.

मिश्रित खेती करने के लिए खेत की जुताई उस फसल के बीज के आधार पर करनी चाहिए जिस फसल के साथ उड़द की मिश्रित खेती करनी हो. यदि केवल उड़द की ही फसल लेनी हो तो इसकी जुताई मूंग की अपेक्षा कुछ बारीक करनी चाहिए अर्थात दो बार हल और दो बार बखर चला देना जरूरी है.

खाद—

अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए खेतों में खाद देना अत्यन्त आवश्यक है. वैसे भी कुछ समय तक निरन्तर वगैर खाद दिए फसल लेने पर खेत की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है और उत्पादन कम हो जाता है. वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार उड़द की खेती करने के लिए स्फुट की मात्रा बढ़ा देना ही पर्याप्त होता है. यदि थोड़ा नत्रजन भी खेत में पहुँचा दिया जाए तो भूमि की उत्पादन शक्ति शीघ्र नष्ट नहीं होती. इसके लिए २० सेर स्फुट प्रति एकड़ तथा लगभग १५ सेर नत्रजन की खाद पर्याप्त होती है.

उत्पादन—

जल्दी तैयार होने वाली फसल जो आषाढ़ के महीने में बोई जाती है सितम्बर में अर्थात भाद्रपद आश्विनी तक तैयार हो

जाती है. छोटी उड़दी कार्तिक यानी अक्टूबर नवम्बर में तैयार होती है, धान के बाद बोई जाने वाली उड़द लगभग तीन चार महीने में तैयार हो जाती है. कुछ नीचे स्थानों पर उड़द की बुवाई माघ के महीने में कर दी जाती है. यह फसल जेठ के अन्त तक तैयार हो जाती है.

यह बताया जा चुका है कि उड़द की फलियां ही इसकी पैदावार हैं. फसल जब तैयार हो जाती है तो ये फलियां चटक कर इसके बीज खेत में गिरने लगते हैं. इसलिए कभी भी फसल उस समय तक खेत में नहीं रहने देनी चाहिए कि फलियां अपना बीज खेत में गिरा दें. इस सावधानी को निभाने के लिए फसल को पूर्ण रूप से पकने से पूर्व ही खलिहानों में उठा लेना चाहिए.

खलिहानों में फसल सूख जाने पर एक या दो बैलों द्वारा दायें (घानी) चला कर तथा उड़ान करके भूसी और उड़द को पृथक कर देना चाहिए. भूसे का उत्पादन उड़द से लगभग तिगुना हुआ करता है तथा उड़द की पैदावार चार पांच मन प्रति एकड़ पाई जाती है.



मूंग

मूंग की दाल भारतवर्ष के प्राय: सभी स्थानों पर पैदा होती है. यह दाल अन्य दालों की अपेक्षा जल्दी पकती है साथ ही जल्दी पच भी जाती है. इसीलिए चिकित्सक रोगियों के आहार में इसका समावेश करते हैं. बाजार में यह दाल साबत मूंग तथा दली हुई और दलकर धोई हुई मिलती है. व्यापारी लोग धोई हुई दालों में मोठ की दाल लाभ की दृष्टि से मिला देते हैं. इस मिलावट से बचने के लिए छिलकेदार दाल ही खरीदना लाभप्रद है.

मूंग का पौधा दो फुट से लेकर ढाई फुट तक की ऊंचाई तक पाया जाता है. पौधों में तीन चार इंच की लंबाई की फलियां निकलती हैं. इन्हीं फलियों के अन्दर ज्वार की आकार के मूंग के दाने होते हैं.

जातियां--

जिस प्रकार अन्य दालों में कई प्रकार की जातियां पाई जाती हैं. इसी तरह मूंग की भी कई जातियां होती हैं. बीजों के आकार तथा रंग के आधार पर वैसे तो चार पांच जातियां हैं किन्तु विशेष गुणों के आधार पर इनकी गणना दो ही श्रेणी में की जाती है. प्रथम श्रेणी की मूंग हरे रंग की होती है तथा दूसरी श्रेणी कुछ सुनहले रंग के बीजों वाली होती है. इसको कुछ प्रांतों में सोना मूंग भी कहा जाता है.

कहीं कहीं पर काले तथा भूरे बीज भी थोड़ी बहुत संख्या में पाये जाते हैं. वास्तव में यह अनेकानेक रंग बीजों के छिलके में ही होते हैं. मूंग की दाल का रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है. कुछ छोटी जाति के उड़द मूंग के आकार के होने के कारण इसमे मिल जाते हैं. इस प्रकार की मिलावट को बीज को तोड़ कर दाल के रंग से आसानी से पहचाना जा सकता है. इसका कारण यह है कि उड़द की दाल सफेद रंग की होती है जबकि मूंग की दाल मे कुछ पीलापन होता है, इसके अतिरिक्त इनको पहचानने का एक दूसरा आधार यह भी होता है कि जिस स्थान पर उड़द की दाल के दोनों छिलके आपस मे मिलते है उस स्थान पर छिलके के ऊपर एक छोटा सा सफेद धब्बा पाया जाता है.

अच्छी श्रेणी की खेती करने के लिए हमेशा ही बढ़िया नम्बर की बीजों को प्रयोग मे लाना चाहिए. आई. पी. १८, २८, ३६ नम्बर के बीज अच्छी जातियों के है.

जलवायु—

उड़द की अपेक्षा मूंग के लिए जलवायु की दृष्टि से वह भूभाग उपयुक्त रहता है जहां लगभग २० से २५ इंच तक की वर्षा होती है. साधारणतया जिन स्थानों पर ज्वार और मक्का की फसल अच्छी प्राप्त होती है, वहा मूंग की खेती भी की जा सकती है. मूंग के पौधों की जड़ें जमीन मे काफी गहराई तक जाती है. इसलिए जमीन के भीतरी पोषक तत्व और जल इसके पौधे पर्याप्त मात्रा मे ग्रहण करने की शक्ति रखते है. इसीलिए मूंग को अधिक वर्षा की आवश्यकता नहीं होती.

जब कभी वर्षा पच्चीस इंच से अधिक हो जाती है तो मूंग की सहायक फसल की पैदावार बढ़ जाती है तथा मूंग कम होती है. इसके विपरीत वर्षा कम होने पर सहायक फसल कम होती है और मूंग की पैदावार पर्याप्त हो जाती है.

मूंग की उपज खरीफ और रबी दोनों फसलों के साथ की जाती है. सहायक फसलों के लिए अथवा मिश्रित फसलों के लिए ज्वार और मक्का के साथ इसका प्रयोग ठीक रहता है. इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि उन स्थानों में मूंग की फसल लेने का प्रयास नहीं करना चाहिए जहां अधिक वर्षा होने की सम्भावना हो. विशेष तौर पर जबकि मूंग के पौधे फूल रहे हों वर्षा का हो जाना कृषक के लिए अभिशाप सिद्ध होता है.

भूमि और जुताई—

मूंग की खेती करने के लिए कोई विशेष रूप से खेत की तैयारी नहीं करनी पड़ती है. इसका एक मात्र कारण यही है कि अधिकतर मूंग की पैदावार मिश्रित फसल में की जाती है. वैसे उपज की दृष्टि से मूंग के लिए बलुआ और मटियार भूमि को छोड़ कर शेष सभी प्रकार की भूमि में इसकी फसल ली जा सकती है. मिट्टी की दृष्टि से भूमि के लिए ध्यान देना उसी समय आवश्यक होता है जब केवल मूंग की ही फसल लेनी हो.

मिश्रित फसल के समय मूंग के लिए खेत की तैयारी पृथक नहीं करनी पड़ती अपितु सहायक फसलों के बीजों के लिए जिस प्रकार खेत की तैयारी आवश्यक हो वही इसके लिए पर्याप्त है.

यदि खेत में धान की फसल ली गई हो तो फसल कट जाने के बाद मूंग का बीज बगैर जुताई किए हुए ही छिटका कर बोया जा सकता है.

बीज और बुवाई—

यह बताया जा चुका है कि अच्छी फसल लेने के लिए बढ़िया जाति के बीजों को सरकारी बीज भण्डारों से प्राप्त करके बोना चाहिए नम्बरों की दृष्टि में श्रेष्ठ जातियों के बीज आई. पी. १८, २८, ३६ के लेने चाहिए, प्रति एकड़ के हिसाब से बीज की मात्रा चार पांच सेर तक पर्याप्त होती है. बीज की मात्रा कहीं कहीं इससे थोड़ी कम या अधिक हो जाती है.

मूंग का बीज बोने का तरीका अन्य दालों की भांति ही है अर्थात इसे छिटका कर तथा कतारो में, दोनो प्रकार से ही बोया जा सकता है. जब खेत मे धान की फसल ली जा चुकी हो और उसमें मूंग की फसल लेनी हो तो खेत को जोत कर तैयार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है. ऐसे धान के खेतों मे मूंग का बीज छिटका कर ही बोया जाता है.

मिश्रित फसल के रूप में मूंग के बीज को सहायक फसल के बीज में मिला दिया जाता है. इस प्रकार मिलाया हुआ बीज कतारो मे अथवा छिटका कर दोनों प्रकार से ही बोया जाता है. लेकिन वैज्ञानिक तथा सुधरी खेती की दृष्टि से कतारों मे बीज की बुवाई ही ठीक रहती है.

कतारों में बीज बोने के लिए नाली वाले हल तथा अरगोड़े का प्रयोग किया जाता है. सितम्बर मे बोया जाने वाला बीज

हल के तिफन से भी बोया जाता है. जब बीज कतारों में बोया जाय तब सदैव ही इस बात का ध्यान रहे कि कतारों की आपस की दूरी तथा पौधों के मध्य का अन्तर जहां तक हो सके समान ही रहे. यदि पौधों में समान अन्तर रहेगा तो प्रत्येक पौधे की बाढ़ भी उचित ढंग से हो सकेगी.

कतारों के मध्य में छोड़ी जाने वाली दूरी सामान्यतः डेढ़ फुट की होनी चाहिए इसी प्रकार प्रत्येक पौधे के मध्य का अन्तर भी लगभग एक फुट का रहना आवश्यक है.

निंदाई और सिंचाई—

चूंकि मूंग की पैदावार २० इन्च तक की वर्षा में भी भली प्रकार हो जाती है तथा पौधे की जड़ें जमीन के अन्दर काफी गहराई तक जाकर खेत के तत्वों तथा जल को चूस लेने की क्षमता रखती हैं इसलिए मूंग की फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है.

यदि वातावरण बहुत अधिक शुष्क हो गया हो और पौधों के मर जाने का भय प्रतीत हो उस समय खेत की आवश्यकतानुसार सिंचाई कर देना लाभप्रद होता है.

जैसा कि मूंग की फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है. इसी प्रकार इसकी खेती बिना निंदाई के ही हो जाती है. इसका एक मात्र कारण यही है कि मूंग का पौधा शीघ्र ही बढ़कर जंगली घास पात को दाब देता है.

खाद देना—

दाल जाति की फसलों की खेती करने में भूमि के पोषक तत्वों में नत्रजन की कमी बहुत कम महसूस की जाती है. इसलिए इनकी खेती में नत्रजन की खाद देने की कोई आवश्यकता नहीं. होती. इसका वैज्ञानिक कारण यह है कि दाल जाति के पौधो की पत्तियां आदि जो झड़ती रहती है खेत मे खाद का काम करती हैं. इस प्रकार यह अनुभव प्राप्त किए गये हैं कि इन फसलों द्वारा खेतों में नत्रजन की मात्रा कम होने के बजाय बढ ही जाती है.

उपरोक्त तथ्य से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मूंग की फसल को नत्रजन की खाद देने की आवश्यकता नहीं होती है. किन्तु लगभग १० सेर के स्फुट खाद दे देना लाभप्रद होता है. स्फुट का खाद देने से फसल अच्छी आती है.

व्याधियां और शत्रु—

मूंग की फसल में लगभग वैसे ही रोग और शत्रु कीड़े पाए जाते हैं जैसे कि उड़द की फसल मे. पत्तों को छेद कर नष्ट करने वाला कवच कीट पाया जाता है. इस कीड़े के लग जाने पर पौधों के समस्त पत्ते जालीदार होकर नष्ट होने लगते हैं. इस कीड़े से विशेष हानि की सम्भावना नहीं होती फिर भी सुरक्षा की दृष्टि से जब कभी इनका आक्रमण हो तो उस पौधे के आक्रांत पत्तों को शीघ्र ही तोड़ कर नष्ट कर देना चाहिए. ऐसा करने से इनका फैलाव अन्य पौधो पर नहीं हो पायेगा.

दूसरा शत्रु कीड़ा वाल कीट कहलाता है. इस कीड़े के शरीर पर छोटे २ वालदार रोंए होते हैं. इसीलिए इसे वाल कीट कहते हैं. कवच कीट इतनी हानि नहीं पहुँचाता है जितना कि वाल कीट. इसलिए इसके लग जाने पर अधिक सावधानी की आवश्यकता पड़ती है. यह भी पतंग जाति का कीड़ा होता है और पत्तों पर अण्डे देकर वढ़ता है. इसको नष्ट करने का तरीका भी यही है कि पत्तों पर जव इसके अण्डे दिखाई पड़ें, तो उन्हें तुड़वा कर नष्ट कर डालना चाहिए.

वाल कीट की मादा एक ही पत्ते पर वहुत से अण्डे देती है तथा उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है. कीड़े जब कुछ वड़े हो जाते हैं तो उन्हें रात के समय रोशनी पर आकर्षित करके भी मारा जा सकता है.

मूंग की फसल को लगने वाली व्याधियों में हरदे वाली और धारी वाली व्याधियां मुख्य हैं. धारी वाली व्याधि के उत्पन्न होने पर पौधों के पत्तों पर सफेद धारियां पड़ जाती हैं. इसलिए जव इस रोग का आक्रमण हो तो इसे फैलने नहीं देना चाहिए.

फसल—

जैसा कि वताया जा चुका है कि मूंग की फसल दो प्रकार की होती है. एक जल्दी पकने वाली तथा दूसरी देर से पकने वाली. इसी प्रकार से इसकी फसल की तैयारी का समय रहता है. वातावरण के अनुसार साधारणतया मूंग ३ महीने से लेकर ६ महीने के अन्दर तैयार हो जाती है.

खरीफ की फसल जो सितम्बर तथा अक्टूबर मे बोई जाती है जनवरी तथा फरवरी में तैयार हो जाती है तथा रबी वाली फसल अप्रैल में तैयार हो जाती है. अन्य प्रदेशों की अपेक्षा बम्बई तथा दक्षिण प्रदेश मे इसकी फसल शीघ्र तैयार होती है. इसके विपरीत उत्तर प्रदेश की फसलों मे कुछ अधिक समय लगता है.

उत्पादन की दृष्टि से साधारणतया इसकी पैदावार प्रति एकड़ ४ ५ मन तथा भूसे की ६-१० मन होती है. यदि वातावरण अनुकूल और भूमि उर्वरा हो तो इसकी पैदावार १० मन प्रति एकड़ तक हो जाती है तथा भूसा भी इसी अनुपात से अधिक होता है.

उड़द की भांति ही इसकी फलियों को खलिहान मे एकत्रित करके बैलों के द्वारा गहाई (दाय) चला कर मूंग और भूसा पृथक कर लेते हैं.



मसूर

मूंग और उड़द की भांति ही मसूर की दाल का प्रयोग साबत अथवा दल कर होता है, किन्तु इसकी दली हुई दाल अधिकतर छिलके रहित ही बिकती है जबकि मूंग और उड़द दले हुए भी छिलके वाले बिकते हैं. इसके विपरीत मसूर की दाल साबत भी बगैर छिलके की बाजार में बिकती है जबकि उड़द और मूंग साबत बगैर छिलके के नहीं मिलते. मूंग की दाल की भांति ही मसूर भी शीघ्र पाचक तथा अधिक स्नेहयुक्त भोज्य पदार्थ है. सोयाबीन के अतिरिक्त अन्य सभी दालों की तुलना में मसूर क दाल में सामिप-जातीय तत्वों की मात्रा पर्याप्त होती है.

मसूर की पैदावार रवी की फसल के साथ होती है. कहीं कहीं जल्दी तैयार हो जाने वाले धान के खेतों में बीज गिरा देने से भी इसकी फसल प्राप्त कर ली जाती है. अन्यान्य जातियों की भांति इसमें अनेकानेक जातियां नहीं पाई जातीं. विशेषत: इसे दो नामों से ही सम्बोधित किया जाता है अर्थात खड़ा मसूर यानी जिसका छिलका न उतारा गया हो तथा दूसरा वह जिसे दाल कहते हैं.

मसूर के पौधों के पत्ते कुछ कुछ चने के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं. फल भी लगभग चने के फलों से कुछ थोड़े लम्बे आकार के होते हैं. इसका पौधा प्रायः एक फुट ऊंचा होता है जो आकार में रोग ग्रस्त चने के पौधे जैसा दृष्टिगत होता है.

जलवायु—

मसूर की खेती करने के लिए बुवाई के समय कुछ गर्म एवं नम वातावरण की आवश्यकता होती है लेकिन पकते समय ठण्डा और अच्छी धूप वाला मौसम इसके अनुकूल रहता है. चने की भांति इसे भी अधिक सर्दी से हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है किन्तु चने जैसी नहीं.

अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए मसूर की खेती ऐसे वातावरण मे करनी चाहिए जहां अक्टूबर से लेकर दिसम्बर तक अधिक सर्दी न पड़ती हो.

भूमि और जुताई—

जिस खेत में धान की फसल ली गई हो यदि उसमे मसूर की खेती करनी हो तो जुताई की कोई आवश्यकता नहीं होती. धान काट लेने के बाद मसूर का बीज छिटका कर बो देना चाहिए. यदि केवल मसूर की ही खेती करनी हो तो जिस प्रकार चने के लिए भूमि तैयार की जाती है उसी प्रकार भूमि तैयार करके मसूर बो देनी चाहिए.

मिट्टी की दृष्टि से मसूर के लिए वही मिट्टी उपयुक्त होती है जिसमे धान अच्छा होता है अर्थात भारी मिट्टी मे मसूर की खेती अच्छी हो जाती है. वैसे मटियार दुमट और दुमट मिट्टी मे भी इसका उत्पादन आशा के अनुकूल ही हो जाता है.

मसूर की खेती मिश्रित फसल के साथ भी की जाती है. बहुधा इसका हेरफेर सरसों के साथ ही किया जाता है. जहां धान की

खेती अधिक होती है वहां धान काट लेने के बाद मसूर बो दी जाती है.

बीज और बुवाई--

भारत के विभिन्न प्रान्तों में मसूर के बीज की मात्रा भी पृथक पृथक पाई जाती है. बिहार तथा उत्तर प्रदेश में १०-१२ सेर प्रति एकड़ के हिसाब से बीज डाला जाता है जबकि बंगाल में इसका आधा ही बीज डालते हैं. इसके विपरीत पजाब में सबसे अधिक बीज डालते हैं. पंजाब के कृषक १३-१४ सेर प्रति एकड़ के हिसाब से बीज डालते हैं.

अच्छे बीजों की दृष्टि से एन. पी. ११ का बीज अच्छी उपज देता है.

बुवाई की दृष्टि से मसूर बहुधा छींट कर ही बोई जाती है. जब धान के खेत में मसूर की खेती लेनी हो तो बीज छिटका कर ही बोया जाता है. कहीं कहीं पर खेत में धान होते हुए भी मसूर का बीज डाल दिया जाता है.

जब मसूर की अकेली फसल लेनी होती है तब खेत में हल चला कर बीज को छिटक दिया जाता है. उसके पश्चात पटेला चला दिया जाता है. अन्य दालों की भांति इसका बीज कतार में भी बोया जा सकता है. जब कतारों में इसका बीज बोना हो तो प्रत्येक कतार मे ६ इन्च का तथा प्रत्येक पौधे में ६ इन्च का अन्तर रहना चाहिए.

निंदाई और सिंचाई—

मूंग की भांति ही इसमें भी निंदाई की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती है. यदि खेत मे जंगली घास पात अधिक सख्या मे दिखाई पड़े तो एक दो बार निंदाई कर देने से फसल अच्छी हो जाती है.

निंदाई की भांति ही इसे सिंचाई की भी आवश्यकता नहीं होती है. किन्तु पंजाब के प्रदेश मे आवश्यकता पड़ने पर इसकी सिंचाई कर दी जाती है.

खाद—

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि मसूर की फसल प्रति एकड़ ६ मन से लेकर १०-१२ मन तक तैयार होती है. यदि इस का उत्पादन गणना के लिए १० मन मान लिया जाये तो अनुमान से १६ सेर नत्रजन की मात्रा प्रति एकड़ की होती है. भूसे का उत्पादन भूमि की उर्वरा शक्ति पर निर्भर करता है. जहा मसूर की उपज अच्छी होती है वहां भूसा प्रायः बीज के बराबर होता है इसके विपरीत कमजोर भूमि मे भूसा अधिक होता है. मसूर की की फसल को प्रायः २० सेर नत्रजन की आवश्यकता होती है लेकिन इतना होने पर भी इसे नत्रजन नहीं दिया जाता केवल स्फुट का खाद जिसकी मात्रा १८-२० सेर तक हो दी जा सकती है. यदि खेत मे धान की फसल ली गई हो और इसे हड्डी के चूरे का खाद दिया गया हो वहां इसे किसी प्रकार की खाद देने की आवश्यकता नहीं होती.

व्याधि और शत्रु—

उड़द और मूंग की भांति इसमें भी विशेप प्रकार के कीटों का भय नहीं होता. रोग में हरदे वाली व्याधि जिसे अंग्रेजी में रस्ट भी कहते हैं कभी कभी फसल को थोड़ा वहुत नुकसान पहुंचाती है.

यदि कभी फसल पर कीटादि के आक्रमण तथा हरदे की व्याधि दृष्टिगत हो तो उन पौधों को खेत से उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए जिन पर इन के आक्रमण हुए हो.

फसल—

फसल की प्राप्ति भूमि की उर्वरा-शक्ति पर ही निर्भर करती है. फसल तैयार से जाने पर पौधों को खेत से चने की भांति ही उखाड़ लिया जाता है. फसल उखाड़ते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि फलियां इतनी न सूख जायें जो उखाड़ने और खलिहान में रखते समय चटक जायें और उनका वीज गिर जाये.

खलिहान में फसल को एकत्रित करके वैल के जरिये गाहनी करके भूसा तथा दाल को पृथक कर लिया जाता है.



किराओ

दाल जाति का यह अन्न देशी मटर से बहुत कुछ मिलता जुलता है. इसलिए कहीं कहीं इसे देशी मटर भी कहते हैं. इसका विस्तार पूर्वक वर्णन मटर के प्रकरण मे ही पाठकों को मिलेगा. वास्तव मे किराओ एक प्रकार से निम्न श्रेणी का मटर ही है.

किराओ के पौधे, फलियां तथा बीज बहुत कुछ देशी मटर से मिलते जुलते हैं किन्तु उससे कुछ छोटे होते हैं. इसका फूल वास्तव मे इसकी भिन्नता पूर्ण रूप से प्रदर्शित करता है. किराओ का फूल बैंजनी या गुलाबी रंग का होता है जबकि देशी मटर सफेद फूल फैकती है. इसके बीज हरे तथा पीले रंग के जिन पर धब्बे भी होते हैं पाये जाते हैं. किराओ की खेती साधारणतया जौ के साथ ही की जाती है. निम्न श्रेणी का खाद्यान्न होने के कारण बहुधा इसे चारे के काम में लिया जाता है.



चावली

चावली को वरवटी तथा कहीं कहीं वोरा भी कहते हैं. इसकी हरी फलियों की तरकारी भारतीय कृषक वड़ी रुचि के साथ खाते हैं. वीज की दाल वनाई जाती है, कहीं कहीं पर उवालकर काशी भल (कद्दू) के साग में भी मिला लेते हैं. पशुओं के चारे में भी इसके वीजों को प्रयोग में लाया जाना है. लताये तथा भूसा भी पशुओं के लिए उपयोगी है. कहीं कहीं पर किसान खेत में हरी खाद देने के लिए चावली को वोते हैं.

चावली की ऊष्णोत्पादक-शक्ति १८६ कैलोरीज प्रति छटाक है. अन्य पोपक-तत्व भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है.

जातियां—

गणन्त की दृष्टि से तो कई प्रकार के वीज पाये जाते हैं किन्तु उनका सामूहिक वर्णन हम दो ही भागों में करते हैं एक मोटे दाने वाली तथा दूसरी छोटे दानों वाली. वड़ी चावली का वीज वहुत कुछ मूंगफली के दानों के वरावर होता है और उस पर काला धव्वा जैसा कि उड़द पर सफेद धव्वा होता है पाया जाता है. छोटे दाने वाली चावली के वीज सफेद, पीले अथवा वैंजनी रंग के होते हैं. इसकी फलियां दो तीन फुट लम्वी होती हैं. वड़े दाने वाली चावली को मध्य भारतीय चंचला भी कहते हैं.

जलवायु—

चावली की खेती करने के लिये वे सभी स्थान उपयुक्त रहते हैं जहां ३०-३५ इन्च की वर्षा होती हो. वातावरण की दृष्टि से चावली के लिये ऊष्ण तथा तर वातावरण लाभप्रद होता है.

भूमि और जुताई—

वह भूमि जिसमें पानी का भराव हो जाता हो चावली की खेती के लिये नितान्त अनुपयुक्त होती है. अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए वलुआ दुमट और दुमट मिट्टी की जमीन ही श्रेष्ठ रहती है.

वीज वोने से पूर्व खेत की एक वार हल से जुताई करके दो बार बखर चला कर बीज वो देना चाहिए.

बीज और बुवाई—

कृषि वेत्ताओं ने चावली के ऊपर जो प्रयोग किए उसमें पाया गया कि नं० २६७ की चावली की उपज अच्छी होती है. इसका उत्पादन १० मन प्रति एकड़ हुआ. अन्यान्य दालों की भांति इसकी बुवाई भी छिटका कर अथवा कतारो मे वोकर की जा सकती है. जब छिटका कर वोया जाना हो तो बीज की मात्रा ड्योढ़ी रखनी चाहिए. कतारों मे वोने के लिए ८-१० सेर बीज प्रति एकड़ के हिसाव से पर्याप्त होता है. जब हरी खाद के लिए इसे वोना हो तो २० सेर वीज डालना चाहिए.

चावली की बुवाई आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न समयों पर की जाती है. वैसे साधारणतया जब मक्का वोई जाती है अर्थात

वर्षा के आरम्भ में चावली बो दी जाती है किन्तु यदि खेत में धान की फसल ली गई हो तो इसके लिए कुछ ठहरना पड़ता है. ऐसी स्थिति में अक्टूबर-नवम्बर में इसको बो दिया जाता है. यदि हरी खाद के लिये चावली बोनी हो तो इसकी बुवाई वर्षा आरम्भ होते ही कर देनी चाहिए तथा अगस्त के महीने में उसे खाद के रूप में प्रयोग में ले लेना चाहिए.

यदि यन्त्रों के द्वारा कतारों में बोई जाये तो प्रत्येक कतार में कम से कम दो फुट का अन्तर रखना आवश्यक है साथ ही प्रत्येक कतार के पौधों में आपस की दूरी १॥ से २ फुट तक रखी जा सकती है. कतारों तथा पौधों की दूरी का अन्तर खेत की उर्वरा शक्ति और उत्तम श्रेणी के बीज के आधार पर एवं पौधों की बाढ़ के अनुपात से घटा बढ़ा लेना कृषिकार की चातुरी है. यदि छिटका कर चावली बोई जाए तो भी पौधों में १।-१॥ फुट का अन्तर अवश्य होना चाहिए यद्यपि छिटका कर बोने में समान अंतर रखना कृषक के वश की बात नहीं होती किन्तु जब पौधे १०-१२ इन्च के हो जायें उस समय उन निर्बल पौधों को उखाड़ कर पशुओं के चारे में मिला देना चाहिए. यह पौधे उखाड़ते समय ही इस बात का ध्यान रखा जाये कि पौधों का अन्तर बराबर हो जाये.

जब हरी खाद के लिए चावली बोनी हो उस समय पौधों के आपसी अन्तर पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता नहीं होती.

हेर फेर—

चावली की मिश्रित खेती विशेषतया मक्का तथा ज्वार के साथ ही की जाती है. इन फसलों के साथ चावली बोकर किसान अपने

पशुओं को खिलाते हैं. इसका मिश्रण जानवरों को बहुत अच्छा लगता है. दूध देने वाले पशुओं को चावली का आहार उनके दूध देने की शक्ति को बढ़ाता है. जिन स्थानों पर हरी चावली पशुओं को खिला दी जाती है वहां गेहूं का हेर फेर अच्छा रहता है किन्तु जब चावली बीज के लिए बोई जाये उन खेतों मे जौ की फसल ली जा सकती है. यदि किसान के पास सिंचाई का अच्छा प्रबंध हो और चावली हरे खाद के लिए बोई गई हो तो उस खेत मे गेहूं की फसल आशातीत लाभ की वृद्धि करती है. किन्हीं स्थानों पर धान के बाद भी चावली की फसल ले ली जाती है. ऐसी स्थिति मे यह रबी की फसल हो जाती है.

निंदाई-सिंचाई---

जब चावली की खेती बीज प्राप्त करने के लिए की जाए अथवा साग भाजी के लिए फलियां बेचनी हों ऐसी स्थिति मे एक दो बार निंदाई कर देना आवश्यक है. निंदाई करने से इसकी बेलें शीघ्रता से बढ़ती है तथा इस शीघ्र फैलाव के कारण फिर भविष्य मे जगली घास पात नही जमने पाता. यदि इसकी फसल बगीचे मे लगानी हो तो इसकी बेलों के लिए बांस की खरपच्चियों का सहारा देना आवश्यक होता है. इस प्रकार सहारा लगा कर बेलें चढ़ाने मे फलियां अच्छी प्राप्त होती हैं.

जब चावली को रबी की फसल मे बोया गया हो अथवा बगीचे में लगाया गया हो तो ऐसी स्थिति मे सिंचाई करना आशानुकूल फल प्राप्त करने के लिये आवश्यक हो जाता है. इनके

विपरीत जब ये खरीफ की फसल के रूप में बोई जाती है तब प्राकृतिक वर्षा का जल ही इसकी सिंचाई के लिये पर्याप्त हो जाता है.

खाद—

कृषि के हिसाब से गणना की जाये तो चावली की फसल को १६ सेर नत्रजन तथा ८ सेर स्फुट की आवश्यकता होती है किन्तु अन्य दालों की भांति इसे भी नत्रजन पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है और उसे खाद के रूप में नहीं देना पड़ता. यदि स्फुट का खाद दे दिया जाता है तो फसल अच्छी प्राप्त हो जाती है इसलिए १५-२० सेर स्फुट की खाद दे देना फसल की प्राप्ति में वृद्धि पहुँचाता है.

व्याधियां और शत्रु—

दाल जाति की फसलों में विशेष हानिप्रद कीड़े तथा रोग साधारणतया कम ही लगते हैं. इसी प्रकार इसमें भी पत्तों को नुकसान पहुँचाने वाले कुछ कीट शत्रु आक्रमण करते हैं किन्तु वे इतने हानिप्रद नहीं होते जिसके लिए कोई विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हो.

फसल में जब फूल और फलियां आती हैं उस समय मोला लाही नाम का रोग इसकी बेलों को लग जाता है. इस रोग के आक्रमण का प्रभाव यह होता है कि फलियां बिगड़ जाती है और बीज बिगड़ जाते हैं. इस रोग से छुटकारा पाने के लिये तम्बाकू के काढ़े का छिड़काव लाभप्रद रहता है. यदि शीघ्रतावश तम्बाकू का काढ़ा न तैयार किया जा सके तो इसके अभाव में राख के

ऊपर थोड़ा सा मिट्टी का तेल छिड़क कर उक्त राख को रोगग्रस्त पौधों के ऊपर डाल देना चाहिए.

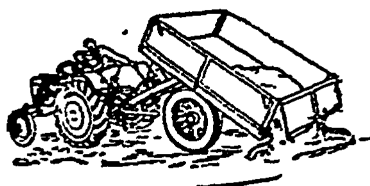
जब चावली की फसल तैयार करके बीजों को भण्डारों में रक्खा जाता है उस समय कभी कभी कवच पंखी नाम का कीट बीजों में लग जाता है और नुकसान पहुंचाता है, इस व्याधि से बचने के लिए जब भी बीज भण्डार में रखने हो उनको रखने से पूर्व भली भांति धूप मे सुखा लेना चाहिए क्योंकि यह कीट अधिकतर उन्हीं बीजों पर लगता है जिनके अन्दर थोड़ी बहुत नमी रह जाती है. जो चावली भविष्य मे की जानी वाली खेती के लिए बीज के रूप मे रखनी हो उसको सुरक्षित रखने के लिए एक मन बीज मे एक सेर के अनुपात से गन्धक का चूर्ण मिला देना चाहिए. ऐसा करने से बीजों को किसी प्रकार से रोग ग्रस्त होने अथवा कीटादि लगने का भय नहीं रहता.

फसल--

चावली की फसल अपनी बीज की जाति के अनुसार तीन मास से लेकर चार मास तक की अवधि मे पूर्णतया तैयार हो जाती है. जिस समय खेतो में बीज बोया जाता है उसके चार-पांच दिन बाद बीज अंकुर फैंक देते हैं तथा डेढ़ महीने मे फलियां आ जाती हैं. साधारणतया इसकी जातियां सितम्बर के महीने मे पूर्णतया तैयार हो जाती हैं. रबी की फसल जनवरी-फरवरी में तैयार हो जाती है. जब फसल तैयार हो जाती है तो इनकी फलियों को चुना जाता है. फलियां चुनते वक्त यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल वही फलियां चुनी जायें जो तोड़ने योग्य हो गई हों. अधिक हरी फलियां तोड़ने से बीज का दाना खराब हो जाता

हैं और इसके विपरीत फलियां अधिक समय तक पौधों में लगी रहती हैं तो उनका दाना फलियों के सूख जाने से चटक कर खेत में गिर जाता है और इस गलती से कृषक का बहुत कुछ नुकसान हो जाता है. कहीं कहीं पर चावली की फसल को लताओं सहित काट कर खलिहान में एकत्रित कर लिया जाता है. खलिहान मे लाने के बाद कुछ किसान लकड़ियों से कूट कर गाहनी कर लेते हैं. यदि फसल की मात्रा अधिक होती है तो बैलों के द्वारा गाहनी कर ली जाती है.

चावली की फसल की प्राप्ति प्रति एकड़ १०-११ मन के करीब बैठती है. इसका भूसा लगभग बीज से दुगना होता है. यदि हरी फलियां तरकारी के लिए तोड़ कर बेची जाती हैं तो वे ४० मन प्रति एकड़ तक प्राप्त हो जाती है और पशुओं को खिलाने के लिए पौधों सहित चावली की फसल हरी ही काट ली जाये तो वह साधारणतया २०० मन तक प्राप्त हो जाती है.



कुलथी

कुलथी का उत्पादन अधिकतर आसाम, विहार, बंगाल और उत्तर प्रदेश मे होता है. विशेष रूप से इसका प्रयोग कोनकन और कर्नाटक के निवासी करते हैं. इसके बीज कठोर होने के कारण उबाल कर पशुओं को खिलाये जाते हैं. भूसा और हरी फसल भी चारे का अच्छा काम देती है.

कुलथी का पौधा डेढ़ दो फुट लम्बी वेलो के रूप मे फैलता है. इसकी फलियां डेढ़ दो इंच लम्बी होती हैं जिनकी नोक मुड़ी हुई होती है तथा फलियों की चौड़ाई चौथाई इन्च के लगभग होती है. इसके बीज चमकदार लाल, काले, भूरे रंगों मे पाये जाते हैं. आकार मे बीज कुछ चपटे होते है तथा एक फली मे पांच छ बीज निकलते हैं.

जलवायु—

जलवायु की दृष्टि से कुलथी का उत्पादन उन स्थानो मे सरलता पूर्वक किया जा सकता है जहां २५-३० इन्च वर्षा हो जाती हो. उन स्थानों पर जहां इससे अधिक वर्षा हो रबी की फसल मे कुलथी की खेती की जा सकती है.

भूमि और जुताई—

कुलथी की खेती करने के लिये किसी विशेष भूमि की आवश्यकता नही होती क्योकि यह सभी प्रकार की जमीन मे अच्छी

तरह पैदा हो जाती है किन्तु अच्छी और बढ़िया फसल प्राप्त करने के लिये हल्की जमीन का चुनाव किसान के लिये लाभप्रद रहता है.

बीज बोने के लिए जब खेत तैयार करना हो उस समय एक चार हल से जुताई करके बखर चला देना चाहिए.

बीज और बुवाई—

कुलथी की खेती खरीफ और रबी दोनों फसलों में ही की जाती है. खरीफ की फसल में बोने के लिए जून जौलाई का समय उपयुक्त रहता है तथा रबी की फसल में इसकी बुवाई अक्टूबर के महीने में कर देनी चाहिए.

इसकी बुवाई कतारों में करना अधिक फसल प्राप्त करने का साध्यम है. इसलिए जब कतारों में बुवाई की जाये तो प्रत्येक कतार का अन्तर एक दूसरे से एक फुट के लगभग रखना चाहिए. कतारों के मध्य पौधों का आपसी अन्तर भी लगभग इतना ही पर्याप्त होता है.

यदि कुलथी की फसल बीज प्राप्त करने के लिए लेनी हो तो प्रति एकड़ १० सेर बीज डालना चाहिए. चारे के लिए बोई जाने वाली फसल इससे ड्योढ़ा बीज लेती है अर्थात चारे के लिये १५ सेर बीज पर्याप्त होता है.

उपरोक्त बीज की मात्रा कतारों में बोई जाने वाली फसल के लिये ही उल्लेखित है. यदि छिटका कर बुवाई करनी हो तो बीज कुछ अधिक लेना आवश्यक है.

हेर फेर—

कुलथी की फसल का हेरफेर अधिकतर बाजरे और धान की खेती के साथ किया जाता है. खरीफ की फसल के रूप में बाजरे के अतिरिक्त ज्वार के साथ भी इसकी खेती की जा सकती है. जब रबी की फसल के साथ इसका हेर फेर करना होता है तो धान काटने के बाद इसे बो दिया जाता है.

निंदाई-सिंचाई—

वैसे इसे निंदाई की आवश्यकता प्रायः नहीं के बराबर ही होती है किन्तु यदि खेत के अन्दर जंगली घास पात की बहुलता दिखाई पड़े तो निंदाई कर देनी चाहिये. इसे सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती.

खाद—

दाल वर्ग की फसल होनेके कारण तथा अन्य दालों की अपेक्षा बहुत थोड़ा नत्रजन उठाने के कारण यह खेत की उर्वरा-शक्ति को क्षीण नहीं करती है तथा साधारण भूमि में जितनी शक्ति होती है उसी के पोषक तत्वों से अपना पोषण कर लेती है इस-लिये इसे खाद देने की जरूरत नहीं पड़ती.

फसल—

यदि कुलथी की खेती बीज के लिये करनी हो तो इसकी बुवाई रबी की फसल में करनी चाहिये. रबी की फसल फरवरी

में तैयार हो जाती है. खरीफ की फसल में कुलथी की खेती अधिकतर पशुओं के चारे के लिये की जाती है,

फसल तैयार हो जाने पर अन्य दालों की भांति खलिहान में एकत्रित करके बैलों द्वारा गाहनी करके बीज पृथक कर लिया जाता है. चूंकि इसके बीज काफी कठोर होते हैं इसलिये इसे कीटादि का भय नही होता.



मटर

मटर के आकार – प्रकार तथा प्रयोग से कौन भारतीय परिचित न होगा. पंजाब प्रान्त में इसे छोले भी कहते हैं यद्यपि इसका प्रयोग घरों मे थोड़ा होता है किन्तु बाजारों मे बिकने वालों में यह बहुतायत से प्रयोग में लाइ जाती है. साधारणतया यह दो रूप मे मिलती है प्रथम देशी तथा दूसरी विलायती मटर होती है. देशी मटर का प्रयोग सब्जी तथा दाल तथा अन्य आहारों मे होता है किन्तु विलायती मटर अधिकतर हरे बीज के रूप मे ही पैदा की जाती है. देशी मटर का पौधा अपनी जाति के अनुसार तथा खेत की भूमि की उर्वरा शक्ति के आधार पर दो ढाई फुठ से लेकर तीन चार फुट की ऊंचाई तक पाए जाते हैं.

विलायती मटर के पौधे डेढ दो फुट से लेकर पांच फुट की ऊंचाई तक होते हैं बड़े पौधों के लिए सहारे का प्रबन्ध करना पड़ता है क्योंकि इनके तने अथवा पीड़ इतनी सशक्त नहीं होती जो फलियों के भार को सहन कर सकें देशी मटर की फलियां विलायती मटर की फलियों की अपेक्षा छोटी होती हैं. देशी मटर की फलिया अधिकतर डेढ दो इंच लम्बी पाइ जाती है.

जिस प्रकार पौधों तथा फलियो के आकार से देशी और विलायती मटर मे अंतर मिलता है इसी प्रकार इन के दानो के रंग भी पृथक र होते हैं. आकार की दृष्टि से देशी मटर का बीज

विलायती की अपेक्षा छोटा होता है किन्तु रंग कुछ पीलापन लिये हुये सफेद होता है. विलायती मटर का दाना देशी के दाने से बड़ा तो होता ही है किन्तु उसका रंग भी कुछ हरा होता है तथा उसके छिलके पर झिर्रियां भी होती हैं.

केन्द्रीय कृषि-अनुसंधान शाला में देशी मटर के बीज में सुधार करके एन. पी. २६ नंबरी बीज तैयार किया गया है. इस मटर की विशेषता यह है कि इसका दाना विलायती की अपेक्षा कहीं अधिक मीठा होता है तथा फलियों का छिलका भी विलायती मटर से पतला होता है. इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की मटर भी बहुत थोड़ी संख्या में पाई जाती हैं- इस मटर में लाल रंग का दाना होता है इसके स्वाद में कुछ कड़वापन होने के कारण यह मनुष्यों के आहार में स्थान नहीं पा सकी है

जातियां—

भिन्न भिन्न जातियों की दृष्टि से देशी मटरों के बीजों में विशेष अन्तर नहीं पाया जाता अनुसंधान शालाओं में कुछ सुधरी हुई जातियां अवश्य तैयार की गई हैं इस लिए यदि अधिक उन्नत खेती बाड़ी करनी हो तो शासकीय बीज भन्डारों से उन्नतशील बीजों को प्राप्त करना लाभप्रद है. विलायती मटर कई जातियों के पाए जाते हैं. इनकी जातियों की सूची किसी भी बीज विक्रेता से प्राप्त की जा सकती है.

जलवायु—

वे सभी स्थान जहां ३०-३५ इंच की वर्षा होती हो मटर की खेती के लिए उपयुक्त रहते हैं. जिस समय इसका बीज अंकुर

फेंकता है उस समय इसके लिए कुछ ऊष्ण वातावरण आवश्यक होता है किन्तु पौधों की बाढ़ के समय से लेकर जब तक फसल तैयार हो इसके लिए ठंडा वाता वरण ही अपेक्षित है. चने की भांति मटर का पौधा भी अधिक शीत को सहन कर सकता है और इसे पाला लगने का भय रहता है.

बीज और बुवाई—

जैसा कि बताया जा चुका है उन्नत खेती करने के लिये सुधरे हुये बीज शासकीय बीज भंडारों से ही प्राप्त करने चाहिए. एल. पी. २६ नम्बरी बीज इसके लिए अच्छा है. विलायती बीजों के गुण तथा उनकी बुवाई आदि का विवरण बीज विक्रेताओं की सूचि में वर्णित रहता है. मटर की फसल रबी की फसल है इसलिए इसकी बुवाई अक्टूबर नवम्बर में की जाती है उन स्थानों पर जहां जाड़ा जल्दी शुरू हो जाता है सितम्बर के महीने मे मटर बो दी जाती है. पहाड़ी स्थानों पर गर्मी के दिनों मे भी इसकी फसल सरलता से प्राप्त हो जाती है.

इसका बीज छिटका कर अथवा कतार। मे दोनों प्रकार से बोया जा सकता है. देशी मटर के बीज को नाली वाले हल से कतारों मे बोना चाहिए तथा प्रत्येक कतार मे १ फुट का अन्तर रखना आवश्यक है. पौधों की आपसी दूरी ढाई तीन इंच की पर्याप्त रहती है. विलायती बीज की बुवाई इनकी जाति के अनुसार ही करनी चाहिए तथा सिंचाई की नाली के दोनों किनारे पर बीज डालना चाहिए पौधो का आपसी अन्तर उनकी बाढ़ के अनुसार निश्चित कर लेना चाहिए.

बीज की मात्रा देशी मटर के लिए प्रति एकड़ २० सेर उचित है यदि छिटका कर बुवाई करनी हो तो इसका दुगना बीज भी डाला जा सकता है. विलायती मटर के बीज अपनी जाति के अनुसार १५ से ३० सेर तक प्रति एकड़ डाले जा सकते हैं.

भूमि और जुताई—

शीघ्र पकने वाली मटर बलुआ दोमट मिट्टी चाहती है तथा देर से पकने वाली मटर को मटियार दोमट में ही बोना चाहिए बलुआ और भारी मटियार को छोड़ कर अन्य सभी भूमि में मटर की खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है.

अन्य दालों की अपेक्षा मटर के खेत की भूमि तैयार करने के लिए कुछ बारीक जुताई की आवश्यकता पड़ती है. दो बार हल से भली भांति जुताई करनी चाहिए तथा दो गहरी बखर चला लेनी चाहिए. विलायती मटर के बीज की बुवाई करने के लिए जब अन्तिम जुताई की जाती है उस समय सिंचाई करने की नालियां बना देना आवश्यक होता है क्योंकि विलायती मटर को सिंचाई की आवश्यकता होती है.

हेर फेर—

मटर की खेती का हेर फेर जब कि यह खरीफ की फसल में बोनी हो तो कपास या ज्वार के साथ किया जाना चाहिए उन खेतो में जहां रबी की फसल अधिक उपजाई जाती हो मटर की खेती का हेर फेर गेहूँ के साथ किया जना चाहिये. देशी मटर की खेती यदि गेहूँ और जौ के साथ की जाती है उस समय हेर-

फेर की जरूरत नहीं रहती मिश्रित फसल के रूप में अलसी और सरसों की खेती के साथ मटर बो दी जाया करती है.

निंदाई और सिंचाई—

छिटका कर बोई हुई देशी मटर के खेत में यदि आवश्यकता हो तथा निंदाई की सुविधा हो तो एक दो बार निंदाई कर देनी चाहिये यदि परिस्थितिवश निंदाई न भी की जासके तो भी खेती को कोई हानि पहुँचने की संभावना नहीं होती. इसके विपरीत विलायती मटर की खेती लेने के लिये निंदाई एक आवश्यक कार्य हो जाता है. विलायती मटरों की कुछ जातियां अधिक ऊंचे पौधे वाली होती हैं किन्तु उनका पीड़ (तना) इतना कोमल होता है कि वे पौधे के भार को नहीं सभाल पाता इसलिये जब विलायती मटर की खेती की जाय और इसके पौधे २-२॥ फुट से अधिक ऊंचे हो जाये तो उन्हें सहारे का प्रबन्ध करना चाहिये पौधों को सहारा देने के लिये बांस की खपच्छियें जड़ों के पास सावधानी से गाड़ी जा सकती हैं. नदी के किनारे के अनेकानेक स्थानों पर झाऊ नामका एक जंगली वृक्ष होता है इसकी डालियों को काट कर विलायती मटर के पौधों को सहारा देने के लिये प्रयोग मे लाया जा सकता है.

मटर की खेती जिस समय फलने फूलने लगती है उस समय अनेकानेक जगली पशु-पक्षी इसे अपना आहार बनाने की चेष्टा करते हैं. पक्षियों मे मैना इसके बीजों को खाना बहुत अधिक पसन्द करती हैं इसलिये जब खेत मे किसान का परिश्रम फल देने लगे उन दिनों खेत की रखवाली सतर्कता पूर्वक करनी चाहिए.

- दो सौ सत्तावन -

देशी मटर को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु यदि मौसम में कुछ शुष्कता आजाये और पौधे पानी की आवश्यकता दर्शाते हों तो ऐसी स्थिति में सिंचाई कर देना उत्तम रहता है. इसके विपरीत विलायती मटर की खेती विना सिंचाई किये अच्छी तरह नहीं प्राप्त की जा सकती. इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए जब विलायती मटर का बीज खेत में बोया जाता है उस समय सिंचाई की नालियां तैयार करली जाती हैं. बीज की बुवाई अथवा पानी देने की नाली इस प्रकार से बनाई जाती है कि मटर के पौधौं की कतार नाली के किनारों पर होती है. जैसा कि बताया जा चुका है कि बुवाई करते समय प्रत्येक कतार की दूरी एक फुट की रखी जाती है इसलिए दो कतारों के मध्य बनने वाली नाली सात आठ इंच चौड़ी बनानी चाहिए. जिस समय फसल तैयार हो जाती है उस समय इन्हीं नालियों में चल फिर कर मटर की फलियां सरलता से तोड़ी जा सकती हैं.

खाद—

छिटका कर बोई हुई देशी मटर प्रति एकड़ ७-८ मन के लगभग प्राप्त होती है तथा भूसे की उपज भी इतनी ही होती है. दाल वर्ग की फसल होने कारण इसे भी वातावरण के नत्रजन से पर्याप्त लाभ पहुँचता है किन्तु थोड़ी बहुत मात्रा में स्फुरिक खाद की आवश्यकता अवश्य होती है इसलिए प्रति एकड़ २५-३० सेर स्फुरिक खाद दे देना आवश्यक है. विलायती मटर की खेती अधिकतर साग भाजी के लिये कीजाती है इसलिये अधिक

अच्छी फलियां प्राप्त करने के हेतु खेत में लगभग डेढ़ नौ मन अच्छा सड़ा गला गोबर का खाद दे देना चाहिये.

व्याधियां और शत्रु—

मटर की फसल में कोई विशेप प्रकार के कीट पतग हानि नहीं पहुँचाते किन्तु कभी कभी जब पौधों मे फलियां आजाती हैं उस समय चने के खेत में पाया जाने वाला बालकीट इनके खेतों को भी लग जाता है किन्तु इनकी मात्रा अथवा इनका आक्रमण ऐसा नहीं होता जिससे कृपक को विशेप रूपसे चिन्ता करनी पडे.

दाल वर्ग में पाई जाने वाली रस्ट तथा हरदे वाली तथा पत्तों पर धब्बे वाली बीमारियां कभी कभी उत्पन्न होजाती हैं किन्तु ये व्याधियां भी इतनी भयानक नहीं होती है कि जिनके लिये कोई रोक थाम की आवश्यकता हो.

फसल—

अक्टूबर-नवम्बर में बोई जाने वाली फसल दिसम्बर तथा जनवरी के महीने मे पर्याप्त मात्रा मे साग भाजी के लिये बेचने योग्य फलियां देने लगती है. पूर्ण रूप से फसल की तैयारी अपने बीज की जाति के अनुसार थोडा बहुत आगे पीछे तैयार होती रहती है साधारणतया मटर की फसल फरवरी और मार्च के महीने मे तैयार हो जाती है.

जिस समय फसल तैयार हो जाती है तो पौधों को काटकर खलिहान में एकत्रित कर लिया जाता है. खलिहान में एकत्रित करने के बाद बैलों के द्वारा गाहनी कराके तथा उड़ान करके बीज और भूसा पृथक कर लिया जाता है,

खिसारी

कुछ प्रदेश में खिसारी को लाख अथवा लांघ भी कहते हैं. इसका वीज अरहर के वीज के जैसा ही होता है किन्तु आकार में कुछ अधिक चपटा धब्बेदार तथा पीला और भूरे रंग का होता है. इसका प्रयोग गरीब लोग ही करते हैं. इसका कारण यही है कि इसका स्वाद उतना ही अच्छा होता जितना अरहर की दाल का. कुछ लोगों की ऐसी धारणा भी है कि इसके अधिक सेवन से मनुष्य लंगड़े हो जाते हैं. इस भ्रमात्मक कारण की खोज करने पर पता चला कि इसकी फसल में अटका नाम का जंगली पौधा तथा उसके वीज मिल जाते हैं तथा यही कारण है उपरोक्त हानि पहुँचाने का अर्थात खिसारी के वीज स्वयं हानिप्रद नहीं होते हैं.

खिसारी की दाल मे भोज्य तत्वों की दृष्टि से सोया वीन के अतिरिक्त अन्य सभी दालों की अपेक्षा आमिषजातीय तत्वों की मात्रा अधिक होती है. इसकी ऊष्णोत्पादक शक्ति भी प्रति छटांक सौ कैलरीज के लगभग होती है. खिसारी की दाल सुपाच्य तथा शक्तिवर्धक होती है. इसके वीज को पशुओं के दाने मे भी खिलाया जाता है तथा भूसा पशुओं का चारा है ही.

खिसारी का पौधा वेल के रूप मे होता है तथा उसकी लम्बाई १॥-२ फीट तक पाई जाती है इसके फूल गुलाबी तथा नीले रंग के होते हैं और इसकी फलियों पर छोटे २ रोयें पाये जाते हैं. प्रत्येक फली ५ वीज देती है.

जलवायु--

उन खेतों में जहां धान की खेती की जाती हो धान काट लेने के बाद खिसारी की फसल ली जा सकती है. वर्षा की दृष्टि से ३० इंच वर्षा वाले भूभाग इसके लिये उपयुक्त रहते हैं. खिसारी के लिये शीत वातावरण ही अच्छा होता है.

भूमि और जुताई--

खिसारी की खेती सब प्रकार की भूमि मे तो आसानी से ही की जा सकती है किन्तु कुछ हद तक ऊसर जमीन में भी इसकी फसल सरलता पूर्वक हो जाती है. इसके लिए बुवाई करने से पूर्व खेत की जुताई भी अन्य दालों की अपेक्षा बहुत कम करनी पड़ती है.

बीज और बुआई--

भूमि की साधारण जुताई करके बखर चला कर खिसारी के बीज बो दिये जाते हैं. अधिकतर खिसारी की बुवाई छिटका कर ही की जाती है. छिटका कर बोने की अवस्था मे प्रति एकड़ खेत के लिए २० सेर बीज आवश्यक होता है. यदि कतारों मे बोने की सुविधा हो तो यन्त्रों के द्वारा इसे कतार मे भी बोया जा सकता है ऐसी स्थिति मे प्रति एकड़ १५ सेर बीज ही पर्याप्त होता है.

इसकी बुवाई करने का ठीक समय तो अक्टूबर का महीना ही होता है किन्तु जब धान की फसल के साथ हेर फेर करना हो तो धान काटने के बाद इसके बीज छिटका दिये जाते है कुछ किसान धान काटने से पूर्व भी इसका बीज खेत मे डाल देते है.

हेरफेर—

बहुधा इसका हेर फेर धान की खेती के .साथ ही किया जाता है किन्तु कुछ स्थानों पर चना, जौ और अलसी के साथ भी इस की खेती की जाती है. जब खरीफ की फसल में इसे लेना होता है तब मक्का या किसी अन्य छोटे अन्न के साथ इसका हेर फेर करना उचित रहता है.

निंदाई और सिंचाई—

निंदाई की विशेष आवश्यकता नहीं होती है किन्तु यदि अधिक घास पात खेत में दिखाई दे तो एक दो दफे निंदाई कर देना लाभप्रद रहता है.

इसी प्रकार सिंचाई की भी इसकी फसल को बहुत कम आवश्यकता होती है. यदि फसल को पानी की आवश्यकता प्रतीत हो तो सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए.

खाद—

उपज की दृष्टि से यह १०-१२ मन प्रति एकड़ प्राप्त होती है तथा इसका ड्योढ़ा अर्थात १४-१५ मन के करीब भूसा हो जाता है. खाद का विश्लेषण मालूम करने के लिए यदि १० मन बीज और १४ मन भूसा मान लिया जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह फसल प्रति बार २०-२१ सेर नत्रजन ग्रहण करती है. इतना होने पर भी इसे नत्रजन की खाद देने की आवश्यकता नहीं होती. अन्य दाल वर्ग की भांति हो सके तो इसे भी २० सेर स्फुरीय खाद दे देना चाहिए.

व्याधियां और शत्रु--

खिसारी की फसल पर विशेष रूप से शत्रु कीट अथवा रोगों का आक्रमण नहीं होता है. अतः इसकी खेती में रोगों तथा कीटों का उतना भय नहीं होता जितना कि अन्य फसलो पर होता है.

फसल--

यदि खेत की मिट्टी अधिक उर्वरा हो तो इसकी उपज १२ तन से १४ तन तक प्रति एकड़ ली जा सकती है. भूसा हमेशा बीज से ड्योढ़ा होता है. चार पांच महीने की अवधि मे इसकी फसल पक कर तैयार हो जाती है अर्थात इसकी बुवाई अक्टूबर मे करने पर फरवरी के महीने मे फसल तैयार हो जाती है.

फसल खलिहान में लेकर बैलों द्वारा गाहनी करके बीज और भूसा पृथक कर लिया जाता है. इसकी खेती बहुधा खेतीहर अपने निजी प्रयोग के योग्य ही करते हैं.



सोयाबीन

सोयाबीन दाल वर्ग का भारतीय कृषकों के लिए एक नया अन्न है. इसका भारत में आगमन हुए अभी थोड़े ही वर्ष हुए हैं इसलिए इसका प्रचलन भी हमारे देश में उतना नहीं है जितना कि अन्य देशों में पाया जाता है. सोयाबीन की खेती चीन तथा जापान में बहुतायत से की जाती है. जिस प्रकार हमारे यहां चने के विभिन्न खाद्य पदार्थ बनाए जाते हैं उसी प्रकार चीन तथा जापान में सोयाबीन के अनेकानेक भोज्य पदार्थ तैयार किए जाते है.

चीन जापान के अतिरिक्त अमेरिका तथा इंगलैंड में भी इसका प्रचलन बढ़ रहा है. सोयाबीन नया होते हुए भी इतनी शीघ्रता से प्रत्येक देश में जो स्थान प्राप्त करता जा रहा है उसका मूल कारण यह है कि वैज्ञानिकों ने खोज करके इसके पोषक तत्वों का जो विश्लेषण किया है उसमें इसके अन्दर इतने गुण पाए गए हैं कि इसका उपयोग गाय भैंस के दूध के समान उपयोगी होता जा रहा है.

सोयाबीन के पोषक तत्वों की प्रचुरता के महत्व को ध्यान में रखने पर अन्य सभी दाल वर्ग के खाद्यान्नों में इसका प्रथम स्थान आता है. इतना सब होते हुए भी दाल के रूप में इसका प्रयोग व्यापक नहीं होता है. इसका एक मात्र कारण यह भी है कि इसकी दाल शीघ्र नहीं पकती है जबकि अन्य भारतीय दालें

इसकी अपेक्षा बहुत जल्द तैयार हो जाती हैं. यही कारण है कि भारत में इसका प्रचार अधिक नहीं हो रहा है.

प्रयोग—

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि सोयाबीन के अन्दर पोषक तत्वों की इतनी प्रचुरता है कि इसे संसार का सबसे अधिक शक्ति वर्द्धक अनाज कहें तो अतिशयोक्ति नही होगी. सोयाबीन के अनेक खाद्य पदार्थ बनाए जाते है उनमें से कुछ यहा वर्णित है. इसका तेल भी निकाल कर प्रयोग मे लाया जाता है.

सोयाबीन से बनने वाले खाद्य पदार्थों मे दूध का मुख्य स्थान है. सोयाबीन से तैयार किया गया दूध किसी भी दृष्टि से गाय तथा भैस के दूध से कम नही होता. इससे तैयार किया गया दूध रंग तथा स्वाद मे भी पूर्णतया गाय भैस के दूध के समान ही होता है तथा इसके दूध को जमा कर दही और दही से अन्य बनने वाले पदार्थ तथा मक्खन निकाल कर घी भी बनाया जाता है.

इस समय भारतवर्ष के अन्दर दुधारु पशुओ की स्थिति ठीक नहीं है तथा जनता को अच्छा और पर्याप्त मात्रा मे दूध नहीं प्राप्त हो रहा है. ऐसे समय मे इसकी खेती का प्रचार अधिकता से होना चाहिए. इस प्रकार इसकी फसलों से तैयार किये गये बीज से नगरों के अन्दर छोटे तथा बड़े सहकारी कारखानो मे दूध बनाने का व्यवसाय पर्याप्त मात्रा मे किया जा सकेगा जिससे एक ओर जहा दूध की समस्या मे कमी होगी साथ ही अनेक बेकार नवयुवकों को रोजगार भी मिल सकेगा.

दूध—

सोयाबीन से दूध बनाने के लिए सफेद जाति का सोयाबीन बढ़िया रहता है. जितने बीजों का दूध बनाना हो उसे २४ घण्टे पानी में भिगोये रखें. प्रत्येक ६ घण्टे के बाद बीज का पानी बदलते रहना चाहिए. ऐसा करने से बीज के अन्दर से अन्न की गन्ध पूर्णतया निकल जायेगी तथा तैयार होने वाला दूध नितान्त प्राकृतिक दूध के समान ही होगा. पानी में २४ घण्टे भीगने के बाद बीज का ऊपरी छिल्का पूर्णतया फूल जायेगा. अब जिस प्रकार घरों में उड़द, मूंग की दालें धोई जाती हैं. उसी प्रकार इसको धो लेने से इसके बीज की दाल तैयार हो जायेगी. दाल से छिलका पूर्णतया पृथक कर देना चाहिए.

जब दाल पूर्णतया धुल जाय तब बीज की मात्रा के अनुसार घर में सिल पर अथवा हाथ की चक्की में पीस लिया जाय. पीस कर तैयार की गई पिट्ठी को अच्छे कपड़े से पानी में मिला कर छान लें. कपड़े में जो लुगदी रह जाय उसे पुनः पीस कर छान लेना चाहिए. इस प्रकार तैयार किये गये दूध को अपनी इच्छानुसार पानी मिला कर पतला एवं गाढ़ा किया जा सकता है. अब इस दूध को बर्तन में गर्म करके पीने के अथवा दही जमाने के लिए प्रयोग कर सकते हैं.

दूध के अतिरिक्त इसको पीस कर अथवा इसका आटा बना कर रोटी, डबल रोटी, केक, बिस्कुट आदि बनाये जा सकते हैं.

जातियां—

रंग तथा आकृति के दृष्टिकोण से इसकी मुख्य तीन ही जातियां होती हैं. (१) काली (२) बादामी और (३) श्वेत. कुछ

बीज हरे और पीले भी पाये जाते हैं पर इतने नहीं कि उनकी गणना जातियों में की जाय. इसके बीजों का आकार लम्बा गोल तथा कुछ चपटा पाया जाता है.

इन सब जातियों में श्वेत सोयाबीन ही श्रेष्ठ समझा जाता है. अपनी जाति के बीज के अनुसार ही इसका पौधा दो फुट से लेकर पांच छः फीट तक का होता है. फूल भी सफेद, बैंजनी रंग के आते हैं, फलियों की लम्बाई २-२॥ इंच की होती है.

जलवायु—

जलवायु की दृष्टि से इसकी खेती उन स्थानों पर की जा सकती है जहां का वातावरण शीतमय हो और ३० इंच से अधिक तथा ५० इंच तक वर्षा होती हो. बढ़िया जाति की फसल प्राप्त करने के लिये मैदान की अपेक्षा समुद्र तट से चार से सात हजार फुट ऊंचे स्थान उपयुक्त रहते हैं. पहाड़ी मैदानों पर इसकी खेती करने से इसका दाना मोटा और बढ़िया आकार का प्राप्त होता है. भारत के अनेक पहाड़ी इलाके जहां मैदानो मे खेती की जा सकती है सोयाबीन की फसल बहुत बढ़िया ली जा सकती है.

उपरोक्त तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए हिमालय की गोद मे फैले हुए विशाल प्रदेश में नैनीताल, शिमला, मंसूरी, डलहौजी, कुल्लू तथा काश्मीर के मैदानी इलाके इसकी खेती के लिए उल्लेखनीय हैं.

भूमि और जुताई—

इतना बहुमूल्य पदार्थ होते हुये भी सोयाबीन की खेती साधारणतया हर प्रकार की भूमि मे की जा सकती है. किन्तु इसकी खेती करने के लिए दुमट, मटियार दुमट मिट्टी की भूमि श्रेष्ठ

रहती है. भूमि के चुनाव में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे खेत में इसकी फसल नहीं ली जा सकती जहां की मिट्टी में पानी लगता हो.

भूमि का चुनाव करते समय जलवायु का ध्यान रखना अत्यावश्यक है. उपयुक्त जलवायु में खेती करने पर ही बढ़िया फसल प्राप्त की जा सकती है.

यदि खेत में रबी की फसल ली गई हो तो फसल कट जाने के बाद हल से एक बार खेत की जुताई करके छोड़ देना चाहिए और जब वर्षा शुरू हो उस समय एक बार बखर चला कर खेत बोने योग्य हो जाता है.

बीज और बुवाई—

खेत तैयार करने के बाद बीज की बुवाई नाली दार हलों से कतार में करनी चाहिए. यदि फसल चारे के लिए अथवा खाद के लिए भी हो तो छिटका कर भी बोई जा सकती है. यदि खेती बीज के लिए करनी हो तो कतारों में ही बुवाई करनी चाहिए. जुलाई के अन्त अथवा अगस्त के प्रारम्भ में खेतों में जब एकाध वर्षा हो चुकी हो बीज डाल देना चाहिए.

कतारों में बुवाई करते समय प्रत्येक कतार का एक दूसरे से डेढ़ दो फुट का अन्तर तथा प्रत्येक पौधों में ३-४ इंच की दूरी रखी जानी आवश्यक है.

यदि हरे खाद अथवा चारे के के लिए बीज डालना हो तो प्रति एकड़ भूमि के लिए १५ सेर बीज पर्याप्त होता है किन्तु बीज के लिए जब कतारों में बोई जाए तो २०-२१ सेर बीज को डालना चाहिए.

सिंचाई और निंदाई—

जब पौधे थोड़े बड़े हो जायें और खेत में खर पतवार दिखाई पड़े उस समय कतारों के बीच में खुरपा चला कर उन्हें नष्ट कर देना चाहिए बाद में जब पौधे कुछ बड़े हो जाते है तब वे स्वय इतने फैल जाते हैं कि जगली खर पतवार को फैलने ही नहीं देते.

नीचले मैदानों मे जहां वर्षा कम होती हो तथा वातावरण भी फसल की आवश्यकता के अनुसार तर न हो वहा पर एक दो बार सिंचाई कर देनी आवश्यक है.

खाद—

सोयाबीन भी दाल वर्ग का ही खाद्यान्न है इसलिये प्रति एकड़ यह ४२ सेर के लगभग नत्रजन उठाती है किन्तु इसे नत्रजन का खाद देना अनिवार्य नहीं होता. इसके भोज तत्वों में स्नेह की मात्रा अधिक रहती है इसलिए इसको भी प्रस्फुरीय खाद की आवश्यकता होती है. फसल को प्रस्फुरीय खाद पहुँचाने के लिए हड्डी का चूर्ण तथा सुपर फास्फेट का इतना खाद देना चाहिए कि खेत को २५ सेर के लगभग प्रस्फुर पहुँच जाए.

व्याधियां और शत्रु—

अन्य फसलों की भांति इसे अनेक रोग तथा कीटाणुओ का भय नहीं होता है किन्तु जंगली पशु, खरगोश, हिरन आदि फसल को काफी हानि पहुँचा जाते हैं इसलिए इनसे सुरक्षा का प्रबन्ध कर लेना आवश्यक होता है.

फसल—

सोयाबीन की फसल सामान्यतः ६ माह में तैयार हो जाती है. अर्थात जुलाई में बोई गई फसल जनवरी में पूर्णतया पक जाती है. सब्जी के लिए बेचने को हरी फलियां नवम्बर और दिसम्बर में तोड़ी जा सकतीं है.

फसल कब पक कर काटने योग्य हो गई यह जानने के लिए किसानों को सोयाबीन के पौधों के पत्तों को देखते रहना चाहिए. इसकी फसल जब काटने योग्य हो जाती है तब पौधों के पत्ते पीले पड़ कर गिरने लगते हैं. इसलिए जब पौधों के पत्ते गिरने लगे तो फसल काट लेनी चाहिए यदि अधिक दिनों तक खेत में फसल खड़ी रह जायेगी तो फलियां चटक जायेंगी और बीज खेत मे ही गिर जायेगा.

अच्छे खेतों में प्रति एकड़ सोयाबीन की फसल १५ मन तक की जा सकती है. भूसा सामन्यतः २५ से ३० मन तक प्राप्त होगा. खेतों में से फसल काट कर खलिहान में एकत्रित करके बैलों के द्वारा गाहनी करके बीज और भूसे को उड़ान द्वारा प्रथक कर लिया जाता है.

कुछ दिनों से भारत के कुछ उत्साही कृषक सोयाबीन की खेती मे रुचि लेने लगे हैं. इसी प्रकार अन्य काश्तकारों को विशेषत. उन भूमिधरों को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है जिनके पास सोयाबीन की खेती की दृष्टि से उपयुक्त जलवायु और वातावरण के भू भाग हैं.

मोठ

मोठ की खेती प्राय भारत के सभी प्रान्तों में की जाती है. यह भी मूंग के समान तथा उस से जरा छोटी दाल है इसे चने की तरह भून कर खाया जाता है तथा गेहूं के आटे मे भी इसका आटा मिला देते है. इसका गुण भी मूंग के समान ही सुपाच्य, पित्त तथा कफ के विकार को दूर करने वाला होता है. भूसा पशुओ के खाने के काम आता है.

मोठ का पौधा डेढ़ दो फुट के फैलाव मे एक फुट ऊंचा होता है. फलियां मूंग की फलियों से छोटी लगभग डेढ़ दो इंच लम्बी होती है लेकिन इसकी फलियां प्रत्येक दो दो बीज के बाद सिकुड़ी होती है जब कि मूंग की ऐसी नहीं होती हैं. इसके पौधों पर रोग भी बहुतायत से होते है.

जलवायु—

जलवायु की दृष्टी से इसके लिए भी मूंग के समकूल २५ ३० इंच की वर्षा वाले स्थान ठीक रहते है. अर्थात उन सभी स्थानों पर मोठ की खेती भी की जा सकती है जहा मूंग की फसल हो जाती हो.

भूमि और जुताई—

दुमट अथवा दुमट भूमि इसकी खेती के लिए ठीक रहती है. खरीफ की फसल के लिए जैसी जुताई की जाती है इसके लिए पर्याप्त होती है. जब खेत से रबी की फसल उठा ली जाय तो हल

चला कर छोड़ देना चाहिए और जब वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो और एक दो पानी पड़ जाए तब बखर चला कर खेत बोने के लिए तैयार किया जा सकता है.

चूंकि मोठ की फसल मिश्रित खेती में भी करी जा सकती है तथा मिश्रित खेती करने के लिये ज्वार तथा बाजरा ही अति उपयुक्त रहते हैं इस लिये जैसी जुताई मुख्य फसल की करनी हो इसके लिये पर्याप्त होती है.

बुवाई—

जब मोठ की खेती मिश्रित फसल के रूप में की जाए तब मुख्य फसल जिस विधि से बोई जाए उसी भांति इसे भी बोना चाहिए वैसे इसकी बोवाई छिटका कर अथवा कतारों में दोनों भांति ही की जाती है.

जब केवल मोठ की ही फसल लेनी हो तो प्रति एकड़ ४ सेर बीज पर्याप्त होता है किन्तु मिश्रित फसल में सेर सवा सेर बीज डालना चाहिए. जब मोठ अकेली और कतारों में बोई जाए तो प्रत्येक कतार का आपसी अन्तर डेढ़ फुट के लगभग रखना चाहिये.

निंदाई सिंचाई—

जब मिश्रित फसल में इसकी खेती की गई हो तो जिस फसल के साथ इसे बोया गया है उसी की आवश्यकतानुसार निंदाई तथा सिंचाई करनी चाहिए. यदि मोठ की खेती अकेली की गई हो तो एक आध बार निंदाई कर देना जरूरी है. खरीफ की फसल होने के कारण इसे सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है.

दालवर्ग की फसल होने के कारण तथा प्रति एकड़ २० सेर नत्रजन ग्रहण करने के कारण इसे खाद की आवश्यकता नहीं होती.

कोट शत्रु तथा अन्य व्याधियों का भी इसे भय नहीं होता जंगली पशुओं से रक्षा करनी चाहिए.

फसल—

मोठ की फसल क्वार के महीने में तैयार हो जाती है अर्थात अक्टूबर के महीने में काटने योग्य हो जाती है. फसल काट कर खलिहानों में मूंग की भांति ही बैलों से गहानी कर ली जाती है तथा भूसा और बीज उड़ान कर के पृथक कर लिया जाता है.

इसका उत्पादन प्रति एकड़ ६ मन के करीब होता है तथा भूमि उर्वरा हो तो इसका उत्पादन डयोढा और कभी कभी दुगना भी हो जाता है.



सेम

सेम की हरी फलियां अक्टूबर नवम्बर के महीने में भारत के सभी नगरों मे प्रचुर मात्रा में मिलती हैं. इसकी खेती भी सभी स्थानों पर थोड़ी बहुत होती है. उन मकानों में जिन के आगे पीछे कुछ जमीन होती है वहां भी सेम की बेलें इसके मौसम मे मकान मालिक लगा कर ताजा फलियां प्राप्त कर लेते हैं. गुजराती भाषा भाषी इसके सूखे बीजों की दाल भी बना कर खाते हैं यही कारण है कि गुजरात में इसकी खेती अधिक होती है. इस लिए गुजरात के नगरों में सेम के सूखे बीज दाल के रूप में प्रयोग करने के लिए बोते हैं.

जातियां—

बीजों के आकार तथा प्रकार की दृष्टि से सेम कई प्रकार की होती है. रंगों में विशेषतः हरी बैंगनी और सफेद बीज की जातियां उल्लेखनीय हैं. कुछ फलियां चपटे बीज वाली और कुछ बड़े और गोल दाने वाली होती है. सूरती और पापड़ी नाम की जातियां गुजरात में अधिक प्रसिद्ध हैं.

जलवायु—

जिन दिनों में सेम की बुवाई की जाए और पौधों मे अंकुर निकलने आरम्भ हों उन दिनों इसकी प्रारम्भिक बाढ तेज आने के लिए उष्ण और तर वातावरण बढ़िया रहता है. वर्षा की दृष्टी से ३० इंच तक की वर्षा वाले स्थान ठीक होते हैं किन्तु उन

स्थानों पर जहां इससे कुछ अधिक वर्षा होती हो वहां भी इसकी फसल हो जाती है.

भूमि और जुताई--

मटियार दुमट जमीन इसकी खेती के लिये बढ़िया रहती है किन्तु वैसे यह सब प्रकार की भूमि में सरलता पूर्वक हो जाती है. इसकी खेती करने के लिए विशेष रूप से भूमि को तैयार करने की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु बड़े पैमाने पर खेती करने के लिए रबी की फसल काट लेने के बाद एक बार हल चला कर भूमि को छोड़ देना चाहिए और जब वर्षा हो तब फिर एक बार हल और बखर चलाकर बीज बोया जा सकता है.

कहीं कहीं और मुख्यतया बम्बई के प्रांत में रबी की फसल में भी इसकी खेती की जाती है तथा कुछ स्थानों पर धान के खेतों में फसल काट लेने के बाद दो बार हल चलाकर इसे बो दिया जाता है.

बीज और बुवाई--

बगीचे अथवा मकानो की पड़ती भूमि मे इसकी बुवाई खुरपी द्वारा करली जाती है किन्तु बड़े खेतों मे फसल लेने के लिये नाली दार हल का प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसकी खेती कतारों में ही ठीक रहती है. वर्षा आरम्भ होने पर इनको बो दिया जाता है किन्तु जहां धान की फसल के खेतों मे बोना होता है वहां अक्टूबर के महीने मे बुवाई की जाती है.

जब इसकी खेती रबी की फसल में की जाए तो प्रत्येक ंक्ति में ढाई तीन फुट का अन्तर रखा जाता है किन्तु खरीफ की फसल में यह अन्तर चार फुट के लगभग होना चाहिए.

एक एकड़ के खेत में बीज की मात्रा यदि खरीफ की फसल हो तो १५ सेर डालनी चाहिए. गुजरात में प्रति एकड़ खेत में लगभग २५ सेर बीज डाला जाता है.

निंदाई सिंचाई—

अच्छी फसल लेने के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम दो वार खेत की निंदाई कर दी जाय ऐसा करने से जंगली घास पात नहीं वढ़ पायेगी. निंदाई के अतिरिक्त इसकी वेलों को सहारा देने से भी कृपक को अच्छा बीज प्राप्त होता है. इसके लिए वगीचा अथवा खेत में वड़े पेड़ों की डालियां अथवा वासों से मचान से वना देने चाहिएं जिससे सेम की वेल उन पर चढ़ सके तथा जब फलियां लेनी हों तब भी उन की चुनाई करने में सुविधा रहे.

खरीफ की फसल में बोई जाने वाली सेम को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु रबी की फसल में खेत को सिंचाई की आवश्यकता हो जाती है. इसलिए आवश्यकतानुसार एक दो वार सिंचाई कर देना लाभप्रद रहता है.

व्याधियां और शत्रु—

यद्यपि इसकी फसल को हानि पहुँचाने वाले कीट आदि का कभी कभी थोड़ा वहुत आक्रमण हो जाता है किन्तु उतना नहीं कि उनसे रक्षा करने के लिए धन व्यय किया जाय या अन्य किसी प्रकार का निरोधात्मक कार्य करना पड़े.

फसल—

सेम की फसल रवी में बोई जाने वाली मार्च के महीने में काटने योग्य हो जाती है. खरीफ की फसल में हरी फलिया सब्जी के लिए बेचने अथवा प्रयोग में लाने के लिए नवम्बर के महीने में मिलने लगती हैं.

प्रति एकड़ बीज का उत्पादन १०-१२ मन होता है तथा लगभग इतना ही भूसा. जब थोड़ी मात्रा में खेती की जाती है तो इसकी बेलों को डण्डे से पीट कर दाना पृथक कर लिया जाता है. किन्तु जब खेतों मे अधिक मात्रा मे खेती की जाए तब फसल खलिहान में एकत्रित करके बैलों के द्वारा गाहनी करा ली जाती है.

इसके बीज को भण्डार में रखने से पूर्व भली भांति सुखा लेना चाहिए. यदि हो सके तो बीज को गन्धक के चूर्ण मे रखा जाए जिससे उन्हें कीटाणुओं द्वारा नष्ट किये जाने का भय न रहे. एक मन बीज के लिये सेर भर गन्धक का चूर्ण पर्याप्त होता है.



ग्वार

ग्वार की खेती अधिकतर पशुओं के चारे अथवा हरी खाद के लिए की जाती है. नगर के निकट के खेतों में लम्बी फली वाली ग्वार साग सब्जी के लिये भी बोई जाती है. इसके सूखे बीज पशुओं को चारे में खिलाये जाते हैं.

ग्वार के पौधे भूमि की उर्वरा शक्ति के अनुसार चार फीट से सात-आठ फीट तक पाये जाते हैं. फलियों के आकार के अनुसार दो जातियां होती हैं एक छोटी फली वाली जिसकी फलियां डेढ़ दो इन्च लम्बी तथा कुछ खुरदरी होती हैं तथा दूसरी चार-पांच इन्च लम्बी फलियों वाली होती हैं. ये फलियां कोमल होती हैं तथा साग भाजी के लिये उत्तम रहती है.

जलवायु—

ग्वार की खेती के लिए गर्म और ठण्डा वातावरण चाहिए तथा तीस पैंतीस इन्च की वर्षा पर्याप्त होती है.

भूमि और जुताई—

सब्जी वाली ग्वार दुमट अथवा मटियार दुमट भूमि में अच्छी होती है तथा दूसरी जाति हर प्रकार की भूमि में बोई जाती है. जुताई भी इसके लिए महीन नहीं करनी होती. वर्षा के आरम्भ पर एक बार हल से जुताई करके बो देना चाहिए.

बीज और बुवाई—

बुवाई इसको छींट कर ही अधिकतर की जाती है किन्तु कतारों में बोना लाभप्रद रहता है. कतारों में एक फुट का अन्तर

रखना चाहिए किन्तु सब्जी वाली ग्वार में यह अन्तर उसके अधिक फैलने के कारण दो फुट का रखना आवश्यक है. हरी खाद के लिए अथवा चारे के लिए बीज छिटकाकर बोया जा सकता है. चारे अथवा खाद के लिए बीज की मात्रा १५ सेर के लगभग रखनी चाहिए किन्तु यदि ग्वार की फसल उठानी हो तो ७-८ सेर बीज ही डालना चाहिए. ग्वार की बुवाई वर्षा के आरम्भ होते ही कर दी जाती है किन्तु जिन स्थानों पर सिंचाई की सुविधा न हो वहां अप्रेल और मई के महीने में भी बोया जा सकता है.

निदाई और सिंचाई--

अप्रेल और मई में बोई जाने वाली ग्वार को सिंचाई की आवश्यकता होती है. जो ग्वार सब्जी के लिए बोई जाए उसके पौधों की निंदाई करते हुए उनका अंतर भी ठीक कर देना चाहिए.

ग्वार में मैट नाम का एक कीड़ा भी लग जाता है जो इसके पत्तों को मोड़ देता है जिससे पौधों की बाढ मारी जाती है. ये कीड़े पौधों के पत्तों पर नीचे की ओर पाये जाते हैं. इनसे बचने के लिये पौधों के पत्तों को हजारे से छिड़क कर गंधक का चूर्ण छिड़कना चाहिए.

फसल--

खाद के लिए बोई जाने वाली फसल अगस्त के महीने में जोत देनी चाहिए. फलियों वाली ग्वार नवम्बर के महीने में तैयार हो जाती है. पूर्णतया फसल पक जाने पर दिसम्बर में काट ली जाती है. खलिहानों में डण्डों से पीट कर फलिया छुड़ा कर बैलों द्वारा गाहनी करके बीज निकाल लिया जाता है जो कि लगभग १०-१२ मन होता है. हरी फलियां ५० मन तक प्राप्त हो जाती हैं.

तिलहन

भारतवर्ष में तिलहन की खेती सभी प्रांतों में थोड़ी बहुत होती है. किन्ही स्थानों पर जहां की मिट्टी किसी खास बीज के लिए उपयुक्त रहती है वहां इसकी खेती अधिक होती है. वर्तमान समय में जब हमारे जीवन में वनास्पति घी ने पर्याप्त स्थान प्राप्त कर लिया है तिलहन की खेती की आवश्यकतायें बढ़ गई हैं. इन बढ़ती हुई आवश्यकताओं में मूंगफली और तिल का अधिक महत्व है. वैसे तो नारियल (गोला या खोपरा) का तेल भी वनास्पति घी के बनाने में अधिक प्रयुक्त होता है किन्तु नारियल एक फल है इसलिए इसका वर्णन फलों की बागवानी में पाठकों को मिलेगा.

यहां हम तिलहन के अन्तर्गत उन बीजों की खेती करने की विधियों का वर्णन कर रहे हैं जिनसे अनेकानेक प्रकार के तेल निकाले जाते हैं. इन बीजों में मुख्य भाग तथा प्रयोग मे आने का महत्व तिल, सरसों और मूंगफली का ही अधिक है.

उपरोक्त बीजों के अतिरिक्त अरण्डी, कुसुम, खसखस, अलसी, तारामीरा, तोरिया और राई के बीजों से भी तेल प्राप्त किया जाता है. ऊपर बताया जा चुका है कि कुछ तेलों का प्रयोग वनस्पति घी बनाने के काम होने के अतिरिक्त परिवारों में भी होता है. इसके अतिरिक्त इन तेलों का प्रयोग साबुन, ग्रीस, वार्निश, केश तेल तथा इत्र आदि के बनाने में भी होता है.

जिन बीजों से हम यह नाना प्रकार के तेल प्राप्त करके अपने दैनिक कार्यों की पूर्ती करते हैं उन्हीं के बनाने में हमें अन्य पदार्थ भी प्राप्त होते हैं जिनका महत्व हमारे लिये कम नही है. इसमें बीजों से तेल निकालने में हमें खली पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है. इस खली का प्रयोग न केवल पशुओं को चारे के साथ खिलाने के लिए किया जाता है अपितु खेतो की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए इसकी खाद भी हमारे "अधिक अन्न उत्पादन" का एक महत्वपूर्ण अंग है.

बीज और तेल---

उपरोक्त परिच्छेद में वर्णित बीजो से तेल निकाल कर विभिन्न कार्यो मे प्रयुक्त होते हैं यह तो बताया ही जा चुका है यहा हम तेल निकालने की विधियों पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे. तिलहन जाति के सभी बीजों से तेल तो निकाला ही जाता है किन्तु कुछ बीज जैसे मूंगफली और तिल ऐसे हैं जिनका प्रयोग अन्य रूपों में भी होता है. तिल हमारे अहार मे अन्य कई रूपों में आता है जिसमे गजक और रेवड़ी उल्लेखनीय है. इसके अतिरिक्त पूजा में भी तिल को हिन्दू संस्कृति मे स्थान दिया गया है. मूंगफली भी कच्ची तथा भून कर खाने में बहुतायत से प्रयोग की जाती है.

उन सभी बीनों से जिनसे तेल प्राप्त किये जाते है अनेकानेक तरीको से तेल निकाला जाता है. भारतवर्ष में प्रचलित तेल निकालने की पुरानी विधि लकड़ी के कोल्हू है. वैज्ञानिक उन्नति के सहयोग से अब ऐसे अनेक यन्त्र बन गये है जिनके

द्वारा तेल बीजों से अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है साथ ही इन यन्त्रों से तेल निकालने में समय भी बहुत थोड़ा लगता है.

यद्यपि यन्त्रों द्वारा निकाला गया तेल देशी कोल्हू के तेल की अपेक्षा बाजार में सस्ता मिलता है किन्तु खाने अथवा भोजन में प्रयोग करने के लिए देशी कोल्हू के तेल को ही अधिक महत्व दिया जाता है. इसका एक मात्र कारण यह है कि यन्त्रों द्वारा तेल निकालने में बीज का इतना अधिक रस निकल आता है कि उसकी खली में जरा भी तेल का अंश नहीं रहता है इसलिए बीज के छिलके का अंश जिसमें कुछ ऐसा स्वाद होता है जो अच्छा नहीं लगता यन्त्र के अधिकाधिक दावब के कारण तेल में मिश्रित हो जाता है.

यह बताया जा चुका है कि तेल निकालने के लिये कई प्रकार के यन्त्र उपलब्ध हैं तथा इन इन यन्त्रों के द्वारा तेल निकालने के बड़े बड़े कारखाने देश के अनेक नगरों में चलते हैं. इन यन्त्रों का संक्षिप्त विवरण हम नीचे देते हैं.

(१) विलायती कोल्हू (अर्थात रोटरी घानी) यह यन्त्र आकार प्रकार में बहुत कुछ हमारे देशी कोल्हू के समान ही होता है. अन्तर केवल इतना ही है कि इसे संचालित करने के लिये बिजली या ऑयल इंजन की शक्ति प्रयोग में लाई जाती है.

इस कोल्हू द्वारा बीजों से तेल देशी कोल्हू की अपेक्षा अधिक प्राप्त होता है साथ ही तेल का उत्पादन भी अधिक शीघ्रता से होता है. इसका कारण यह है कि यन्त्र द्वारा चालित होने के कारण खूंट का (अन्दर का लोहे का बेलन) लाठ (बाहर

की घानी) पर दबाव बहुत अधिक रहता है. साथ ही इसके खूंट और लाठ दोनों एक दूसरे की विपरीत दिशा में घूमते हैं. अधिक उत्पादन के लिये एक साथ ऐसी कई घनिया लगाई जा सकती हैं. यदि एक समय में पांच घनियां निरंतर दस घण्टे तक चलाई जाये तो ३० मन बीज का तेल निकाला जा सकेगा. साथ ही यदि इतने ही बीज का तेल देशी कोल्हूओं से निकाला जाय तो समय तो इसका चौगुना पचगुना लगेगा ही किन्तु तेल भी ४ प्रतिशत कम निकलेगा.

(२) एक्सपेलरः—इस यन्त्र का आकार वेलन नुमा होता है तथा इसमें बीजों को थोड़ा कुचल कर अथवा साबत ही भर दिया जाता है. वेलन के चारों तरफ जाली लगी होती है. वेलन के अन्दर लगे हुये यन्त्र बीज को दाब कर तेल निकलते है तथा जाली मे से तेल बाहर निकल कर एक पात्र मे संग्रहित हो जाता है. वेलन की दूसरी तरफ से बीज की खली बाहर एकत्रित हो जाती है. इसमे एक सुविधा यह होती है कि रोटरी कोल्हू की तरह इसमे एक बार बीज डाल कर उस समय तक यन्त्र को नहीं चलने दिया जाता है जब तक कि बीज का तेल न निकल आय. रोटरी मे तेल निकल आने पर यन्त्र को रोक कर खली को निकलना पढ़ता है जबकि एक्सपेलर मे आटे की चक्की के समान एक तरफ से बीज डाले जा सकते हैं तथा दूसरी तरफ से खली स्वत निकलती रहती है.

(३) हाइड्रोलिक प्रेस—यह यंत्र उपरोक्त वर्णित दोनो यंत्रो से अधिक जटिल तथा मूल्यवान है. इसके अतिरिक्त इसके द्वारा अधिक मूल्यवान बीजो का तेल निकलना ही उचित रहता है.

उन बीजों से भी इस यन्त्र के द्वारा तेल निकलना लाभप्रद है जिनमें तेल की मात्रा कम होती है.

इस यन्त्र द्वारा बीज से तेल निकालने की प्रक्रिया इस प्रकार होती है कि बीजों को थोड़ा कुचल अथवा दल कर फीडर में भर दिया जाता है. इस फीडर के अन्दर विशेप प्रकार से बनाये गये रसायनिक कपड़े के थैले लगे होते हैं. फीडर में डालने से पूर्व कुचले अथवा दले गये बीजों को भाप द्वारा एक निश्चित समय तक गरम किया जाता है. इस प्रकार भाप से गरम करने से बीजों से तेल अधिकाधिक संख्या में प्रथक हो जाने की सुविधा हो जाती है. थैलों में भरे जाने पर इनके ऊपर यान्त्रिक दबाव पड़ता है जिससे बीजों से तेल प्रथक होकर कपड़े के थैलों से छन छन कर बाहर लगे पात्र में एकत्रित हो जाता है तथा थैले से खली निकाल ली जाती है.

(४) रसायनिक विधिः—उपरोक्त बताई गई विधियों के अतिरिक्त कुछ बीजों से रसायनिक क्रिया द्वारा भी तेल निकाला जाता है किन्तु इस विधि से निकाला गया तेल खाने योग्य नहीं होता है अतएव ऐसा तैयार किया गया तेल औपधि के रूप में ही प्रयोग मे आता है. साथ ही इस रसायनिक क्रिया द्वारा तेल निकालने से जो खली शेप रहती है उसमें तेल का अंश जरा भी नहीं होता इसलिये वह भी पशुओं के चारे में प्रयोग नहीं की जाती है. किन्तु इस प्रकार के तेल का अवशेप (खली) खाद बनाने के काम में पूर्णतया लाभप्रद रहता है.

रसायनिक क्रिया द्वारा तेल निकालने के लिये कई प्रकार के रसायनों का प्रयोग होता है किन्तु अधिकतर बेन्जिन ही प्रयोग किया जाता. बेन्जिन को कुचल गये बीजों में मिलाकर तेल निकाला जाता. इस विधि से बीजों का सम्पूर्ण तेल का अंश बेन्जिन के साथ मिलकर आ जाता है. फिर इस बेन्जिन युक्त तेलको भपके के यन्त्रों से प्रथक कर लिया जाता है.



तिल

तिल, उष्णोपादक, वलकारी, त्वचा, दांत एवं बालों को शक्ति प्रदान करने वाला वलकारक एवं कफ-पित्त प्रधान बीज है. इसकी खेती वैसे तो भारत के सभी प्रांतों में थोड़ी बहुत होती है किन्तु उत्तर प्रदेश, मद्रास तथा बम्बई में कुछ अधिक होती है. तिल का प्रयोग अनेक प्रकार के खाद्यानों में तो किया ही जाता है किन्तु इसका तेल भी बहुतायत से भारतीय परिवारों मे प्रयुक्त होता है. वनास्पती घी का प्रचलन होने से इसकी खपत अधिक बढ़ गई है. इसका कारण इसके बीज में अन्य तिलहनों की अपेक्षा तेल की अधिक होना तो है ही साथ ही इसका तेल सुस्वादु तथा वनास्पति घी बनाने की क्रिया में सुगम होता है.

तिल का पौधा तथा बीज अपने आकार प्रकार और रंग के अनुसार कई जातियों का पाया जाता है. छोटी जाति के पौधे दो फीट ही ऊंचे होते हैं जबकि कुछ पौधे पांच फीट ऊंचाई तक बढ़ जाते हैं. इनकी जाति के अनुसार कुछ पौधे छतरी के आकार में फैलते हैं जबकि कुछ पौधे शाखाओं रहित होते हैं. पौधों के फूल भी सफेद और हलके गुलाबी रंग के पाये जाते हैं. इसके बीजों की फलियां हाथ के अंगुठे जितनी मोटी कई पहलुओं की होती है तथा एक फली के अन्दर लगभग ४०-५० बीज निकलते हैं. जब फलियां पक

जाती हैं तो उनका ऊपरी मुंह अपने आप खुल जाता है उस समय यदि पौधे को उलटा कर दिया जाय तो सब बीज अपने आप ही भूमि पर गिर पड़ेंगे.

जातियां—

जिस प्रकार तिल के पौधों मे विभिन्नता पाई जाती है उसी प्रकार इसके बीज भी कई रंग के होते है तथा इन विभिन्न रंगों के तिलों मे तेल की मात्रा भी पृथक पृथक अनुपात से पाई जाती है. सफेद और काले तिल के नाम से तो सभी परिचित होते है किन्तु इनके अतिरिक्त लाल और भूरे रंग के तिल भी होते हैं. इन तिलों मे तेल की मात्रा नीचे लिखी सारिणी के अनुसार होती है:—

जाति	तेल की मात्रा प्रतिशत
सफेद तिल	४६.६०
काला तिल	४८.५७
भूरा तिल	४७ ६०
लाल तिल	५०.१६

भूमि और जुताई—

तिल की खेती करने के लिए अधिकतर हल्की मिट्टी ही अच्छी होती है. वैसे बलुआ दुमट और दुमट मिट्टी भी अच्छी रहता है. तिल की खेती बहुधा मिश्रित फसलों के साथ कर ली जाती है. मिश्रित खेती करने के लिए इसको ज्वार, बाजरा, कपास आदि के साथ बोते है जब तिल की खेती मिश्रित फसल के साथ की जाये तो मुख्य फसल के बीज के लिए जिस प्रकार भूमि की

तैयारी आवश्यक हो उतनी ही तैयारी तिल के लिए पर्याप्त होती है किन्तु जब तिल की खेती अकेली ही की जाये ऐसी दशा में एक बार हल और दो बार बखर चला कर तिल बो दिये जाते हैं.

जलवायु—

जलवायु की दृष्टि से तिल की खेती करने के लिये वे भूभाग अच्छे रहते हैं जहां वर्षा २५ और ३५ इन्च के मध्य होती हो. वर्षा के अतिरिक्त वहां का वातावरण कुछ गर्म और कुछ शीतोष्ण होना आवश्यक है. अनुकूल वातावरण में इसका उत्पादन अपेक्षाकृत अधिक हो जाता है.

खाद—

पुरानी रीति से खेती करने वाले कृषक इसकी फसल लेने के लिए अपने खेतों में खाद नहीं देते हैं किन्तु यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि जिस खेत में खाद दिया जायेगा उसकी फसल उस खेत की अपेक्षा कुछ अधिक ही होगी जिसमें खाद नहीं दिया गया हो.

खाद देने से पूर्व इस बात का वैज्ञानिक तथ्य मालूम कर लेना चाहिए कि जिसकी फसल बोई जाने वाली है उसकी उपज में प्रति एकड़ कितना प्रस्फुरिक खाद एवं कितना नत्रजन तथा अन्य रसायनिक खाद की आवश्यकता है. कृषि अनुसन्धान वेत्ताओं ने गणना करके अनुमान लगाया है कि प्रति एकड़ तिल की खेती करने के लिए दस सेर नत्रजन की खाद पहुँचानी आवश्यक होती है. यदि खेत में नत्रजन की पूर्ति गोबर के खाद द्वारा करनी हो तो प्रति एकड़ खेत में अच्छा सड़ा गला सौ मन गोबर का खाद दे देना आवश्यक होता है.

यदि गोबर का खाद उपलब्ध न हो तो प्रति एकड़ खेत में ५ मन खली की खाद नत्रजन पूर्ति कर देगी. सेन्द्रीय खादों का प्रयोग करने के लिए तिल के खेत में सवा मन के लगभग एमोनियम सल्फेट दिया जा सकता है.

बीज और बुवाई—

तिल की खेती रबी और खरीफ दोनों ही फसलों में की जाती है. उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य भारत और बम्बई मे बहुधा इस की खेती खरीफ की फसल मे ही करते हैं किन्तु मध्य प्रदेश और मद्रास प्रांत में दोनों ही फसलों मे की जाती है.

जब खरीफ की फसल मे तिल की खेती करनी होती है तो खेत की बुवाई जून-जौलाई में करनी होती है. रबी की फसल मे तिल की बुवाई सितम्बर के महीने मे करनी चाहिए. कहीं कहीं किसान ऐसा भी करते है कि खरीफ की फसल शीघ्र तैयार होने के कारण इसके साथ सफेद तिल की खेती कर लेते हैं और रबी की फसल मे काले तिल की खेती करते है. रबी की फसल में धान और उड़द आदि की फसल लेकर सितम्बर मे तिल की बुवाई कर दी जाती है जिस भूमि की मिट्टी मे पानी अच्छा लगता हो उसमें जनवरी और फरवरी मे भी तिल बोये जा सकते हैं. ऐसी भूमि बंगाल प्रांत मे अधिक पाई जाती है

जैसा कि बताया जा चुका है कि तिल कई जातियों के होते हैं, इसलिए खेती करने के लिए सरकारी बीज भण्डारों से बढ़िया नम्बरी बीज खरीदने चाहिए नम्बरी बीजों मे ३, ७ और २८ नम्बर के बीज अच्छी फसल देते है. इनमे ३ और ७ नम्बर के बीजों की फसल लगभग तीन महीने मे तैयार हो जाती है जबकि

२६ नम्बरी बीज को ५ महीने का समय लगता है. इसके अतिरिक्त इन तीनों नम्बरों के बीजों के पौधे अपने आकार और फैलाव में भिन्न भिन्न होते हैं. ३ नम्बर बीज का पौधा शाखाओं रहित होता है अर्थात इस पौधे में अन्य पौधों की अपेक्षा अनेकानेक छोटी छोटी शाखाये नहीं होती हैं जबकि ७ नम्बर के बीज के पौधों में थोड़ी बहुत शाखाये होती हैं. किन्तु २६ नम्बर का बीज का पौधा अनेकानेक शाखाओं से युक्त छतरीदार होता है अर्थात इसके पौधे का फैलाव ३ और ७ की अपेक्षा बहुत अधिक होता है. इसलिए बुवाई करते समय बीजों की जाति के अनुसार प्रत्येक पौधे तथा पौधों की कतार का अन्तर निश्चित कर लेना चाहिए.

उपरोक्त वर्णन से बीजों की भिन्नता का तथा उनके पृथक अस्तित्व का पता तो चल ही जाता है किन्तु इसके अतिरिक्त इनसे प्राप्त फसल भी उत्पादन की दृष्टि से भिन्न भिन्न ही होती हैं और आसानी से पहचानी जा सकती हैं. २६ नम्बर का बीज यद्यपि ३ और ७ नम्बर की अपेक्षा तैयार होने में कुछ अधिक समय ले लेता है किन्तु इसकी फसल उत्पादन की दृष्टि से दुगनी हो जाती है. यहां यह बात उल्लेखनीय है कि २६ नम्बर के बीज मे अधिक समय लग जाने के कारण इसका प्रभाव रबी की फसल पर भी थोड़ा पड़ता है.

तिल की बुवाई करने के लिये छिटका कर अथवा कतार में बोने की दोनों ही विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं. जब छिटका कर तिल बोया जाता है उस समय बीज में थोड़ी बालू मिला ली जाती है. ऐसा करने से बीज सुविधानुसार छिटकाया जा सकता

है. कतारों में बोने के लिये अर्गडे अथवा नाली वाले हल का प्रयोग किया जाता है. बीज की जाति के अनुसार पौधों की कतारों में एक डेढ फुट का अन्तर रखना आवश्यक होता है.

यह बताया जा चुका है कि तिल की खेती ज्वार, बाजरा एवं कपास के साथ मिश्रित फसल के साथ ली जाती है. इसलिए जब इसे किसी अन्य फसल के साथ बोना होता है तब इसका बीज सहायक फसल के बीज मे ही मिला दिया जाता है किन्तु यह विधि अधिक अच्छी नहीं मानी जाती. इसलिये मिश्रित फसल में भी बीच बीच मे इसकी कतारे बोनी चाहिए.

प्रति एकड़ खेत मे कितने बीज की आवश्यकता होगी इसका ठीक ठीक निश्चय बीज की जाति के ऊपर निर्भर होता है किन्तु साधारण अनुमान के लिये तिल की खेती अकेली ही करनी हो तब तीन सेर बीज पर्याप्त होता है. कुछ प्रदेशों मे यह मात्रा ५ सेर भी पाई जाती है. मिश्रित फसल मे सेर सवा सेर बीज ही बोया जाता है.

निंदाई और सिंचाई--

जब तिल की खेती ऐसे भूभागों पर की जाती है जहां की जलवायु इसकी आवश्यकता के अनुकूल हो तो ऐसे स्थानों पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती. दक्षिणी भारत के मद्रास प्रदेश में इसकी खेती को थोड़ी बहुत सिंचाई की आवश्यकता पड़ भी जाती है.

जिस समय तिल के पौधे अपनी बाढ पर हों और उस समय यदि खेत मे खर पतवार दिखाई पडे तो निंदाई कर देना खेती

के लिए वरदान सिद्ध होता है. जिस समय निंदाई की जाय उस समय पौधों का आपसी अन्तर भी संतुलित किया जा सकता है, किन्तु जब पौधे अधिक बढ़ चुके हों उस समय उन्हें उखाड़कर स्थानान्तरित नहीं करना चाहिए.

व्याधियां और शत्रु—

तिल की फसल में दो प्रकार के कीट शत्रु पाये जाते हैं. इनमें से प्रथम को लीफ रौलर अर्थात पत्ते मोड़ने वाला कीड़ा कहते हैं तथा दूसरे को हॉकमाथ ये दोनों कीड़े पतंग जाति के हैं. लीफ रौलर अर्थात पत्ते मोड़ने वाला कीड़ा आधा इंच के बराबर लम्बा होता है तथा इसका रंग कुछ लाली लिये हुये मटमैला होता है. इसकी मादा अपने अण्डे पत्तों पर ही देती है लेकिन जब अण्डे फूटते हैं तो कीड़े जमीन पर गिर कर कुछ दिनों में इल्ली का रूप धारण कर लेते हैं. इल्ली बन जाने पर ये पुनः पौधों के पत्तों पर और डाल की नई कोपलों पर आक्रमण करके उन्हें खा जाते हैं तथा कुछ को क्षतिग्रस्त कर देते हैं. इसके खाये हुये पत्ते तथा जिन पत्तों पर इसका आक्रमण हो जाता है उनके किनारे मुड़ जाते हैं. कोपलों पर इनका आक्रमण होने से पौधों की बाढ़ मारी जाती है. यदि इसके आक्रमण के समय पौधों में तिल की बोडिया भी लगी होती हैं तो यह बीज को भी खा जाता है. जब खेत के अन्दर किन्हीं पौधों की पत्तियां मुड़ी हुई दिखाई पड़ें तो उस समय समझ लेना चाहिये कि फसल पर इस कीड़े का आक्रमण हो गया है और जब कभी खेत मे ऐसे पौधे दिखाई पड़ें तो व्याधिग्रस्त पौधों

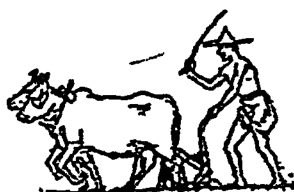
की पत्तियों को तोड़ कर नष्ट कर देना चाहिये. ऐसा करने से इन कीड़ों का फैलाव अन्य पौधों पर नहीं हो सकेगा.

हाकमाथ नामक कीड़े का आहार भी पौधों की पत्तियां ही होती हैं. तथा इसकी मादा भी पत्तों पर अण्डे देती है. इसके अण्डों का आकार ज्वार के दानों के बराबर होता है. अण्डो से बच्चे निकल कर पत्ते खाना आरम्भ कर देते है उस समय इनका रंग हरा होता है किन्तु धीरे धीरे पीली धारियां बन जाती हैं. शंखी का रूप धारण करने के लिये ये इल्लिया भूमि में चली जाती हैं. जब शखियों से कीड़ा निकल कर पौधों पर आक्रमण करता है उस समय इनको नष्ट करने का उपाय करना कठिन हो जाता है इसलिये इस कीड़े को इसकी प्रारम्भिक अवस्था मे ही नष्ट कर देना चाहिये. इसका बाल कीट पैंसिल के बराबर मोटा तथा दो तीन इंच लम्बा होता है तथा उसके ऊपर पीली पीली धारियां होती है इन धारियों की वजह से इसे सरलता से पहचान कर नष्ट किया जा सकता है.

फसल—

तिल की उपज प्रति एकड़ ३ मन से लेकर ६ मन तक पाई जाती है. उत्पादन मे इतना अधिक अन्तर बीज की जाति के कारण ही होता है. वैसे खेत की उर्वरा-शक्ति भी फसल के उत्पादन मे बहुत कुछ महत्व रखती है किन्तु गणनात्मक अंक उपरोक्त ही पाये जाते हैं. विभिन्न प्रांतों मे भी इसका उत्पादन अन्तर न्यूनाधिक रहता है तथा समस्त भारतीय अंकों का अनुपातिक अन्तर २·७ मन प्रति एकड़ ही आता है.

तिल की फसल प्राय: तीन महीने से लेकर पांच महीने तक की अवधि में काटने योग्य हो जाती है. जब पौधों के पत्ते तथा तिल की बोंडियां पीली पड़ने लगें उस समय कृषक को चाहिये कि फसल काट कर खलिहान में एकत्रित कर ले. कुछ दिनों तक फसल को खलिहान में रखने से तिल के बीजों की बोंडियां पूर्णतया सूख जायेंगी तब पौधों को उल्टा करके लकड़ी के डंडे से बीजों को झाड़ लिया जाता है. ऐसा करने से पौधों के साथ लगे हुये पत्ते भी टूट कर तिलों में मिल जाते हैं इसलिए उड़ान करके पत्तों और तिल को अलग अलग कर लेना चाहिए.



को बढ़ाने के लिये २ प्रतिशत स्फुरिक, १·६ प्रतिशत पोटाश तथा ४·५ प्रतिशत नत्रजन होता है.

भूमि और जलवायु——

रामतिली की खेती करने के लिये २५ से ३० इंच वर्षा वाले भूभाग उपयुक्त रहते हैं. फसल की बाढ़ के लिये ऊष्ण एवं तर वातावरण उपयोगी है. इसकी खेती अधिकतर हलकी जमीन में ही की जाती है क्योंकि उसमें इसका उत्पादन आशानुकूल होता है. खरीफ की साधारण फसलों के लिये जितनी भी जुताई आवश्यक होती है उतनी ही जुताई इसके लिए पर्याप्त होती है.

खाद——

जब रामतिली की खेती किसी अन्य फसल के साथ मिश्रित खेती के रूप में की जाये तो इसके लिए पृथक से खाद देने की आवश्यकता नहीं होती. जब केवल इसकी अकेली फसल ली जाये उस समय खली का खाद लगभग ६ मन, अमोनियम सल्फेट १।। मन तथा गोबर का खाद १०० मन के लगभग डालना चाहिए.

हेर फेर——

बहुधा रामतिली की खेती कपास, कुलथी, मूंग, ज्वार और बाजरा के साथ की जाती है. जब इन फसलों के साथ इनकी खेती करनी हो तो मुख्य फसल की कतारों के मध्य इसके पौधे भी कनारों में लगा दिये जाते हैं.

रामतिली

बुवाई—

रामतिली की बुवाई वर्षा ऋतु के आरम्भ होते ही कर देनी चाहिए. यदि किसी कारणवश बुवाई में विलम्ब हो जाये तो भी अगस्त के महीने तक इसकी बुवाई की जा सकती है. बोने के लिए नालीदार हल या अगंडे का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु कुछ किसान कतारों में न बो कर इसे छिटका कर भी बो देते हैं. बीज की मात्रा प्रति एकड़ चार सेर के लगभग पर्याप्त होती है.

निंदाई और सिंचाई—

निंदाई की इसे आवश्यकता नहीं होती है किन्तु यदि खेत मे खर पतवार अधिक मात्रा मे हो तो निंदाई कर देनी चाहिए. इसी प्रकार सिंचाई भी उन्हीं खेतों के लिए आवश्यक होती है जहां फसल पानी का अभाव दर्शाये.

व्याधियां और शत्रु—

रामतिली के खेतों मे कोई विशेष प्रकार के कीटाणु अथवा रोगो का भय नहीं होता है. इसलिये उनसे सतर्क रहने की कोई आवश्यकता नहीं होती.

फसल—

तिल के समान ही चार पांच महीने मे तैयार हो जाती है. फसल तैयार हो जाने पर खलिहानों मे लकड़ी से पीट कर पृथक कर लिया जाता है. यदि फसल की मात्रा अधिक हो तो बैलों के द्वारा गाहनी कर लेनी चाहिए फसल की प्राप्ति प्रति एकड़ ५ मन के लगभग हो जाती है.

अलसी

व्यवसायिक दृष्टि से अलसी की आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है क्योंकि अलसी के तेल में रासायनिक गुण कुछ ऐसे पाये जाते हैं कि इसका प्रयोग अनेक कामों मे होता है. वैसे अलसी पशुओं के खिलाने के काम में लाई जाती है. देशी चिकित्सा पद्धति में भी इसका प्रयोग पुल्टिस के रूप में होता है. यद्यपि इसका तेल खाने के प्रयोग में कम आता है किन्तु जलाने के लिए, रंग वार्निश बनाने के लिये इसका तेल अन्य सभी तेलों की अपेक्षा बहुत अधिक प्रयोग में आता है. इसकी खली दूध देने वाले पशुओं के लिये उनके दूध की मात्रा बढ़ाने के लिए बहुत उपयोगी है.

अलसी की खेती थोड़ी बहुत भारत के सभी प्रान्तों में की जाती है किन्तु उत्तर प्रदेश में इसकी खेती अधिक होती है. क्षेत्रफल के विस्तार के अनुसार मध्य प्रदेश के किसान अधिक खेती करते हैं.

इसका पौधा दो ढाई फुट से लेकर तीन फुट तक ऊंचा होता है. अलसी के पौधे के पत्ते बहुत छोटे तथा फूल नीले रंग के होते हैं. सफेद फूल वाले पौधे भी पाये जाते हैं. जनवरी के महीने में जब इसके पौधे फूलते हैं उस समय खेतों की छटा अति मन भावनी तथा सुन्दर होती है.

जलवायु—

अलसी का उत्पादन समुद्र की सतह से छः हजार फुट ऊंचे स्थानों पर भी अच्छा हो जाता है. जिस समय फसल पकने को हो उस समय वातावरण मे कुछ उष्णता और धूप रहती है तो अच्छा रहता है किन्तु उसके विपरीत जब पौधो पर फूल आ रहे हों उस समय यदि आकाश मेघाच्छादित हो जाये तो पौधो मे गर्भाधान ठीक नहीं होता. वर्षा की दृष्टि से अलसी की खेती के लिए वह भूभाग उत्तम रहते हैं जहां ३०-३५ इन्च के लगभग वर्षा हो जाती हो. इसके विपरीत कहीं कहीं पर जहां ६० इन्च के लगभग वर्षा हो जाती है वहां भी अलसी की खेती सफलता के साथ हो जाती है.

जातियां—

जातियों के अनुसार अलसी का वर्गीकरण पौधो या बीज के आधार पर पृथक २ होता है पौधों की बाढ़ के अनुसार अलसी के पौधे दो प्रकार के लिये जाते है. पहली किस्म के पौधो मे बीजियां [टिलर्स] बहुत होते है तथा दूसरी मे नहीं. उत्तर प्रदेश, बिहार तथा बगाल के उन भूभागों मे जिनमे तरी पर्याप्त मात्रा मे रहती है पहली किस्म की अलसी अधिक होती है. मध्य भारत, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश मे तरी कम होने के कारण दूसरी किस्म की अलसी बोई जाती है. पहली किस्म की अलसी की जड़ें अधिक गहरी नहीं होती जबकि दूसरी किस्म की अलसी की जड़ें भूमि मे पर्याप्त गहरी जाती है.

अलसी के बीजों के रंग के आधार पर यदि इसका वर्गीकरण किया जाये तो हमें तीन रंग मिलते हैं. भूरा, सफेद और पीला. इनमें भूरी और सफेद अलसी मध्य भारत, राजस्थान और मध्य प्रदेश मे अधिक पैदा होती है. पीली और सफेद अलसी में भूरी की अपेक्षा तेल की मात्रा अधिक होती है किन्तु इसकी यह विशेषता उत्पादन की दृष्टि से पीछे रह जाती है क्योंकि प्रति एकड़ फसल के अनुपात में भूरी अलसी इन दोनों की अपेक्षा अधिक पैदा होती है और इस प्रकार इसके बीज की तेल की मात्रा की न्यूनता पूर्ण हो जाती है.

बीज और पौधों के अतिरिक्त अलसी का वर्गीकरण बीज के आकार के आधार पर भी किया जाता है किन्तु यह अन्तर केवल व्यापारी वर्ग ही देखते हैं. इस को नापने के लिये इनका माप दण्ड तौल-पर निर्भर करता है और इस प्रकार यह छोटे बीज वाली और बड़े बीज वाली अलसी कहलाती है. बड़े बीज वाली अलसी उसे माना जाता है जिसके बीज एक माशे वजन मे संख्या में १४० चढ़ते हों. इससे अधिक तौल में चढ़ने पर इसे छोटे बीज वाली अलसी कहते हैं. व्यापारी वर्ग इस अन्तर को बोल्ड ब्राउन और स्माल ब्राउन भी कहते हैं. उत्तर प्रदेश तथा बिहार के किसान अधिकतर बड़े बीज वाली अलसी की खेती करते हैं. राजस्थान, बम्बई तथा मध्य भारत के कुछ हिस्सों मे भी इसकी ही खेती की जाती है.

भूमि और जुताई—

अलसी की खेती करने के लिए मटियार दुमट ही बढ़िया रहती है. हल्की मिट्टी की भूमि मे इसकी फसल अच्छी नहीं होती

है. खेत की तैयारी करने के लिए एक बार हल और दो बार बखर चलाना आवश्यक होता है. यदि खेत मे खरीफ की फसल ली गई हो तो फसल उठाते ही शीघ्रता से जमीन तैयार कर लेना चाहिये. बरसाती पड़त की जमीन को बरसात में ही तैयार कर लेना उचित है. इसके खेत की तैयारी लगभग गेहूँ के खेत के समान ही होती है.

बीज और बुवाई—

अलसी के खेत मे प्रति एकड़ बीज की मात्रा छ: सेर ही पर्याप्त होती है किन्तु इतना बीज उस स्थिति मे काफी होता है जब इसकी बुवाई कतारों मे करनी हो. यदि छिटकाकर इसकी बुवाई करनी हो तो लगभग ८ सेर तक बीज की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए. उत्तर प्रदेश, काश्मीर तथा राजस्थान मे एक एकड़ खेत मे दस सेर बीज डालने की प्रथा है.

बढ़िया फसल प्राप्त करने के लिए सरकारी कृषि भण्डारो से नम्बरी बीजों की व्यवस्था कर लेनी चाहिए. विभिन्न प्रान्तों मे वहां की भूमि के अनुसार उपयुक्त नम्बर का ही बीज अच्छी फसल देता है. उदाहरण के तौर पर बंगाल तथा बिहार मे एन० पी० १२, ६८, १२१ नम्बर के बीज अच्छी फसल देते हैं इन नम्बरों मे १२ नम्बरी बीज की फसल मोटे बीज की तथा शीघ्र पकने वाली होती है. शीघ्र तैयार होने वाली फसलो के लिए एन० पी० ५८ नम्बर के बीज श्रेष्ठ रहते हैं. उत्तर प्रदेश के खेतिहरों को टी० सी० ११५० और टी० सी० ११६३ नम्बर के बीजों का प्रयोग करना चाहिए इसी प्रकार मध्य प्रदेश और मध्य भारत के लिए

ई० बी० ३ औरर नम्बर १२०६ क्रमशः अधिक फसल देने वाले बीज हैं. पीले बीज की अलसी के लिये नम्बर ११ का बीज अच्छा रहता है.

जब अकेली अलसी की फसल लेनी हो उसके बीज की मात्रा ऊपर बताई जा चुकी है किन्तु जब मिश्रित फसल में इसे बोया जाये तो आवश्यकतानुसार डेढ़ दो सेर बीज पर्याप्त होता है. मिश्रित फसल में भी इसका बीज पृथक कतारों में ही बोना उचित रहता है. जब अलसी अकेली बोई जाये और कतारों में बुवाई की जाये उस समय प्रत्येक कतार में ९-१० इंच का अंतर होना आवश्यक है. कतारों में बुवाई करने के लिए नालीदार हल अगेंड़ा तिफन या ड्रिल काम में लाये जा सकते हैं.

चूंकि अलसी रबी की फसल है इसलिए अक्टूबर के महीने में इसकी बुवाई की जानी चाहिए.

खाद

ज्यादातर देखने में आता है कि भारतीय किसान अलसी की खेती बगैर खाद दिये हुये ही करते हैं. कुछ अनुभवों से ऐसा भी पता चलता है कि जिन खेतों मे खाद देकर अलसी बोई गई उनसे कोई विशेष लाभ नहीं उठाया जा सका. नागपुर के एक कृषि फार्म में एक खेत में एक सौ साठ (१६०) मन गोबर का खाद दिया गया तथा दूसरे खेत मे बगैर खाद के खेती की गई तो परिणाम यह निकला कि बिना खाद के खेत मे खाद वाले खेत की अपेक्षा केवल दो मन अलसी कम निकली.

उपरोक्त तक से यह नहीं मान लेना चाहिए कि अलसी की खेती को खाद देने की कोई आवश्यकता नहीं है. फसल के द्वारा ग्रहण की गई उर्वरा शक्ति का विश्लेषण किया जाये तो पता चलता है कि एक एकड़ खेत को २० सेर के लगभग नत्रजन की आवश्यकता होती है और इसलिए खेत की भूमि को २० सेर नत्रजन पहुँचाने के लिये २-० मन गोवर का खाद देना आवश्यक होगा. गोवर के स्थान पर यदि एमोनियम सल्फेट अथवा खली का खाद दिया जाये तो वह क्रमशः २॥ और १० मन होगा.

निंदाई और सिंचाई—

यदि खेत मे अधिक खर-पतवार दिखाई पड़ तो एक दो वार निंदाई कर देना लाभप्रद रहता है वैसे इसे निंदाई की आवश्यकता नहीं होती. सिंचाई की उन्हीं स्थानों पर आवश्यक होती है जहां कि खेत जल का अभाव दर्शायें.

व्याधियां और शत्रु—

फसल को हानि पहुँचाने के लिए अलसी की खेती को शत्रु कीड़ों का कोई विशेष भय नहीं होता है. किन्तु कभी कभी हरदा (रस्ट) को व्याधि फसल को नुकसान पहुँचा देती है जब इस रोग का फसल पर आक्रमण होता है तब पौधों की पत्तियों पर नारंगी रंग का बुरादा दिखाई पड़ता है जो शनैः शनैः भूरा होने के वाद काला पड़ जाता है. इस व्याध से बचने के लिए खेत मे फसल का हेर फेर करते रहना चाहिए तथा ऐसे बीज प्रयोग मे लाने चाहिये जिन पर रोगों का प्रभाव शीघ्र न हो.

फसल—

अलसी की फसल की तैयारी बीज की जाति के अनुसार तथा वहां के स्थायी वातावरण के अन्तर्गत की जाती है. साधारणतया फसल पकने का समय फरवरी से अप्रेल तक होता है. फसल का पूर्णतया पकना तथा तोड़ना इसकी तैयारी के ऊपर निर्भर रहता है. बहुधा इसकी फसल को जड़ सहित ही उखाड़ा जाता है इसलिए पौधों को उस समय तक खेत में नहीं छोड़ना चाहिए कि ये उखाड़ते समय टूट जायें. फसल पक कर तैयार हो गई है अथवा नहीं, इसकी जांच करने के लिए समय समय पर बीजों को तोड़ कर तथा मसल कर देख लेना चाहिये.

जब अलसी की अकेली फसल बोई गई हो उस समय फसल उठाने के लिए मजदूरों की आवश्यकता होती है. एक एकड़ खेत के पौधों को उखाड़ने के लिए प्रायः दस मजदूर पर्याप्त होते हैं. फसल को उखाड़ने के बाद खलिहान में एकत्रित कर दिया जाता है. मिश्रत फसल बोई गई हो तो उस समय पौधों को उखाड़ने से मुख्य फसल के पौधों को हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है, इसलिए उस समय पौधों को जड़ के पास से काट लेना चाहिए, यदि मुख्य फसल अलसी की फसल से पहले पक कर तैयार हो जाये तो उसे काट लेने के बाद अलसी के पौधे उखाड़े जा सकते हैं.

अलसी का व्यवसाय अर्न्तप्रांतीय ही न होकर अन्तर्राष्ट्रीय है. हमारे देश से अलसी का निर्यात पर्याप्त मात्रा में होता है. विदेशों मे अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी ५-६ करोड़ की अलसी प्रतिवर्ष मंगाते हैं. विदेशों से पर्याप्त मात्रा में इसकी

मांग आती रहती है. इसका एक मात्र कारण यही है कि अलसी का तेल विभिन्न व्यावसायिक कार्यों में प्रयुक्त होता है.

बढ़िया जाति की अलसी में ४८ प्रतिशत तेल की मात्रा पाई जाती है. बीज की जाति के अनुसार यह मात्रा छोटे बीजों में घट कर ३६ प्रतिशत रह जाती है. बीज की जाति के अतिरिक्त प्राप्त किये गये तेल की मात्रा इसको निकालने के यन्त्र पर ही निर्भर रहती है. देश की पुरानी घानियों द्वारा केवल ३० प्रतिशत ही तेल निकल पाता है जब कि रोटेरी अथवा एक्सपेलर से यह मात्रा ३६ प्रतिशत तक बढ जाती है. यहां पर एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भारतीय भूमि में उत्पन्न अलसी के बीज में विदेशों में उत्पन्न होने वाली अलसी की अपेक्षा ४-५ प्रतिशत तेल की मात्रा अधिक होती है. यह भी इसके निर्यात का मुख्य कारण है. अतः भारतीय किसानों को अलसी की खेती के प्रति उपेक्षित नहीं रहना चाहिए.



सरसों

सरसों की खेती भारत के सभी प्रांतों में की जाती है. इसका तेल भारतीय परिवारों में अनेकानेक रूप में प्रयोग किया जाता है. अचार में डालने के अतिरिक्त खाने के लिये भी इसका ही तेल अधिक प्रयोग में लाया जाता है. इसके तेल का प्रयोग कई औषधियों तथा साबुन बनाने के लिये भी होता है. पहलवान भी इसके तेल की ही मालिश करते हैं. इसके तेल में एक विशेष गुण यह भी है कि इसमें रक्खे गये पदार्थ बहुत समय तक नष्ट नहीं होते हैं.

सरसों का पौधा ऊंचाई में दो फुट से लेकर तीन फुट तक पाया जाता है. जाति के अनुसार पौधों की ऊंचाई कुछ कम अधिक भी होती है. इसके पत्ते लम्बे तथा उनके किनारे कटे हुये होते हैं. पत्तों में डन्डी नहीं होती है बल्कि पौधे के पीड़ के साथ ही लगे हुये होते हैं. इसके फूलों का रंग पीला होता है. जब सरसों के खेत फूलते हैं उस समय खेतों का दृश्य बड़ा सुहावना होता है. इसका बीज पीला होता है. कुछ जाति की सरसों भूरे रंग की भी होती है. बीज का छिलका राई के समान खुरदरा न होकर चिकना होता है. खेत में बोये जाने के दो तीन सप्ताह बाद जब इसके पौधे १॥-२ बालिश्त के हो जाते हैं तब इनका प्रयोग हरी साग-सब्जी में बहुत होता है. पंजाबी इसका हरा साग खाने में सर्वाधिक रुचि रखते हैं.

जलवायु—

सरसों के लिये ३० से ५०-५५ इंच तक की वर्षा वाले स्थान उपयुक्त रहते हैं. खेत मे जिस समय बीज बोया जाने उस समय यह ऊष्ण वातावरण चाहती है क्योंकि यह रबी की फसल है.

भूमि और जुताई—

खेत की तैयारी वर्षा ऋतु मे कर लेनी चाहिये. खेत को दो बार हल तथा दो बार खर चला कर बुवाई के लिये तैयार किया जा सकता है.

हेर-फेर—

सरसों की फसल का हेर फेर बहुधा जौ, चना और कभी-कभी गेहूँ के साथ भी किया जाता है. जब मिश्रित फसल मे इसकी खेती की जाती है तो मुख्य फसल के साथ सरसों के बीज कतारों मे बो दिये जाते हैं. खरीफ की किसी भी फसल के साथ भी इसका हेर फेर किया जा सकता है.

बुवाई—

सरसों के बीज की मात्रा जब वह कतारो मे बोई जाये तो ४-५ सेर पर्याप्त होती है किन्तु छिटका कर बोने मे ६ ७ सेर बीज लग जाता है. बीज की बुवाई जब कतारों मे की जाये तो कतारों का अन्तर १-१। फुट का रखना चाहिये.

कतारों का यह अन्तर खेत की उर्वरा शक्ति के अनुसार घटाया या बढ़ाया भी जा सकता है. बीज की बुवाई सितम्बर अथवा अक्टूबर के महीने में की जाती है. गेहूँ की तरह इसकी बुवाई पूर्व में कुछ जल्दी तथा पश्चिमी भाग में देर से की जाती है.

सिंचाई और निंदाई—

सरसों की फसल को निंदाई अथवा सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती.

खाद—

सरसों के प्रति एकड़ खेत को १५ सेर नत्रजन की आवश्यकता होती है. खेत की मिट्टी में इतनी नत्रजन उत्पन्न करने के लिये १५० मन गोबर का खाद (कम्पोस्ट) देना आवश्यक होता है. यदि इसकी बजाय खली का खाद दिया जाय तो ७ ८ मन एवं अमोनियम सल्फेट केवल २ मन ही पर्याप्त होगा.

सरसों की फसल को प्रस्फुरिक खाद से बहुत अधिक लाभ पहुँचता है. इस खाद से इसकी उपज कभी कभी ड्योढ़ी और दुगनी भी हो जाती है. इसलिए खेत में गोबर का खाद देते समय लगभग तीन मन हड्डी का चूरा और दो मन सूपर-फास्फेट भी मिलाया जा सकता है.

व्याधियां और शत्रु—

सरसों के खेतों में कभी कभी लाही कीड़ा बहुत भयंकर उत्पात मचाता है. इस कीड़े की उत्पत्ति विशेषकर उन दिनों होती है जब बादलों और वर्षा के कारण वातावरण में अधिक

तरी आ जाती है किन्तु एक ओर जहां यह कीड़ा फसल को नुकसान पहुँचाना चाहता है दूसरी ओर प्रकृति ने इसको नष्ट करने का मार्ग भी वना दिया है अर्थात जव इस कीड़े की उत्पत्ति होती है उन्हीं दिनों सोनपखी नाम का कीड़ा जिसका आहार ये लाही होती है खेतों में आकर इन्हें नष्ट करने लगता है.

वचाव—

यदि इस कीड़े का आक्रमण बहुत व्यापक हो गया हो तो पौधों पर तम्बाकू के घोल का छिड़काव कर देना चाहिये. राख के ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क कर पौधों पर बुरकने से भी यह कीड़े मर जाते हैं.

सरसों की फसल मे मस्टर्ड फलाई नामका एक पत्रकीट भी पाया जाता है. इसके वालकीट दिन मे मिट्टी मे घुसे रहते है तथा रात को पौधो की पत्तियां खाते हैं. जब खेतों मे कीड़ों द्वारा खाई हुई पत्तियां दिखाई पड़े तो पौधा की जड़ो के पास मिट्टी कुरेद कर इन काले काले कीड़ों को ढूंढ़ कर नष्ट किया जा सकता है.

फसल—

सरसों की फसल ६-७ महीने मे पक कर तैयार हो जाती है. जैसा कि बताया जा चुका है कि पूर्वी भारत मे इसकी फसल पश्चिमी तथा मध्य भारतीय फसलों की अपेक्षा शीघ्र तैयार हो जाती है.

जब बीजों की फलियां भली-भांति पक जायें तो उस समय फसल काट कर खलिहान में डंडों से पीट कर उड़ान करके बीज पृथक कर लिया जाता है. सरसों के बीज में ३३ प्रतिशत तक तेल की मात्रा प्राप्त होती है. बीजों की जाति के अनुसार यह अन्तर रहता है. भूरी सरसों की अपेक्षा पीली सरसों में तेल की मात्रा अधिक होती है साथ ही पीली सरसों का तेल देखने में भी अच्छा लगता है.



तोरिया, तारामीरा

ये दोनों तेल जाति के बीज बहुत कुछ सरसों के समान ही होते हैं अन्तर केवल इतना ही है कि इनके बीजों से प्राप्त किये तेल में पीली सरसों के तेल की अपेक्षा कुछ अधिक झलझलाहट होता है. तारामीरा के पौधे दो फुट से लेकर चार फुट तक ऊंचे पाये जाते हैं. पौधे की पीड़ ठोस किन्तु रोयेदार होती है. इसके पत्तों मे डंडियां भी होती हैं तथा इनकी लम्बाई ६-७ इंच से १०-१२ इंच तक पाई जाती है. तारामीरा के बीजों की फलियों में बीजों की दो कतार होती हैं जब कि सरसों और तोरिया में एक ही कतार होती है. तोरिया का पौधा अच्छे खेतों मे छः फुट ऊंचाई तक बढ़ जाता है तथा इसके पत्ते कटे हुये नहीं होते हैं.

जलवायु—

तारामीरा तथा तोरिया की खेती करने के लिए सरसों के समान ही जलवायु की आवश्यकता है.

भूमि और जुताई—

सरसों के समान ही खेत की तैयारी करनी चाहिए.

बीज और बुवाई—

तारामीरा की फसल अधिकतर चने के खेत मे कुछ कतारें बोकर की जाती है किन्तु तोरिया अकेला भी बोया जाता है जिसे

छिटका कर अथवा कतारों में बोना चाहिए. कतारों में बोने के लिये १ फुट का अन्तर आवश्यक है. इन दोनों बीजों की बुवाई का समय सितम्बर-अक्टूबर तो है ही किन्तु पंजाब में तोरिया की बुवाई अगस्त में भी कर दी जाती है.

निंदाई और सिंचाई—

इन दोनों ही फसलों को निंदाई की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु तोरिया को सींचना पड़ जाता है.

खाद—

खाद की विशेष आवश्यकता तो नहीं होती किन्तु थोड़ा बहुत खाद देना लाभप्रद रहता है. सरसों के लिए उल्लेखित खाद की मात्रा इनके लिये भी पर्याप्त होती है.

इन फसलों पर भी सरसों के समान ही शत्रु कीड़े पाये जाते हैं तथा उनसे बचाव के उपाय भी जो सरसों के लिए बताये गये हैं प्रयोग में लाने चाहिएं.

फसल—

ये फसलें भी लगभग उसी समय तैयार हो जाती हैं जिस समय सरसों की खेती तैयार होती है तथा सरसों को काटने और तैयार करने की जो विधि है वही इनके लिए भी उपयुक्त होती है.



राई

सरसों के आकार से ही मिलता-जुलता दाना राई का भी होता है किन्तु इसका रंग कुछ श्यामलता लिये हुए भूरा अथवा लालिमायुक्त होता है. इसके पौधे २ फुट से ४ फुट की ऊंचाई तक पाये जाते है. पत्ते डण्डी वाले होते हैं किन्तु किनारों पर कुछ कटे हुए होते हैं. इनके फल जिनमे राई का बीज होता है तोरिया तथा तारामीरा के फलों से लम्बे होते है थोड़ी बहुत राई की खेती सभी प्रान्तों मे होती है लेकिन उत्तर प्रदेश का इसमे प्रमुख स्थान है. राई का उपयोग मसाले, अचार आदि मे प्रचुर मात्रा मे होता है. राई गुणों की दृष्टि से पाचक क्षुधावर्द्धक गर्म, तीक्ष्ण तथा कफनाशक होती है.

जलवायु—

राई के लिए ३० से ६० इन्च तक के वर्षा वाले स्थान उचित रहते है. वातावरण की दृष्टि से ऊष्ण वातावरण ही इसके लिये उपयुक्त रहता है क्योंकि यह रबी की फसल है.

भूमि और जुताई—

खेत की तैयारी वर्षा ऋतु मे कर लेनी चाहिए. दो बार हल चला कर तथा दो बार बखर करने पर खेत बोने योग्य हो जाता है.

बीज और बुवाई—

राई की बुवाई भी कतारों मे की जाये तो अच्छा रहता है. इसके लिए प्रति एकड़ खेत मे २-२॥ सेर बीज काफी रहता है.

निंदाई और सिंचाई—

बहुधा निंदाई सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है. यदि खेत में पौधे घने हों तो कुछ पौधे उखाड़ डालने चाहियें. खेत की उर्वरा शक्ति के अनुसार पौधों का अन्तर ८-९ इन्च से १ फुट तक रखना आवश्यक है.

खाद—

राई के प्रति एकड़ खेत को ४ प्रतिशत नत्रजन की आवश्यकता होती है. यदि ६ मन उपज मान कर खाद की आवश्यकता की गणना की जाये तो प्रति एकड़ खेत में १०-१२ सेर के लगभग नत्रजन पहुँचाना आवश्यक है. खेत को इतनी नत्रजन पहुंचाने के लिए १०० मन गोबर की खाद अथवा १ मन अमोनियम सल्फेट अथवा ४-५ मन खली का खाद देना पर्याप्त होगा.

व्याधियां और शत्रु—

राई की फसल को विशेष रूप से किसी रोग या कीटाणु का भय नहीं होता. यदि फसल पर लाही का आक्रमण हो जाए तो तम्बाकू के घोल का छिड़काव करना चाहिए.

फसल—

राई की फसल लगभग ५-६ महीने में पक कर तैयार हो जाती है.

जब फलियां भली प्रकार पक जायें तो फसल को काट कर खलिहान में एकत्रित कर लेना चाहिए. खलिहानों में गाहनी करके अथवा डण्डों से पीट कर बीज और भूसा अलग कर लेना चाहिए.

मूंगफली

यद्यपि मूंगफली का जन्म-स्थान भारतवर्ष नहीं है किन्तु फिर भी यहां इसकी खेती पर्याप्त मात्रा में होती है. सबसे पहले मूंगफली की खेती के बारे में जो इतिहास मिलता है उससे पता चलता है कि इसकी जन्मभूमि ब्राजील (अमेरिका) है. वहीं से इसके कुछ बीज अफरीका तथा एशिया महाद्वीपों में पहुँचे. आजकल इसकी खेती चीन, जापान तथा भारतवर्ष में दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है. अमेरिका में भी पिछली दो शताब्दियों के अन्दर इसकी खेती का बहुत विकास हुआ है.

मूंगफली के विभिन्न उपयोगों से सभी भली-भांति परिचित हैं. इसके अतिरिक्त यह दुधारू पशुओं के लिए भी बहुत स्वादिष्ट एवं बलवर्द्धक आहार है. भारतवर्ष की खेती का बहुत कुछ दायित्व हमारे पशु धन पर निर्भर है. इसलिए भी इसकी खेती हमारे लिए लाभदायक है. इसके अतिरिक्त मूंगफली की फसल अधिक परिश्रम नहीं लेती है. इसका उत्पादन बढ़ता जा रहा है. साथ ही एक वैज्ञानिक तथ्य यह भी है कि मूंगफली खेत की उर्वरा शक्ति को नष्ट करने की अपेक्षा बढ़ाती है क्योंकि यह एक ऐसी पौध है जिसका फल भूमि के अंदर पैदा होता है इसलिए जिन खेतों में इसकी खेती की जाती है उसमें सन और मटरा आदि बहुत फूलता है.

जातियां—

वैसे तो मूंगफली की अनेकानेक जातियां होती हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन यहां किया जा रहा है किन्तु सुविधा एवं व्यवसाय की दृष्टि से ये दो ही प्रकार की होती है. बड़े दाने वाली को मोटा दाना या वोल्ड तथा कहीं कहीं पर जापानी भी कहते हैं. इसका फल अन्य सभी जातियों की अपेक्षा वड़ा, छिलका मोटा तथा प्रत्येक दो वीज के वाद फल का ऊपरी हिस्सा सिकुड़ा हुआ होता है. इसका वीज लाल रंग की पतली झिल्ली से युक्त होता है. दूसरी छोटे दाने वाली मूंगफली होती है. इसकी फलियां भी पहली की अपेक्षा छोटी होती हैं.

लाल नैटाल—यह मूंगफली भी जापानी वीज का ही अंश है इसलिये इसे स्मॉल जापान भी कहा जाता है. फल का छिलका पतला होता है तथा वोल्ड जापान से कुछ छोटा होता है. वीज के ऊपर गहरे लाल रंग का छिलका होता है.

पीनट–संभवतः इसके वीज का निर्यात स्पेन से हुआ हो इसलिये इसे स्पेनिश पीनट भी कहते हैं अथवा किसी स्पेनिश कृषि-विशेषज्ञ ने इसके वीज का निर्माण किया हो. इस पीनट मूंगफली का फल कुछ छोटा एवं सिकुड़ा हुआ होता है छिलका भी इसका पतला होता है तथा वीज के ऊपर गुलावी रंग का आवरण होता है. वहुधा इसे पीनट ही कहते हैं.

कारोमंडल—कारोमंडल जाति की मूंगफली को मोझाम्बिक और मौरीशस भी कहा जाता है. इसके इन नामों से ऐसा पता चलता है कि इसके वीजों का आयात अफरीका के मोझाम्बिक प्रांत अथवा मौरीशस द्वीप से हुआ होगा. इसकी खेती अधिक

तर मद्रास के कारोमडल तट पर अधिक की जाती है इसलिए अब इसे कारोमडल नाम से ही संबोधित किया जाता है. इसका फल जापानी बोल्ड से थोड़ा ही छोटा होता है तथा छिलका भी उसकी अपेक्षा कुछ पतला होता है. इसके बीज का आकार भी जापानी बोल्ड से छोटा होता है तथा उसके ऊपर लाल रग का छिलका होता है. बम्बई के बाजार मे इसे मद्रासी मूंगफली कहा जाता है.

वर्जीनिया—बम्बई प्रांत के अन्तर्गत सूरत जिले मे भी मूंगफली की पैदावार होती है. इस प्रदेश मे पैदा होने वाली मूंगफली को वर्जीनिया कहते हैं.

खानदेशी, काठियावाडी और कराडी—काठियावाड़ प्रदेश मे पैदा होने वाली मूगफली यद्यपि उपरोक्त जातियों का ही अग होती है किन्तु अपने न्यूनाधिक अन्तर के कारण इसे काठियावाड़ी कहा जाता है. इसी प्रकार कराड़ जिले मे पैदा होने वाली मूंगफली को कराड़ी और पाडचेरी दोनों ही नामों से सम्बोधित किया जाता है. इन दोनों जातियों के बीज अच्छी श्रेणी मे गिने जाते हैं. हैदराबाद मे होने वाली मूगफली मुख्यतया दो जाति की होती है. इसमे मोटे दाने वाली को मोटा ज्वार और छोटे दाने वाली को घुंघरू कहते है.

मालवी—मालवा प्रदेश जो अब मध्य भारत का एक अग है मूगफली की अच्छी पैदावार देता है. इसलिए यहा की मूगफली को मालवी कहते है.

गगापुरी—मारवाड़ अथवा राजस्थान के भूभागों पर मूंगफली की जो पैदावार होती है उसे यहा के एक विशेप नगर गगापुर

के नाम से गंगापुरी कहते हैं. सम्भवतः इस प्रांत में सबसे पहले इसी नगर के आसपास इसकी खेती प्रारम्भ की गई हो.

उपरोक्त वर्णित जातियों के अतिरिक्त कुछ नम्बरी जातियां भी होती हैं जिनका वर्णन बीजों के परिच्छेद में किया जायेगा.

जलवायु—

मूंगफली की खेती समुद्र की सतह से २ हजार फुट तक की ऊंचाई पर सरलता से हो जाती है. इससे अधिक ऊंचाई पर वातावरण मे नमी अधिक बढ़ जाती है इसलिए इन स्थानों पर सफलतापूर्वक इसकी खेती नहीं की जा सकती किन्तु अब सरकारी अन्वेषण-शालाओं में कुछ ऐसी जातियां भी तैयार की गई हैं जिनकी खेती कुछ अधिक ठंडे स्थानों पर की जा सकती है. वैसे मूंगफली ऊष्ण कटिबन्ध में पैदा होने वाली फसल है. इसकी अच्छी फसल लेने के लिये ऊष्ण और तर वातावरण अच्छा रहता है. वर्षा की दृष्टि से बढ़िया फसल के लिए ३०-३५ इन्च वर्षा वाले स्थान ही बढ़िया रहते हैं पर कहीं कहीं ६० इन्च तक की वर्षा वाले स्थानों मे भी इसकी खेती हो जाती है.

भूमि—

मूंगफली की खेती के लिए दुमट, मटियार दुमट भूमि ही श्रेष्ठ रहती है किन्तु कहीं कहीं राकड़ (ककरीली) भूमि में भी इसकी खेती अच्छी हो जाती है. काली मिट्टी इसकी खेती के लिए नितांत उपयुक्त होती है. काली मिट्टी में लोहे का अंश अधिक होता है जिसके कारण इसके रंग और बीज के आकार में परिवर्तन हो

जाता है. चिकनी मिट्टी वाली भूमि अथवा वह भूमि जिसमे गर्मी के दिनों में दरारें पड़ जाती हैं, मूंगफली की खेती के लिये ठीक नहीं रहती.

जिस भूमि में अधिक नमी रहती हो अथवा वर्षा के पानी का निथार अच्छा नहीं होता हो ऐसे खेतों में इसकी खेती अच्छी नहीं होती है. इसके विपरीत उन खेतों में जिनमें वनस्पति के अंश अच्छी मात्रा में गलते तथा सड़ते हों अथवा नत्रजन के लिये हरी खाद दी जाती हो मूंगफली के लिये उत्तम रहती है.

खेत की तैयारी —

खेती किसी भी चीज की क्यों न की जाये उसकी सफलता का अधिकाश भाग खेत की तैयारी पर निर्भर करता है. वैसे बढ़िया जाति के बीज भी बढ़िया फसल का आधार होते हैं. किन्तु यदि फसल को बढ़िया बीजों के आधार पर करने की कोशिश की जाय और खेत की उपेक्षा कर दी जाय तो यह निश्चित है कि आशानुकूल फसल प्राप्त नहीं होगी.

अतः मूंगफली की खेती करने के लिये खेत की तैयारी अत्यावश्यक है.

जैसा कि बताया जा चुका है कि मूंगफली की खेती के लिए भुरभुरी मिट्टी की भूमि अधिक अच्छी रहती है. ऐसी भूमि को तैयार करने के लिए भी अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता है. तीन चार जुताई पर्याप्त होती हैं. प्रत्येक जुताई के बाद बखर चला देना चाहिए जिससे खेत के ढेले फूट कर मिट्टी भुरभुरी हो जाये. मूंगफली की बढ़िया फसल लेने के लिये यह आवश्यक है।

कि जो खेत इसके लिए तैयार करना हो उसमें जो पहली फसल ली गई हो उसे काटने के बाद खेत की तुरन्त जुताई कर देनी चाहिए. ऐसी जुताई करने के लिए उन हलों को प्रयोग में लाना चाहिए जिनसे खेत की मिट्टी भली भांति पलट जाये ताकि धूप, वायु और प्रकाश का प्रवेश हो सके. इस प्रकार की पहली जुताई करके खेत को खुला छोड़ देना चाहिए. इस समय खेत को आवश्यक खाद भी दे देनी चाहिए. प्रति एकड़ खेत में कितनी खाद दी जाये इसका ज्ञान खाद के परिच्छेद से कर लेना चाहिए.

जब वर्षा आरम्भ हो उस समय पुनः खेत की जुताई दो बार हल से तथा दो बार बखर से करके खेत तैयार कर लेना चाहिए. यह जुताई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वर्षा हो जाने से खेत में जो जंगली खरपतवार उग आये हों वे पूर्ण-तया नष्ट हो कर मिट्टी में मिल जायें. मूंगफली की फसल लेने के लिये खेत की तैयारी में निम्न बातों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए.

१. शीघ्र जुताई — खेत की पहली फसल लेने के बाद जल्द से जल्द खेत की जुताई कर देनी चाहिए. ऐसा करने से खेत में नमी का अंश बढ़ता है तथा पहली फसल की जड़ें नष्ट हो जाती हैं.

२. खेत की सफाई — खेत की सफाई करते रहने से जंगली खरपतवार तथा अन्य पौधे उग कर खेत की उर्वरा शक्ति को नष्ट नहीं कर पाते.

३. ऊपरी सतह भुरभुरी बनाना — मूंगफली की खेती में खेत की मिट्टी की ऊपरी सतह को जितना अधिक भुरभुरा बना

दिया जायेगा उतनी ही बढ़िया फसल तैयार होगी. इसका कारण यह है कि जब मूंगफली की लतायें फूलती हैं और फूल का गर्भाधान हो जाता है तब फूल का गर्भाशय खेत की ऊपरी सतह पर आसानी से धंस जाता है. यदि ऊपरी सतह भुरभुरी न बनाई जायेगी तो मूंगफली की लताओं में अच्छे फल नहीं लगेंगे.

बीज का चुनाव —

बीज का चुनाव करते समय अपने प्रांत के जलवायु और खेत की मिट्टी का अवश्य ध्यान रखना चाहिए क्योंकि विभिन्न भू भागों में पृथक पृथक जाति के तथा पृथक पृथक नम्बर के बीज ही अच्छी फसल देते हैं, साथ ही एक खेत में एक ही जाति अथवा एक ही नम्बर के बीज की कई फसलें निरन्तर नहीं लेनी चाहिएं. यदि एक ही बीज को कई वर्ष तक बोया जाता है तो बीज का आकार छोटा हो जाता है.

बीज की बुवाई करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इसके ऊपर जो मोटा छिलका चढ़ा होता है उसे पृथक कर देना आवश्यक होता है. इसके विपरीत बीज के ऊपर जो पतला लाल या गुलाबी छिलका होता है उसे हानि नहीं पहुँचनी चाहिए. इसलिये बोने के लिये जो मूंगफलियां खरीदी गई हों उनसे बीज निकालने का काम कूट कर न किया जाय बल्कि हाथ से तोड़कर बीज निकाले जायें. ऐसा करने से बीज के नष्ट होने की सम्भावना नहीं रहती है. यद्यपि इसमें समय अथवा परिश्रम कुछ अधिक लग जाता है. सामान्यतः एक मनुष्य एक दिन में दस सेर मूंगफली के बीज निकाल लेता है.

मूंगफली की बुवाई करने से पूर्व इस बात का भी निश्चय कर लेना चाहिए कि तैयार की जाने वाली फसल की मूंगफली खाने के लिये बेचनी हैं अथवा तेल निकालने के लिए. इस निर्णय के आधार पर ही बीज का चुनाव करना चाहिए. तेल निकालने के लिए यदि मूंगफली की खेती करनी हो तो पीनट अथवा इस पेनिस पीनट जाति के बीज अच्छे रहते हैं इसके विपरीत भूनकर खाई जाने वाली मूंगफली के लिए बोल्ड जापानी जाति का बीज बढ़िया रहता है. प्रति एकड़ खेत के लिए बीज की मात्रा अधिकतम ३० सेर के लगभग पर्याप्त होती है. बम्बई प्रांत के खेतों में बीज ३५ सेर भी डाले जाते हैं और इसके विपरीत मद्रास में ४० सेर या १ मन. बीजों की मात्रा का यह अन्तर मूंगफली की जाति के अनुसार होता है क्योंकि इसके पौधों का फैलाव भी दो रूप में होता है. इसलिये जो अधिक फैलने वाली जातियां होती हैं उनके बीजों का अन्तर कम फैलने वाली जातियों की अपेक्षा अधिक होता है इसलिए अधिक फैलने वाली जातियों के बीज चार-पांच सेर कम ही डाले जाते हैं. कृषकों की सुविधा के लिए नीचे हम विभिन्न स्थानों में उपजने वाले बीजों की सारिणी दे रहे हैं.

सारिणी

स्थान	बीज	गुण
उत्तर प्रदेश	अकोला न० १०	
मध्य भारत	ए० के० १२-२४	छोटा बीज
	ए० के० ८-११	बड़ा बीज
हैदराबाद	इसपेनिस पीनट	
मध्य प्रदेश	ए० के० ८-११	बड़ा बीज

	ए० के० १२-२४	छोटा बीज
वम्बई	पांडेचेरिया ८	
	स्पेनिश ५-१०	छोटा दाना
मद्रास	ए० एच० २५	
	ए० एच० ४५	गुच्छे वाली

उपरोक्त सारिणी में वर्णित बीजों की जातियां सारिणी में दिये हुये स्थानों पर अधिक अच्छी फसल देती हैं. यदि किसी कारणवश अपेक्षित बीज न मिल सके तो अन्य जाति के बढ़िया बीजों से भी फसल ली जा सकती है. इसके अतिरिक्त बीज के चुनाव में निम्नलिखित संकेतों पर भी ध्यान देना लाभप्रद है—

१—जिस जाति का बीज बोया जाये उसमे अन्य जाति के बीज मिश्रित न हों

२—बीज ऐसी जाति का होना चाहिए जिसमे फलियां बहुत हों तथा वे जमीन में तीन चार अंगुल गहराई में पैदा हों और उनका दाना भरा हुआ गोल और लम्बा हो.

३—जो बीज बोने के लिये चुने जाये वे पूर्णतया स्वस्थ और मध्यम आकार के हों.

बुवाई—

खेत में मूंगफली के बीज डालने का समय अलग अलग प्रांतों में थोडा बहुत आगे पीछे होता है. साधारणतया मूंगफली को बोने का उपयुक्त समय जून का महीना होता है. जून के महीने में भी इसकी बुवाई अधिक से अधिक २० जून तक कर देनी चाहिए किन्तु यह नियम मद्रास प्रांत के लिए लागू नहीं

होता. मद्रास में पैदा की जाने वाली छोटे और मोटे दाने वाली मूंगफली जिसकी सिंचाई करनी पड़ती है फरवरी और मार्च मे बोई जाती है.

मूंगफली की बुवाई नाली वाले हल अथवा अरगड़े से तो की ही जाती है किन्तु यदि खेत का क्षेत्रफल अधिक न हो तो उसके बीज हाथ से भी बो दिये जाते हैं. छोटे बीज वाली मूंगफली के लिये प्रति पौधे में लगभग नौ इन्च से १ फुट तक का अन्तर रहना चाहिए. अधिक फैलने वाली मूंगफली के पौधों मे यह अन्तर ५-६ इन्च का रखा जाना चाहिए.

बीजों का चुनाव दी हुई सारिणी के अनुसार ही करना चाहिए ताकि फसल अच्छी प्राप्त हो सके. बीज की बुवाई करने से पूर्व उनकी भली भांति जांच कर लेनी चाहिए. बीजों में अन्य जाति के बीज मिले हों तो अलग कर देने चाहिएं. बीज को धरती मे डालने से पूर्व जब उनका ऊपर का छिलका उतार दिया जाये तब चार घंटे के लिये पानी मे भिगो लेना चाहिए. ऐसा करने से पौधा जल्दी अंकुर फैंकता है.

खाद —

मूंगफली का अनुमानित उत्पादन प्रति एकड़ १० से १५ मन तक माना जाता है किन्तु यदि खेत की मिट्टी अधिक उर्वरा हो और खाद तथा सिंचाई भली भांति की जाये तो फसल की मात्रा उपरोक्त अंकों से दुगुनी भी हो जाती है. गणना के लिये यदि एक एकड़ खेत की उपज १५ मन मान ली जाये तो मूंगफली की फसल २८ सेर नत्रजन तथा ८ सेर प्रस्फुरिक खाद ग्रहण करेगी.

इन अकों के हिसाब से प्रति एकड़ खेत के लिए लगभग ३०० मन गोबर का खाद अथवा १४ मन खली या ३॥ मन अमोनियम सल्फेट की आवश्यकता होगी. पर मूंगफली की फसल दाल वर्ग की होने के कारण इसके खेतों को इतनी खाद देने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि इसके पौधे वायुमण्डल से पर्याप्त मात्रा मे नत्रजन ग्रहण करते रहते है. इसलिये यदि नत्रजनीय खाद की मात्रा अधिक हो जायेगी तो पौधों मे पत्तों की सख्या बढ़ जायेगी किन्तु फल ठोस बीज के नहीं आयेगे. इसलिए प्रति एकड़ खेत मे १२५ मन गोबर का खाद अथवा ७-८ मन खली या १५ मन अमोनियम सल्फेट दिया जा सकता है.

मूंगफली की फसल को प्रस्फुरिक खाद से काफी लाभ पहुँचता है इसलिए खेत को इतना खाद देना चाहिए जिससे पौधों के लिए २० सेर के करीब प्रस्फुरिक पहुँच सके. यदि प्रस्फुरिक के लिए उपयुक्त सेन्द्रिय खाद न मिले तो तीन मन हड्डी का चूरा डाला जा सकता है. इसी प्रकार यदि खेत मे पोटाश का अश उचित होता है तो भी मूंगफली की फसल अच्छी आती है खेत मे पोटाश की मात्रा बढ़ाने के लिये २५ मन राख डाली जा सकती है.

कभी कभी हम देखते है कि मूंगफली की कुछ फलिया ऐसी होती है जिनके अन्दर बीज नहीं होता अथवा होता भी है तो नाम मात्र. ऐसा होने का एकमात्र कारण यही होता है कि उन खेतों मे चूने की मात्रा आवश्यकतानुसार नहीं रहती. इसलिए फल बीज रहित हो जाते हैं.

निंदाई —

खेत की बुवाई करने के वाद जब मूंगफली के पौधे जमने लगें उस समय खेत में खरपतवार को नहीं जमने देना चाहिए तथा निंदाई उस समय भी थोड़ी वहुत कर देनी चाहिए जब तक कि इसकी लताओं में अच्छी वाढ़ न आ जाय. वाद में जब इसके पौधे कुछ वड़े हो जाते हैं उस समय उनकी वाढ़ अच्छी होने के कारण जंगली घास पात नहीं जम पाता.

पौधों की निंदाई के अतिरिक्त फसल की अन्य शत्रु कीड़ों से भी निगरानी आवश्यक होती है. उस समय जब फसल में फूल आ जाए इन लताओं को छेड़ना उचित नहीं होता है. यह वताया जा चुका है कि मूंगफली के फल जमीन के अन्दर फलते हैं. इसलिए यदि फूलते समय लताओं को उलट पुलट दिया जायगा तो फलों का गर्भाधान नहीं हो सकेगा. इसलिए मूंगफली की फसल की निंदाई उस समय तक ही की जा सकती है जब तक कि उसमें फूल न आवें.

सिंचाई —

मूंगफली की अधिकांश खेती मौसमी वर्षा के सहयोग से ही कर ली जाती है किन्तु जहां पर वर्षा कम होती हो उन स्थानों पर लम्बी लम्बी क्यारियां वना कर आवश्यकतानुसार सिंचाई कर देनी चाहिए. वैसे सिंचाई की आवश्यकता मद्रास प्रांत की फसलों में ही होती है किन्तु यदि अन्य स्थानों पर भी फसल की सिंचाई कर दी जायेगी तो मूंगफली की फसल अच्छी लगेगी.

व्याधियां और शत्रु—

जिस समय मूंगफली की फसल के बीज फूल कर गर्भित होने लगते हैं उस समय इसे दीमक से हानि पहुँचने की बहुत अधिक सम्भावना रहती है. इस व्याधि से बचने का एकमात्र मार्ग यही है कि उस समय खेत की थोड़ी सिंचाई कर दी जाये, ऐसा करने से दीमकों की उत्पत्ति का भय नहीं रहता है.

अन्य कीट पतगों में रोयेंदार एक कीड़ा होता है जिसके शरीर पर छोटे छोटे बाल होते हैं इसलिये इसे बालकीट भी कहते हैं. इस कीड़े को बाल्यावस्था में नष्ट किया जा सकता है क्योंकि इस की मादा एक ही स्थान पर बहुत से अण्डे देती है. बालकीट जब बड़े हो जाते हैं तब वे ही पतग कीट बन जाते हैं. इन्हें रोशनी पर आकर्षित करके मारा जाता है.

मूंगफली की फसल में होने वाली व्याधियों में टिक्का व्याधि मुख्य है. जब इस रोग का खेत पर प्रभाव हो जाता है तो मूंगफली के पत्ते काले पड़ जाते हैं तथा पौधे सूख जाते हैं. जड़ को सड़ाने वाला एक रोग भी पाया जाता है किन्तु ये दोनों व्याधियां इतनी व्यापक नहीं होतीं जिनके लिये विशेष सतर्कता रखी जाये. इसलिये यदि कभी उपरोक्त रोगों से ग्रसित पौधे दिखाई पड़ें तो उन्हें उखाड़ कर नष्ट कर डालना चाहिए.

फसल—

मूंगफली की फसल ५-६ महीने की अवधि मे पक कर उठाने योग्य हो जाती हैं. स्पेनिश जाति की मूंगफली सामान्यत. ५ महीने में तैयार हो जाती है तथा जापानी और वर्जीनिया की फसल तैयार होने मे ६ माह का समय लगता है.

मूंगफली की फसल उठाने से पूर्व इस बात की जांच भली भांति कर लेनी चाहिए कि फसल उठाने योग्य पक चुकी है अथवा नहीं. यदि अपरिपक्व फसल को उठा लिया जायेगा तो उनके फलों के बीज सिकुड़ जायेंगे और इस कारण बाजार मे उनका भाव गिर जायेगा. इसके विपरीत यदि फसल अधिक समय तक खेतों में पड़ी रहेगी तो भी बहुत से फलों के खेत में रह जाने की ही आशंका रहती है. मूंगफली की कुछ जातियां अधिकांशतः छोटे दाने वाली चार साढ़े चार महीने में ही तैयार हो जाती है. फसल उठाने योग्य हो गई है अथवा नहीं इसका अनुमान इसके पौधों के पत्तों से लगाया जा सकता है. जब इसकी लताओं के पत्ते पीले पड़ जाये और लगभग आधे पत्ते बिल्कुल सूख जायें उस समय फसल उठाने योग्य हो जाती है.

फसल को उठाने के लिये भी बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है अन्यथा बहुत से फल भूमि के अन्दर ही रह जाते हैं. बड़े बीज वाली मूंगफली की फसल उठाने के लिए जब वह पक कर तैयार हो जाए तो लताओं को सावधानी के साथ काट लेना चाहिए. इन लताओं के साथ मूंगफली का कोई फल नहीं आयेगा. खेत से लतायें काट लेने के बाद यदि जमीन अधिक सख्त हो तो हल्की सिंचाई करके अन्यथा बगैर सिंचाई किये ही बखर चला अथवा पंच शाखा द्वारा खेत को बहुत हल्का जोत देना चाहिए. ऐसा करने से भूमि के अन्दर की समस्त फलियां ऊपर आ जायेंगी तथा वे मजदूरों के द्वारा चुनी जा सकेंगी. कहीं कहीं ऐसा भी किया जाता है कि लताओं को काटने के बाद खेत मे पानी भर दिया जाता है तथा पानी भरे खेत मे जुताई करने से फलियां

ऊपर तैर आती हैं जिन्हें किसी वड़े झाड़ू से अथवा वांस की डालियों से चुन कर सुखा लिया जाता है.

छोटी जाति की मूंगफली की फसल उठाने के लिए सरल विधि यही रहती है कि जब फसल तैयार हो जाए तब पौधों को हाथ से पकड़ कर उखाड़ा जाए ऐसा करने से ८०-९० प्रतिशत फलियां लताओं के साथ उखड़ आती हैं, शेष फलियों के लिए मजदूरों से चुनाई करवानी पड़ती है. यदि खेत की मिट्टी अधिक सख्त हो गई हो तो लतायें उखाड़ने से पूर्व हल्की सिंचाई आवश्यक होती है. किन्हीं स्थानों पर अथवा वे किसान जो थोड़ी मात्रा मे इसकी खेती करते हैं खुरपों के द्वारा ही फलियों को उखाड़ लेते हैं. वड़े खेतों मे इन फलियों की चुनाई करने के लिए एक एकड़ खेत में लगभग ५०-६० मजदूरों की आवश्यकता होती है.

खेत से फलियां चुन लेने के वाद फलियों को पांच-सात दिन तक धूप दिखाना आवश्यक होता है. यह धूप उस समय तक दिखानी चाहिए जब तक कि उनका ऊपरी छिलका सख्त न हो जाये और अन्दर का बीज खड़खड़ाने न लगे. ऐसा करने से फलियों को किसी प्रकार के रोगादि का भय नहीं रहता.



अरन्डी

अरन्डी के तेल का उपयोग गांवों में दियों में जलाने के लिये तो होता ही है किन्तु इसके अन्य प्रयोग भी अति लाभदायक हैं. नारियल और तिल के तेल की भांति इससे साबुन भी बनाया जाता है तथा मशीनों में देने के लिये इसे साफ कर के व्हाइट आयल में मिलाते हैं. इस का तेल सिर में लगाने से बाल मुलायम रहते हैं तथा दिमाग को ठंडक पहुँचती है. अंग्रेजी डाक्टर इसके तेल का प्रयोग रेचक औषधि के रूप में भी करते हैं इसके पेड़ों के पत्ते भी चोट अथवा दर्द आदि पर लगाने के काम में आते हैं. इसकी खली खाद के प्रयोग में आती है.

अरन्डी की जातियां सामान्यतः दो ही पाई जाती हैं जिन्हें वार्षिक तथा बहु वार्षिक कहते हैं. बहु वार्षिक जाति के पौधे कभी कभी देहात के खंडहरों एवं खाद के ढेरों के पास भी उग आते हैं. वार्षिक जाति की अरन्डी भी रबी और खरीफ की फसल में कुछ भिन्नता रखती है. ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वार्षिक के बीज उष्ण कटिबन्ध में बहु वार्षिक हो जाते हैं क्योंकि दोनों के पौधे पत्ते तथा बीजों का आकार बहुत कुछ समान होता है.

रबी में बोई जाने वाली अरन्डी के पौधे यदि अच्छी फसल होती है तो चार पांच फुट ऊंचे अन्यथा दो ढाई फुट ऊंचे ही रहते हैं. इसके विपरीत खरीफ की फसल मे बोये जाने वाले पौधों की ऊंचाई यदि वे किसी अन्य फसल के साथ दूर दूर लगाये गए हों तो १५ से २० फुट तक हो जाती है अन्यथा इनकी ऊंचाई

८-१० फुट ही रहती है अरन्डी के पत्तो की कोंपलों का रंग वैंगनी होता है किन्तु वाद मे वे हरे हो जाते हैं. अरन्डी की कुछ जातियां ऐसी भी होती हैं जिनके पत्तों का रंग वैंगनी ही रहता है. बहुधा ऐसे पौधे बाग वगीचों मे लगाए जाते हैं.

अरन्डी के वीज की गिरि होती हैं जिस से तेल निकाला जाता है उसके ऊपर सख्त लकड़ी का छिलका चढ़ा रहता है. वीज की जाति के अनुसार छिलके की तहें मोटी व पतली पाई जाती है. वम्वई प्रदेश में होने वाली अरन्डी पर छिलके की औसत २२ प्रतिशत होती है जबकि यहां के वीज पर यह छिलका ३१ प्रतिशत होता है. गिरि के उपर इस छिलके की तहो के मुख्यतः तीन रंग होते हैं. काले, भूरे और वैगनी. वीजों का आकार भी जाति के अनुसार ही छोटा वड़ा होता है. परन्तु इनकी गिरियो मे विशेप अन्तर नही होता क्योंकि अधिकाश अन्तर छिलके की मोटाई के कारण होता है.

जलवायु —

यह पहले वताया जा चुका है कि अरन्डी की मुख्य जातिया रवी और खरीफ की होती है. अरन्डी की इन दोनों ही फसलों के लिए विपरीत वातावरण की अवश्यकता होती है अर्थात रवी की फसल में वोई जाने वाली अरन्डी शीत प्रधान वातावरण चाहती है जव कि खरीफ की फसल के लिए ऊष्ण वातावरण चाहिए. वर्पा की दृष्टि से २५-३० इंच से लेकर ६० इंच तक की वर्षा वाले स्थानों मे इसकी खेती की जा सकती है.

भूमि —

अरन्डी की खेती ज्यादातर अन्य फसलों के साथ ही की जाती है किन्तु दूसरी फसल के साथ इसका बीज डालने से पूर्व इस बात का थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि उस खेत की मिट्टी इसके लिए अनुकूल है अथवा नहीं. इस दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर रबी की उन फसलों के साथ इसकी खेती की जा सकती है जो दुमट अथवा मटियार दुमट मिट्टी में होती हो.

खरीफ की फसल में अरन्डी के पौधे बहुधा ज्वार, बाजरा अरहर, मूंगफली आदि के साथ लगाए जाते हैं. इससे स्पष्ट ही हो जाता है कि खरीफ की अरन्डी के लिए बलुआ दुमट अथवा दुमट मिट्टी अच्छी रहती है. वैसे खरीफ की फसल हर प्रकार की भूमि में हो जाती है. रबी की फसल में कहीं कहीं धान काटने के बाद खेतों में सेम की फसल लेते हैं. उस समय उसके साथ अरन्डी के पौधे भी लगा दिये जाते हैं.

जुताई —

जिस मुख्य फसल के साथ इसकी खेती की जाए उसके लिए जो जुताई की जाती है वही इसके लिए भी पर्याप्त होती है. किन्तु जब धान के खेत में सेम के साथ इसकी फसल लेनी हो तो दो बार हल से जुताई करनी चाहिए. जिन खेतों में केवल अरन्डी की भी खेती करनी हो उन खेतों की तैयारी वर्षा ऋतु में कर लेनी चाहिए. तथा खरीफ की शीघ्र पक जाने वाली फसलों के कटने ..ी खेत तैयार कर लेना आवश्यक है.

बुवाई —

जिस फसल की खेती करनी हो उस फसल के ही बीज ले चाहिएं, ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए कि बीज खरीफ की फस के लिए जाय और बोआई रबी मे कर दी जाय. दोनों फसलो के लिए नम्बरी बीज शासकीस भण्डारों से प्राप्त किये जा सकते हैं रबी और खरीफ की फसलें भिन्न भिन्न समय पर बो दी जाती हैं किन्तु सिंचाई के यथा पूर्व फसल की प्राप्ति के समय का अन्तर भी बोने का समय बदल देता है. साधारणतया खरीफ की फसल वर्षा प्रारम्भ होने पर ही बोई जाती है किन्तु जहां सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो वहां इसे मई के महीने मे भी बो दिया जाता है. रबी की फसल अक्टूबर नवम्बर मे बोई जाती है. किन्तु यदि वर्षा ऋतु मे खेत पड़ती छोड़े गये हो तो सितम्बर मे इसकी बोआई की जा सकती है.

अरन्डी की खेती ज्यादातर विशेष फसल में ही की जाती है किन्तु जब ये अकेली बोई जाय तब खरीफ की फसल मे इस के पौधों का अन्तर ३-४ फुट की दूरी पर रखना चाहिए और कतारों का अन्तर खेत की उर्वरा शक्ति के अनुसार ६ फुट से ८-१० फुट तक रखा जा सकता है. इसके विपरीत रबी की फसल मे पौधों का यह अन्तर ३-४ फुट तथा कतारों का अन्तर ५-६ फुट पर्याप्त होता है क्योंकि इसके पौधे अधिक ऊंचे नहीं होते हैं.

सिंचाई —

अरन्डी के पौधे, पत्ते और बीजों के वैज्ञानिक अन्वेपण के पूर्ण अंक न मिलने के कारण इसके खेत को दी जाने वाली खाद

की मात्रा निश्चित नहीं की जा सकी है किन्तु सामान्यतः प्रति एकड़ खेत को १०० मन गोवर का अच्छा खाद दे देना आवश्यक होता है.

अरन्डी की फसल का हेर फेर अधिकतर ज्वार, वाजरा, अरहर, मूंगफली, कपास आदि फसलों के साथ ही किया जाता है और इन्हीं फसलों में इसकी कतारें आस पास अथवा मध्य में भी लगा दी जाती है. कहीं कहीं रवी की फसल में अरन्डी की फसल अकेली भी ली जाती है पर वहुत कम. रवी की फसलों में सेम इत्यादि के साथ ही इसकी खेती की जाती है.

खरीफ की फसल को अधिकतर सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है किन्तु यदि इसकी वुवाई वर्षा से पहले की जाय उस समय इसकी सिंचाई कर देनी पड़ती है. यदि सिंचाई की सुविधा हो तो रवी की फसल को एकाध वार पानी दे देने से वीजों में तेल की मात्रा वढ़ जाती है.

निंदाई —

रवी की फसल के लिये निंदाई की आवश्यकता नहीं होती है. किन्तु पौधों की देख भाल करते रहना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार कटाई-छंटाई कर देनी चाहिए. काट ' कांट करते समय शत्रु कीड़ों अथवा रोगों की भी देख भाल करते रहना चाहिए. खरीफ की फसल को निंदाई की आवश्यकता तो होती है किन्तु जिस फसल के साथ इसे वोया जाता है उसी की निंदाई इसके लिये पर्याप्त होती है. अरन्डी के जो पौधे घरों के आस पास अथवा वगीचों में लगाये जाये उन्हें पहली फसल लेने के वाद जड़ से २-३ फुट की ऊंचाई पर काट देने से अगली साल के

लिए नई शाखायें निकल आयेंगी और दूसरे वर्ष पहले वर्ष की अपेक्षा अधिक फसल मिलेगी, इसी प्रकार तीसरे वर्ष भी काटा जा सकता है किन्तु तीसरे वर्ष फसल पहले वर्ष से भी कम ही मिलेगी. इसलिए तीन वर्ष से अधिक इसके पौधों को नहीं रखना ही उचित है.

व्याधियां और शत्रु —

अरन्डी की फसल को कैस्टर सैमिलूपर नाम का वालकीट काफी नुक्सान पहुंचाता है. इसके बच्चे कुछ काले रंग के होते हैं. पत्तों को और कलियों को खा जाता है. वड़ा होने पर यह कीड़ा सलेटी रंग का हो जाता है. इस कीड़े का निवास स्थान पत्तों के नीचे की तरफ हो जाता है. जब ये कीड़े दिखाई पड़ें तो इन्हें तुरन्त ही चुनवाकर नष्ट कर डालना चाहिये ताकि उनकी वंश-वृद्धि न हो सके. अरन्डी के पौधों पर कभी कभी कैस्टर करेसल भी पाया जाता है. ये गुलाबी रंग के होते हैं तथा फलों में छेद कर देते हैं. इसके अतिरिक्त कैस्टर वटरफ्लाई भी पौधों पर पाई जाती है, इसकी पीठ पर वाल की कतारें होती हैं. इसका रंग हरा होता है. वाद में जिन दो कीड़ों का वर्णन किया गया है उनसे फसल को अधिक हानि पहुँचने की संभावना नहीं होती है. अरन्डी की फसल में पाई जाने वाली व्याधियां विशेष रूप से उल्लेखनीय नहीं हैं.

फसल —

अरन्डी की फसल रवी की अपेक्षा खरीफ में अच्छी उपज देती है. साधारण तथा रवी में इसकी उपज ६ मन से लेकर

१० मन तक पाई जाती है. यद्यपि खरीफ में इसकी उपज ज्यादा होती है किन्तु खरीफ की फसल मिश्रित खेती के रूप में की जाती है इसलिए उसका प्रति एकड़ का अनुमान मालूम नहीं होता है. घर के आस पास अथवा वगीचे में लगाये गये पेड़ों से प्रति पेड़ ६-१० सेर वीज प्राप्त हो जाते हैं. मई में वोई जाने वाली फसल फरवरी तक काट ली जाती है. फलों के पकने का अन्दाजा उस समय हो जाता है जब फलों का रंग पूर्णतया वदल जाता है तथा फल कुछ चटक जाता है. जैसे जैसे फलों के गुच्छे पकते जायें उन्हें तोड़ते जाना चाहिये. कुछ फसलें जनवरी से पकनी शुरू हो जाती हैं तथा फलों की तुड़ाई दो महीने तक चलती रहती है. जब पेड़ों से पूर्ण फल प्राप्त कर लिये जाते हैं उस समय उन्हें भली भांति काट लिया जाता है तथा काटी हुई लकड़ी जलाने अथवा अस्थायी छप्पर में लगाने के काम आ जाती है. घर में एकत्र किये हुए बीजों की वोनियां जव पूर्णतया सूख जायें तव उन्हे डंडे से पीट कर वीज पृथक कर लेने चाहियें.



खसखस पोस्त

वाजार में मिलने वाली खसखस जिसे अधिकतर मिठाइयों अथवा अन्य ठंडाई के साथ प्रयोग में लाया जाता है, यह पोस्त की वौडी के वीज होते हैं. पोस्त की इसी वोंडी से अफीम प्राप्त की जाती है. भारतवर्ष में पोस्त की खेती अधिकतर अफीम प्राप्त करने के लिये ही की जाती है. पोस्त का पौधा तीन चार फीट ऊंचा होता है. इसके फूल की पंखड़ियां सफेद, लाल, गुलावी, वैंगनी आदि रंगों की होती है. इसके फल जिसे पोस्त डोंडा अथवा पोस्त की वोंडी कहते हैं उसी में राई के समान छोटे किन्तु खसखस के वीज होते हैं. व्यवसायिक दृष्टि से इसकी तीन जातिया होती हैं जिन्हें पटनियां मालवी तथा वनारसी कहते हैं.

जलवायु —

पोस्त की खेती के लिये शुरू में शीत वातावरण अच्छा रहता है. पहाड़ी प्रदेशों मे गर्मी के दिनों में इसकी खेती की जा सकती है. जव इसमे फल आजाये उस समय यदि राते ठन्डी होती हों तो बौंडियों से दूध पर्याप्त मात्रा मे निकल कर उन पर जम जाता है जिसे एकत्रित करके अफीम का रूप दिया जाता है. वर्षा की दृष्टि से पोस्त की खेती करने के लिये ३० से ५० इन्च तक की वर्षा वाले स्थान उपयुक्त रहते हैं.

भूमि —

पोस्त की खेती करने के लिये दुमट अथवा बलुआ दुमट भूमि अधिक उपयुक्त रहती हैं. पोस्त रबी की फसल में पैदा होता है इसलिये उस खेत में जिसमें पोस्त की खेती करनी हो खरीफ की फसल में मक्का की फसल ले लेना लाभप्रद रहता है. क्योंकि मक्का की फसल को पर्याप्त खाद दी जाती है. मक्का कट जाने के बाद उसका शेषांश पोस्त द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है. खरीफ की फसल कट जाने के बाद दो बार हल और दो बार बखर चला खेत तैयार कर लेना चाहिए.

बीज —

पोस्त की खेती करने के लिए बाजार में बिकने वाली खस-खस के बीज के रूप में प्रयोग में नहीं लाये जा सकते हैं क्योंकि पुराने बीज मिले रहने की सम्भावना रहती है: इसलिये खेती के लिये जहां तक सम्भव हो, पिछली फसल के बीज लेने चाहियें. एक एकड़ खेत के लिए दो सेर बीज पर्याप्त होता है. बीजों की बुवाई सितम्बर अथवा अक्टूबर में छिटका कर की जाती है. पहाड़ी प्रदेशों में मार्च के महीने में बीज बोये जाते हैं.

खाद —

प्रति एकड़ खेत को लगभग १५० मन गोबर का खाद अथवा २ मन अमोनियम सल्फेट या ७-८ मन खली का खाद दिया जाना चाहिये.

सिंचाई —

पोस्त की खेती, यदि सिंचाई के साधन न हों तो नहीं की जा सकती. इसकी खेती के लिए ४-५ इन्च सिंचाइयां आवश्यक होती हैं. अधिक मुख्य स्थानों पर प्रत्येक पखवाड़े में एक सिंचाई करनी पड़ जाती है. जब पौधों में पोस्त के डोंडे ·दूध निकालने योग्य हो जायें उससे १५ दिन पूर्व सिंचाई बन्द कर देनी चाहिये.

निंदाई —

जिस प्रकार इसकी खेती के लिए सिंचाई आवश्यक है उसी भांति प्रत्येक फसल के लिये तीन-चार बार निराई भी करनी पड़ती है. निंदाई करते समय पौधों का आपसी अन्तर भी ठीक कर देना चाहिये. पौधों की छटाई उसी समय करनी चाहिये जब वे बहुत छोटे हों. प्रत्येक पौधे में कम से कम आधे फुट का अन्तर रहना आवश्यक है. प्रारम्भ में की गई छटाई के पौधे साग के काम में आते हैं.

व्याधियां और शत्रु —

पोस्त के छोटे पौधों पर छोटे छोटे टिड्डे जिनका रंग मिट्टी के समान होता है आक्रमण करते हैं. लेकिन इसके पौधे के पत्ते इतने घने होते हैं कि उनमें से कुछ नष्ट भी हो तो पौधों को हानि नहीं पहुॅचती.

फसल और अफीम की प्राप्ति —

यह बताया जा चुका है कि भारतवर्ष में पोस्त की खेती अधिकतर अफीम के ही उद्देश्य से की जाती है. पौधों से अफीम

निकालने का काम काफी परिश्रम का होता है क्योंकि जिन दिनों पौधों की डोंडियों में दूध भरता है उन्हें चीरने के लिये मजदूरों की आवश्यकता होती है तथा उन दिनों मजदूर मिलने कठिन हो जाते हैं क्योंकि अन्य कृषक भी अपनी खेती में लगे होते हैं. वौंडों को चीरा देने के लिये नाणा नाम का यन्त्र काम में लाया जाता है जिसमें वारीक नोक के तीन कांटे होते हैं. चीरे लगाने का काम दोपहर के वाद किया जाता है तथा रात भर में डोंडों से दूध निकल कर वाहर जम जाता है जिसे दूसरे दिन एकत्रित कर लिया जाता है वोंडी में चीरे की गहराई एक निश्चित मात्रा तक रहती है इसके लिये जो लोग इसमें अनुभव रखते हैं वे ही अधिक सफलता से चीरा लगा सकते हैं. प्रत्येक फल में तीन चार दिन के अंतर से तीन चार वार चीरे लगाये जा सकते है. वोंडियों में चीरा लगाने पर जो दूध निकलता है उसे एकत्रित करने के लिये लूहा नाम का पात्र प्रयोग में लाया जाता है. एक एकड़ खेत के फलों से दूध निकालने तथा एकत्रित करने के लिये पचास मजदूरों की आवश्यकता होती है. एक एकड़ खेत से प्रायः आठ-दस सेर अफीम और पांच छः मन खसखस प्राप्त हो जाती है. अप्रेल के महीने में फल सूख जाता है तव उन्हें तोड़ कर और डंडे से पीट कर तथा हल्की हवा में उड़ा कर वीज निकाल लिया जाता है.



कुसुम

भारतवर्ष में कुसुम की खेती दिन प्रति दिन कम होती जा रही है. इसके बीज से तेल प्राप्त किया जाता है जो पीले रंग का होता है. तेल का उपयोग खाने के अतिरिक्त अन्य कई कामों भी होता है. इसके फूलों से लाल रंग तैयार किया जाता है.

जातियां —

मुख्यतया इसकी दो जातियां होती हैं. एक वह जिसमे फूल अधिक आते हैं. यह रंग बनाने के लिये उपजाई जाती है दूसरी वह जाति जिसके बीजों मे तेल की मात्रा अधिक रहती है. जिस जाति की कुसुम से तेल प्राप्त होता है उसके फूल कुछ पीले रंग के होते हैं तथा इसके पौधे पर काटे भी होते हैं किन्तु जिस जाति से रंग तैयार किया जाता है उसके फूलों का रंग लाल होता है और उस पर काटे नहीं होते. पौधे जाति के अनुसार दो तीन फुट ऊंचे होते हैं.

जलवायु —

कुसुम की खेती ठंडा वातावरण चाहती है, किन्तु उतना ठंडा नहीं जितना कि अलसी के लिये आवश्यक होता है. २५ से ४० इन्च वर्षा वाले स्थान इसके लिये उपयुक्त रहते हैं. फूल आने के समय वर्षा हानिप्रद रहती है. उपरोक्त मात्रा से वर्षा यदि कम भी हो जाये तो भी कोई विशेष हानि नहीं होती.

भूमि —

कुसुम की खेती करने के लिए हल्की वलुआर दुमट मिट्टी अच्छी होती ही है किन्तु काली दुमट में भी इसकी पैदावार हो जाती है. काली दुमट में वहुधा दूसरी फसल के साथ वोया जाता है. मिश्रित फसल में जव इसकी खेती की जाये तो मुख्य फसल के चारों ओर इसकी तीन तीन चार चार कतारें लगा दी जाती हैं. जुताई वही पर्याप्त होती है जो मुख्य फ़सल के लिये की जाये. अकेली खेती के करने के लिये यदि वर्षा के दिनों में कोई फसल न ली गई हो तो रवी की फसल की भांति ही जुताई कर देना पर्याप्त होता है. वर्षा के दिनों में घास पात न जमने देने के लिये एक वार वखर चला देना चाहिए. वुवाई के समय एक वार हल और एक वार वखर चला कर खेत तैयार किया जा सकता है.

वीज और वुवाई —

जिस जाति की कुसुम वोनी हो उसके वीज शासकीय कृषि-भण्डारों से प्राप्त किये जा सकते हैं जसा कि वताया जा चुका है कि इसकी खेती तेल के लिये ही की जाती है. इसके लिये एन० पी० ३० नम्वरी वीज अच्छा रहता है. एक एकड़ खेत के लिये दस सेर वीज पर्याप्त होता है, मिश्रित फसल में दो ढाई सेर वीज डाले जा सकते हैं.

जिन दिनों गेहूँ की वुवाई की जाती है उन्हीं दिनों इसकी वुवाई कर देनी चाहिये. वम्वई प्रदेश में सितम्वर और अक्टूवर में वोई जाती है. इसकी वुवाई कतारों में ही करनी चाहिए.

इसके लिये नाली वाले हल या अरगड़े का प्रयोग किया जा सकता है. कतारों में डेढ़ फुट का अन्तर रखना आवश्यक है. वैसे छिटका कर भी बोई जा सकती है किन्तु जब साग-भाजी के लिये बोनी हो तभी छिटका कर बोनी चाहिये.

निंदाई —

वैसे कुसुम की खेती को सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु कतारों की छंटाई करते रहना चाहिए. साग भाजी के लिए उपजाई जाने वाली खेती में पौधो का अन्तर चार पांच इंच का रखना चाहिए. पौधों में जिस समय फूल की कलियां आने लगें उस समय चने के साग की भांति कोपलों की छटाई कर देने से पौधों में अधिक फल-फूल आ जाते हैं.

सिंचाई —

सिंचाई उन्हीं स्थानों पर आवश्यक होती है जहां वर्षा का जल खेती के लिए पर्याप्त न हो. मिश्रित फसल में मुख्य फसल के साथ इसे पानी मिल ही जाता है.

शत्रु कीड़े —

कुसुम की फसल पर भौंरे के समान कवच पंखी कीड़ा पाया जाता है. यह कीड़ा इसके पत्तों को खा जाता है. इन कीड़ों की संख्या बढ़ जाने पर फसल को अत्यधिक हानि होने की संभावना हो जाती है. इसके अतिरिक्त दो पतंग जाति के कीड़े भी इसको हानि पहुँचाते हैं. इन से बचने का उपाय यही है कि जब इन कीड़ों का आक्रमण दिखाई पड़े तो इन्हें चुनवा कर नष्ट कर देना चाहिए.

फसल —

कुसुम की वह फसल जिससे रंग तैयार किया जाता है जनवरी में तैयार हो जाती है अर्थात जनवरी में इसके फूलों की पंखड़ियां चुनी जाती हैं. एक एकड़ खेत में मन सवा मन फूल तैयार होते हैं. तेल के बीज के लिए बोई जाने वाली कुसुम फरवरी और मार्च के महीने में तैयार हो जाती है. बंगाल प्रान्त में इसकी बुवाई कुछ देर से की जाती है इसीलिए वहां फसल भी देर से तैयार की जाती है. तेल के बीज वाली कुसुम दस बारह मन प्रति एकड़ की उपज देती है. फसल तैयार होने पर काट कर खलिहानों में एकत्र की जाती है तथा डन्डों से पीट कर बीज निकाल लिया जाता है.

कुसुम की खेती करने पर किसानों को चार पदार्थ प्राप्त होते हैं, रंग के लिए फूल तथा तेल और खली के लिए बीज. इसके बीज में सत्ताईस प्रतिशत से तीस प्रतिशत तक तेल प्राप्त होता है. बीज से तेल निकालने के लिये एक नई विधि भी इसके प्रयोग में आती है, एक घड़े को जमीन के अन्दर गाड़ कर उस पर छेददार ढक्कन रख दिया जाता है तथा इसके ऊपर बीजों से भरा हुआ दूसरा घड़ा पहले घड़े के ढक्कन पर उल्टा रख कर गर्म किया जाता है. ऐसा करने से तेल धीरे धीरे रिसकर नीचे के घड़े में एकत्रित होता जाता है किन्तु इस तेल का रंग अन्य विधियों से निकाले गये तेल की अपेक्षा कुछ काला होता है.



तरकारियां

हमारे देश के अधिकांश नागरिक तरकारियां खाने के आदी हैं. इसका सबसे बड़ा कारण तो यह ही है कि भारतवासियों में आमिषाशियों की संख्या बहुत ही कम है बल्कि यों कहना चाहिए कि उनकी संख्या न के बराबर ही है. अतः साग भाजी की अधिक मांग है. वैसे भी हरी साग भाजी सदा शीतल होती है और यह देश गरम है इस कारण से भी साग भाजी की आवश्यकता होती है. साग भाजियों में वास्तव में लगभग सारे ही फलों की शक्ति होती है. भारत एक निर्धन देश है और फलों के लिए पैसे बहुत चाहिये अत यहां के लोग साग भाजी ही अधिक खाते है जिन में गुण तो लगभग सारे फलों जैसे ही होते हैं किन्तु उनमे पैसे फलों से लगभग आठवे हिस्से के बराबर लगते है. निर्धन और धनिक इसे बराबर से प्रयोग मे लाते है. साग भाजी की खेती वैसे भी व्यय प्रधान नहीं है अर्थात कम व्यय पर अधिक लाभ पहुँचाती है. आर्थिक दृष्टि से कई तरकारियां तो अन्न व खेती से दस गुना अधिक तक लाभप्रद सिद्ध हुई है. किन्तु फिर भी यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि भारत में साग भाजी की खेती बहुत कम मात्रा मे की जाती है. आजकल शहरों के आस पास तो फिर भी साग भाजी की बहुतायत देखने मे आती है क्योंकि शहरी लोग साग भाजी अधिक खाते है उतनी ही शहर की माग है. किन्तु गांवों मे इसकी उपज अवश्य करनी चाहिए जिससे कि तरकारिया अधिक से अधिक मिल पाये. भारत मे साग-भाजी

की जितनी मांग है उतनी उपज नहीं है. जिन घरों में छोटी बाड़ियां लगाने का स्थान है उन्हें अपने घर में काम आने योग्य तरकारियां स्वयं घर में ही उगा लेनी चाहिएं जिससे कि साग-भाजी के लिए आत्म-निर्भर रहें. लोग इसे कठिन समझते हैं किन्तु यह उतनी ही आसान है जितना फूलों के पौधे लगा लेना. फिर गांवों में भी सारे किसानों को साग-भाजी थोड़ी बहुत अवश्य ही उगानी चाहिएं. इस प्रकार यदि सारे ही लोग मिलकर प्रयास करें तो शीघ्र ही भारत के प्रत्येक नागरिक को अपनी आवश्यकता और मांग के अनुसार सारी साग-भाजियां आसानी से प्राप्त हो सकती हैं. इस प्रकार तरकारियों का उगाना जहां आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है वहां देश हित में भी है.

उपयुक्त भूमि —

साग भाजी बोने के लिए हर प्रकार की भूमि प्रयोग में लाई जाती है. बात केवल परिश्रम की है. जो भूमि इसके लिये उपयुक्त नहीं भी होती उसे थोड़े परिश्रम से तैयार किया जा सकता है. भूमि की तैयारी वास्तव में पानी, खाद, जुताई और निंदाई पर ही निर्भर रहती है. ठीक ढंग से जुताई और निंदाई कर के उचित खाद देकर ठीक पानी की सहायता से हर प्रकार की भूमि को तरकारी के योग्य उपजाऊ बनाया जा सकता है. इसके लिये सर्वोत्तम भूमि दुमट मानी गई है और वह भी ऐसी जिसमें कि बालू और मिट्टी लगभग बराबर २ ही हो. मटियार भूमि तरकारियों के लिये उपयुक्त नहीं है. ऐसी भूमि को जब तक तैयार नहीं किया जाये तब तक वह भूमि बेकार होती है क्योंकि यह बहुत ही चिकनी और सख्त होती है. ऐसी भूमि को गहरी जुताई करके तैयार करना चाहिये,

तव ही वह तरकारी उपजाने योग्य वन पायेगी. इसी प्रकार निचली भूमि में भी साग भाजी नहीं वोनी चाहिये. ऐसी भूमि में पानी भर जाता है, जिसे तरकारियां सहन नहीं कर सकतीं. निचली भूमि को तैयार करने के लिये पहिले उसे ऊपरी भूमि के साथ समतल करना आवश्यक है. वह तव ही साग भाजी के लिये उपयोगी वन पाती है. फिर किसी भी स्थान पर साग भाजी की वाड़ी बनाई जा सकती है. तरकारियों के लिये वाड़ी वनाने में कोई विशेष वात तो नहीं है किन्तु परिश्रम अवश्य करना पड़ता है. भिन्न २ प्रकार की भूमियों में भिन्न प्रकार की मिट्टी मिलाने से भूमि तैयार हो जाती है.

मटियार भूमि – यह मिट्टी चिकनी और सख्त होती है. जिसके कारण पानी ऊपर भर कर रह जाता है तथा मिट्टी में कठिनता से प्रवेश कर पाता है. तरकारी के लिये उपयोगी वनाने के लिये ऐसी भूमि को तीन चार फीट गहरा खोद डालना चाहिये और नीचे कक्कड़ पत्थर विछा कर ऊपर उस मिट्टी मे वालू मिला कर उसे भी फैला देना चाहिये. इससे मिट्टी में भुरभुरापन आ जाएगा, तथा सख्ती नष्ट हो जायगी साथ ही इसके खाद भी डाल देनी चाहिये. लेकिन खाद हरी पत्ती की हो साथ ही वुझा हुआ चूना भी मिलाना आवश्यक है जिससे भूमि वंजर न वन जाय.

वलुआर भूमि – वलुआर भूमि निर्वल होती है, क्योंकि इसमें भूड़ का अनुपात अधिक होता है. ऐसी भूमि तैयार करने के लिये इसे लगभग चौवीस इंच गहरा खोद डालना चाहिये. और नीचे एक छः इंची तह तालाव की फोड़ी हुई चिकनी मिट्टी की लगा देनी चाहिये. फिर उस पर उतनी ही भूड़ विछा कर उस पर हरी

पत्ती की खाद की एक तह लगा देनी चाहिये. और फिर सम्पूर्ण खेत की गहरी जुताई करके सारी मिट्टी को इस प्रकार ऊपर नीचे कर देना चाहिये कि खाद बालू और चिकनी मिट्टी मिल कर एक रस हो जायं.

दुमट भूमि — यह मिट्टी कुछ कुछ चिकनी होती है, किन्तु सख्त नहीं होती, अतः तरकारी के लिये यह सर्वोत्तम मानी गई है. इस भूमि में हल्की खाद डालने की आवश्यकता है. किन्तु जुताई करके मिट्टी को भली प्रकार से उलट-पलट देने से और खाद को मिट्टी में पूर्ण रूपेण एक रस कर देने से यह मिट्टी तरकारी के लिये अत्यंत उपजाऊ बन जाती है. इसमें तालाब की खोदी गई मिट्टी और खाद दोनों ही थोड़ी २ डालनी चाहिये अधिक नहीं. अधिक डालने से भूमि निर्बल हो जाती है. वास्तव में बात ऐसी है कि तरकारियों की खेती के लिये हर प्रकार की भूमि को परिश्रम द्वारा उपजाऊ बनाया जा सकता है. खेत की मिट्टी को नरम और भुरभुरा बनाने की आवश्यकता है. और इसके लिये उसे यदि सपरिश्रम ठीक प्रकार जोता, गोड़ा जाय तो वह साग-भाजी के लिये उपयुक्त उपजाऊ बन जाती है. तैयार करते समय भूमि में यदि घास फूस हो तो तुरन्त निकाल देना चाहिये. कंकड़ पत्थर भी नहीं छोड़ने चाहियें. और बुवाई से पूर्व भूमि में हल्की सी नमी लाने के लिये थोड़ा पानी भी दे देना चाहिये. साग भाजी की अच्छी पैदावार करने के लिए यह भी ध्यान रखना चाहिए कि खेत के आस पास बड़े वृक्ष न हों. क्योंकि बड़े वृक्षों की जड़ें अपनी सारी खुराक स्वतः ही प्राप्त कर लेने से साग-भाजी के पौधे ठीक खुराक प्राप्त करने में असमर्थ हो जाते हैं.

पैदावार विगड़ जाती है. खेत तैयार करते समय यह पहिले से ही विचार कर लेना चाहिए कि कौनसी तरकारी बोने का विचार है, भूमि वैसी ही होनी चाहिए. क्योंकि ऐसी तरकारियों के लिए जिनकी पत्तियां तने आदि खाए जाते हैं शक्तिशाली भूमि की आवश्यकता है. जिससे इनकी वाढ़ सी आ जाए. किन्तु टमाटर बैंगन आदि जैसी फलवाली साग भाजी के लिए अधिक शक्तिशाली भूमि हानि प्रद होती है.

बुवाई —

इसकी बुवाई अधिकतर नरसरी मे की जाती है. फिर पौधों का स्थानान्तरण खेतों में किया जाता है. जिन पौधों से वीज प्राप्त करना होता है उन्हें नरसरी में ही वढने दिया जाता है, या खेत में पृथक कर दिया जाता है. जिससे कि उसकी देख रेख अच्छी हो सके और वीज अच्छा हो. वीज को जमाने के लिए हल्की सी नमी की आवश्यकता होती है. अतः वहुत ही हल्की सी एक सिंचाई वीज वोने से पूर्व कर देनी चाहिए. किन्तु यह ध्यान मे रहे कि पानी अधिक न दिया जाय जिससे कि मिट्टी गीली हो जाय. गीली मिट्टी वीज को गला देती है, और जमने नहीं देती. मटर से वड़े वीजों को दो इन्च तक गहरा तथा उससे छोटो को उथला ही वोना चाहिए, क्योंकि धनिए जैसे वीजो मे इतनी शक्ति नहीं होती कि नीचे से कुरा फेंक दे, अतः ऐसे वीजो को तो ऊपर ही बखेर कर हाथ से मिट्टी मे मिला देना चाहिए. वुवाई ऐसे समय पर करनी चाहिए जव कि छाया हो अर्थात या तो सूर्य निकलने से पूर्व प्रातःकाल (किन्तु अंधेरे मे नहीं) या सूर्य के छिप

जाने के बाद सांयकाल या ऐसे समय पर बुवाई हो जब सूर्य के ऊपर बदल। छाई हुई हो. अर्थात न तो धूप ही हो और न सूर्य में तीव्रता हो.

बीज बुवाई —

बीज हमेशा क्यारियों में बोना चाहिए, तथा क्यारी २ के बीच चलने फिरने की राह होनी चाहिए जिससे देखभाल ठीक प्रकार से की जा सके, और सिंचाई के समय पौधे नष्ट न हों. ऐसा न करने से एक तो पौधों की सिंचाई ठीक नहीं हो पाती दूसरे गुड़ाई के समय पौधे कुचल जाते हैं. बुवाई क्यारियों में एक साथ न करके यदि तीन तीन दिन के अन्तर पर की जाए तो अधिक लाभप्रद होती है क्योंकि ऐसा करने पर साग भाजी सारी एक साथ ही काटने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी वरन् उसी अन्तर से काटी जा सकेगी जिससे देख भाल भी आसानी से हो सकेगी. साग भाजी की खेती खेत को निर्बल बना देती है. विशेषतः यदि एक ही प्रकार की तरकारी सदा बोते रहें तो भूमि नितान्त निर्बल हो जाती है. यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि एक बार फल वाली जैसे बैंगन और टमाटर की तरकारी बोई है तो दूसरी बार डन्डी पत्ती वाली जैसे पात गोभी, सलाद आदि बोनी चाहिए और इसी हेरफेर से इन में परिवर्तन करते रहना चाहिए. खेत की शक्ति को स्थिर रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि खेत को वर्ष भर में कुछ दिनों के लिये खाली ही छोड़ देना चाहिये और फिर बोवाई से पूर्व नए सिरे से उसे पुनः तैयार कर के उस में तरकारी बोनी चाहियें. ऐसा करने पर खेत की मिट्टी निर्बल नहीं हो पाती और साग भाजी के लिए उपयुक्त, जानदार बनी रहती है. इस

प्रकार ऊपर लिखी बातों का ध्यान रख कर तरकारियों की बुवाई ठीक ढंग से करने पर पैदावार बहुत अच्छी और बढ़िया होती है.

सिंचाई —

साग भाजी की पैदावार पूर्ण रूपेण सिंचाई पर ही आधारित रहती है. साग भाजी के पौधे को यदि पानी ठीक समय पर नहीं मिलता या कम मिलता है तो वह पनपते नहीं एवं निर्बल रहते हैं. और यदि अधिक पानी पड़ जाय तो वह पौधों के तने को या जड़ों को गला देता है. अतः पानी सदा समय पर पड़ना अनुपात से पड़ना एवं आवश्यकतानुसार पड़ना चाहिए. भिन्न भिन्न प्रकार की साग भाजी के लिए पृथक पृथक नियम भी हैं किन्तु फिर भी यह एक साधारण सा नियम है कि एक सिंचाई के बाद दूसरी सिंचाई तब ही करनी चाहिए जब कि भूमि के खुश्क होने के आसार दीखे जब धरती प्यासी हो उस समय सिंचाई कर देनी चाहिए. ऐसे समय में यदि सिंचाई नहीं की जाती है तो पौधे सूख जाते हैं. वैसे कुछ भाग भारत में ऐसे भी हैं जहां अधिकांश तरकारियां बिना सिंचाई के ही पैदा की जा सकती हैं, क्योंकि वह क्षेत्र तराई का है.

जिस में पानी की तनिक भी आवश्यकता नहीं पड़ती यह क्षेत्र कुमाऊं का पर्वतीय प्रदेश है. शेष सभी स्थानो पर न्यूनाधिक नियम से पानी देना ही होता है. सिंचाई के लिए खेतों में नालियों का बना होना बहुत ही आवश्यक है. क्योंकि बहुत सी तरकारियां तो ऐसी हैं जो केवल हजारे की ही सिंचाई चाहती हैं. किन्तु अन्य ऐसी हैं जो हजारे से दिये गए पानी से तृप्त नहीं हो पातीं और अच्छी सिंचाई की आवश्यकता अनुभव

करती है. अतः सिंचाई के लिए खेतों में नालियों का सुव्यवस्थित रूप से ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिसके द्वारा पानी समान रूप से खेत के हर कोने में पहुँच जाए. खेत में कहीं अधिक और कहीं कम पानी का पहुंचना भी पर्याप्त हानिप्रद होता है. सिंचाई कई प्रकार से की जाती है.

क्यारियों द्वारा — इस ढंग को अपनाने के लिए खेतों में क्यारियां बनानी होती हैं, जिनमें पौधे होते हैं छोटी नालियों के द्वारा क्यारियों में पानी भर दिया जाता है. ऐसी सिंचाई में खेत का समतल होना बहुत आवश्यक है. अन्यथा पानी ढाल की ओर एकत्रित हो जायेगा. ऐसी दशा में ढाल वाले पौधे तो अधिक पानी के कारण गल जायेंगे तथा अन्य पौधे इसकी कमी से सूख जायेंगे.

नालियों द्वारा — ऐसी रीति से सिंचाई करने के लिए खेत में नालियां बनानी होती हैं. उन्हीं में पौधे लगाये जाते हैं. इन नालियों में पानी भर दिया जाता है. इस सिंचाई के लिये चाहे खेत समतल हो अथवा न हो किन्तु नालियां समतल रखी जायें जिससे पानी एक ओर जा कर एकत्रित न हो जाए और सब पौधों को बराबर जल देता रहे.

छिड़काव द्वारा — यदि वास्तव में देखा जाय तो सर्वोत्तम सिंचाई यही होती है. इसमें हजारे से पौधे के ऊपर पानी का छिड़काव किया जाता है. जिससे पौधों के ऊपर लगी मिट्टी धुल जाती है. और ऊपरी वातावरण शीतल हो जाता है. जो खेत समतल न हो वहां छिड़काव द्वारा की गई सिंचाई सर्वोत्तम रहती है: इसमें पानी अधिक होता है क्योंकि उसका थोड़ा अंश हवा

में उड़ जाता है. परिश्रम भी यह सिंचाई अधिक चाहती है. और फिर यदि खेतों पर वारीक छिद्रों वाले नल लगाये जाएं तो व्यय अधिक होता है. फिर भी नर्सरी वाली वेलों में फव्वारे या हजारे द्वारा ही सिंचाई करनी चाहिये, जिससे खेत की ऊपरी हवा भी शीतल रहे और मिट्टी पानी को शीघ्रता से सोख ले. ऐसी सिंचाई में पानी वह नहीं पाता वरन् भूमि उसे शीघ्रता और आसानी से सोख लेती है.

खाद —

इसके लिये गोवर और पत्तों की खाद अच्छी होती है. वैसे वकरे की मैंगनी लीद और कूड़े करकट के सम्मिश्रण में सड़ी खाद भी उत्तम होती है. उपज को प्राप्ति के वाद साग-भाजी के पत्ते झड़ जाते हैं तथा जो जड़ें रह जाती हैं, उनमें गोवर मिला देने से सड़ने के वाद अच्छी खाद तैयार हो जाती है. वहुत सी तरकारियों में सनई की हरी खाद भी प्रयोग में लानी चाहिये. यह ध्यान रखना चाहिये कि खाद खेत में वोवाई के लगभग चार सप्ताह पूर्व डाल दी जाये तथा उसके पश्चात ऐसी जोताई कर दी जाय कि खाद मिट्टी में मिल कर एक रस हो जाय. खाद का मिट्टी में पूर्ण रूपेण मिल जाना अत्यन्त आवश्यक है. आम तौर से एक एकड़ भूमि की खेती के लिए लगभग पन्द्रह गाड़ी खूव अच्छी तरह सड़ी गली खाद देनी चाहिए.

निंदाई-गुड़ाई —

इस खेती में निंदाई-गुड़ाई भी अत्यन्त आवश्यक है. इससे मिट्टी फोकी हो जाती है तथा वह जड़ों को कस नहीं पाती, फिर

भूमि पानी को शीघ्रता से सोख लेती है. भूमि में प्रकाश और वायु का भी प्रवेश हो जाता है, जिससे कि पैदावार पर अच्छा प्रभाव पड़ता है. बोई गई साग-भाजी के पौधों के साथ जो अनावश्यक अतिथि पौधे उग आते हैं उनको उखाड़ा जा सकता है. जिससे वह बोई हुई साग-भाजी के पौधों को किसी प्रकार भी हानि पहुँचाने में समर्थ न हो पाएं. यदि खेत में आवश्यकता से अधिक पौधों की बाढ़ आ गई हो तो पौधों की छटनी भी आसानी से की जा सकती है. यह छटनी आवश्यक भी इस कारण से होती है कि यदि छटनी ठीक न हो तो आई हुई बाढ़ तरकारी के प्रकार को घटिया बना देती है. निदाई करने से पूर्व भूमि का नम होना आवश्यक है जिससे पौधे आसानी से उखाड़े जा सकें तथा उनकी जड़ें भी टूट कर भीतर न रह जायं. जड़ें भीतर टूट जाने से वे पौधे फिर उग आते हैं तथा हानि पहुँचाने का प्रयास करते हैं. ऐसी दशा में कई निदाइयां करनी पड़ती हैं तब कहीं अनावश्यक मेहमानों से छुटकारा प्राप्त होता है.

शत्रु और उनके बचाव —

साग-भाजी के कुछ शत्रु ऐसे होते हैं जो दीख पाते हैं तथा कुछ ऐसे होते हैं जो बिना यन्त्रों की सहायता के नहीं देखे जा सकते. कीड़ों के अतिरिक्त इनके शत्रुओं में मनुष्य और पशु-पक्षी भी हैं. मनुष्य नैतिकता से गिर जाने के कारण जब भी अवसर पाते हैं तभी खेत में पशुओं की भांति घुसकर तरकारी को रौंदते हुए अपनी इच्छित साग-भाजी तोड़ ले जाते हैं, और इसी प्रकार पशु भी खेत को रौंद डालते हैं और तरकारी खा जाते

हैं. इन मनुष्यों और पशुओं से खेत को बचाने के लिए उनके चारों ओर या तो कांटेदार तारों का घेरा डाल देना चाहिए या खेत में एक स्थायी रखवाला रख देना चाहिए. बहुत से पशु ढोल बजाने से भी भाग जाते हैं. कई बार बन्दर भी खेतों में घुस कर हानि पहुँचाते हैं. यह खाने से अधिक बरबाद करते हैं, इनको पटाखे की तेज आवाज या गुलेल से भगाया जा सकता है. पक्षियों में मैना मटर को खा जाती है और तोता मक्का को खा जाता है. इनसे बचने के लिए कोई मरी हुई चील या कौआ यदि एक ऊंची लकड़ी पर खेत के बीच में लटका दें तो ये पक्षी पास नहीं आते. या बांस पर मनुष्य का डील डौल बना कर कपड़ा लपेट कर खेत के बीच में गाड़ देना चाहिए. ऐसा करने से भी पर्याप्त बचाव सम्भव है. ऐसी आकृति को रखवाला समझ कर पक्षी नहीं आते. अप्रत्यक्ष कीड़ों से या उनके द्वारा छोड़े गए रोगों से खेती का बचाव करने के लिये पहले तो यह प्रयास करना चाहिए कि कीड़े किसी प्रकार बढ न पायें और फिर विष मिश्रित वस्तुओं से उन्हें मार डालना चाहिए. जैसे चूहे या घूंस हैं. ये सारी धरती को तो पोला कर ही देते हैं साथ ही साथ जड़ या कुरे आदि को भी भीतर ही भीतर कुतर कुतर कर खा जाते हैं. शेष को नष्ट कर देते हैं. इनसे बचने के लिए या तो पिंजड़े मंगा कर इन्हें पकड़ पकड़ कर मार डालना चाहिए या तीव्र विष किसी खाने के पदार्थ में मिला कर खेत में जहां तहां बखेर देना चाहिए जिसे खाकर ये मर जायें. बहुत से कीटाणु खाद के साथ भी खेत मे आश्रय पा सकते हैं इनसे बचाव रखने के लिए खाद इतनी सड़ी हुई डालनी चाहिए कि जिसमे कीड़े होने का भय ही न हो तथा वह एक बार की जुताई से मिट्टी के साथ पूरी तरह से मिल जाय.

फिर एक ही तरकारी हमेशा नहीं बोते रहना चाहिए क्योंकि बहुत से कीड़े केवल किसी किसी तरकारी को ही हानि पहुंचाते हैं. वे अपनी प्रिय साग-भाजी बदलने से मर जाते हैं. जुताई के समय घास फूस को भी साफ कर देना चाहिए क्योंकि बहुत से कीड़ों को इनमें ही आश्रय प्राप्त होता है. फिर कुछ विशेष प्रकार के घोल बना कर पौधों पर छिड़कने से कीड़ों का नाश हो जाता है. तम्बाकू का घोल बनाकर छिड़कने से बहुत लाभ होता देखा गया है. इससे कीड़ों द्वारा उत्पन्न की गई अनेकानेक व्याधियां भी ठीक हो जाती हैं. पांच सेर पानी में दस छटांक तम्बाकू के पत्ते डाल कर जोश दे लेने से यह घोल तैयार हो जाता है. जब यह ठण्डा हो जाए तब इसमें दस गुना ठण्डा पानी और मिला कर इसे पौधों पर छिड़कना चाहिए. यह काम सायंकाल का है. ऐसे ही चूल्हे की मिट्टी या राख को पौधों पर छिड़कने से व्याधियां दूर हो जाती हैं तथा अनेकानेक कीट भी मर जाते हैं. एक घोल चूना, नमक और कालिका को पीस कर पानी में मिला कर तैयार किया जाता है. इसे पौधों की जड़ों में थोड़ा थोड़ा डालते रहने से कीट भीतर ही भीतर मर जाते हैं. एक बात ध्यान में रखने की यह है कि जो भी पौधे व्याधिग्रस्त प्रतीत हों उन्हें तुरन्त ही उखाड़ देना चाहिये जिससे कि अन्य पौधे उससे प्रभावित न हों. ऐसा न करने से सारा खेत का खेत उसी व्याधि का शिकार हो सकता है. ऐसे उखाड़े हुए पौधों को जला देना ही अच्छा होता है क्योंकि यदि इन्हें फेंका जाता है तो इनमें लगे कीड़े रेंग रेंग कर पुनः खेत में प्रविष्ट हो जाते हैं तथा अपना भोजन पाने के हेतु पौधों पर जाते हैं. व्याधि और शत्रुओं के नाश के लिये हर खेती करने वाले को अत्यन्त सावधानी से कार्य करने की

आवश्यकता है अन्यथा सारे किये कराये पर पानी फिरते देर नहीं लगती.

जातियां —

तरकारियां भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं जो भिन्न-भिन्न ऋतुओं में ही बोई भी जाती हैं. कुछ तरकारियां तो ऐसी होती हैं जिनके फूल, फल या डण्डी काम मे आती हैं. कुछ के पत्ते, कुछ के धड़, शाखायें तथा कुछ की जड़े प्रयोग में लाई जाती है, जिनका विवरण पृथक-पृथक आगे दिया जाता है.

गाजर

गाजर छोटी से छोटी छटांक भर की तथा बड़ी पाव भर की उतरती है, इसका पौधा एक फुट से लेकर दो फुट तक बढ़ जाता है, इसकी बुवाई पर्वतीय प्रदेशों में गर्मियों में, गुजरात की ओर जुलाई से अक्टूबर तक तथा उत्तरी भारत में अगस्त से नवम्बर तक करनी चाहिए. इसकी खेती के लिए बलुआ-दुमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी गई है किन्तु यदि अच्छी खाद डाल कर भूमि की तैयारी की जाय तो यह मटियार-दुमट में भी उपजाई जा सकती है. मात्र मटियार भूमि में इसकी खेती नहीं की जा सकती. गाजर को क्यारियों में या नालियां बना कर बोना चाहिए. इसमें सड़े हुए गोबर की खाद की आवश्यकता होती है किन्तु वह इससे पूर्व काटी जाने वाली उपज में देनी चाहिए तभी गाजर सबल और बढ़िया हो पाती है. खाद के तौर पर इसके खेत में राख डालना भी उपयोगी होता है क्योंकि राख में पोटाश होता है, तथा पोटाश-पूर्त्ति खाद गाजर के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है. गाजर के लिए नर्सरी तैयार करने की कोई आवश्यकता नहीं वरन् इसके बीजों को सीधे खेतों में बखेर दिया जाता है. बीजों को बो देने के पश्चात उसके ऊपर आध पौन इन्च मिट्टी फैला देनी चाहिए ऐसा कर देने से बीज शीघ्र और अच्छा जमता है. इसकी निंदाई और सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए. गाजर अधिक जल नहीं मांगती वरन् इसके लिए थोड़ी सिंचाई की आवश्यकता है. किन्तु निंदाई का ध्यान रखना अत्यावश्यक है क्योंकि इसके बीज देर से

जमते हैं और कुरे फूट आने के पश्चात भी धीरे धीरे ही बढ़ते हैं. गाजर को पंक्तिबद्ध एक से डेढ़ फुट तक की दूरी पर बनी क्यारियों में बोना चाहिए. बीच बीच मे शीघ्र उग आने वाली मूली भी बो देनी चाहिए. ऐसा करने से जिस समय घास फूस साफ करने के लिए निदाई की जाएगी उस समय पक्ति का पता रहेगा और मूली साथ ही प्राप्त की जा सकेगी. गाजर की उपज बलुआ-दुमट भूमि में तैयारी के लिए लगभग तीन चार माह लेती है तथा अन्य प्रकार की भूमि मे पांच महीने तक ले लेती है. जिस समय गाजर की जड़ का ऊपरी भाग तीन अंगुल के लगभग मोटा हो जाय तब इसे उखाड़ा जा सकता है. अगली फसल के लिए बीज भी स्वतः अपने खेत में ही तैयार करने चाहिए. इसके लिए स्वस्थ गाजरें उखाड़ कर और उनकी जड़ नीचे से डेढ़ दो अंगुल काट कर खेत के किसी और भाग में अच्छी खाद डाल कर फिर गाड़ देना चाहिए. थोड़े दिनों में ही उनमे से नीचे जड़ें फूट आती हैं और फिर गाजर के पौधों मे फल आ जाते हैं. उनमें से बीज निकाल कर भली प्रकार सुखा कर बोतलों या डिब्बों में रख लेने चाहिएं.

- ✦ -

मूली

मूली के लिए सर्वोत्तम भूमि बलुआ दुमट होती है. इस मिट्टी में मूली अच्छी बैठती है तथा कोमल पर्याप्त रहती है, उसमें सख्ती नहीं आ पाती. इसकी खेती में लगभग दो सौ मन प्रति एकड़ के अनुपात से बहुत ही सड़ी हुई गोबर की खाद देनी चाहिए. वैसे तो सबसे अच्छी उपज तब होती है जब कि खाद इससे पूर्व वाली फसल में दी जाए. ऐसा करने से खाद मिट्टी में इतनी एकरस हो जाती है कि मूली के लिए सर्वोत्तम बन जाती है. ऐसी भूमि में बोई गई मूली में कोमलता तो अधिक होती ही है साथ ही उसका स्वाद भी सबसे मीठा होता है. खेत में क्यारियां और नालियां बना कर उनमें इसके बीज छींटे जाते हैं. बीज प्रति एकड़ पांच सेर बोने चाहिएं. इसके बीज पर्वतीय प्रदेशों और अन्य स्थानों पर सितम्बर से नवम्बर तक बोये जाते हैं. खेत में क्यारियां और नालियां बना लेनी चाहिएं. दस दस दिन के अन्तर पर क्यारियों में ठीक अनुपात से बीज छींटते रहने से निरन्तर कोमल मूलियां प्राप्त होती हैं. बीजों को भूमि में आध इंच गहरा बोना चाहिए. मूली में सिंचाई का कोई विशेष नियम नहीं है, जब भी इसके पत्ते कुछ कुछ मुर्झाने लगें तभी इसमें सिंचाई कर देनी चाहिए. तरी वाले बहुत से क्षेत्र ऐसे भी हैं जहां मूली में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती वरन यह बिना सिंचाई के ही उतर आती है, किन्तु निंदाई इसकी अत्यन्त आव-

श्यक है. निंदाई जल्दी जल्दी भी करनी चाहिए और जहां पौधे घने एकत्रित हो गये हों उन्हें सावधानी से उखाड़ कर आधा आधा फुट की दूरी पर लगा देना चाहिए वरना मूली अच्छी नहीं बैठेगी. इसकी उपज को तैयार होते अधिक देर नहीं लगती. इसका फल वैसे तो बहुत ही कम प्रयोग में लाया जाता है फिर भी यदि प्राप्त करना हो तो बीज बोने के लगभग ढाई माह के पश्चात प्राप्त किया जा सकता है. इसी प्रकार इसके पत्ते लगभग डेढ़ माह में और जड़ें लगभग दो माह तक में प्रयोग में लाने योग्य हो जाती हैं. तब इनको हाट की मांग के अनुसार उखाड़ कर भेज देना चाहिए. अगली फसल के बीज तैयार करने वालों को चाहिए कि वे पौधों में से सबसे अच्छे और स्वस्थ पौधे छांट ले तथा उखाड़ कर ठीक प्रकार से तैयार की गई खेत की पृथक क्यारी में लगा दें. लगाते समय मूली के नीचे का दो अंगुल भाग काट देना चाहिए. इन मूलियों में से जल्दी ही जड़ें निकल आती हैं, अतः इनको लगभग एक दूसरी से ढाई ढाई फुट दूर लगाना चाहिए. कुछ दिनों में जब पौधे पुनः फूट आये और फिर उनमें बीज की फली आ जाए तब अच्छी और बड़ी फलियों में से, पक जाने पर बीज निकाल लेने चाहिए तथा उन्हें भली प्रकार से सुखा कर बोतलों या डिब्बों मे भर कर रख लेना चाहिए.

- • -

शलजम

इसकी खेती के लिए दुमट और वलुआ दुमट भूमि सर्वोत्तम होती है. बोने से पूर्व इसके खेत को तैयार कर लेना चाहिए व उसकी पौन फुट तक गहरी जुताई करके मिट्टी को एकसार कर देना चाहिए. फिर बोने के लिए पारियां या क्यारियां तैयार करनी चाहिएं, उनमें शलजम के वीज छींटने चाहिएं. शलजम के लिए भी खाद पहली फसल में देनी उत्तम होती है. वरना शलजम के वीज खेत में छींटने से तीन माह पूर्व देनी चाहिए. यह खाद अत्यन्त सड़े हुए गोवर की होनी चाहिए तथा खूब अच्छी जुताई करके मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला देनी चाहिए. जुताई इतनी अच्छी करनी चाहिए कि मिट्टी भी खूब भुरभुरी हो जाय तथा खाद भी उसमें पूरी तरह से मिल जाय. ऐसी दशा में खाद लगभग दो सौ मन प्रति एकड़ के अनुपात से देनी चाहिए. मिट्टी को शलजम के लिए और भी अधिक उपयोगी बनाने के लिए नत्रजन और स्फुर की खाद का प्रयोग किया जाता है. शलजम के बीज जो देशी होते हैं उन्हें जौलाई से अगस्त तक बोना चाहिए और जो विलायती हों उन्हें सितम्बर से अक्तूबर तक बोना चाहिए. इसके बीज एक एकड़ भूमि के लिये पौने दो सेर के लगभग पर्याप्त होते हैं. इन्हें सुव्यवस्थित ढंग से पंक्तिबद्ध ही बोना चाहिए. एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति की दूरी दस बारह इंच के लगभग रखनी चाहिए. बीज को खेत में छींटते समय ध्यान

रखना चाहिए कि वे आध इन्च गहरे बोये जायें. जिस समय पौधे कुछ बड़े हो जाये तब इसकी निंदाई कर देनी चाहिए क्योंकि इस मे निर्बल पौधे भी बढ़ जाते हैं. निंदाई करते समय ऐसे पौधों को उखाड़ कर अच्छे पौधों की लगभग आध आध फुट दूरी कर देनी चाहिए. सिंचाई इसकी भी आवश्यकतानुसार ही होनी चाहिए. जब भी इसके पत्ते कुछ मुर्झाने से लगें तभी इसमे सिंचाई कर देनी चाहिये या जब मिट्टी पर सफेदी आ जाय अथवा वह शुष्क हो जाय तब पानी देना चाहिये. शलजम की फसल बीज बोने के लगभग तीन माह तक तैयारी पर आ जाती है. यदि ठीक ढंग से इसके खेत को तैयार किया जाय तो फसल एक एकड़ में साढ़े तीन सौ मन तक उतरती देखी गई है वरना साधारणतः ढाई सौ मन तो हो ही जाती है. हाट मे निरंतर देते रहने के लिये इसके बीजो को भी लगभग दस दस दिन के अन्तर पर बोना चाहिये. इसके बीज तैयार करने के लिये भी स्वस्थ पौधों को छांट लेना चाहिए. उनको नीचे से एक डेढ़ अंगुल काट कर तथा ऊपर के पत्तों को भी काट कर लगा देना चाहिए. किन्तु एक बात यह है कि इसके बीज हर क्षेत्र के खेतों मे तैयार नहीं किये जा सकते वरन इसके लिये ऐसे पर्वतीय प्रदेश की आवश्यकता है जिसमे ठण्ड रहती है. अन्य स्थानों पर इस के बीज प्राप्त नहीं किये जा सकते.

- ✦ -

चुकन्दर

इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम भूमि बलुआ होती है. यह चुकन्दर की कोमलता की रक्षा करती है. खेत को ठीक प्रकार से एक फुट तक की अच्छी गहरी जुताई करके तैयार कर लेना चाहिए, जुताई के तुरन्त बाद मिट्टी को खूब अच्छी तरह उलट पलट कर एकसार कर देना चाहिए. खाद इसकी फसल में कभी नहीं देनी चाहिए वरना वह चुकन्दर की कोमलता को नष्ट कर देगी. इस के लिये खाद सदा ही इससे पूर्व की फसल में देनी चाहिये जो कि खूब गली सड़ी हो और उस फसल के कट जाने के बाद मिट्टी में इस प्रकार मिला दी जाए कि उसमें और मिट्टी में कोई अन्तर ही न रहे. साथ ही इसमें यदि कृत्रिम खाद भी दी जा सके तो उत्तम होती है. यह नत्रजन स्फुर और पुटाश, बीस, तीस तथा पचास सेर के अनुपात से मिश्रित कर प्रति एकड़ देनी चाहिए. साधारणतः इसके बीज अगस्त से अक्तूबर तक बोने चाहिएं किन्तु पर्वतीय प्रदेशों में यह समय उपयुक्त नहीं है वरन वहां पर बीज फरवरी और मार्च में ही बखेरना चाहिए. बीज बोने के लिये खेत में सवा फुट तक की पंक्तियां बना लेनी चाहिएं और फिर बीज उनमें लगभग दो अंगुल गहरा बोना चाहिये. बीज प्रति एकड़ साढ़े तीन सेर बोना चाहिये. जब पौधे जमने लगें और उनकी ऊंचाई चौथाई फुट के लगभग हो जाय तब निंदाई की आवश्यकता होती है. पौधों में से निर्बल और अस्वस्थ

पौधों को हटा देना चाहिये तथा स्वस्थ पौधों को एक दूसरे से आधा आधा फुट की दूरी पर लगा देना चाहिये. ऐसा करने से चुकन्दर की कोमलता तो नष्ट न होगी और जड़ें वड़ी हो जायेंगी. जिस समय निंदाई की जाय उस समय पौधों की जड़ों के चारों ओर मिट्टी भी लगाते रहना चाहिए. इसकी सिंचाई भी आवश्यकतानुसार ही करनी चाहिए. यदि वर्षा पर्याप्त हो जाये तो फिर निंदाई नहीं करनी चाहिए. इसकी फसल को तैयार होने में लगभग तीन माह लग जाते हैं. इसे काटने में इससे अधिक देर नहीं करनी चाहिए. अधिक देर करने से चुकन्दर की कोमलता नष्ट हो जाती है. अतः यह देख लेना चाहिए कि जव इसकी जड़ों की मोटाई डण्डियों के पास से दो तीन अंगुल के वरावर मोटी हो जाये तव यह काटने योग्य हो जाती है. उस समय इसका काट लिया जाना आवश्यक है. वीज तैयार करने के लिये इसके स्वस्थ पौधे छांट कर उखाड़ लेने चाहिएं और नीचे से इनकी आध आध इन्च जड़ काट कर तथा ऊपर के पत्ते काट कर पृथक खेत में लगा देने चाहिएं. कुछ दिनों में ही फल आ जाता है. उसमें जव वीज पक जाय तव वीज निकाल कर सुखा कर वन्द वोतलों या डिब्बों में रख लेने चाहिएं किन्तु इसके वीज कहीं कहीं ही तैयार हो पाते हैं हर स्थान पर नहीं. अतः जहां न हो पायें वहां अधिक परिश्रम नहीं करना चाहिए. इसकी उपज प्रति एकड़ पचास-साठ मन के लगभग हो जाती है. विशेष उपजाऊ भूमि में श्रम पूर्वक खेती करने पर उपज सत्तर मन तक उतर आती देखी गई है.

- + -

आलू

आलू अनेकानेक प्रकार के होते हैं. इनमें पहाड़ी और भूमि वाले ही अधिक प्रयोग में लाये जाते हैं. पहाड़ी और देशी आलुओं के स्वाद में भी भिन्नता पाई जाती है. वैसे आलू वही



अच्छा माना जाता है जो बड़ा और साफ हो. जिसकी ऊपर की खाल साफ हो तथा जिसमें आंखें कम हों और गहरी न हों, खाने में भी ऐसा ही आलू स्वादिष्ट होता है. यों तो आलू की पैदावार हर प्रकार की भूमि में की जा सकती है. किन्तु फिर भी कछार और दुमट भूमि इसके लिये सर्वोत्तम मानी गई है. इस के खेत को लगभग पौन फुट जोतना चाहिए तथा फिर मिट्टी को भली भांति उलट पुलट देना चाहिए. आलू की खेती के लिये एक एकड़ भूमि में ३०० मन के लगभग खूब सड़ा हुआ गोबर का खाद डालना चाहिए जिसमें २ मन के लगभग हड्डी भी हों. खाद बहुत

सड़ा हुआ होना चाहिए और यदि कम सड़ा खाद हो तो उसे वर्षा ऋतु मे डाल देना अच्छा होता है. ऐसा करने से खाद सभी प्रकार से सड़ जाता है तथा आलू के योग्य उपयोगी बन जाता है. आलू के लिये खाद का पर्याप्त मात्रा मे पड़ना भी अत्यन्त आवश्यक है. यदि किसी कारण से गोवर का खाद पर्याप्त मात्रा मे न दिया जा सके तो नत्रजन या खली अच्छी होती है. वैसे खादों में आलू की खेती के लिये यदि पन्द्रह सेर सरसों की खली दी जाये तो बहुत अच्छी होती है. आलू के बीज नहीं बोये जाते वरन आलू ही लगाये जाते हैं. आलुओं को सदैव पंक्तिबद्ध लगाना चाहिए खेतों मे आलू फरवरी-मार्च और जून के आस पास लगाना चाहिए तथा जहां की भूमि समतल हो वहा पर इसे सितम्बर-अक्तूबर मे लगाना चाहिए. आलू आकार मे एक इन्च से डेढ़ इन्च तक तो साबित ही लगाये जाने चाहिएं तथा यदि बड़े हो तो उन्हें टुकड़ों मे काट काट कर ही लगाना चाहिए. आलू लगाते समय ध्यान रखना चाहिए कि उसकी प्रत्येक पक्ति के मध्य ढाई फुट का अन्तर हो और पौधे से पौधा दस इन्च दूर हो, ऐसा करने से आलू अच्छा बैठता है तथा पैदावार भी बढ़िया ही होती है. एक बात और ध्यान मे रखने की है कि यदि पहाड़ी आलू को किसी और भूमि मे लगाना हो तो उसे नवम्बर के आस पास बोना चाहिए. आलू जब लगाना हो तब अच्छा छांट कर लेना चाहिए, यह पूर्ण रूपेण देख लिया जाय कि व्याधिग्रस्त तो नहीं है. यदि आलू एक भी खराब हुआ तो वह आस पास के पचासों आलुओं को नष्ट करने के लिए पर्याप्त हो सकता है. आलू लगभग अठारह सेर से बाईस सेर प्रति एकड़ तक लगाना चाहिए, इतना ही पर्याप्त होता है. इसकी सिंचाई

निंदाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए. सिंचाई तब की जाए जब मिट्टी पानी मांगे तथा निंदाई उस समय करनी चाहिए जब आलू में सफेद लम्बी लम्बी सी जड़ें फूट निकलें. निंदाई के समय इन सफेद जड़ों पर तुरन्त ही मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए, क्योंकि आलू इन्हीं जड़ों के सिरे पर बैठते हैं. इन्हें खुला छोड़ देने से इनमें से पत्तियां निकल आती हैं और आलू नहीं बैठते. आलू के पौधे जिस समय पक जायें अर्थात पत्ते जब पीले पड़ जायें तब आलू खोद लेने योग्य हो जाते हैं. उस समय उन्हें तुरन्त ही खोद लेना चाहिए. पौधों को सूखने देना अच्छा नहीं होता अन्यथा आलू का छिलका भीतर ही भीतर फट जाता है और आलू बीमारियों में फंस जाते हैं. आलू ठीक उपजाऊ भूमि में यदि सावधानी के साथ बोया जाय तो दो सौ, ढाई सौ मन तक उतर आता है. बीज के लिए जिन आलुओं को रखना हो उसके लिए कोयले का चूर्ण बिछाकर चारों ओर उसकी ही तह लगा कर बन्द करके रखने से आलू बीज के लिए सुरक्षित रहता है.



शकरकन्द

इसकी खेती हर प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, किन्तु फिर भी वलुआ तथा बलुआ दुमट भूमि में इसकी पैदावार अच्छी होती है. इसका कारण यह है कि वलुआ मिट्टी में सख्ती नहीं होती वह नरम होती है, जिससे कन्द उसमें सरलता से वैठ जाता है तथा उसे बढ़ने का भी स्थान ठीक प्रकार से मिल जाता है. इसकी खेती करने से भूमि सुधर जाती है, क्योंकि इसकी लताए लम्वी लम्वी फैलती हैं और कन्द भी गहरा ही वैठता है जिसे निकालने के लिए गहरी ही खुदाई करनी पड़ती है, जिस से खेत साफ हो जाता है और स्वतः ही जुत जाता है. खाद के रूप में राख इसके लिए वहुत अच्छी होतो है. गोवर का वहुत सड़ा हुआ खाद एक एकड़ भूमि के लिए ढाई तीन सौ मन पर्याप्त होता है. खाद वहुत ही सड़ा हुआ होना चाहिए तथा उसका मिट्टी मे मिल कर विल्कुल एकरस हो जाना अत्यन्त आवश्यक है. ऐसा न होने पर कन्द वढ़िया और वड़ा नहीं वैठ पाता. इसकी बुवाई गुजरात क्षेत्र में जाड़ो में, कोनकण मे वर्षा ऋतु मे तथा विहार आदि स्थानों मे सितम्वर और जनवरी मे होती है. इसको लताएं वोई जाती हैं. लताओं के एक एक फुट के टुकड़े करके भूमि में लगभग आधे फुट गहरे लगाए जाते हैं. इनकी आपस मे दूरी लगभग एक-एक फुट रखनी चाहिए. ऐसे लताओं के वीस हजार टुकड़े प्रति एकड़ के अनुपात से लगाने चाहिएं. इसकी सिंचाई भी आवश्यकतानुसार करनी चाहिए. किन्तु निदाई तव

तक अवश्य अच्छी करते रहना चाहिए जब तक कि इसकी लताएं निकल कर समूचे खेत को ढांप न लें, क्योंकि जब तक इसकी लताएं इतनी नहीं बढ़तीं तब तक खेत में घास बैठने की सम्भावना बनी रहती है किन्तु लताओं के इतने बढ़ जाने के पश्चात फिर घास नहीं रह सकती. इसकी लताएं अति कोमल होती हैं जो पाले से नष्ट हो जाती हैं. अतः इन्हें पाले से बचाने की बहुत आवश्यकता है. जिस समय ऐसा प्रतीत हो कि पौधों के पत्ते शुष्क पड़ने लगे हैं या वे सूखने लगें अथवा खेत की मिट्टी फटती सी प्रतीत हो उस समय समझ लेना चाहिए कि शकरकन्द खोदे जा सकते हैं. उनके खोदने तक देख भाल करनी चाहिए अन्यथा व्याधिग्रस्त हो जाने का पर्याप्त भय रहता है. वैसे इसको आवश्यकतानुसार धीरे धीरे खोद सकते हैं. लगभग डेढ़ माह तक तैयार होने के बाद भी इन्हें खेत में छोड़ा जा सकता है. कन्द प्राप्त करने के लिए किसी अच्छे हल से खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए और फिर कन्द निकाल लेने चाहिएं. इसकी पैदावार प्रति एकड़ ढाई सौ मन के लगभग हो जाती है. अगली फसल के लिए उत्तम तो यह होता है कि कुछ कन्दों को खेत में ही लगा छोड़ देना चाहिए. इससे कन्द तो अवश्य ही सड़ कर नष्ट हो जाएंगे किन्तु लताएं लगी ही रहेंगी. इन्हें आवश्यकता पड़ने पर काट काट कर लगाया जा सकता है.



अर्वी

इसकी काश्त भी हर प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है. किन्तु फिर भी दुमट और वलुआ दुमट मिट्टी ही इसके लिए सर्वोत्तम होती है. अधिकतर लोग इसकी खेती तालावों व पोखरों के पास अथवा घरों के आस पास करते हैं. वैसे खेतों मे भी इसकी खेती की जा सकती है. खेतों में लगाने के लिए वहुत अच्छी गहरी जुताई करके खेत को तैयार कर लेना चाहिए. तव अर्वी को उसमे लगाना चाहिए. खेत में जुताई के वाद डेढ़-डेढ़ फुट के अन्तर से नालियां तैयार कर लेनी चाहिएं. खाद अर्वी में भी वहुत ही सड़ा हुआ डालना चाहिए, तभी अर्वी अच्छी उतरेगी अन्यथा नहीं. खाद ऐसा सड़ा हुआ हो जो मिट्टी में सरलता से मिल जाय. इसकी सवा दो सौ मन के लगभग आवश्यकता होती है वरना कम से कम डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ तो डालना ही चाहिए. भूमि में इसका वीज नहीं वोया जाता वरन गांठें लगाई जाती हैं, यह जून में लगाई जातो हैं जवकि वर्षा आरम्भ होती है. यह भीतर ही भीतर वढ़ती हैं. ऐसी गांठें लगभग पन्द्रह मन प्रति एकड़ के अनुपात से लगानी चाहिएं. इन गांठों को खेत में लगभग चौथाई फुट गहरी तथा एक एक फुट के अन्तर पर गाड़ना चाहिए. इसके लगाने की दूरी खेत की व्यवस्था पर आधारित होती है. जैसी व्यवस्था हो उतने ही अनुपात से उसकी दूरी भी रखनी चाहिए. अर्वी के लिये सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है. जहां का जलवायु अधिक

शुष्क हो या जहां गर्मी अधिक पड़ती हो वहां आवश्यकतानुसार इसकी सिंचाई करनी चाहिए. जलाशयों आदि में बोई गई अर्वी को अधिकांशतः सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती. निंदाई का ध्यान रखना आवश्यक है. इसके पौधे जैसे जैसे बड़े हों वसे वैसे ही इन पर मिट्टी चढ़ाते रहना अत्यन्त आवश्यक है. अतः इसकी निंदाई ठीक प्रकार से होती रहनी चाहिए. अर्वी की गांठें लगा देने के लगभग ढाई माह के बाद से ही इसके पत्ते प्रयोग में लाने योग्य हो जाते हैं तब इनको डंडी समेत तोड़ कर काम में लाया जा सकता है, उस समय इनकी बिक्री भी अच्छी हो जाती है. इस प्रकार अर्वी को तैयार होने में लगभग तीन माह और लग जाते हैं. इस प्रकार छः महीने में अर्वी खोदने योग्य तैयार हो जाती है. अर्वी की खेती में एक बड़ी विशेषता यह है कि इसके पत्ते, डण्डी तथा कन्द तीनों ही प्रयोग में लाये जा सकते हैं. फिर एक बात यह भी है कि पत्ते और डण्डी तोड़ लेने पर अर्वी को कोई हानि नहीं पहुंचती वरन वह निरन्तर बढ़ती ही रहती है. सावधानी से खेत तैयार करके अच्छी देख रेख के साथ की गई खेती में अर्वी की फसल लगभग साढ़े तीन सौ मन प्रति एकड़ तक होती देखी गई है. वैसे साधारणतः ढाई सौ मन प्रति एकड़ तो हो ही जाती है.



अदरक

अदरक का पौधा पतली पतली पत्तियों वाला लगभग डेढ़ फुट ऊंचा होता है. इसकी खेती के लिये भी दुमट और बलुआ भूमि ही होनी चाहिए जिसमे इसकी गांठ भली प्रकार से सरलता पूर्वक बैठ जाय. इसके लिये खेत की जुताई आधे फुट से पौने फुट तक गहरी करनी चाहिए तथा मिट्टी को भुरभुरा बना देना चाहिए, ऐसा करने से गांठ आसानी से फैल सकेगी. इस मे अधिक खाद की आवश्यकता नहीं होती. अतः सौ सवा सौ मन के लगभग खाद प्रति एकड़ देनी चाहिए. खाद के रूप मे जिस समय निंदाई की जाय यदि थोड़ी सी अरंडी की खली भी दे दी जाय तो उत्तम है. गांठ लगाने के लिए अदरक के इस प्रकार से टुकड़े कर लेने चाहिएं कि हर टुकड़े मे दो तीन आंखें अवश्य रहे. उन्हें भूमि मे तीन इन्च तक की गहराई मे गाड़ देना चाहिए. इनका पंक्तियों मे लगाना अच्छा होता है. पंक्ति का पंक्ति से तथा गांठ का गांठ से अन्तर एक और पौने फुट के अनुपात से रखना चाहिए. जहां पर अधिक गर्मी हो अथवा शुष्कता हो वहां इन्हें क्यारियो मे बोना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से सिंचाई के लिये पानी भर देने मे आसानी रहती है. इसकी गांठों को वर्षा काल के आरम्भ मे लगाना चाहिए फिर इसमें लगभग सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती. इसकी सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए. वैसे तो इसे वर्षा ऋतु मे लगाया

जाता है, ऐसी दशा में वर्षा का जल ही पर्याप्त रहता है और सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती. फिर भी वर्षा के अभाव में सिंचाई करनी ही चाहिए, किन्तु तब करनी चाहिए जब धरती पानी मांगे. इसमें निंदाई तीन चार बार करनी चाहिए. जब पौधे आ जायें तब मिट्टी भी चढ़ानी चाहिए जिससे पौधे ठीक रहें और खराब न हो पायें. इसकी फसल लगभग पांच छः माह में तैयार हो जाती है. वैसे आवश्यकता यदि हो तो चार माह पश्चात थोड़ी बहुत अदरक प्राप्त की जा सकती है. अच्छी भूमि में इसे यदि ठीक प्रकार से लगाया जाय और गांठें ठीक प्रकार से जम भी जावें तो इसकी पैदावार कहीं कहीं तो दो सौ मन प्रति एकड़ तक होती देखी गई है. वैसे साधारणतः सौ सवा सौ मन तक हो ही जाती है. दूसरी फसल के लिए गांठें तैयार करने के लिए किसी हवादार खुले मकान में लगभग एक फुट गहरा गढ़ा खोद कर उसे इतना लम्बा चोड़ा कर लेना चाहिए जितनी उसमें गांठें भरनी हों. तत्पश्चात उसमें अदरक की गांठें भर कर उनके ऊपर एक हल्की सी तह अदरक के पत्तों की लगा देनी चाहिए और उसके ऊपर एक तह आधे फुट के लगभग मिट्टी की लगा देनी चाहिए. इस प्रकार यह गांठें आधी फसल के लिये सुरक्षित रखी जा सकती हैं.

- • -

गोभी

इसकी खेती भारत भर में लगभग सभी जगह पर की जाती है. इसकी अनेक जातियां होती हैं जिनमें तीन मुख्य हैं. गांठ गोभी, पात गोभी और फूल गोभी. इसके लिए दुमट या मटियार दुमट भूमि उत्तम होती है. इसके लिए भूमि की जुताई भली प्रकार से कर लेनी चाहिए तथा उसी समय प्रति एकड़ ढाई सौ मन गोबर का बहुत सड़ा हुआ खाद डालना चाहिए और फिर उसे खूब अच्छी तरह मिट्टी के साथ एकरस कर देना चाहिए. ऐसा करने से मिट्टी खादमय उपजाऊ हो जाती है. वैसे तो गांठ गोभी को भी खेतों में बोया जा सकता है किन्तु सर्वोत्तम यह है कि इसके पौधोंको नरसरीमे तैयार किया जाय और जब पौधे दो ढाई इन्च ऊंचे हो जाये उस समय इनको खेतों मे स्थानान्तरित कर देना चाहिए. नरसरी मे इसके बीज अगस्त से लेकर अक्तूबर तक बिखेरे जाते हैं. पौधों को अन्तर पर तैयार करने के लिये सदा इसके बीज खेतों में कुछ दिनों के अन्तर से बोने चाहिएं जिससे कि एक एक सप्ताह या चार दिन के अन्तर पर गोभी प्राप्त होती रहे. नरसरी में बीजों को पंक्तिबद्ध बोना चाहिए जिनकी दूरी चार या पांच इन्च की हो किन्तु खेतों मे जिस समय पौधे लगाये जायें तो यह दूरी दुगनी कर देनी चाहिए. एक सेर से डेढ़ सेर तक बीज प्रति एकड़ की खेती के लिए पर्याप्त होते हैं. इसकी सिंचाई भी तब ही करनी चाहिए जबकि

उसकी आवश्यकता अनुभव हो अथवा जलवायु की दृष्टि से करनी चाहिए. खेत की निदाई आवश्यक है तथा जिस समय पौधों में चार पांच पत्ते आ जायें उस समय पौधों की छंटनी भी निदाई के समय ही कर देनी चाहिये जिससे कि फल ठीक बैठे और छोटा न रहे. इसकी फसल लगभग चार पांच महीने में तैयार हो जाती है. गोभियां जब तक हरी रहें और रंग पके नहीं तब तक ही कोमल रहती हैं. इनकी कोमलता जब नष्ट हो जाती है तब इनका स्वाद भी बिगड़ जाता है. इसकी उपज प्रति एकड़ डेढ़ सौ मन तक हो जाती है. इसके बीजों को शीत पर्वतीय प्रदेशों में ही तैयार किया जा सकता है हर जगह नहीं. यदि ऐसे स्थानों पर ही तैयार करने हों तो स्वस्थ पौधों को लेकर एक-एक फुट की दूरी पर खूब अच्छी सड़ी खाद डाल कर लगा देना चाहिए. थोड़े दिनों में जब बीज पक जायें तो उन्हें सुखा कर बन्द डिब्बे और बोतलों में भर लेना चाहिए.

- - -

पात गोभी

पात गोभी को करमकल्ला भी कहते हैं. इसके पत्ते ही खाये जाते हैं जो कि एक के ऊपर एक गोलाई से लगे होते हैं. इसका रंग हरा होता है और आकार बड़ी गेंद के बराबर होता है. इसके लिये दुमट और बलुआ दुमट भूमि की आवश्यकता होती

है. यदि देर से बोई जाय तो इसे मटियार दुमट मे बोना चाहिये. इसके बीज भी नरसरी में ही बोये जाते हैं तथा जब इसके पौधों में तीन चार पत्ते आ जाये तब उन्हे खेतों मे स्थानान्तरित कर दिया जाता है, इसके लिये खेत को पहले से ही भली भाति तैयार कर लेना चाहिये. खेत की जुताई पौन फुट तक अच्छी गहरी कर मिट्टी मे खाद मिला देना चाहिए, फिर उसमे राख भी डालनी चाहिए. खाद अच्छे सड़े गोबर का ढाई तीन सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से डालना चाहिये. किन्तु खाद को दो माह पूर्व ही खेत में डालकर भली भांति खेत की मिट्टी में मिला देना चाहिए. ऐसा करने से मिट्टी उपजाऊ हो जाती है. नरसरी में बीज अगस्त से अक्तूबर तक बखेरने चाहिये. इसके बीज एक एकड़ के लिये पाव भर के लगभग पर्याप्त होते हैं. बीज बखेरने के लिये क्यारियां तैयार कर लेनी चाहिए तथा उन्हीं में एक सप्ताह के अन्तर से बीज बोने चाहिये जिससे कि तैयारी पर भी एक एक सप्ताह के अन्तर पर ही काटी जा सके. इस प्रकार ये खराब भी नहीं होती हैं, इनकी कोमलता यों ही बनी रहती है. इन्हे खेतों मे तब स्थानान्तरित करना चाहिये जब कि खेत मे क्यारियां तथा एक एक या सवा सवा फुट की दूरी पर पंक्तिया तैयार कर ली जायें. इनका पंक्तिबद्ध बोना भी अच्छा होता है. इसकी सिंचाई आवश्यकतानुसार ही होनी चाहिये जब धरती पानी मांगे अर्थात उस पर पपड़ी जमने लगे अथवा पौधे कुछ मुर्झाते से प्रतीत हों तभी खेत मे सिंचाई कर देनी चाहिये. निंदाई भी कई बार करनी चाहिये और साथ साथ ही पौधों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये. ऐसा करने से पौधे को तो बल मिलता ही है साथ ही साथ सिंचाई के लिये नालियां भी स्वतः ही तैयार

हो जाती हैं. साधारणतः लगभग तीन चार माह में इसकी फसल तैयार हो जाती है और काटी जा सकती है. यदि कुछ दिन तक काटी हुई फसल को रखने का विचार हो तो उसे जड़ों सहित उखाड़ना चाहिये और ठण्डी जगह पर पत्तों में रखना चाहिए अन्यथा पत्तों में पीलापन आ जाने का भय है. जिस अन्तर से वीज वोये गये हों इसकी कटाई भी उसी अन्तर से करनी चाहिए. वीज प्राप्त करने के लिये अच्छी अच्छी वड़ी एवं स्वस्थ गोभियों को जड़ समेत उखाड़ कर वहुत अच्छी खाद दी हुई भूमि में स्थानान्तरित कर देना चाहिए. वहां लगने के वाद इसका धड़ फट जाता है तथा उसमें से शाखायें तथा फल वाहर आ जाते हैं. जव फल पक जायं तो उसमें से वीज निकाल कर सुखा लेने चाहिएं और फिर वोतलों में या वन्द डिव्वों में भर कर रख लेने चाहिएं.

- + -

फूल गोभी

गोभियों में फूल गोभी सवसे अच्छी मानी गई है. वैसे भी इसकी तरकारी इन सव से स्वादिष्ट वनती है. इसकी खेती के लिये वलुआ दुमट या मटियार दुमट भूमि उत्तम होती है, वैसे यह वलुआ और मटियार भूमि में नहीं हो पाती और सव प्रकार की भूमि में पैदा हो सकती है. अतः शीघ्र उतरने वाली

गोभी को दुमट में तथा देर से आने वाली गोभी को वलुआ दुमट में ही बोना चाहिए. इसकी जुताई नौ इन्च तक गहरी करनी चाहिए और मिट्टी को ठीक ढंग से एकसार करना चाहिए. इसमे खाद खूब सड़ा हुआ लगभग तीन सौ मन प्रति एकड़ देना चाहिए और उसे भी खेत की मिट्टी के साथ भली प्रकार से मिला कर एकरस कर देना चाहिए. जुताई इतनी वार करनी चाहिए कि मिट्टी भुरभुरी हो जाय, तत्पश्चात खेत में नालियों तथा पारियों को भी सुव्यवस्थित कर लेना चाहिए. इसका वीज भी नरसरी में ही बोया जाता है. वीज नरसरी मे जुलाई और अगस्त के महीनों मे वखेरना चाहिये. फूल गोभी के लिये दो नरसरी तैयार करनी चाहिए. बीज एक नरसरी मे वखेर कर पौधों के उगने की राह देखनी चाहिए. जव पौधे लगभग वीस दिन के हो जायें तव उन्हे उखाड़ कर सावधानी से दूसरी नरसरी मे स्थानान्तरित कर देना चाहिये. दूसरी नरसरी में पौधों की दूरी आपस में आधे आधे फुट के लगभग होनी चाहिये फिर पन्द्रह दिन के पश्चात इन्हें खेत मे लगाया जाना चाहिये. खेत मे इनके पौधों को स्थानान्तरित करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि पौधों की आपस में तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी दो फुट के लगभग रहे. साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उखाड़ते समय किसी भी पौधे की जड़ को कोई हानि न पहुँचे. स्थानान्तरण सदा ऐसे समय पर होना चाहिये जव या तो सूर्य मे तेजी न आई हो या वे अस्ताचलगामी हों. ऐसा करने से पौधे मुर्झाते नहीं वरन ठीक वैठ जाते हैं. नरसरी में सिंचाई सदा हजारे से करनी चाहिए जिससे कि पानी तुरन्त वैठे, वहे नहीं. साथ ही जव तक पौधे नरसरी मे रहें तव तक उनमे राख

छिड़कते रहना चाहिए जिससे कि छोटे छोटे कीटाणु नष्ट हो जायें. पौधों को खेत में लगा देने के पश्चात सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए. निंदाई के समय अनावश्यक उग आये हुए पौधों को हटा देना चाहिए तथा यदि कोई पौधा व्याधिग्रस्त हो गया हो उसे भी उखाड़ कर जला देना चाहिए. फसल की तैयारी में लगभग चार माह लगते हैं. उस समय फूल काटने योग्य हो जाते हैं. जिस समय फूल खूब बंधा हुआ यौवन पर होता है उस समय उसके पत्तों का रंग पक्का हो जाता है. तब फूल काटे जा सकते हैं, फूलों को सावधानी से उसी अन्तर से काटना चाहिए कि जिस अन्तर से नरसरी में वखेरा गया हो. बीज प्राप्त करने के लिये अच्छे सफेद और बड़े फूल छांट कर जड़ सहित उखाड़ लेने चाहिएं तथा उन्हें खूब खाद दिये गये खेत में पुनः लगा देना चाहिए. जब उसमें फलियां आ जायं तब अच्छी फलियों को छोड़ कर निर्बल फली काट देनी चाहिए. ऐसा करने से वे फली बड़ी होकर पक जायेंगी. जब वे फली पक जायें तब उनमें से बीज निकाल कर सुखा कर बन्द डिब्बों में या बोतलों में भर कर रख लेने चाहियें.



प्याज

प्याज की फसल के लिये किसी विशिष्ट भूमि का ध्यान नहीं रखना पड़ता वरन इसकी काश्त हर प्रकार की भूमि मे की जा सकती है. इसकी जड़ें आध इन्च से एक डेढ़ इन्च तक ही बैठती हैं. इसमें गहरी जुताई की भी आवश्यकता नहीं होती. अतः लगभग आधे फुट तक की जुताई करनी चाहिए. प्याज के लिये खाद बिल्कुल सड़ा चाहिए अर्थात इसके लिये खाद इस से पहले काटी जाने वाली फसल में ही देना चाहिए. गोबर का अच्छा सड़ा खाद पहली फसल में लगभग तीन सौ मन प्रति एकड़ के अनुपात से देना चाहिए, प्याज के लिये खेत को उपजाऊ बनाने में राख भी सहायक सिद्ध होती है. यह खेत में पन्द्रह मन प्रति एकड़ के अनुपात से डाली जाए. एक लेखक के अपने प्रयोगों के अनुसार प्याज के लिये सरसों की खली का खाद भी यदि दस मन प्रति एकड़ के हिसाब से डाला जाये तो विशेष लाभकर सिद्ध होता है. खेतों में इसे सुव्यवस्थित क्यारियों में लगाना चाहिए. वैसे प्याज को खेतों मे भी बोया जा सकता है. किन्तु अच्छा यही होता है कि इसके पौधों को पहले नरसरी मे तैयार किया जाय तब खेतों मे लगाया जाय. नरसरी में इसके बीजों की बुवाई बम्बई और मद्रास में अक्तूबर से दिसम्बर तक, बगाल मे अगस्त से नवम्बर तक, बिहार में नवम्बर से फरवरी तक और पर्वतीय प्रदेशों मे फरवरी से मई

तक करनी चाहिए. इसके बीजों को क्यारियों में बोना चाहिए. एक एकड़ भूमि के लिये नरसरी में तीन सेर बीज बखेर कर तैयार करने चाहिए. इससे पूर्व कि बीज नरसरी में छींटा जाये नरसरी की मिट्टी को नम और भुरभुरी करने के लिये हल्की सिंचाई करनी चाहिये. जब मिट्टी पानी सोख ले तब उसकी गुड़ाई करके उसे भुरभुरी कर लेनी चाहिये. बीजों को मिट्टी में मिला देना भी अत्यन्त आवश्यक है और जब तक कि नरसरी में कुरे न फूट आवें तब तक के लिये मिट्टी को बड़े बड़े पत्तों से ढांप देना चाहिये जिससे कि गर्मी पाकर बीज कुरा फेंक दे. बीज बोने के लगभग डेढ़ माह के बाद प्याज के पौधों को साव-धानी से खेत में रोप देना चाहिये. खेत में इसके पौधों को इस ढंग से रोपना चाहिये कि इसकी जड़ें मुड़ें नहीं वरन सीधी रहें. जड़ों के ऊपर का गोल भाग भी आधा मिट्टी में दबा देना चाहिये. आपस में पौधों की दूरी आधे फुट के लगभग रखनी चाहिये. जो प्याज छोटी जाति का हो उसकी दूरी अंदाजे से कम रखनी चाहिये. खेतों में इसकी सिंचाई हर आठवें दिन करनी चाहिये जिससे पौधों को यथेष्ट जल मिलता रहे. निंदाई भी करते रहना चाहिये. प्याज के पौधों में निंदाई के समय यह भी ध्यान रहे कि किसी पौधे में कीड़ा तो नहीं लगा है, कीड़ा लगे पौधों को तुरन्त हटा कर नया पौधा रोप देना चाहिए. प्याज के पौधे में फूल को नहीं रहने देना चाहिए वरन् आते ही तोड़ देना चाहिए. बोने के पश्चात फसल की तैयारी मे लगभग छः माह का समय लगया है. प्याज की गांठ जब तैयार हो जाती है तब पौधों के पत्ते सूख जाते हैं. तथा वे स्वतः ही भूमि पर मुड़ जाते हैं, इसके एक सप्ताह के बाद ही फसल उठाने योग्य हो जाती है. प्याज को

उखाड़ कर हवादार स्थान में फैला देना चाहिए तथा जहां भी भेजना हो वहां टोकरियां भर कर भेजना चाहिए, ऐसा करने से प्याज खराब नहीं होंगी. यह प्रति एकड़ सौ मन से तीन सौ मन तक प्राप्त की जा सकती है. बीज प्राप्त करने के लिये अच्छे स्वस्थ प्याज लेकर उनके ऊपर के आधे भाग को काट फेंकना चाहिए तथा नीचे के आधे भाग को उपजाऊ भूमि मे लगा देना चाहिए, कुछ दिनों में वह अंकुर फैंक देगी, पौधा तैयार होगा तथा उसी में बीज आयेंगे. इन बीजों को पक जाने पर सुखा लेना चाहिए और फिर बोतलों में अथवा बन्द डिब्बों में ठीक प्रकार से भरकर रख लेना चाहिए.

- ✦ -

लहसुन

इसकी काश्त हर प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है. किसी मिट्टी का कोई विशेष प्रभाव इस पर नहीं पड़ता. इसे नरसरी मे भी लगाने की कोई आवश्यकता नहीं वरन इसे सीधे खेतों मे ही लगाना चाहिए. खाद इसके लिए भी पहली फसल में ही देनी चाहिए तथा भूमि की तैयारी ठीक इसी प्रकार से करनी चाहिए जिस प्रकार प्याज की की जाती है. इसकी सिंचाई भी आवश्यकतानुसार ही करनी चाहिए तथा साधारण निंदाई भी करते रहना चाहिए. वैसे सब भांति से इसकी खेती लगभग प्याज की भांति ही

की जाती है कोई विशेष अंतर नहीं होता. इसकी फसल भी लगभग छः माह में ही तैयार हो जाती है. इसकी पहचान यह है कि जब लहसुन तैयार हो जाता है उस समय इसके पत्ते सूखने लगते हैं. अतः जब इसके पत्ते सूखने लगें तब इसे खोद लेना चाहिए. यदि ठीक ढंग से इसकी खेती की जाय तो प्रति एकड़ अस्सी मन तक लहसुन प्राप्त किया जा सकता है. जो लहसुन बाजारों में भेजा जाय उसको पत्ते-रहित करके भेजना चाहिए किन्तु जो बीज के लिये रखा जाय उसे पूर्ण सुरक्षित रखने के लिये पत्तों सहित ही रखना चाहिए. ऐसा करने से कलियों की उत्पादन-शक्ति क्षीण नहीं हो पाती. लहसुन की गांठ में से सारी फांकों को पृथक पृथक करके खेत की क्यारियों में लगभग आधे आधे फुट की दूरी पर लगा देने से यह उग आता है. वैसे उत्तम तो यह होता है कि इसे अकेले न लगाया जाय वरन क्यारियों में तो धनिया और मेथी बोई हुई हो, तथा पारियों में लहसुन की बड़ी बड़ी फांकें लगा देनी चाहिए. यदि अकेले लहसुन की ही काश्त करनी हो तो प्रति एकड़ दस मन के लगभग लहसुन की कलियां लगानी चाहिए.



पालक

इसकी खेती हर प्रकार की भूमि में की जा सकती है किन्तु वलुआ भूमि में नही करनी चाहिए. वलुआ मिट्टी इसके लिए अच्छी नहीं रहती शेष किसीभी मिट्टी में इसकी खेती आसानीसे हो जाती है. खेत को तैयार करने के लिये कोई अधिक गहरी जुताई की भी अवश्यकता नहीं होती वरन आधे फुट के लगभग गहरी जुताई ही पर्याप्त होती है. खेत मे जुताई के वाद क्यारियां वना लेनी चाहियें. खेत में खूव सड़े हुए खाद की आवश्यकता है. यह लगभग सौ मन प्रति एकड़ के हिसाव से डाला जाना चाहिये. एक एकड़ खेत के लिये लगभग चार सेर वीजों की आवश्यकता होती है. इन्हें खेत की क्यारियों में छींट कर मिला देना चाहिये. इन वीजों की वुवाई सितम्वर और अक्तूवर के महीने मे होनी चाहिये. इसकी सिंचाई आवश्यकतानुसार ही होनी चाहिये. जहां सिंचाई की अवश्यकता न हो वहां नहीं करनी चाहिये, निंदाई भी ऐसी ही होनी चाहिये. निंदाई के समय इसके पौधों की अच्छी छटनी कर के उन्हें एक दूसरे से आधे २ फुट की दूरी पर लगा देना चाहिए. पौधों पर जो फूल आवें उन्हें भी तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए. वोने के लगभग एक माह के वाद पौधे यौवन पर आ जाते हैं. तव इनके पत्ते तरकारी के प्रयोग मे लाए जा सकते हैं. इसके पत्ते जितने कोमल और वड़े होंगे उतने ही अच्छे माने जावेंगे यदि वीज प्राप्त करना हो तो पौधों में जिस समय फूल आवें उस समय अच्छे स्वस्थ पौधों को छांट कर छोड़ देना चाहिए और उनके फूल नहीं तोड़ने चाहिए. कुछ ही दिनो मे वीज आ जाते हैं. उन्हें सुखा कर यथा योग्य ढंग से रख लेना चाहिए.

वथुआ

इस की खेती भी वलुआ भूमि को छोड़कर और हर प्रकार की भूमि में की जा सकती है. इसकी जुताई भी लगभग आधे फुट के गहरी होनी चाहिए. खाद भी इसके लिए सौ सवा सौ मन प्रति एकड़ के हिसाव से पर्याप्त होता है. खेत की तैयारी के लिए क्यारियां वना लेनी चाहिए या फिर पंक्तियां डाल लेनी चाहिएं, बीज दोनों प्रकार से वोये जा सकते हैं. प्रति एकड़ इसके पॉच सेर वीज क्यारियों या पंक्तियों में छिड़कने चाहियें. पंक्तियों की दूरी आपस में आधे पौन फुट तक होनी चाहिये. इनके वीजों को सितम्वर अक्तूवर में वोना चाहिये.

इसकी सिंचाई आश्वयकतानुसार होनी चाहिये. साथ ही निंदाई जिस समय हो उस समय इसके पौधों को एक दूसरे से लगभग आध आध फुट दूर कर देना चाहिये तथा शेष पौधों को काट लेना चाहिये. काटे हुये पौधे तरकारी के प्रयोग में लाये जा सकते हैं.

इसकी फसल की तैयारी में भी लगभग उतना ही समय लगता है जितना कि पालक की तैयारी में. जव इसके पौधे यौवन पर आ जायें तथा पत्ते भी वड़े हो जायें तव इसे तरकारी के लिये काट लेना चाहिये.

वीज इसके भी पालक की ही भांति लिये जा सकते हैं, इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं होता. एक दो वार वोने वाले को इसका अनुभव स्वयं ही हो जाता है.

पोदीना

इसकी खेती के लिये किसी विशेष जाति की भूमि की आवश्यकता नहीं होती वरन यह हर प्रकार की भूमि में उपजाया जा सकता है. इसकी जड़े भी अधिक गहरी नहीं बैठतीं वरन फैलती हैं. अतः खेत की जुताई भी अधिक गहरी न करके लगभग आधा फुट गहरी करनी चाहिये. जुताई के पश्चात खेत की मिट्टी को ढेले रहित कर देना चाहिये. तथा उसमें से कंकर पत्थर भी निकाल देने चाहियें.

खेत में इसके लिये गोवर की बहुत अच्छी सड़ी खाद डालनी चाहिये. इसकी मात्रा प्रति एकड़ डेढ़ सौ मन के लगभग होनी चाहिये इससे अधिक नहीं. खाद को मिट्टी मे भली प्रकार से मिला देना अच्छा होता है. इससे मिट्टी इसकी खेती के लिये अधिक उपजाऊ हो जाती है.

पोदीने को खेत में कभी भी लगाया जा सकता है और एक बार लगा देने पर यह वर्षों तक लगा ही रहता है. इसकी ऐसी टहनियों के टुकड़े लगाये जाते हैं जिनमें कुछ जड़े भी हों. लगाने से पूर्व खेत में क्यारियां बना लेनी चाहिए. उन क्यारियों में एक एक फुट के अन्तर पर पंक्तियां डाल देनी चाहियें तथा उन पंक्तियों में पोदीने की टहनियों को लगभग आधे फुट की दूरी पर लगा देना चाहिये.

थोड़े ही दिनों में यह टहनियां जड़ छोड़ देती हैं तथा पौधे तैयार हो जाते हैं. फिर यह पौधे वर्षों तक लगे रहते हैं. वर्षा में यह गलने न पावें इस संरक्षण के लिये इन्हें वर्षा आरम्भ होने से पूर्व ही बड़े बड़े गमलों में लगा कर सायादार स्थान पर रख लेना चाहिये और जब वर्षाकाल समाप्त हो जाये तब उन्हें पुनः खेतों में लगा देना चाहिये.

वैसे तो इसकी सिंचाई हर सप्ताह करनी चाहिये, किन्तु गर्मी के दिनों में इसकी सिंचाई हर तीसरे दिन करनी चाहिये. इसके लिये यह अच्छा होता है कि इसकी खेती किसी कुंए के पास की जाये, जिससे पानी ठीक समय पर मिलता रहे. निंदाई आवश्यकता पड़ने पर करते रहना चाहिये. कभी कभी गर्मी के दिनों में पोदीने के पत्तों में नीचे की ओर कीड़े लग जाते हैं जो पत्तों का रस चूसते रहते हैं तथा पत्तों को भी चाट जाते हैं. इन कीड़ों से पौधों की रक्षा करने के लिये मिट्टी के तेल में राख मिला कर उसे पौधों पर भली प्रकार से छिड़क देना चाहिये. इससे कीड़े मर जाते हैं.

इसकी फसल जल्दी तैयार हो जाती है. पौधे जिस समय खूब पत्तियां छोड़ दें तब समझ लेना चाहिये कि पौधे तैयार हो गये. उस समय जितनी आवश्यकता हो उसी के अनुसार पत्ते तोड़ते रहना चाहिये. उनके स्थानों पर पत्ते धीरे धीरे फिर आते रहेंगे. इनको टहनियों पर से भी काटने में कोई हर्ज नहीं होता है.

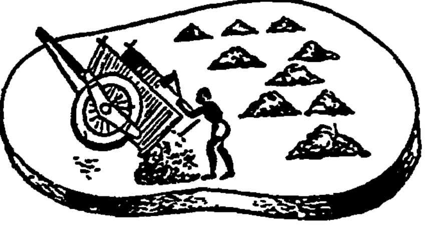
- ✦ -

परवल

इसकी दो जातियां होती हैं, एक भूरे रंग के पतले से होते हैं दूसरे सफेद धारीदार हरे रंग के जरा मोटे होते हैं. परवल की खेती के लिये भूमि का चुनाव आवश्यक है. इसे दुमट तथा बलुआ दुमट में ही उगाया जा सकता है, अन्य मिट्टियों में यह ठीक प्रकार से नहीं बैठता. इसकी जड़ें नीचे लम्बी नहीं जाती अतः इसके लिये गहरी जुताई की भी आवश्यकता नहीं होती। वरन आधे फुट तक गहरी जुताई करनी चाहिए. गोबर का, घोड़े की लीद या बकरी की मैंगनी का मिश्रित बहुत ही सड़ा हुआ खाद इसमें डालना चाहिए. इसकी मात्रा डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ के लगभग होनी चाहिए. वैसे तो इसके बीज भी बोये जा सकते हैं किन्तु अधिकतर इसकी लतायें ही लगाई जाती हैं. लताओं के लगाने का एक विशेष नियम है. लगभग चार फुट का लता का टुकड़ा लेकर उसे चार बार इस प्रकार मोड़ना चाहिए कि दोनों सिरे एक ओर ही रहें. खेत मे इसे चार इंच गहरा इस प्रकार गाड़ना चाहिए कि दोनो सिरे तो भूमि के ऊपर रहें और बीच का भाग मिट्टी में दब जाए. इस प्रकार के, लताओं के लगभग डेढ़ हजार टुकड़े एक एकड़ भूमि के लिए लगाने पड़ते हैं. इन्हें जून और अक्तूबर के महीने में लगाया जा सकता है. खेतों मे लताओं के टुकड़ों को इस ढंग से पंक्तिबद्ध लगाना चाहिए कि पंक्ति से पंक्ति का अन्तर तथा पौधे से पौधे का अन्तर छः फुट के लगभग रहे. इसमे कुछ बंगाल बिहार के स्थानों को छोड़ कर

अन्य स्थानों पर पानी की अधिक आवश्यकता तब तक रहती है जब तक इसकी लताएं ठीक प्रकार से लग न जाएं, तथा जब लताएं ठीक प्रकार लग जाएं उस समय इसमें सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए. जब भी लताएं मुर्झाती सी प्रतीत हों तभी पानी दे देना चाहिये. निंदाई भी उसी समय करते रहना चाहिये जब भी इसकी आवश्यकता अनुभव हो. निंदाई के समय ही यह बात भी ध्यान पूर्वक देख लेनी चाहिए कि लगाई गई लताओं में से अधिक जड़ें न फूट आवें.

इसकी फसल साधारणतः लगभग चार पांच माह में तैयार हो जाती है. जब इसमें फल आ जावे और उसकी लम्बाई चार पांच अंगुल के बराबर हो जाये तब वह उठाने योग्य हो जाता है. उस समय इसको काटा जा सकता है. परवल को कभी पकने नहीं देना चाहिए क्योंकि जब इसका बीज पक जाता है तब इसकी कोमलता नष्ट हो जाती है और यह स्वाद नहीं देता. अतः कोमलता रहते रहते ही सारे परवल धीरे धीरे प्राप्त कर लेने चाहियें. अगली फसल के लिये भी लताओं का ही प्रयोग करना चाहिए. इसके बीज प्राप्त करने से कोई लाभ नहीं है. इसकी पैदावार प्रति एकड़ साठ मन तक हो जाती है.



टमाटर

यह लाल और गुलाबी रंग का फल होता है जिसे लोग मसाले के साथ कच्चा तथा पका कर भी खाते हैं. अधिकांश लोग इसे आलू के साथ पका कर खाते हैं. इससे आलू की तरकारी का स्वाद कुछ खटाई पर हो जाता है. यह अत्यन्त स्वादिष्ट होता है. यह मस्तिष्क के लिये ठंडा तथा रक्त को साफ करने वाला होता है.

इसकी खेती के लिये सर्वोत्तम भूमि बलुआ कछार होती है. वैसे तो ठीक प्रकार से खेत की तैयारी करके इसकी खेती लगभग हर प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है. खेत की जुताई साधारणतः आठ इन्च तक गहरी करनी चाहिए.

इसमें प्रति एकड़ लगभग डेढ़ सौ मन अच्छा खाद देना चाहिए. वैसे उत्तम तो यह होता है कि खाद इससे पहली वाली फसल को दिया जाये और इसे न दिया जाये. गोबर की खाद के अतिरिक्त इसमे कुछ राख भी डालनी चाहिए. कृत्रिम खाद भी दे सकते हैं. इसमे प्रति एकड़ ढाई मन सुपरफास्फेट तथा सवा मन सोडियम नाइट्रेट से फल बड़ा अच्छा आता है.

खेत की तैयारी अच्छी तरह कर लेनी चाहिए तथा अन्तिम जुताई के पश्चात उसमे ऐसी नालियां पंक्तियों के मध्य मे बना लेनी चाहियें जिनसे हर पौधे को बराबर परिमाण में निरन्तर जल मिलता रहे.

इसके बीज नरसरी में बोकर पौधे तैयार किये जाते हैं. बुवाई का समय जुलाई से अक्तूबर तक का है. यदि एक एकड़ खेत में खेती करनी हो तो नरसरी में इसके बीज आध पाव छींटने चाहिएं. नरसरी में भी बीजों को लगभग पांच पांच इंच की दूरी पर बनी पंक्तियों में ही छींटना चाहिए.

जब तक पौधे नरसरी में रहें इनकी सिंचाई छिड़काव द्वारा या हज़ारे से अच्छी तरह करनी चाहिए तथा जब पौधे बढ़कर चार पांच इंच ऊंचे हो जायें तब उन्हें खेत में इस प्रकार से स्थानान्तरित कर देना चाहिए कि पौधे आपस में दो दो फुट के अन्तर पर रहें. स्वस्थ पौधों को ही छांट छांट कर लगाना चाहिए.

टमाटर के खेत में सिंचाई आवश्यकता देख कर करनी चाहिए और जहां तक हो नालियों द्वारा इस प्रकार करनी चाहिए कि सारे पौधों को बराबर पानी मिले. जब इसकी निंदाई की जाये तब ऊपर के बड़े पत्ते काट डालने चाहिएं और यदि पौधा झुकता दृष्टिगत हो तो उसे सहारा देकर खड़ा करना चाहिए.

इसकी फसल लगभग ढाई माह में तयार हो जाती है. साग भाजी के लिये यदि कच्चे फल बेचने हों तो उन्हें आठ दस दिन पूर्व ही काटा जा सकता है अन्यथा जब फल पक कर लाल हो जाये तो समझना चाहिए कि वह तैयार हो गया. यदि भली प्रकार से खेती की जाये तो उपज तीन सौ मन प्रति एकड़ तक हो जाती है.

बीज प्राप्त करने के लिए अच्छे अच्छे सुर्ख पके हुए फलों को तोड़ कर उनमें से गूदा निकाल कर वीजों को घोल कर चिकने पदार्थ से रहित कर लेना चाहिए और फिर प्राप्त वीजों को राख के साथ मिला कर साया मे सुखा लेना चाहिए तथा राख के साथ मिलाकर ही बन्द बोतल या बन्द डिब्बों में रख लेना चाहिए.

- • -

वैंगन

इसे दुमट और बलुआ-दुमट भूमि मे लगाना चाहिए, इस के लिए जुताई साधारणतः आठ इन्च तक गहरी पर्याप्त होती है. खेती की तैयारी के समय खेत मे इस प्रकार की पंक्तिया बनानी चाहिएं, जिन की दूरी आपस मे ढाई ढाई फुट हो तथा बीच में सिंचाई के लिए नालियां भी ठीक रखनी चाहियें.

जुताई के समय खेत मे अच्छा सड़ा खाद डाल देना चाहिए इसकी मात्रा एक एकड़ के लिये दो सौ मन के लगभग होनी चाहिये. पौधे रोप देने के पश्चात इसमे राख का छींटा भी बहुत अच्छा होता है. इसके बीज वर्षा काल मे अक्तूबर मे और कहीं कहीं जलवायु के अनुसार मार्च मे डाले जाते हैं.

बीज चार पांच छटांक प्रति एकड़ खेत के लिये नर्सरी में छिटकने चाहियें, यदि पौधे छोटे हों और बरसात होने लगे तो पौधों पर मिट्टी चढ़ा देने की आवश्यकता है, जिससे वर्षा का पानी पौधों को कोई हानि न पहुँचा सके. बोने के एक या डेढ़ माह के पश्चात पौधों को खेत में स्थानान्तरित कर देना चाहिए. खेत में पौधों को इस प्रकार रोपना चाहिए कि पौधे-पौधे का अन्तर डेढ़ फ़ुट रहे.

खेतों में इसकी सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए. पौधों को मुर्झाने नहीं देना चाहिए. निंदाई भी इसी प्रकार करते रहना चाहिए.

इसको यदि ठीक प्रकार से रखा हो तो इसकी फसल साल भर तक फल देती रहती है. जिस समय इसके फल बड़े बड़े गोल या लम्बे (जाति के अनुसार) चिकने चिकने यौवन पर आ जायें तब फसल को तैयार समझना चाहिये. उस समय वैगन काटे जा सकते हैं. यह प्रति एकड़ डेढ़ सौ मन तक प्राप्त किये जा सकते हैं.

इसके वीज टमाटर की ही भांति प्राप्त किये जा सकते हैं, अर्थात अच्छे वड़े वैगनों में से वीज निकाल कर उन्हें भली प्रकार से धोकर राख मिला कर बन्द बोतलों में या बन्द डिब्बों में रख लेना चाहिए.

- + -

भिण्डी

भिण्डी के लिये भूमि का कोई वन्धन नहीं है वरन् इसे भी हर प्रकार की भूमि पर उगाया जा सकता है. इसके लिये जुताई भी गहरी करने मी आवश्यकता नहीं वरन् लगभग आध फुट की जुताई ही इसके लिए पर्याप्त होती है. किन्तु मिट्टी को भुर भुरी कर लेना चाहिये तथा भूमि को समतल भी वना लेना चाहिये.

जुताई के समय इसमें अच्छी खाद भी देनी चाहिये. खाद की मात्रा लगभग डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ ठीक रहती है. खाद को और मिट्टी को भली प्रकार से मिला कर एक रस कर देना चाहिये तथा अन्तिम जुताई के पश्चात खेत को व्यवस्थित कर लेना चाहिये. जो फसल जनवरी मे वोई जाय उसके लिये खेत में चौड़ी-चौड़ी नालियों या क्यारियों को वना लेना आवश्यक है.

अधिकतर इसकी वुवाई जनवरी और जून में होती है, वैसे जनवरी से लेकर जून तक इसे कभी भी वोया जा सकता है. वीज भिण्डी के पांच सेर प्रति एकड़ के अनुपात से डालने चाहिए, किन्तु यदि वर्षा काल में वोये जायें तो केवल तीन सेर के लगभग वीज डालने चाहिये.

वर्षा काल वाली फसल को अधिकांशतः पानी देने की आवश्यकता नहीं होती किन्तु दूसरी फसल मे पानी देना ही होता है. सिंचाई नालियों के द्वारा करनी चाहिये, जिससे सारे ही

पौधों को पानी ठीक प्रकार से मिले. ऐसी फसल के लिए भूमि का समतल होना आवश्यक है. अन्यथा पानी ढलान की ओर को भर जायगा तथा ऊंचाई पर रुकेगा ही नहीं. वर्षा काल फसल के पौधों में निंदाई के समय पौधों की ठीक छंटनी करके उन्हें डेढ़ डेढ़ फुट के अन्तर पर लगा देना अच्छा होता है, निंदाई ठीक प्रकार से होनी चाहिए. निंदाई के समय घास फूस का हटा देना भी आवश्यक होता है.

इस प्रकार ध्यान पूर्वक खेती करने से फल लगभग दो महीने में ही प्राप्त किए जा सकते हैं. फलों के आ जाने के पश्चात उनकी कटाई की ओर वड़ा ही सतर्क रहने की आवश्यकता है, क्योंकि यदि भिण्डी को वड़ी होने से पूर्व ही तोड़ लिया गया तो वह तोल में कम होगी और यदि तोड़ने के योग्य होने के वाद भी दो तीन दिन तक नहीं तोड़ी गई तो उसमें जाली पड़ जायगी तथा स्वाद रहित हो जायगी. अतः फसल की तैयारी पर प्रत्येक पौधे की देख भाल आवश्यक है.

यदि वीज प्राप्त करना हो तो भिण्डी को पौधे पर तव तक लगा रहने देना चाहिए जव तक कि वह पक कर पीली न पड़ जाय, किन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह फट न जाए उससे पूर्व ही उसे तोड़ कर रख लेना चाहिए. यदि वीज निकालने ही हों तो उन्हें किसी वन्द वोतल या डिव्वे में भर कर रखना चाहिए.

- ◆ -

मिर्च

इसकी कई जातियां होती हैं. छोटी से छोटी जाति की मिर्च आधा इन्च तथा बड़ी से बड़ी जाति की मिर्च आधे फुट से भी अधिक लम्बी तक पाई जाती है. बहुत सी मिर्चें तीन चार इन्च तक मोटी भी होती हैं, मोटी और बड़ी मिर्चों में तीव्रता नहीं होती और छोटी अत्यधिक तीव्र होती है. बड़ी तरकारी बनाने के काम में आती हैं तो छोटी तरकारी में तेजी लाने के लिए.

मिर्च की खेती के लिये दुमट और बलुआ भूमि अधिक उपजाऊ होती है. बोने से पूर्व इसकी अच्छी तरह जुताई कर लेनी चाहिये, साधारणतः डेढ़ सौ से दो सौ मन तक खाद प्रति एकड़ देनी चाहिए.

इसके बीज नर्सरी में बो कर पौधों को तैयार करना होता है. नर्सरी में इसके बीज अप्रैल से जुलाई तक डाले जा सकते हैं, और तीन चार सप्ताह में जब पौधे कुछ तैयार हो जायें तब इन्हें खेतों में स्थानान्तरित कर दिया जाता है. बीज प्रति एकड़ दस-बारह छटांक पर्याप्त होता है.

खेतों में पौधों को लगभग पन्द्रह इन्च के अन्तर पर रोपना चाहिए और आवश्यकतानुसार इसकी सिंचाई करते रहना चाहिये, जिससे कि पौधे मुर्झा न जाएं. सिंचाई तनिक ध्यान से करनी चाहिये और जब पौधों में फूल आने लगें तो सिंचाई करना आवश्यक है, जिससे फूलों के झड़ जाने का भय न रहे.

तथा जिस समय मिर्च आ जाएं तब पानी अधिक देना चाहिए, जिससे फल को पोषण प्राप्त हो. निंदाई भी ठीक प्रकार से जैसी आवश्यकता हो वैसे ही करते रहना चाहिए.

जिस समय मिर्च आ जाए तब आवश्यकतानुसार उसे तोड़ा जा सकता है. जो मिर्चें बड़ी होती हैं उन्हें यौवन आ जाने के बाद हरी रहते ही तोड़ लेना चाहिए, जिससे कि वे तरकारी के काम में ली जा सकें. छोटी जाति की मिर्चों में भी जो हरी प्रयोग में लानी हों तो उन्हें तोड़ लेना चाहिए, शेष को पोधों में लगे रहने देना चाहिए. मिर्चें तोड़ने के बाद दो तीन बार और आती हैं फिर पौधे बेकार हो जाते हैं. जिन मिर्चों को सुखाने का विचार हो उन्हें पौधों पर ही लाल होने देना चाहिए फिर उन्हें तोड़ कर पिचका देना चाहिए. ऐसा करने से इनके बीजों का फैलने का भी भय नहीं रहेगा तथा मिर्च को जहां भरा जावेगा यह चपटी होने के कारण स्थान उतना ही कम घेरेगी.

इन्हीं लाल अच्छी सुखाई हुई मिर्चों के बीज अगली बार की फसल में बोने के लिए काम में लाए जाते हैं. यदि चाहें तो बीजों को निकाल कर बोतलों या डिब्बों में भी भर कर रख सकते हैं.



काशी फल

यदि खेत को ठीक प्रकार-से तैयार करके उपजाऊ बना लिया जाय तो इसकी खेती हर प्रकार की मिट्टी मे की जा सकती है, किन्तु दुमट मिट्टी इसकी खेती के लिये सर्वोत्तम होती है. गांवों में इसे अपने घरों के आस पास भी वो कर इसकी वेलों को ऊपर चढ़ाया जा सकता है.

खेती के लिये खेत की जुताई आधे फुट के लगभग गहरी करनी चाहिये और लगभग डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ खाद देकर उसे मिट्टी के साथ एक रस कर देना चाहिए.

इसकी बुवाई जून मे करनी चाहिये. खेतों में छः छ. फुट की दूरी पर पंक्तियां बना कर इसकी वेल का अन्तर तीन तीन फुट का रख कर वोना चाहिए. इसका बीज प्रति एकड़ दो सेर के लगभग वखेरना चाहिए.

सिंचाई के लिए खेत की तैयारी के समय ही पंक्तियों के वीच में ऐसी नालियों का बना लेना भी आवश्यक है जो हर वेल तक ठीक और बराबर पानी पहुँचाने में समर्थ हों. सिंचाई, स्थान, जल-वायु तथा मौसम के हिसाब से आवश्यकतानुसार करनी चाहिए, निदाई भी समय पर करते रहना चाहिए.

इसके फल जब बड़े हो जायें तब यह प्रयोग में लाने योग्य हो जाते हैं तथा इन्हें आवश्यकतानुसार तोड़ा भी जा सकता है. वैसे यदि आवश्यकता न हो तो वेलों को खेत मे सूखने देना चाहिए

तथा इसे तब तक खेत में पड़ा रहने देना चाहिए जब तक बेल सूखे तथा फलों को तोड़ कर कहीं भी सुरक्षित स्थान पर रख सकते हैं. इसे बारह माह तक रखा जा सकता है.

बहुत अच्छे पके काशीफलों के बीज निकाल कर उन्हें राख में मल कर धो लेना चाहिए और फिर सुखा कर राख में मिला कर ही बोतलों या बन्द डिब्बों में रख लेना चाहिए.

- ◆ -

लौकी

लौकी की बेल लगाई जाती है. लौकी का रंग हरा होता है, यह लम्बोतरे किस्म का होता है, जिसकी लम्बाई चार फुट तक देखी गई है, मोटाई भी ढाई इंच से छः इंच तक होती है.

लौकी की एक जाति ऐसी भी होती है जो गोल होती है, यह जब बहुत बड़ी हो जाती है तो सूख जाने पर यह इतनी हल्की हो जाती है कि लोग उस पर बैठ कर पानी में उतर जाते हैं और डूबने नहीं पाते, इसे तूम्बा कहते हैं, यह सितार आदि में भी प्रयोग में लाया जाता है, अधिकतर लोग इसका एकतारा भी बनाते हैं.

लौकी

इसकी खेती के लिये दुमट और वलुआ दुमट भूमि सबसे अच्छी होती है. जुताई पांच छः इन्च की ही पर्याप्त होती है. खेत की तैयारी भली भांति कर लेनी चाहिये. लगभग डेढ़ सौ मन खाद प्रति एकड़ डाल कर उसे मिट्टी के साथ खूब मिला देना चाहिए इससे भूमि बहुत उपजाऊ हो जाती है.

वैसे तो इसके बीज मई से जुलाई तक बोये जाते हैं, किन्तु बहुत से लोग इसे जनवरी में भी बोते हैं. वर्षा काल से पूर्व भी इसे छप्परों या मकानों के आस पास वो कर बेल ऐसे ऊंचे स्थान पर चढ़ा देनी चाहिए जहां पर फल टिक सकें.

बरसात में इसके पौधों की वाढ़ वढ़ जाती है. अतः उस समय इसका बीज खेत में आधा सेर प्रति एकड़ के अनुपात से डालना चाहिये, और आवश्यकतानुसार पानी देते रहना चाहिए.

निंदाई के समय पौधों की वाढ़ को देख लेना चाहिए और निर्वल वेलों को काट देना चाहिए तथा सवल का संरक्षण करना चाहिये. ऐसा करने से फल अच्छे लगते हैं. खेतों में यदि बांस की मचानें बना दी जाएं तथा वेलों को उन मचानों पर चढ़ाया जाये वो निश्चित ही वे अच्छी फैलती हैं.

लगभग पांच छः माह तक लताएं फल दे देती हैं. यह जरा अनुभव और पहचान की वात है कि लौकी यौवन पर कब आती है. यौवन पर आते ही इसे तोड़ लेना चाहिए, जिससे कि इस का वीज पक न जाए वीज के पक जाने पर इसकी कोमलता नष्ट हो जाती है तथ फिर यह स्वादिष्ट नहीं रह पाती.

- ✦ -

करेला

इसकी खेती वर्षा काल में तथा ग्रीष्म ऋतु में की जाती है. वही इसकी दो जातियां बन गई हैं, जो करेला वर्षा ऋतु में बोया जाता है वह मोटाई में कम रह जाता है तथा लम्बाई में वढ़ जाता है तथा जो करेला ग्रीष्म ऋतु में बोया जाता है वह लम्बाई में कम और मोटाई में अधिक हो जाता है, करेले का रंग गहरा हरा होता है.

यह हर प्रकार की भूमि में आसानी से पैदा किया जा सकता है. जुताई भी कोई विशेष गहरी नहीं चाहिए केवल पांच छः इन्च गहरी प्रर्याप्त होती है, खाद डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ के अनुपात से डालनी चाहिए तथा उसे भली प्रकार से मिट्टी में मिला देना चाहिए.

इसे जनवरी तथा जून में बोया जाता है. जो फसल जून में बोई जाये उसे लगभग पांच-पांच फुट के अन्तर पर बोना चाहिए तथा जो फसल जनवरी में बोई जाए उसके वीजों को नालियों में वोना चाहिए, जो डेढ़ डेढ़ फुट चौड़ी हो. एक एकड़ भूमि के लिए करेले के लगभग तीन सेर वीज वोने चाहियें.

करेले की सिंचाई भी मिट्टी, मौसम तथा स्थान पर निर्भर है. उसी प्रकार से सोच समझ कर आवश्यकतानुसार करनी चाहिए. निदाई के समय निर्वल लताओं को हटा देना चाहिए. ऐसा करने से फसल अच्छी उतरती है.

इसकी फसल लगभग पांच छः महीने तक प्राप्त होती है. करेले जब तीन इंच तक के हो जायें तभी से आवश्यकतानुसार तोड़े जा सकते हैं.

बीज प्राप्त करने के लिये अच्छे बड़े करेलों को पकने देना चाहिए और जब वे पक कर लाल या नारंगी से हो जाये तब उन में से बीज निकाल निकाल कर उन्हें बोतलों या बन्द डिब्बों में रख देना चाहिए.

- ◆ -

टिण्डा

इसकी पैदावार बलुआ मिट्टी में अच्छी होती है. जुताई लगभग पांच छः इन्च गहरी होनी चाहिए तथा खाद इसे प्रति एकड़ डेढ़ सौ मन के अनुपात से देनी चाहिए. खेत की तैयारी के समय खेत में दो दो फुट के अन्तर पर पंक्तियां बना देनी चाहिएं.

इसके बीज प्रति एकड़ दो सेर के लगभग बोने चाहिएं, बोते समय बीजों का जोड़ा बोना चाहिए तथा इस जोड़े को पंक्तियों में दो फुट के अन्तर पर बोना चाहिए. इसकी बुवाई के लिए सर्वोत्तम समय फरवरी-मार्च और जून-जुलाई का है.

निंदाई के समय अनावश्यक और निर्बल पौधों की छटनी कर देनी चाहिए तथा पानी की आवश्यकता पर मौसम और जलवायु की दृष्टि से ठीक सिंचाई करनी चाहिए.

इसकी फसल डेढ़ माह में तैयार हो जाती है तव इसके कच्चे फल तरकारी के लिए काटे जा सकते हैं.

वीज प्राप्त करने के लिए कुछ टिण्डों को पौधों में ही लगा रहने देना चाहिए और जव वे पक कर नारंगी रंग के हो जायें तब उनमें से बीज निकाल कर राख के साथ हल्के हाथ से धोकर सुखा कर थोड़ी सी राख में मिला कर बोतलों में भर लेने चाहिएं.

- + -

ककड़ी

इसकी खेती के लिए भी बलुआ दुमट भूमि ही सर्वोत्तम होती है. जुताई लगभग पांच छः इन्च करके लगभग डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ के अनुपात से राख डाल कर मिट्टी और खाद को भली प्रकार से एकरस कर देना चाहिए.

इसकी वुवाई जून में अच्छी रहती है. बीज प्रति एकड़ आध सेर से तीन पाव तक डालना चाहिए. खेत की तैयारी के समय छः छः फुट के अन्तर पर पंक्तियां वना लेनी चाहिएं. उन्हीं पंक्तियों में वीज चार चार फुट की दूरी पर वोना चाहिये. निर्वल पौधों को हटाते समय स्थान खाली न हो अतः इसके वीज भी जोड़ों से ही (दो-दो) डालने चाहिएं.

फसल को सींचने की कोई विशेष आवश्यकता हो तो उसी के अनुसार नालियों द्वारा पानी देना चाहिए. निंदाई अच्छी होनी चाहिये तथा जो पौधे निर्बल हों उन्हें छांट देना चाहिए, जिस से कि शेष बेलों में फल अच्छे आवें. यदि हो सके तो एक मचान बना देनी चाहिए जिस पर कि उसकी बेल भली प्रकार से चढ़ाई जा सके. ऐसा करने से फल अच्छा आता है तथा खराब भी नहीं हो पाता.

फसल लगभग ढाई माह में तैयार हो जाती है. उस समय ककड़ियां प्राप्त की जा सकती हैं और वे खाने योग्य भी हो जाती हैं. ककड़ियों में यह विशेषता है कि छोटी छोटी भी प्रयोग में लाई जा सकती हैं.

यदि बीज प्राप्त करना हो तो ककड़ी को बेल में ही पकने देना चाहिए, जब वह पक कर पीली सी हो जाए तब उन्हें तोड़कर उसके बीज निकाल कर उसी प्रकार हल्के हाथ से धोकर उन्हें नेपतलीन या राख में मिला कर (सुखाने के बाद) बोतलों या डिब्बों में भर कर तथा बन्द करके रख देना चाहिए.



तोरई

तोरई की भी वेल लगाई जाती हैं, जो लगभग लौकी की वेल से कुछ ही छोटी होती हैं.

इसकी सर्वोत्तम खेती दुमट मिट्टी में होती है. यदि ठीक प्रकार से खेत की तैयारी हो तो हर प्रकार की मिट्टी में इस की खेती की जा सकती है. इसके लिये लगभग आधा फुट गहरी जुताई करनी चाहिए तथा डेड़ सौ मन प्रति एकड़ के अनुपात से खाद डालनी चाहिए.

इसकी वुवाई जनवरी तथा जून जुलाई में होती है. जो फसल वर्षा काल में वोई जाय उसे तीन तीन फुट की दूरी पर वनाई गई डेढ़-डेढ़ फुट चौड़ी नालियों में वोना चाहिए. तथा जून-जुलाई में वोई गई फसल के पौधे डेढ़ डेढ़ फुट के अन्तर पर छः-छः फुट की दूरी पर वनी पंक्तियों में लगाने चाहिएं.

जनवरी में वोई जाने वाली फसल के लिये लगभग तीन सेर वीज तथा जून में वोई जाने वाली फसल के लिये दो सेर प्रति एकड़े वोने चाहिएं.

निंदाई के समय निर्वल पौधों को उखाड़ देना चाहिए तथा शेष की वेलों को किसी मचान पर चढ़ाने का प्रवन्ध करना चाहिए वरना लकड़ियां पंक्ति के वीच में गाड़ कर लताओं

को इन पर चढ़ाना चाहिए, जिससे कि फल ठीक और अच्छा लगे. सिंचाई की जब जितनी आवश्यकता हो करनी चाहिए.

इसकी बेलों में लगभग ढाई महीने मे फल आने आरम्भ हो जाते हैं. कुछ बड़े होने पर इनका प्रयोग किया जा सकता है, इसके बाद लगभग चार महीने तक फल देती रहती है.

यदि तोरई के बीज प्राप्त करने हों तो फलों को बेलो में लगे रहने देना चाहिए और जब वे पूरी तरह से पक जायें तो उन्हें तोड़कर सुखा लेना चाहिए. तथा जब तोरई पूरी तरह सूख जायें तब उन्हे साबत ही रख लेना चाहिए. और जब बोने की आवश्यकता हो तो बीजों को तभी उन मे से निकालना उत्तम होता है.

- - -

सेम

सेम की बेलों को घर मे भी बोया जा सकता है और घरों के आस पास भी. वैसे अधिक सेम प्राप्त करने वाले इन्हें उद्यानों और कहीं कहीं खेतों में बोते हैं.

इसकी खेती के लिये सर्वोत्तम भूमि मटियार-दुमट है किन्तु वैसे इसकी खेती हर प्रकार की मिट्टी में आसानी से की जा सकती है. सेम की खेती के लिये जुताई लगभग आधा

फुट गहरी करनी चाहिए. वैसे तो साधारणतः इसकी खेती में खाद की कोई आवश्यकता होती ही नहीं किन्तु यदि भूमि वहुत ही हल्की या निर्वल हो तो उसमें सौ मन के लगभग खाद प्रति एकड़ दे देनी अच्छी होती है.

खेती के लिये खेत को तैयार करना आवश्यक है. बीज बोने से पूर्व खेत में पंक्तियां डाल लेनी चाहियें जिनका आपस में अंतर चार चार फुट का हो. जहां इसे छोटी मोटी जगह पर ही लगाना हो वहां इसके वीज को दो ढाई इन्च मिट्टी खोद कर वो देना चाहिए.

खेत में वोने के लिये एक वात ध्यान रखनी चाहिए कि इसके वीज का वह भाग नीचे की ओर रहे जहां पर यह हल्की सी धारी से चिपका होता है. वैसे साधारणतः इसकी खेती के लिये दस सेर प्रति एकड़ के अनुपात से वीज वोने चाहिएं. किन्तु यदि पहिली फसल में धान की खेती की गई हो तो यह ध्यान रखना चाहिए कि वीज पच्चीस सेर प्रति एकड़ के अनुपात से वोये जायें, क्योंकि अधिक पौधे निर्वल रह जायेंगे.

इसकी सिंचाई आवश्यकतानुसार ही करनी चाहिये. खेतों में जव भी ऐसा भान हो कि वेल के पत्ते मुर्झाने से लगे हैं उसी समय उसकी सिंचाई कर देनी चाहिए. निंदाई के समय मचान वनाने का प्रवन्ध करना चाहिए. यदि मचान न वन पाए तो सूखी लकड़ी जहां तहां खेतों में गाड़ कर वेलों को उन पर चढ़ाना चाहिए. फिर जहां जहां भी पौधों की वहुतायत हो गई हो उनमें

से निर्बल पौधों की तुरन्त ही छंटनी कर देनी चाहिए. शेष सभी पौधों को एक एक फुट के अन्तर पर कर देने से फली जल्दी और अच्छी आती हैं.

इसकी बेलों में फलियां लगभग छः माह के पश्चात आनी आरम्भ होती हैं, फलियों को प्रयोग के लिए तभी तोड़ा जा सकता है. वैसे फिर ये बेलें लगभग दो माह तक निरन्तर फलियां देती ही रहती हैं.

यदि बीज प्राप्त करने हों तो फलियो को बेलों पर ही पकने देना चाहिए. जब वह पक जाएं तब उन्हें सुखा कर उनके बीजों को सुरक्षित रख लेना चाहिए.



मटर

मटर विषेषतः दो प्रकार की होती है. एक देशी तथा दूसरी विलायती. देशी मटर से अधिक स्वादिष्ट और मीठी विलायती मटर होती है. इसकी फलियां भी देशी से अधिक बड़ी होती हैं तथा बीज भी अधिक बड़े होते हैं. मटर के पौधे एक फुट से लेकर चार फुट तक के होते हैं. जो पौधे अधिक ऊंचे हो जाते हैं उनके लिए सहारे का प्रबन्ध करना चाहिए क्योंकि उनकी डण्डियों में पौधों को खड़ा रखने की शक्ति नहीं होती, छोटे पौधों को, या जब खेत में अधिक बोए जाएं तब उन्हे सहारा देने की कोई आवश्यकता नहीं होती.

वैसे विलायती मटर की खेती मटियार और बलुआ भूमि को छोड़ कर किसी भी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है. फिर भी इसके लिये सर्वोत्तम मिट्टी बलुआ-दुमट या मटियार-दुमट है. इसी प्रकार यद्यपि देशी मटर की खेती बलुआ भूमि को छोड़ कर अन्य सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है तथापि सर्वोत्तम मिट्टी इसके लिये बलुआ-दुमट और मटियार दुमट ही है.

देशी मटर को खाद देने की कोई आवश्यकता नहीं होती, किन्तु विलायती के लिये लगभग डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ खाद की आवश्यकता होती है. जुताई लगभग आधा फुट गहरी होनी चाहिए.

खेत को वुवाई से पूर्व तैयार करना चाहिए. विलायती मटर के लिये खेत में सिंचाई की नालियां भी अवश्य बना लेनी चाहिये. खेत में मटर की जाति के अनुसार तीन से पांच फुट की दूरी पर नालियां तैयार कर लेनी चाहिये.

मटर को पहाड़ो पर गर्मियों में तथा अन्य स्थानों पर सितम्बर-अक्टूबर में बोना चाहिये. जाति के अनुसार पन्द्रह सेर से तीस सेर तक प्रति एकड़ बीज डालने चाहिएं. देशी मटर के लगभग बीस सेर बीज डालने चाहियें. बुवाई के समय बीज लगभग दो इन्च गहरा तथा तीन इन्च के अन्तर पर बोना चाहिए. विलायती मटर को इस प्रकार पंक्तिवद्ध बोना चाहिए कि बीज की नाली के द्वारा हर पौधा पानी प्राप्त कर सके.

देशी मटर के लिये वैसे सिंचाई की विशेष आवश्यकता नहीं होती, किन्तु विलायती को होती है. अत: सिंचाई का प्रबन्ध आवश्यकता एवं पानी की मांग के अनुसार होना चाहिए. निराई के समय जो पौधे बढ़ जाए या जो निर्वल हों उनकी ठीक प्रकार छटनी कर देनी चाहिए.

इसकी फलियां लगभग तीन महीने में आनी आरम्भ हो जाती हैं, तभी इन्हें आवश्यकतानुसार तोड़ा जा सकता है.

यदि बीज प्राप्त करने हों तो फलियों को पौधों मे ही पकने देना चाहिये तथा जिस समय वे पक जायें अर्थात मटर का छिलका पतला और पीला पड़ जाए उस समय इन्हें तोड़ लेना चाहिए तथा बीज को सुखा कर बन्द बोतलों या डिब्बों मे सुरक्षित रख लेना चाहिए. संरक्षण के लिये बीज के तोल को देख कर प्रति मन एक सेर के लगभग गंधक का चूर्ण मिला कर रख लेना चाहिए.

अनाज की फसलें

संसार भर में अनाज की खेती सबसे बड़ी खेती मानी जाती है और वैसे भी यदि देखा जाय तो अनाज ही सबसे अधिक काम की वस्तु है. भारतवर्ष में ही नहीं समस्त संसार वाले ही अपने जीवन निर्वाह का साधन एक मात्र अनाज को ही मानते हैं. इसमें कोई सन्देह नहीं कि कहीं पर कोई अनाज अधिक प्रयोग में लाया जाता है और कहीं कोई कम. किन्तु यह निश्चित है कि अनाज के बिना मानव क्या जीव-जन्तु तक का पेट-पालन नहीं हो सकता. नीचे हम अनाज की विभिन्न फसलों का पृथक-पृथक विवरण देंगे.

गेहूँ

अनाजों में गेहूँ का सबसे बड़ा स्थान है और वैसे भी अन्य सभी अनाजों में गेहूँ ही सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता है. यही कारण है कि संसार की अधिकांश भूमि पर गेहूँ की ही खेती की जाती है.

गेहूँ की खेती करने के लिये किसी विशेष भूमि की आवश्यकता नहीं, वरन यह हर प्रकार की भूमि में पैदा किया जा सकता है. किन्तु साथ ही साथ यह नहीं भूलना चाहिए कि गेहूँ की खेती करने के लिये जिस भूमि का चुनाव किया जाय वहां

पर सिंचाई और खाद का उपयुक्त प्रवन्ध हो. हर प्रकार की भूमि में उचित सिंचाई और उपयुक्त खाद के सहयोग से गेहूँ की खेती की जा सकती है.

जिस स्थान पर गेहूं की खेती करनी हो वहां की मिट्टी को वर्षा और गर्मी के दिनों में ऐसे हलों से भली भांति जुताई करके पलट देना चाहिए जो मिट्टी को पलटने वाले हों. ऐसा करने से भूमि गेहूं के लिये उपजाऊ वन जाती है. उस समय खाद की आवश्यकता होती है किन्तु यदि गोवर आदि का खाद उचित मात्रा में न मिल पाये, तो खेत के अन्दर सनई वो देनी चाहिए. तत्पश्चात जव सनई के पौधे खड़े हो जाएं तो उन्हें खेत मे गाड़ कर हरी खाद के काम में ले लेना चाहिए.

जो लोग खाद उपलब्ध करने मे समर्थ हों उन्हें चाहिए कि वे खूव गहरी जुताई करके उसके अन्दर क्वार के महीने के आस पास लगभग दस गाड़ी प्रति एकड़ के अनुपात से गोवर अथवा मल-मूत्र की खाद डाल दें और फिर अच्छे हलों से खेत की तैयारी भली भांति कर लें.

पुरानी रीति के अनुसार जिस समय खेत तैयार हो जाता है तो कार्तिक के द्वितीय सप्ताह तक लगभग सवा मन प्रति एकड़ के हिसाव से गेहूं का वीज खेतों में वो दिया जाता है, वीज हमें उन्नति प्राप्त लेना चाहिये और उसी ढंग से उसकी वुवाई करनी चाहिए. यह ध्यान रखना चाहिए कि जो भूमि अधिक नम होती है वहां कम वीज डालना चाहिए और जहां की भूमि खुश्क रहती है वहां वीज की मात्रा अधिक डालनी चाहिए.

प्राचीन काल में बीज कूंढों में ले लेकर आदमियों के द्वारा बखेरा जाता था किन्तु आजकल बीज की अच्छी बुवाई के लिये बढ़िया उन्नतिशील हल तैयार हो गये हैं. इन बुवाई करने वाली मशीनों के द्वारा बड़े से बड़े खेतों में अच्छी से अच्छी और जल्दी से जल्दी बुवाई हो जाती है.

जिस समय गेहूं का बीज बो दिया जाता है उसके पश्चात् सिंचाई करना परम आवश्यक होता है. बीज बोने के पश्चात जब बीज जम जाये और पौधे उग आये तब लगभग बीस दिन बाद हल्की सी सिंचाई कर देनी चाहिए क्योंकि बुवाई के पश्चात यदि एक महीने तक खेत की सिंचाई नहीं हो पाती तो पौधे पनपने नहीं पाते. एक बात साथ ही साथ यह भी ध्यान में रखनी चाहिए कि जिन खेतों में बीज कम उगें वहां पर पहिली सिंचाई दूसरे सप्ताह में ही कर देनी चाहिए.

गेहूं के पौधों के साथ ही साथ प्राय ऐसा देखा गया है कि खेतों में गजरा, बथुआ और हारसिंगार उग आते हैं जो गेहूं की काश्त के लिये बहुत हानिकारक होते हैं. जब प्रथम सिंचाई का काम समाप्त कर लिया जाये तब इन बेकार के मेहमानों को उखाड़ कर फेंक देना चाहिए क्योंकि यदि यह अधिक मात्रा में बढ़ जाते हैं तो गेहूं की समूची फसल खराब हो जाती है. यह सारा कार्य ठीक प्रकार की निकाई, गुड़ाई करते समय करना चाहिए क्योंकि निकाई, गुड़ाई से खेत पर्याप्त मात्रा में ठीक हो जाता है.

गेहूं को समय पर पानी की आवश्यकता होती है. अतः यदि माघ के महीने में उचित वर्षा हो जाये तब तो गेहूं के खेतों में

सिंचाई की विशेष आवश्यकता नहीं होती किन्तु यदि वर्षा न हो तो माघ के माह में दूसरी वार सिंचाई कर देना अत्यन्त आवश्यक है और तीसरी बार खेत की सिंचाई फाल्गुन महीने के प्रथम सप्ताह में अवश्य ही कर देनी चाहिए.

कहीं कहीं पर जहां खाद का ठीक प्रवन्ध नहीं किया जाता वहां पर यदि पहली वार की गई सिंचाई के वाद गेहूं के पौधे पूरी तौर से नहीं उगते या निर्वल रह गये हों तो जिस समय दूसरी सिंचाई का काम समाप्त कर लिया जाय उस समय गेहूं के खेतों में रासायनिक खादों का प्रयोग करना चाहिए.

इस प्रकार हर एक वात को ध्यान रख कर यदि ठीक प्रकार से गेहूं की खेती की जाती है तो लगभग चैत्र मास के आरम्भ तक गेहूं की फसल पूर्ण रूपेण तैयार हो जाती है. वहुत से स्थानों पर गेहूं के साथ ही साथ सरसों की कूंड दी जाती है, ऐसे स्थानों पर सरसों को पहिले काट लेना चाहिए और गेहूं को वाद मे. जहां पर कुसुम की पंक्तियां लगाई गई हों वहा कुसुम को गेहूं के वाद भी काटा जाये तो कोई हर्ज नहीं.

गेहूं की कटाई के लिये अनेकानेक मशीनें तैयार की गई है जिनके द्वारा यदि अकेले गेहूँ की खेती की गई है तो वहुत बढ़िया कटाई की जा सकती है, लेकिन कटाई की मशीनों से काम लेना तभी लाभदायक रहता है, जव कि वहुत वड़े क्षेत्र मे खेती की गई हो.

जहां तक गेहूं की पैदावार का प्रश्न है वह खेती की रीति के अनुसार पच्चीस से तीस मन तक वैठती है. इस प्रकार हम देखते हैं कि किसानों को डेढ़ सौ रुपये प्रति एकड़ से तीन सौ

रुपये प्रति एकड़ तक की बचत हो जाती है. खेती करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जब गेहूं पक कर तैयार हो जाये तो दाने पर कोई बीमारी न लगे और किसी प्रकार की चिड़िया भी उसे न चुग जाए. ऐसा देखा गया है कि जिस समय अनाज का दाना पक जाता है उस समय छोटी छोटी चिड़ियां दानों को चुग जाती हैं. इनसे पूरा पूरा बचाव रखना चाहिए.

भारतवर्ष में गेहूं की खेती में गिरवी नाम का एक विशेष रोग लगता देखा गया है जिससे देश में कई करोड़ रुपए की फसल हर वर्ष नष्ट हो जाती है. यह रोग बीज के पुराने हो जाने के कारण लगता है. यदि उन्नति प्राप्त बीज बोए जाएं तो इस बीमारी से बहुत बचाव हो जाता है. यह रोग विशेषतः उस समय लगता है जब कि आकाश में बादल छाए होते हैं. जहां जहां यह रोग लग जाता है वहां गेहूं के दाने बहुत ही पतले और निर्बल हो जाते हैं.

गेहूं में शारीरिक उन्नति के लिए निम्नलिखित रासायनिक पदार्थ होते हैं.×

पानी	तैल	चीनी	रकन	राख	रेशा
१२'६	१'८	१३'७	८'४	१'७	१'५

× कृषि कर्म—भा० १, पृ० ६१— पं० शीतला प्रसाद तिवारी.

धान

यदि भारत धान की खेती मे अच्छा सफल रहा तो फिर संसार में ऐसी कोई जगह नहीं रहेगी जहां भारत अपना चावल न भेज सके. वह आत्म निर्भर तो हो ही जायगा साथ ही समूचे संसार का पेट भरने मे भी समर्थ होगा जिसके लिये एक व्यक्ति को ही नहीं वरन् सारे ही किसानों को काम करना चाहिये.

धान का पौधा लगभग उतना ऊंचा होता है, जितना कि गेहूँ का. चावल की कई जातियां होती हैं जिनकी गिनती नहीं की जा सकती. एक बहुत पुरानी किम्वदन्ती चली आयी है कि हर जाति का एक एक चावल घड़े में डालना प्रारम्भ किया जाय तो घड़ा भर जायेगा किन्तु चावल की जातियां समाप्त नहीं होंगी.

वैसे यदि देखा जाये तो मुख्यत: यह दो प्रकार का होता है, एक मोटा और दूसरा बारीक इन दोनों ही प्रकार के चावलों मे तो भेद होता ही है साथ ही साथ इनकी उपज के तरीकों में भी पर्याप्त भेद होता है. दोनों को भिन्न भिन्न प्रकार से उपजाया जाता है, इनके अतिरिक्त एक छोटे प्रकार का चावल और होता है जो बिना बोये ही वर्षा के दिनों में उग आता है, जिसे गरीब लोग एकत्रित कर लेते हैं और खाने के काम मे लाते हैं. इसे पसई कहते हैं. स्वाद मे यह मीठा और रंग मे लाल होता है. इसका दाना मोटा होता है. हल-पष्ठी नाम का एक त्यौहार होता है उस दिन इस पसई नाम के चावल का ही भात (खाना) बनाया जाता है.

जो चावल बारीक जाति का होता है उसे पहले छोटे खेतों में बोते हैं और तत्पश्चात बड़े खेतों में स्थानान्तरित कर देते हैं और जो मोटा चावल होता है उसे स्थानान्तरित नहीं करते वरन् बड़े खेतों में ही बोया जाता है. यदि इसकी फलियां देखी जायें तो उनकी दृष्टि से यह तीन प्रकार का होता है.

कुछ जातियां छोटी होती हैं जो सीधी रहती हैं और टेढ़ी होकर लटक नहीं पातीं, ये पत्तियों के बाहर निकल आती हैं. इसका चावल स्वाद में मीठा होता है, और आकार में कम पतला होता है. इस चावल को दूसरी श्रेणी में माना जाता है, प्रथम में नहीं. इसकी जातियों में समरा तथा रामजियावन प्रमुख हैं. ये बिलकुल सीधी होती हैं इसलिये इस जाति को सीधी जाति भी कहते हैं.

जिस धान की बाली लम्बी आती है वह नीचे की ओर लटक जाती है. इसकी बाली में चावल तो अधिक आते ही हैं, साथ २ बढ़िया भी होते हैं जिनमें हंसराज, बांसमती, बांसीफूल और राम भोग इत्यादि प्रसिद्ध हैं, वैसे अलग अलग स्थान पर इन्हें अलग-अलग नाम से पुकारा जाता है. इसमें से जो भूसा निकलता है उसका रंग पिलाई पर होता है, तथा उसका चावल पतला होता है. उत्तर प्रदेश की पीली भीत और देहरादून आदि स्थानों पर इसकी खेती बहुतायत से की जाती है. इस कारण से उत्तर प्रदेश में इस जाति का चावल बहुत प्रसिद्ध है. जिस समय यह चावल पकाया जाता है तो उसमे बहुत अच्छी भीनी भीनी सुगंध आती है, जिससे मन बड़ा प्रफुल्लित होता है और खाने की इच्छा भी होती है.

तीसरे प्रकार का चावल वह होता है जो मोटी बालों में लगता है. इसकी बाल मोटी तो अवश्य होती है किन्तु उसका

अधिकांश भाग पत्तियों मे ही छिपा रहता है. इस वाल में लगने वाला चावल आकार में मोटा होता है और सवसे सस्ते दामों पर वेचा जाता है. इस चावल की एक ऐसी जाति होती है जो दो माह अर्थात ६० दिन मे तैयार हो जाती है. इसी कारण उसे साठी भी कहा जाता है.

उपयुक्त भूमि —

कड़ी मटियार भूमि चावल की खेती के लिये सवसे उत्तम मानी गई है. इसकी खेती करने के लिये हमेशा ऐसे स्थान की खोज करनी चाहिये जो ऐसे ढालों के नीचे स्थित हो जहां पर सारा पानी वह कर आ जाये और उन खेतों मे ही एकत्रित हो जाये और वहां से वाहर न वह जाये. इसका सवसे वड़ा कारण यह है कि चावल की खेती के लिये इसके खेतो मे पानी का भरा रहना वरदान सिद्ध होता है. यदि किसी स्थान पर पानी न रुक पाये तो वह स्थान चावल के लिए पूर्ण रूपेण अभिशाप सिद्ध होता है.

वहुत से किसानों के पास ढालो की और उससे नीचे की भूमि होती है. वे लोग कभी-कभी उस सारी ही भूमि पर धान की खेती करते हैं, जिससे उन्हें हानि उठानी पड़ती है क्योकि ढाल के नीचे उपजाई हुई खेती तो अच्छी फसल दे देती है किन्तु ढालों पर की हुई खेती नष्ट हो जाती है. अतः ऐसे स्थानो का सर्वोत्तम उपयोग यह है कि ढालो के ऊपर यदि कपास के उपयुक्त मिट्टी हो तो वहां पर कपास की खेती करनी चाहिए और समूचे नीचे के खेतों में धान की खेती करनी चाहिये.

ऐसा करने से एक तो उस स्थान का पूरा पूरा लाभ उठाया जा सकेगा, दूसरे धान की खेती भी अच्छी होगी. वास्तव में कपास के खेतों में पानी की तो आवश्यकता होती है और पर्याप्त होती है किन्तु पानी का भरा रहना कपास के लिए मौत का पैगाम बन जाता है, इसी कारण से ऐसे ढालों पर कपास की खेती अच्छी होती है जहां से वहता हुआ पानी बाहर निकल जाय. इस प्रकार कपास के खेतों में होता हुआ पानी नीचे की ओर वह जाएगा. वह धान के खेतों में जाकर भर जायेगा और इस तरह से कपास को हानि नहीं होगी तथा धान को लाभ हो जाएगा.

इससे एक वहुत वड़ा लाभ यह भी होता है कि कपास के खेत में जो खाद प्रयोग में लाई जाती है उसका कुछ अंश उस समय पानी के साथ मिल जाता है जिस समय पानी कपास के खेतों में से वह कर धान के खेतों में आकर एकत्रित हो जाता है. इस प्रकार खाद मिला हुआ वह पानी धान की पदावार के लिये वरदान सिद्ध होता है.

खेत की तैयारी —

जहां पर इसकी खेती के लिये नई भूमि का चुनाव किया गया है वहां पर मिट्टी को गहरी जुताई करके उसे फैला देना चाहिये और कई वार उलट पलट कर उसे धूप देनी चाहिये. ऐसा करने से भूमि के भीतर जितने भी छोटे-मोटे कीड़े लग जाते हैं वे धूप की तीव्रता से नष्ट हो जाते हैं और चावल की खेती को कोई हानि नहीं पहुँचा पाते. साथ ही साथ भूमि की जो सख्ती होती है वह जाती रहती है और पौधों की जड़ें फैलने में आसानी का अनुभव करती हैं.

यदि उस भूमि पर पहले कोई फसल ली गई है तो उस की गहरी जुताई करके उस में से पुरानी फसल की जड़ें आदि निकाल फेंकनी चाहियें जिससे कि मिट्टी भीतर से बिल्कुल साफ हो जाये. इसके पश्चात उस मिट्टी को भी धूप देने के लिये कई वार उलट पलट कर इस प्रकार से फैला देना चाहिये कि उसे अच्छी धूप लग जाये और मिट्टी धान की खेती के लिये शुद्ध रूप मे ठीक प्रकार तैयार हो जाये. ऐसा करने से धान मे कोई व्याधि नहीं लग पाती और अच्छी पैदावार होती है.

इसकी फसल क्वार, कार्त्तिक और अगहन मास मे तैयार हो कर गोदाम मे आ जाती है. उसके पश्चात वहुत से किसान अपने खेतो को खाली छोड़ देते है और वहुत से उन खेतों के अन्दर मटर और चने आदि की खेती करते है. जो लोग उन खेतों को खाली छोड़ देते हैं उन्हें पहिली फसल काट लेने के पश्चात उस खेत की मिट्टी को भली प्रकार से जोत कर कई वार उलट पलट देना चाहिये. ऐसा करने से दूसरी फसल वहुत ही वढ़िया और अच्छी उतरती है. क्योंकि जुताई के वाद जिस समय मिट्टी को धूप लगती है उस समय उसके अन्दर जो कमजोरियां हो जाती है वे पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं. कीड़े-मकोड़े मर जाते है और भूमि वलवान वन जाती है.

वैसे तो खेतों को इस प्रकार जोत कर अगली फसल के लिये खाली छोड़ना अच्छा ही होता है. किन्तु यदि उस खेत में धान की पहली फसल के वाद कोई ऐसी फसल ले ली

जाये जिसके द्वारा उस खेत की मिट्टी चावल के लिये और भी उपयोगी बन जाये तो बहुत उत्तम रहता है.

जिस समय चावल की खेती काट ली जाये तो खेतों के अन्दर मटर, चना, दाल वाली किसी अच्छी फसल को बोया जा सकता है, दाल वाली ऐसी फसलों को बोने से मिट्टी के अन्दर नत्रेत नाम का एक ऐसा पदार्थ संचित हो जाता है जो धान के लिये बहुत ही उत्तम माना गया है. अर्थात इसके संचित होने से जो उर्वरा शक्ति कम हो जाती है, वह पुनः बढ़ कर अपने स्थान पर आ जाती है.

यह नत्रेत नामक पदार्थ जिस भूमि में संचित रहता है, वह भूमि धान को अच्छा पोषण देती है और धान की पैदावार को बढ़ाने में इसका एक बहुत बड़ा हाथ भी रहता है क्योंकि इस पदार्थ में यह शक्ति अधिक होती है कि धान जो खाद्य मांगता है वह इस नत्रेत के द्वारा शीघ्र ही इस योग्य हो जाता है कि धान के पौधे उसे ग्रहण कर लें और इस प्रकार से वे जल्दी लाभान्वित होते हैं.

इन दाल वाली फसलों को लेने से सबसे बड़ा लाभ तो यह हो ही जाता है कि मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है, साथ ही साथ उस फसल से किसान को अर्थ लाभ भी होता है तथा समय नष्ट नहीं होता. अतः धान की खेती करने वाले हर किसान को धान की पैदावार काट लेने के बाद तुरन्त ही मटर और चने आदि की दाल को बो देना चाहिए, जिससे कि खेत की मिट्टी खाली भी न रहे और धान की अगली फसल के लिये मिट्टी भी बढ़िया बन जाये.

वास्तव में जुताइयां धान की खेती करने वालों के लिये वहुत महत्वपूर्ण रहती हैं और धान की अच्छी और अधिक पैदावार इस तैयारी पर ही आधारित रहती है.

जिस समय ये जुताइयां की जायें तव लगभग आधे ज्येष्ठ के पश्चात खेत में खाद डालनी चाहिये. यह खाद लगभग १५ गाड़ी वहुत ही अच्छे सड़े गले गोवर की प्रति एकड़ के हिसाव से डालनी चाहिए. यह देख लेना चाहिए कि खाद वहुत ही सड़ी गली हो. यदि उसमे कच्चाई होगी तो पौधों को कीटादि लगने का भय रहेगा. जिस समय यह खाद खेतों मे डाल दी जाये तो तुरन्त ही एक वार पुनः जुताई करके खाद को मिट्टी के साथ पूर्णतः मिला देना चाहिए.

इसी समय से खेत को ठीक प्रकार से तैयार करते रहना चाहिए अर्थात जिधर से पानी आता हो उधर के स्थान को पूरी तोर से खोल देना चाहिए तथा खेत को इस ढंग का वना देना चाहिए, जो भी पानी वह कर आये वह केवल एक स्थान पर न भर जाए वरन समूचे खेत मे वरावर रहे. जिस समय खेत की जुताई की जाए उस समय खेत में समान पानी भरा रहे. कहीं अधिक और कहीं कम न रहे. जिस ओर कम पानी जाने की सम्भावना हो उस ओर नाली वना देनी चाहिए, या उस भाग को थोड़ा सा नीचा कर देना चाहिए.

ज्येष्ठ के महीने में यह सारा काम समाप्त हो जाये तो आषाढ़ के महीने मे वेहन लगाना आरम्भ कर देना चाहिए क्योंकि वेहन लगाने का यह सवसे अच्छा समय होता है.

जिन खेतों में छिटकवां रीति से चावल का बीज बोना हो उनमें साधारण रीति से ही चार पांच जुताइयां करके ज्वार और बाजरे की भांति बीज छिटका जा सकता है. चार पांच जुताइयों के पश्चात साधारणतः खेत की मिट्टी इस योग्य हो जाती है कि वह चावल के पौधों को पूर्ण पोषण दे सके और चावल की ठीक उपज हो जाये.

अच्छी खाद —

खेत की तैयारी के समय खेत में गोबर की खाद डाल कर उसे अच्छी तरह से मिट्टी के साथ मिला देना चाहिए. इसी के साथ साथ कुछ और भी विशेष खाद होती हैं जो चावल के खेतों में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं. इस नये युग में दिन प्रति दिन ऐसे नये नये अनुसन्धान हुए हैं जिनके कारण नई नई वैज्ञानिक खादें तो प्राप्त हुई हैं ही, साथ ही साथ कुछ ऐसे परीक्षण भी किए गए हैं, जिनके द्वारा खाद देने की नई नई विधियां भी निकाली गई हैं, जिनके बारे में हम संक्षिप्त विवरण देंगे.

वैसे तो गोबर की सड़ी हुई खाद भी चावल की खेती के लिए पर्याप्त उपयोगी मानी गई है. किन्तु इसके अलावा चावल के जिन खेतों में पानी की पूर्ण सुविधा हो, वहां पर सनई की हरी खाद अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है. इसकी खाद देने से पैदावार कई गुना अधिक बढ़ती हुई देखी गई है.

जहां जिन खेतों में सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध नहीं है, वहां पर सनई की हरी खाद सफल नहीं हो पाती. अतः इसका प्रयोग ऐसे स्थानों पर ही करना चाहिए जहां पर पानी की अच्छी व्यवस्था हो और समय पर पानी दिया जा सके. जहां ऐसी

जिस समय उन्नत धान की खोज की गई उस समय लगभग तेरह सौ नमूने आये और जब इन्हें अलग अलग किया गया तो पता लगा कि धानों में नौ शतांश लाल धान और २२ शतांश अन्य जाति के चावल की मिलावट रहती है. जिस समय इनको ठीक प्रकार से वोया गया और परीक्षण किया गया तो इस बात का पता लगा कि लगभग सात सौ जातियाँ धान की ऐसी हैं जो मध्य प्रदेश की भूमि पर वोई जाती हैं.

उस समय कृषि विशेषज्ञों ने यह सोचा कि वास्तव में इतनी अधिक धान की जातियों को नहीं सुधारा जा सकता. लगभग पांच वर्ष तक निरन्तर परीक्षण करते रहने के पश्चात इनमें से चौदह ऐसी जातियाँ निकाली गईं जो अधिक उपज दे सकती थीं. फिर इनमें से भी नया चुनाव किया गया और लगभग नौ वर्ष के अनुसन्धान से यह पता लगा कि संकरण के द्वारा भी कुछ अच्छी जातियां प्राप्त हो सकती हैं और वे की गईं.

जल्दी पकने वाली जातियों में पहले सत्रह नम्बर की धान चुनगी प्रयोग में लाई जाती थी किन्तु इसके स्थान पर रा. ३ सुल्टू गुरमुटिया की उपज इससे सवाई वैठीं और नं० ११६ भौंदू परेवा की जो संकरण जाति निकाली गई उसकी मंझली जातियों में सवसे अच्छी पाई गईं. रा ७ आजन जाति के धान की पैदावार देर में पकने वाली जातियों से लगभग ३७ फी सदी अधिक वैठी, इस प्रकार से इन जातियों का चलन दिन पर दिन वढ़ने लगा और आज भी कृषि विशेषज्ञों का यही मत है कि इन जातियों के द्वारा अच्छी से अच्छी और अधिक से अधिक पैदावार लेने की कोशिश हर किसान को करनी चाहिए.

धान

किसानों को यह ध्यान रखना चाहिए कि
करगा (जंगली धान) तो नहीं मिला हुआ है क
समूची जाति को खराव कर देता है. यह धान
होता है. धान की जिस जाति मे इस धान की मि
वह धान अच्छी कीमत मे नहीं वेचा जा सकता
का चुनाव करते समय देख लेना चाहिए कि उसमे
तो नहीं रह गया है.

वैसे यह करगा, धान के साथ ही साथ अपने
आते देखा गया है. इसे उग आने के पश्चात खेत
देना विल्कुल ही असम्भव हो जाता है, क्योंकि
विल्कुल अन्य धानों की भांति ही होते हैं, जिन्हें प
जा सकता. यह पहचान में केवल तभी आता है उ
पौधों मे चावल आ जाये. इसमे लम्वे कसूल होते
ऊपर से काले रंग का होता है. लेकिन जव इसमे
जाता है तो पकने से पूर्व ही खेत मे झड़ जाता है,
आता है. इसे वीन लेना वड़ा कठिन हो जाता है.
करगा धान को हर प्रकार से खराव कर देता है. अ
किसी प्रकार भी धान मे मिश्रित न होने देना चाहिये

जंगली धान से वचाव तो उसी समय सम्भव
पौधे उगते ही उखाड़ कर फैंक दिये जावे और उनमे

आसानी से पहचाना जा सकता है, और धान आने से पूर्व ही नष्ट किया जा सकता है.

लगभग सात वर्ष के अथक परिश्रम के बाद मध्य प्रदेशीय कृषि विभाग के अनुसंधानवेत्ताओं ने आर. २ नुनगी, आर. ३ सुल्टू, आर. ४ गुरमुटिया, आर. ५ लुडको, आर. ६ बुढ़िवायाको, आर. ७ आजन, आर. ८ बेनीसार, आर. ८ लुचई, क्रास १६ और क्रास ११६ धान की ऐसी उन्नत जातियां निकाली हैं जो मंझली या देर में पकने वाली तो हैं ही साथ ही इनके पौधे छोटे होते हैं तथा पत्तियों का रंग बैंगनी होता है जबकि करगा की पत्तियों का रंग हरा होता है. इस प्रकार इस जंगली धान को तुरन्त ही पहिचान कर नष्ट कर दिया जाता है. ये धान संकरण जाति के होते हैं.

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी उन्नति प्राप्त जातियां निकाली गई हैं, जिनके धान सुगंधित होते हैं. उनमें बादशाह भोग, आर. १० छत्री, आर. ११ दूबराज, आर. १५ चिन्नौर अधिक प्रसिद्ध हो पाई हैं. खेतिहरों की सुविधा के लिये हम उन उन्नत संकरण जातियों का थोड़ा सा हाल नीचे देते हैं जिनकी पत्तियां बैंगनी रंग की होती हैं और जिनमें से करगा छाँट कर निकाला जा सकता है.

धान की जाति	पकने का समय	बिना खाद औसत उपज (मन)
शीघ्र पकने वाली	अक्टूबर	
नं. १ की संकरण	१४	११
मझौल पकने वाली	नवम्बर	

नं. १ की संकरण × सुल्टू	६	१७
गुरमुटिया (नं. ५१)		
नं. ४ की संकरण × आजन्न		
(नं. ३४)	१५	१६॥
विलम्ब से पकने वाली	नवम्बर	
नं. ५ की संकरण × लुचई	२६	१६
(नं. १८)		

इसी प्रकार कुछ और भी ऐसी उन्नत जातियां हम नीचे देते हैं, जिनके दाने मोटे या मझले प्रकार के होते हैं. इनका पकने का समय और इनकी पैदावार इस प्रकार है :—

धान की जाति	पकने का समय	बिना खाद औसत उपज (मन)
शीघ्र पकने वाली	अक्टूबर	
आर. २ नुनगी (नं. १७)	१६	१३
आर. ३ सुल्टू गुरमुटिया	२४	१६॥
मझौल पकने वाली	नवम्बर	
आर. ४ गुरमुटिया	६	१५
नं. ११६ या नं. २२ संकरण	१०	२०
विलम्ब से पकने वाली	नवम्बर	
बुढ़ियावाको × लुचई (नं. ४)	१७	१८॥
आर. ८ लुचई	२५	१७
आर. ८ बेनीसार	२८	१८॥
लुचई × गुरमुटिया (नं. १८)	२६	२१॥
लुचई × गुरमुटिया×ब्रह्मा (नं. २)	२६	२५

मध्य प्रदेश में ही धान की कुछ ऐसी भी सुधारी हुई जातियां पैदा की गई हैं जो वारीक और सुगन्धित होती हैं. इनकी उपज और पकने का समय हम नीचे देते हैं.

धान की जात	पकने का समय	विना खाद औस उपज (मन)
मझौल पकने वाली	नवम्वर	
आर० १० छत्री	७	१३
आर० ११ दूवराज	६	१४
विलम्व से पकने वाली		
आर० १४ वादशाह भोग	२४	१४
आर० १५ चिन्नौर	३०	१६

धान की उपर्युक्त जातियों का जो पकने का समय और औसत पैदावार दी है वह लगभग है. इसमें कमी और वढ़ोत्तरी मौसम पर निर्भर रहती है. उसी के अनुसार इनका ध्यान रखना चाहिये.

इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश की भूमि के लिये भी वहुत सी उपयोगी जातियां हैं. उनका विवरण हम नीचे देते हैं. ये पुरानी जातियां हैं किन्तु उपज वहुत अच्छी देती हैं. इनको पहले छिटकवां रीति से वो कर वेहन लगाया जाता है फिर खेत में पौधों को लगाया जाता है.

इन जातियों में साठी और देहुला तो ऐसी हैं जिन्हें समस्त प्रांत भर में लगाया जा सकता है. शेप में देहरादून तथा सहारनपुर के लिये वांसमती, तथा रामजियावन, पीलीभीत के लिये देसराज, वरेली के लिये अंजना तथा गोरिया, रामपुर के लिये

चौल, लखनऊ तथा मध्यवर्ती जिलों के लिये पाराजाती, कानपुर तथा पश्चिमी जिलों के लिये सम्हालू, पूर्वी जिलों के लिये लतरा, मोतीचूर और अंजनी, बांदा के लिये काला सुखदास तथा प्रयाग (इलाहाबाद) के लिये रामधनैया जाति के धान वहुत उपयोगी रहे हैं. इस कारण अभी वहां पर इनका पर्याप्त प्रचलन भी है. आरम्भ में उत्तर प्रदेश मे इन जातियों के धान का पार्याप्त प्रचार रहा और इसके बाद कुछ वढिया उन्नति प्राप्त जातियां भी तैयार की गईं जो हर दृष्टि से अच्छी सिद्ध हुईं. इन का परीक्षण कानपुर की भूमि पर किया गया. इनमें विशेषत: तीन प्रकार की जातियां हैं. शीघ्र वेहन लगाने वाली, मझोल वेहन वाली और विलम्ब से वेहन लगाने वाली. इनकी सारिणी नीचे दी जाती है जिस में इनकी पैदावार की औसत भी दी गई है.

धान की जातियां	पैदावार प्रति एकड़ (मन)
शीघ्र वेहन लगाने वाली	
ए — १	२५
ए — २	३०
ए — ७	२५
ए — २६	३०
ए — ६४	२५
ए — ८६	२५
ए — ४६	३५
ए — ५३	३५
ए — ७४ (अ.)	३५

ए — ७४ (व.)	३५
ए — ८०	३५
एफ. जी. — ७३	३०
मझौल बेहन लगाने वाली	
ए — ३२	३५
विलम्ब से बेहन लगाने वाली	
ए — २१	३५

यह जो उन्नति प्राप्त बीज कानपुर की भूमि पर तैयार किये गये, इनकी उपज की सारिणी से तुरन्त पता लग जाता है कि पुरानी बोई जाने वाली जातियों में से ये उन्नति प्राप्त जातियां कहीं अच्छी और अधिक फसल देने वाली सिद्ध हुई हैं. अतः जहां तक संभव हो उन्हें अधिक से अधिक प्रयोग में लाना चाहिये. इस प्रकार के बीज प्रति एकड़ लगभग १०-१५ सेर पर्याप्त रहते हैं.

जहां जहां सरकार ने ये उन्नति प्राप्त बीज बोकर धान की खेती का परीक्षण किया वहां वहां ही इसकी पैदावार आसानी से आठ गुना अधिक प्राप्त हुई. बीजों को बोने से पहले भली प्रकार से देख लेना आवश्यक है, क्यों कि धान के बीजों में एक प्रकार की सफेद या पीली कीड़ी सी लग जाती है जो इसको खराब कर डालती है. यदि धान के बीजों में कीड़ी लगी हुई हो तो कीड़ी द्वारा खाये गये धान को बिल्कुल अलग कर देना चाहिए और बोने के काम में नहीं लेना चाहिये.

धान के उन्नति प्राप्त बीज बढ़िया और अधिक पैदावार देते हैं, इस कारण से इन बीजों का बोया जाना अत्यन्त आवश्यक

है. जहां जहां किसान इन बीजों की उपेक्षा करते हैं, वहां वहां खेती अच्छी नहीं हो पाती और खराब हो जाती है क्यों कि उन्नति प्राप्त बीज भारत की प्रादेशिक सरकारों की ओर से समय समय पर पार्याप्त धन व्यय करके बड़े परिश्रम के पश्चात तैयार किये जाते हैं.

धान के बीज जो बोये जाते हैं उनके ऊपर से कभी वह छिलका नहीं हटाना चाहिये जो भूरे रंग का उनके ऊपर लगा रहता है. यदि नंगा चावल बोया जाता है तो उसके कुरे नहीं फूटेंगे, अतः ऐसे चावल को बोना मूर्खता है. चावल का बीज वही कहलाता है जिस पर से वह छिलका उतरा न हो. चावल के बीज को ही धान भी कहते हैं अर्थात धान में से ही छिलका उतारने पर चावल प्राप्त होता है.

बीज की बुवाई —

धान के बीज को सीधे खेतों में बोना गलत है. इससे अच्छी पैदावार नहीं होती दूसरे धान की जाति दिन पर दिन घटिया होती जाती है और जिस समय धान का पौधा खेत में खड़ा रहता है ठीक प्रकार से उसकी सिंचाई नहीं हो पाती है. यही कारण है कि अनुसन्धानवेत्ताओं ने बड़ी बड़ी खोज करके इस बात का पता लगाया है कि यदि धान के बीजों को सीधा खेत में बो दिया जायेगा तो निश्चित ही वह धान एक तिहाई पैदावार दे पायेगा. अतः पहले बेहन तैयार करनी चाहिये और उसके बाद पौधों को उखाड़ कर खेतों में स्थानान्तरित कर देना चाहिये.

एक एकड़ की बेहन तैयार करने के लिये प्राय: १०-१५ सेर धान पर्याप्त होता है किन्तु यदि बहुत ही बढ़िया खेती करनी हो

ो लगभग ३० सेर प्रति एकड़ धान का बीज बोना चाहिये. ऐसा करने से पौधों की बाढ़ बहुत ही घनी आयेगी. किन्तु वह सारी की सारी बाढ़ खेतिहर के काम की नहीं होगी. उसे चाहिये कि ौधे जिस समय थोड़े बड़े हो जायें तो उनमें से लगभग आधे अथवा कुछ अधिक स्वस्थ पौधों को छोड़ कर समूचे निर्बल पौधों को उखाड़ दें.

ऐसा करने से बीज तो निश्चित दुगना लगता है और परिश्रम भी कुछ अधिक करना होता है, किन्तु फायदे में ही रहता है क्योंकि कई बार बीज बो दिया जाता है और उसमें से सारा बीज कुरे नहीं फेंक पाता तथा पौधे कम रह जाते हैं. उसी अनुपात से पैदावार भी कम हो जाती है. इस भय से बचने के लिये अच्छा यही है कि ऊपर बताया गया तरीका काम में लाया जाय.

बीज क्यारियों के अन्दर छिटक कर बोया जाता है. बीज सारी क्यारी के अन्दर एकसार ही गिरे वरना जहां अधिक गिरेगा वहां पौधे अधिक पैदा हो जायेंगे तथा जहां कम गिरेगा वहां पौधे कम हो जायेंगे, जिससे पैदावार खराब होगी.

बेहन के लिए मिट्टी ऐसी होनी चाहिए जिसमें पानी सदा भरा रहे. जिस भूमि में पानी रिस रिस कर शीघ्र ही नीचे चला जाता है उस भूमि पर अच्छी बेहन नहीं लग पाती. अतः इसके लिए मटियार भूमि उपयुक्त होती है, क्योंकि मटियार भूमि की क्यारियों में पानी हमेशा भरा रहता है.

कहीं कहीं पर नहरों के द्वारा सिंचाई करने की अच्छी सुविधा है. ऐसे स्थान पर दोमट भूमि भी अच्छी रहती है क्योंकि जिस

समय पानी की आवश्यकता होती है, नहरों द्वारा सिंचाई कर दी जाती है. इस कारण से पानी का रिस कर भीतर पहुंच जाना धान की खेती के लिए हानिकारक सिद्ध नहीं हो पाता.

धान की खेती हरेक मिट्टी में की जा सकती है, बशर्ते कि साधन-प्रसाधनों की कमी न हो और विशेषत: सिंचाई का तो पूरा पूरा प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक है ही किन्तु इसकी खेती बलुआ (रेतीली) भूमि में नहीं की जा सकती. जितने छिटकवां जाति के धान होते हैं उन्हें भी किसी भी भूमि में बोया जा सकता है किन्तु बलुआ भूमि मे वह भी नहीं किया जा सकता. कोई धान जो मोटी जाति का होता है उसे जमना या गंगा के किनारे गर्मी के दिनों में बलुआ भूमि में भी उत्पन्न किया जा सकता है, किन्तु पैदावार अच्छी नहीं मिलती.

अच्छी बेहन लगाने के लिए बुवाई से पूर्व ही उसके लिए क्यारियों का बना लेना अत्यन्त आवश्यक है. इनकी तैयारी भी अच्छी कर लेनी चाहिये. क्यारियों की चौड़ाई इतनी रखनी चाहिये जिसमें से घूम घूम कर किसान हर पौधे की देखभाल आसानी से कर सके, क्योंकि यदि कोई पौधा बेहन मे ही खराब हो गया तो आगे खेत मे फसल को भी खराब कर सकता है.

बेहन मे तैयार किये गए पोधे जैसे तैयार होते हैं उसी प्रकार से फिर वे खेतों के अन्दर भी बढ़ते हैं, और उसी का सारा प्रभाव धान पर पड़ता है. यदि बेहन में पौधों की ठीक देख रेख न की गई और पौधे किसी भी हानि से कमजोर रह गये हों तो खेत में उनका लगाना कठिन हो जाता है. साथ ही साथ उन पर कीड़ों का आक्रमण जल्दी ही हो जाता है.

जो पौधे वेहन में स्वस्थ तैयार होते हैं उन पर जल्दी से किसी भी व्याधि का आक्रमण नहीं हो पाता और इस प्रकार वे बचे रहते हैं.

अच्छी खाद —

जिस समय धान की वुवाई के लिये तैयारी की जाये उस समय लगभग अच्छे सड़े गले गोवर की १० या १५ गाड़ी खाद की प्रति एकड़ डाल देनी चाहियें. उसके वाद तुरन्त ही खेत की अच्छी जुताई करके खाद को खेत की मिट्टी में इस प्रकार से अच्छी तरह मिला देना चाहिए कि खाद और मिट्टी दोनों एक रस हो जावे.

खाद डालने का यह कार्य लगभग आधे ज्येष्ठ तक होना चाहिए, और हलकी सिंचाई करके खेत को ठीक ढंग से तैयार करते रहना चाहिए जिससे कि जिस समय खेत में धान की वुवाई की जाय तो पौधे भी शीघ्र उग आएं. एक वात ध्यान में रखनी चाहिये कि जहां सिंचाई की सुविधा न हों वहां पर खेतों में खाद का डालना अच्छा सिद्ध नहीं हो पाता क्योंकि खाद डाल देने के पश्चात सिंचाई का प्रवन्ध न हो सका तो निश्चित ही खेती वर्वाद हो जाएगी.

वैसे तो धान की खेती के लिये पृथक पृथक तरीके अपनाए जा रहे हैं जिनमें उसी प्रकार की खाद डाली जाती है. इन तरीकों में भारत के लिए जो अधिक उपयोगी सिद्ध हो पाया है वह जापानी तरीका है. जापानी तरीके से भारत में धान की जो भी खेती की गई है उसने वहुत ही सफल फल दर्शाये हैं. जहां जहां

जापानी तरीकों को अपनाया गया है वहां वहां पृथक परीक्षण किए गये हैं. उनके बारे में हम पृथक रूप से लिखेंगे.

देशी तरीके से खेती करने के लिये ज्येष्ठ के आरम्भ में ही धान की बेहन लगाने का प्रबन्ध करना चाहिये जिससे कि समय पर ही धान के कुरे फूट आवे और खेती भी ठीक हो सके क्योंकि आषाढ़ के महीने में बेहन लगाना भी आरम्भ कर देना चाहिए. इसकी बुवाई के लिए खेत को चार पांच बार भली प्रकार से जोत कर बुवाई कर देनी चाहिए.

धान की खेती में भारतीय किसान गोबर की खाद का ही प्रयोग करते हैं, क्योंकि भारत में यह खाद सबसे अधिक सुविधा से प्राप्त हो जाती है. कहीं कहीं पर सनई की हरी खाद भी प्रयोग में लाई जाती है. जहां जहां भी इस खाद का परीक्षण किया गया है वहां वहां धान की खेती आशा से अधिक बढ़ी है. लेकिन सनई की हरी खाद का प्रयोग भी केवल उन्हीं स्थानों पर करना चाहिये जहां सिंचाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध हो.

जिस समय धान के खेतों में फसल खड़ी हो उस समय नीम और अरंडी की खली पीस कर खेतों में डाली जाती है. यह खली ३ मन प्रति एकड़ तक डाली जा सकती है. इसमें रासायनिक खादों का भी प्रयोग किया जा सकता है. रासायनिक खादें धान की खेती के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं.

इन रासायनिक खादों के अन्दर अमोनियम सल्फेट और सोडियम नाईट्रेट उत्तम सिद्ध हो चुके हैं. रासायनिक खादों के उचित प्रयोग से धान की खेती में पैदावार अप्रत्याशित रूप से बढ़ती देखी गई है. किन्तु ज्यादा अच्छा यह होता है कि इन खादों का

प्रयोग करने से पूर्व अपने क्षेत्र के किसी कृषि विशेषज्ञ की सलाह ले ली जाय जिससे कि हानि होने की कोई संभावना न रहे.

धान की खेती के लिये अमोनियम सल्फेट वरदान के रूप में सिद्ध हुआ है. जहां यह बढ़िया और अधिक चावल उपजाता है वहां इससे धान की पैदावार बहुत ही आसानी से २५ से ३० प्रतिशत तक बढ़ी है.

जापानी तरीका —

धान की खेती के लिए जापानी तरीका सर्वोपरि है. अनेकानेक वृद्ध किसानों का ऐसा मत है कि पिछले युग में भारत भर में यही तरीका प्रचलित था जिसे आज जापानी तरीका कहा जाता है.

यदि देशी तरीके से धान की खेती की औसत पैदावार देखी जाए तो प्रति एकड़ २० मन के लगभग बैठती है, और जापानी तरीके से जहां जहां कुछ परीक्षण किये गये हैं, वहां चावल की पैदावार आसानी से ५८ और ६० मन प्रति एकड़ तक प्राप्त हुई है. इस प्रकार हम देखते हैं कि जापानी तरीके से जो फसल प्राप्त की जाती है वह आसानी से तिगुनी तक होती है. जापानी तरीके से भी धान की खेती करने के लिये पानी की अति आवश्यकता होती है. जिन किसानों के पास सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध हो और जो रोपा पद्धति से खेती करते हों, उन्हें अविलम्ब जापानी तरीके को अपना लेना चाहिये. इस खेती को अपनाने के लिये पांच मुख्य बातें होती हैं, जिन्हें ध्यान में रख कर अच्छी खेती की जा सकती है.

पहला — रोपा तैयार करने के लिए ऊंची उठी क्यारियों में रोपनी लगाना.

दूसरा — उन्नति प्राप्त बीजों की बुवाई.

तीसरा — पौधों का पक्तियों में लगाना.

चौथा — पौधों के बीच की निराई– गुड़ाई करना.

पांचवा — पानी का भरपूर प्रवन्ध करना.

रोपे की तैयारी — अच्छी पैदावार अच्छे रोपे पर आधारित रहती है. अतः रोपा अच्छे ढंग से लगाना चाहिये. यदि रोपा अच्छा न होगा तो निश्चित ही खेत में उसकी वाढ़ अच्छी न होगी. यही कारण है कि रोपे के ऊपर विशेष ध्यान दिया जाता है. जापानी तरीके से खेती करने के लिये खेत को दो तीन वार गहरा जोत कर पोला कर लेना चाहिये. साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उसके समूचे ढेले भली भांति फूट जायें.

जव खेत तय्यार हो जाये तो २५ फुट लम्बी और चार फुट चौड़ी तथा लगभग चार इन्च ऊंची क्यारियां वना लेनी चाहियें. क्यारियां इस ढंग से वनाई जायें कि दो-दो क्यारियो के मध्य मे एक एक फुट का स्थान छोड़ा हुआ हो. तत्पश्चात प्रत्येक क्यारी को वरावर कर लेना चाहिये और उसके वाद लगभग १ मन कम्पोस्ट या गोवर की खाद डालनी चाहिये, तथा उसे भली भांति फैलाकर मिट्टी में मिला देना चाहिये, जिससे मिट्टी और खाद पूर्ण रूप से एक रस हो जायें. इनके अलावा इसके खेत मे लगभग आधा उर्वरक मिश्रण भी उपयोगी रहता है. जव रोपे भी तैयार हो जायें तो उनमे वीज छिटक देना चाहिये.

ये ऊंची उठी हुई क्यारियां २५ फुट लम्बी और चार फुट चौड़ी और लगभग ३-४ इन्च ऊंची होनी चाहियें तथा इनमे चुने हुए बीज ही वोने चाहियें.

अच्छे बीजों का चुनाव —

धान की खेती करने वालों को बढ़िया से बढ़िया बीज चुन कर बोने से पहले नमक के पानी में भिगो लेना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से जिस समय धान की फसल तैयार हो जाती है, उस समय उसमें कीट आदि के आक्रमण का भय नहीं रहता. नमक के पानी में डुबोने का जो तरीका है उसमें अच्छे और बुरे बीज की पहचान हो जाती है क्योंकि अच्छा बीज हमेशा नीचे बैठ जाता है और खराब बीज ऊपर तैरने लगता है.

नमक का लगभग १० प्रतिशत का घोल तैयार करना चाहिये. घोल बनाने के लिये साढ़े तीन सेर नमक प्रति पीपा (कनस्तर) पार्याप्त रहता है. जिस समय घोल तय्यार हो जाये तो एक बार में लगभग चार सेर बीज पानी में डाल देना चाहिये. जो बीज पानी के ऊपर तैरते रहें उन्हें किसी चलनी के सहारे से निकाल कर पृथक कर देना चाहिये और जो बीज पानी में डूब जायें उन्हें लगभग १५-२० मिनट तक पाइरोनेक्स दवा में भी डुबो लेना चाहिये. इनका घोल बनाने के लिये एक पीपे पानी में लगभग १ छटांक पाइरोनेक्स दवा भली प्रकार से घोल लेनी चाहिये.

नमक के घोल में और पाइरोनेक्स के घोल में डुबो लेने के पश्चात बीजों को किसी छायादार स्थान पर सुखा लेना चाहिये. प्रत्येक क्यारी में लगभग एक सेर बीज पर्याप्त रहता है. ऐसी ऐसी १५ क्यारियों में यदि बीज बोया जावे तो वह बीज एक एकड़ खेत के लिये रोपे तय्यार कर देता है.

देशी तरीके में प्रति एकड़ ४०-५० सेर बीज की आवश्यकता होती है और जापानी तरीके से लगभग १५ सेर बीज पार्याप्त

रहता है. क्यारियों में जिस समय बीज बो दिये जायें तो बीजों को मिट्टी से भली भांति ढांक देना चाहिये और यदि सम्भव हो तो राख की एक बारीक थर भी उसके ऊपर बुरक देनी चाहिये. क्यारी में पानी सदा हजारे से ही डालना चाहिये. यदि उस समय उस स्थान पर वर्षा का अभाव रहे तो एक अच्छा हजारा लेकर उसके द्वारा क्यारियों में भली भांति पानी देते रहना चाहिये.

जापानी तरीके में वे ही बीज प्रयोग में लायें जो उन्नति प्राप्त हों और कृषि विशेषज्ञों द्वारा जिन की सिफारिश की गई है. ऐसे बीजों की सूची और उनके तैयार होने के समय की सारिणी हम नीचे देते हैं.

महीन और सुगन्धित जातिया

ये जातियां बहुत अच्छी और सुगन्धि देने वाली होती हैं, जिन्हें जन साधारण ने बहुत पसन्द किया है. ये दो प्रकार की होती है. एक मध्यम आने वाली और दूसरी विलम्ब से आने वाली.

मध्यम आने वाली

आर. १० छतरी	७ नवम्बर
आर. ११ दूबराज	६ नवम्बर
आर. १२ बांसमती	१२ नवम्बर

विलम्ब से आने वाली

आर. १४ बादशाह भोग	२४ नवम्बर
आर. १५ चिन्नौर	१ दिसम्बर

मध्यम और भारी जातियां

ये जातियां तीन प्रकार की होती हैं. शीघ्र पकने वाली, मध्यम पकने वाली और विलम्ब से पकने वाली.

शीघ्र पकने वाली

आर. २ नुनगी (नं. १७)	१६ अक्टूबर
आर. ३ सुल्टू गुरमुटिया	२४ अक्टूबर

मध्यम पकने वाली

आर. ४ गुरमुटिया	६ नवम्बर
११६ या २२	१० नवम्बर

विलम्ब से पकने वाली

बुढ़ियावाको × लुचई (नं. १४)	१७ नवम्बर
आजन लुचई (नं. ४)	२२ नवम्बर
आर. ८ लुचई (पिरली)	२५ नवम्बर
आर. ८ वेनीसार	२८ नवम्बर
लुचई × गुरमुटिया (नं. १८)	२६ नवम्बर
लुचई × गुरमुटिया × बर्मा (नं. २)	२६ नवम्बर

रंगीन पत्ते वाली संकर जातियां

ये जातियां रंगीन पत्ते वाली होती हैं, जिसके कारण इनमें उग आने वाला जंगली धान अर्थात् करगा उगते ही पहचान लिया जाता है और इस जंगली धान अर्थात करगे के पौधों को तुरन्त नष्ट कर दिया जा सकता है. इस धान के पौधे बैंगनी रंग की पत्तियां छोड़ते हैं. इसकी भी तीन जातियां होती हैं. शीघ्र पकने वाली, मध्यम पकने वाली, और विलम्ब से पकने वाली.

शीघ्र पकने वाली

प्र० नं० १	१४ अक्टूबर

मध्यम पकने वाली

प्र० नं० १५ सुल्टू गुरमुटिया (न० १५)	६ नवम्बर
प्र० नं० ४ आजन (नं० ३४)	१५ नवम्बर

देर से पकने वाली

प्र० नं० ५ लुचई (नं० १८)	२६ नवम्बर

त्रिपुट वर्ण संकर

वर्मा गुरमुटिया लुचई एक ऐसी जाति है जो नवम्बर के अन्त तक पक कर तैयार होती है. उस समय जो अन्य जातियां पकती हैं उनमे इसकी पैदावार सर्वाधिक होती है. वैसे इसमें पीक अधिक निकलने का भी विशेष गुण विद्यमान है. जापानी रीति से धान की खेती करने के लिए केवल मध्यम तथा विलम्ब से पकने वाली जातियां ही श्रेष्ठ मानी गई हैं. जिस समय रोपा ८ इन्च तक हो जाये और इसके पौधों मे छोटी पत्ती फूट आवें तो उस समय रोपे इस योग्य हो जाते हैं, कि उन्हें खेतों में लगाया जा सके. रोपे को तैयार करते समय वीच वीच में उसकी निंदाई भी भली भांति करते रहना चाहिये.

खेत की तैयारी —

जिस समय रोपणी मे रोपा तैयार करने का काम होता है, और रोपा तैयार होने पर जो समय लगता है, उस समय मे खेत को भी पूर्णतः तैयार कर लेना चाहिये. इसके लिए उत्तम



गलत तरीका



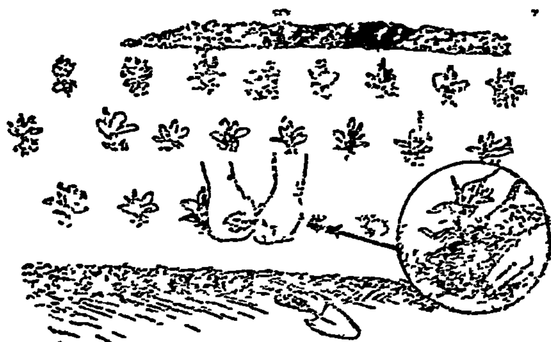
सही तरीका

रीति यह है कि खेत में सर्व प्रथम १० गाड़ी प्रति एकड़ के हिसाब से कम्पोस्ट या गोवर की खाद डाल देनी चाहिए और खेत को कई वार इस प्रकार से जोतना चाहिए कि मिट्टी और खाद मिल कर एक रस हो जाये. जिस समय खेत की अन्तिम जुताई करनी हो उस समय उससे पूर्व खेत में लगभग २॥ मन प्रति एकड़ के अनुपात से उर्वरक मिश्रण भी अवश्य डाल देना चाहिए. जिस समय वर्षा हो उस समय खेत को भली भांति वरावर कर लेना चाहिये जिससे भूमि समतल हो जाये. जिस समय खेत पूर्ण रूपेण तैयार हो जाय और रोपे भी तैयार हो जायें तब रोपों को रोपणी में से वहुत ही सावधानी के साथ उखाड़ कर पहले उसकी जड़ों को भली भांति धो लेना चाहिये. तत्पश्चात जड़ों की गुच्छियां वना लेनी चाहिए. जहां पर ऊपर वताई गई रीति से ऊंची रोपणी तैयार करके रोपे तैयार किये जाते हैं, वहां उन्हें उखाड़ने में आसानी रहती है और जिस समय रोपे को उखाड़ा जाता है तो जड़ों को कोई हानि नहीं हो पाती.

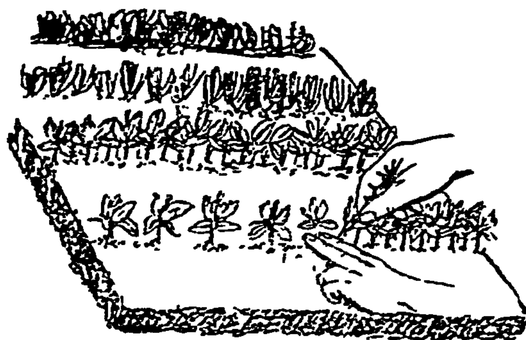
पौधों को पंक्तियों में रोपना चाहिए. खेत में लगभग ६-६ इन्च की दूरी पर ही रोपे लगाये जाने चाहिएं और रोपने के समय यह ध्यान रखने की वात है कि पौधे विल्कुल सीधे रोपे जायें. उन्हें कभी टेढ़ा नहीं रोपना चाहिए.

निराई गुड़ाई —

पौधों को पंक्तियों में रोपने के लिये रस्सी मे ६-६ इन्च के निशान लगा कर रस्सी को दोनों ओर से पकड़ कर यदि निशानों पर पौधे रोपे जायें तो वे समान दूरी पर ही रहेंगे और साथ साथ पंक्तिया भी सही रहेंगी.



पौधों का रोपना



पौधों की छंटनी करना

जब पौधे कुछ ऊंचे हो जाये अथवा इन्हें रोपे हुये दो सप्ताह बीत जायें तो इनकी गुड़ाई की आवश्यकता होती है. वैसे तो साधारण औजार के द्वारा भी इसकी गुड़ाई की जा सकती है किन्तु फिर भी कुछ जापानी औजार ऐसे हैं जिनके द्वारा इनकी गुड़ाई अच्छे ढंग से की जा सकती है. इनमें तौची गुरमा और करजत ही दो अच्छे औजार हैं. हर पन्द्रहवें दिन इन खेतों में गुड़ाई का कार्य चालू रखना चाहिये और जिस समय पौधों मे फूल आ जाएं उसके बाद एक गुड़ाई और करनी चाहिये. तत्पश्चात यह काम बन्द कर देना चाहिये.

जब पौधों को खेत में रोप दिया जाय उसके एक महीने बाद जिस समय खेत में दूसरी वार गुड़ाई की जाय तो गुड़ाई से पूर्व पंक्ति के बीच में लगभग ढाई मन प्रति एकड़ के अनुपात से उर्व-रक मिश्रण अर्थात मिश्रित खाद डाल देना चाहिये. इसके बाद फसल के अन्दर फूल आने के लगभग तीन सप्ताह पहले लग-भग २५ पौंड प्रति एकड़ के अनुपात से अमोनियम सल्फेट डाल-ना चाहिये.

वास्तव में उर्वरक मिश्रण में नत्रजन के साथ भास्वीय पदार्थ भी विद्यमान रहते हैं, जिससे धान की वाढ वहुत ही अच्छी आती है. साथ ही साथ उससे शाखाए भी अधिक से अधिक फूटती हैं. आवश्यकता के अनुसार फसल की सिंचाई भली भांति करनी चाहिये और उसमें पानी की कमी नहीं होने देनी चाहिये.

गत दो वर्षो में जापानी तरीका पर्याप्त मात्रा में अपनाया गया था. उससे जो कुछ नये अनुभव प्राप्त हुये हैं उनका संक्षिप्त वर्णन हम आगे करेंगे.

जापानी रीति से खेती करने के लिये खेत में ६ बार खाद दिया जाना चाहिये.

(अ) सर्व प्रथम क्यारी में कम्पोस्ट या गोबर का खाद लगभग ६ घमेले प्रति क्यारी के अनुपात से डालना चाहिए.

(व) तत्पश्चात हर क्यारी में लगभग एक पौण्ड उर्वरक मिश्रण डालना चाहिए.

(स) फिर खेत के अन्दर प्रति एकड़ लगभग १० गाड़ी कम्पोस्ट या गोबर का खाद डालना चाहिए.

(द) तत्पश्चात जिस समय अन्तिम जुताई की जाय, उससे पूर्व प्रति एकड़ लगभग ढाई मन उर्वरक मिश्रण डालना चाहिए.

(य) फिर जव पौधे खेत में रोप दिए जाएं तो उसके चार सप्ताह के बाद उसमें ढाई मन प्रति एकड़ के हिसाव से उर्वरक मिश्रण फिर डाल देना चाहिए.

(र) और अन्त में पौधों में फूल निकलने से ३ सप्ताह पूर्व ही लगभग २५ पौण्ड अमोनियम सल्फेट प्रति एकड़ डालना चाहिए.

उर्वरक मिश्रण में आधा अमोनियम सल्फेट होता है तथा आधा सुपर फासफेट. सुपर फासफेट के द्वारा भूमि को प्रस्फुरिक प्राप्त हो जाता है और अमोनियम सल्फेट से नत्रजन. इस प्रकार ये दोनों रासायनिक पदार्थ हर प्रकार से धान की खेती की वढ़ोत्तरी में सहयोग प्रदान करते हैं. प्रस्फुरिक सम्वन्धी खाद को फसल उगाने से पूर्व ही देना अच्छा होता है. अतः खेत की अन्तिम जुताई करने से पूर्व ही उसमें सुपर फास्फेट की पूरी निर्धारित मात्रा पहुंच जाय, अर्थात लगभग सौ सेर सुपर फास्फेट और

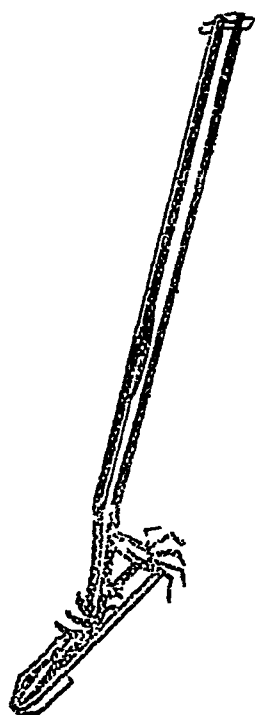
साथ में लगभग ५० सेर अमोनियम सल्फेट खेत में अन्तिम जुताई से पूर्व ही पहुँच जाना चाहिए और फिर ५० सेर अमोनियम सल्फेट खेत में उस समय डालना चाहिए जब कि पौधों को रोपे हुए एक महीना हो गया हो.

जहां तक दूरी और पंक्तियों का सम्बन्ध है वहां यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि भूमि हल्की है तो वहां पंक्तियों की दूरी आपस में लगभग ६ इन्च की हो तथा पौधों की दूरी आपस में ६ इन्च की हो. किन्तु यदि भूमि भारी है तो ऐसी जगह पर पंक्ति की दूरी तो ६-६ इन्च रखनी ही चाहिए साथ ही साथ पौधों की दूरी भी ६-६ इन्चकी होनी चाहिए इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा करने से गुड़ाई केवल एक ही दिशा मे की जा सकती है, किन्तु फिर भी यह स्पष्ट है कि इस रीति के द्वारा फसल अधिक पैदा होती है.

देशी रीति से धान की खेती करने में १५७ रुपए खर्च होते हैं और जापानी रीति से २२७ रुपए खर्च होते हैं, तथा परीक्षणों के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि देशी रीति से धान की पैदावार २० मन तक प्राप्त होती है तथा जापानी रीति से लगभग ६० मन तक प्राप्त हो जाती है. इस प्रकार प्रति एकड़ जापानी रीति से किसान को ३०० रुपए का लाभ होता है और देशी से लगभग ८० रुपए का लाभ होता है, इसे देखते हुए यह स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय किसानों को जापानी रीति से धान की खेती करने में देशी रीति के बजाय बहुत अधिक लाभ होता है.

तौची गुरमा

यह निंदना यंत्र बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है. इसका विशेष कारण यह है कि यह जड़ों के आस पास की मिट्टी को बहुत अच्छी तरह से ढीली कर देता है, जिससे कि जड़ें भली भांति फैल जाती हैं. यह यन्त्र कटइया या मोथा घास को या तो पूर्ण रूपेण भूमि के अन्दर गाड़ देता है या जड़ समेत उखाड़ देता है. इससे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि धान के पौधों में जहां शाखायें अधिक निकल आती हैं, वहां पौधों को रस भी अधिक मिलता है.



वास्तव में जापानी तरीके से खेती करने में यह आवश्यक है कि पौधों की जितनी भी पंक्तियां हों, उनके मध्य में अच्छी निदाई गुड़ाई हो जाये. और इसके लिए सर्वोपयोगी यह जापानी गुड़ाई यन्त्र तौची गुरमा ही सिद्ध हो पाया है.

तौची गुरमा विशेषत: तीन प्रकार का होता है, एक कतारी, दो कतारी और तीन कतारी. जापान में खेती करने वाले सुविधा के अनुसार इन्हें उपयोग में लाते हैं.

मध्य प्रदेश की धान की खेती की जाने वाली भूमि पर कहीं कहीं एक कतारी वाले निंदने का प्रयोग करके देखा गया जिसका फल बहुत ही अच्छा निकला. मध्य प्रदेश की सरकारी यंत्रशाला में श्री डी० एन० खेरड़ेकर ने यह यन्त्र तैयार किया और उसका परीक्षण किया. उनका कथन है कि यह यन्त्र जहां श्रम को बचाने वाला है वहां काम भी अच्छा करता है. इसके द्वारा एक दिन में लगभग एक एकड़ खेती की निंदाई की जा सकती है. यह एक ऐसा अल्पव्ययी यन्त्र है जिसे एक या दो आदमी लगकर आसानी से चला सकते हैं. यन्त्र बिल्कुल सादा है. और साथ ही साथ सस्ता और अधिक काम निकालने वाला है.

इसकी बनावट में पांच मुख्य हिस्से होते हैं. +

१. मूठ या पकड़ने का दस्ता.

२. लोहे की चौखट.

३. खड़ी पट्टी.

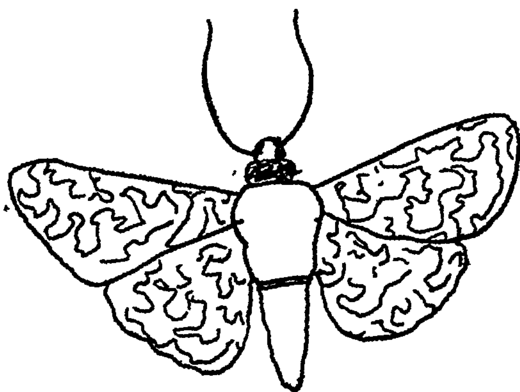
४. आगे की चकरी.

५. पीछे की चकरी.

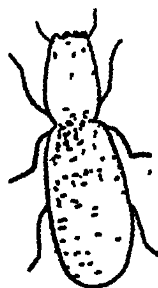
इस यन्त्र की खड़ी पट्टी बिल्कुल ऐसी होती है जैसे किसी कछुए की पीठ. इसका लाभ यह है कि पानी की रुकावट कम से कम हो पाती है. इसकी पीछे की चकरी में जो पट्टियों का अन्तिम सिरा होता है, वह तिकोना होता है. तथा आगे की सभी पट्टियां सीधी और नुकीली होती हैं.

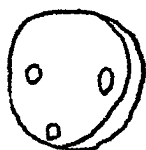
+ श्री डी. एन. खेरड़ेकर, 'किसानी समाचार' जून–जौलाई १९५४.





पंखी



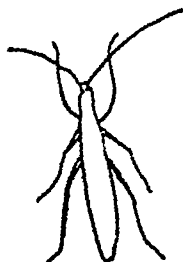


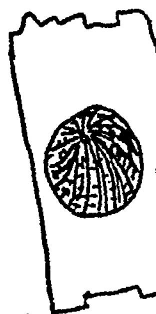


शंखी

कीड़ों के अण्डे







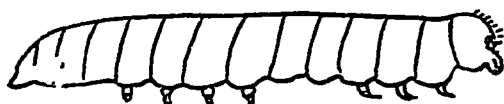
हानिकारक कीड़े और बचाव

धान की फसल को नष्ट करने के लिये अनेकानेक ऐसे कीड़े मकोड़े सदा तैयार रहते हैं जो धान की फसल को खराब कर डालते हैं. इनमें से मुख्य कीड़ों का वर्णन पृथक पृथक नीचे दिया जाता है.



धान की इल्ली — यह इल्ली विशेषत: चराखोरों में और धान की फसलों में बहुत पाई जाती है. पहले यह घास पर आक्रमण करती है तत्पश्चात पौधों पर. जिस समय प्रकाश होता है तो यह इल्ली मिट्टी के बड़े बड़े ढेलों के नीचे छिपी रहती है और रात्रि के समय पौधों पर आक्रमण करके खाती है. यह सदा बड़े बड़े झुण्डों मे रहती हैं और एक खेत को खा चुकने के पश्चात दूसरे खेत पर आक्रमण कर देती हैं. जो मादा पंखी होती है वह गुच्छों में अंडे देती है जो बालों के रुओं से ढके हुए गुलाबी रंग के होते हैं और एक सप्ताह में इन अंडों मे से हल्के रंग की इल्लियां निकलती हैं. पौधों की पत्तियां ही इन इल्लियों का आहार होती हैं. इस कारण से यह पौधो की पत्तियां खा जाती हैं. जिस समय यह इल्लियां पूर्ण यौवन पर होती हैं उस समय इनका रंग

पीलाई लिये, हरा सा होता है, और इनकी लम्बाई लगभग १॥ इंच की होती है. इल्लियों की बगल में दोनों ओर लाल रंग की धारियां होती हैं. यदि इन इल्लियों को कोई छूता है तो ये कुन्डल सा बना लेती हैं और अपने सर को दुम में छुपा लेती हैं. लगभग



२०-२५ दिन तक ये इल्लियों के रूप में ही रहती हैं, तत्पश्चात शंखी के रूप में भूमि में चली जाती हैं और लगभग १० दिन के पश्चात यह बाहर निकल आती हैं. उस समय इनके पंख भी निकल आते हैं.

बचाव —

खेतों की मेंड़ों पर जो घास फूस उग आता है. उसे जला डालना चाहिये. ऐसा करने से उसके ऊपर इल्लियां नहीं आतीं.

लगभग २०-२५ पौंड ५ प्रतिशत शक्ति का बी. एच. सी. पाउडर प्रति एकड़ के अनुपात से छिड़कना चाहिये.

जिस स्थान पर इल्लियों का जोर हो उसके चारों ओर नाली खोद कर उसमें पानी और मिट्टी के तेल का मिश्रण भर देना चाहिए जिससे कि इल्लियां खेतों को पार कर आस-पास दूसरे खेतों में न जा सकें.

जिन खेतों में पानी भरा हुआ हो उनमें मिट्टी का तेल छिड़क देना चाहिए तथा किसी रस्सी के सहारे से पौधों को खूब हिला

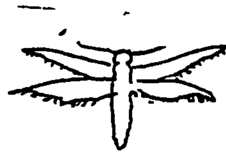
देना चाहिए. ऐसा करने से जो भी इल्लियां पौधों पर लगी होंगी तेल मिश्रित पानी में जा गिरेंगी और नष्ट हो जायेंगी. इस प्रकार ६ बोतल मिट्टी का तेल प्रति एकड़ इस ढंग से डालना चाहिए कि वह सम्पूर्ण खेत में भली भांति फैल जाये और जो भी इल्लियां उसमें गिरे वे नष्ट हो जाएं.

मिट्टी का तेल प्रयोग में लाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि तेल पौधों पर न गिरे अन्यथा वे नष्ट हो जायेंगे. अतः तेल पौधों को बचा कर ही पानी में डालना चाहिए.

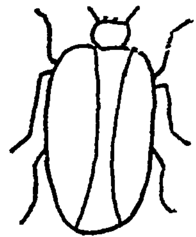
गंधी कीड़ा — अन्य सभी शत्रुओं में सबसे भयानक शत्रु गंधी कीड़ा ही है. सन १९५२ मे मध्य प्रदेश की बहुत सारी धान की खेती को इस गंधी कीड़े ने ही बर्बाद कर दिया था. यहां तक कि जल्दी पकने वाली फसल को १० प्रतिशत तक हानि उठानी पड़ी.

गंधी कीड़ा, यदि इसकी खोज की जाये तो साधारण बन्धानों के जंगलों की घास में रहता है. जिस समय इसे योग्य परिस्थिति प्राप्त हो जाती है तो यह शीघ्रता से बढ़ता है. जिस समय धान के पौधों में बाल आ जाती है और किसान के परिश्रम का फल खेतों में दृष्टिगत होने लगता है उस समय गंधी कीड़े एकत्रित होकर घास को छोड़कर धान की बालों पर चढ़ आते हैं और इन बालों का सम्पूर्ण रस चूस जाते हैं. इसका फल यह निकलता है कि बालों मे दाना नहीं आता और वे फोकी रह जाती हैं. जिस समय गंधी कीड़ा रस चूस लेता है तो धान की बालों का रंग सफेद हो जाता है. इस कीड़े मे से बुरी दुर्गन्ध आती है. इसी कारण इसको गंधी कीड़ा कहा जाता है. इसके अण्डे काले





पंखी





इल्ली

रंग के चपटे आकार के होते हैं, जो पौधों की पत्तियों पर जमे पाये जाते हैं. इस कीड़े के अण्डे लगभग एक सप्ताह में फूट जाते हैं और उनमें से हरे रंग के छोटे छोटे कीड़े बाहर निकल आते हैं. वैसे इनका आकार बड़े कीड़ों के समान ही होता है. ये कीड़े भी विशेषतः धान की बालों पर ही निर्भर रहते हैं और बड़े कीड़ों की भांति ही बाल का रस चूस जाते हैं. लगभग २० दिन इसी आकार में रहने के पश्चात इन कीड़ों के पर निकल आते हैं और तब य कीड़े उड़ उड़ कर एक खेत से दूसरे खेत में पहुँच जाते हैं.

य कीड़े धान की फसल पर साधारणतया अगस्त से नवम्बर तक ही मिलते हैं, तत्पश्चात धीरे धीरे कम हो जाते हैं और अन्त मे जंगलों के आस पास घास पर पहुँच जाते हैं.

बचाव —

धान की खेती करने वाले किसानों को चाहिए कि इस कीड़े से खेती को भली भांति बचावे अन्यथा यह कीड़ा यदि अधिक तादाद में लग गया तो धान की बालों में चावल नहीं आने देगा. इसके निराकरण के कुछ उपाय नीचे दिए जाते हैं.

१. लगभग २० पौंड प्रति एकड़ के अनुपात से ५ प्रतिशत शक्ति का बी० एच० सी० पाउडर धान पर छिड़क देना चाहिए. इससे कीड़े मर जाते हैं.

२. जो घास बन्धियों पर हो उसे पूरी तौर पर उखाड़ देना चाहिये, जिससे ये कीड़े पनप ही न सके.

३. बहुत सी बन्धिये ऐसी होती हैं जिनमे पानी भरा रहता है, ऐसी बन्धियों में ६ बोतल प्रति एकड़ के अनुपात से मिट्टी

का तेल डालना चाहिये और इस ढंग से फैला देना चाहिये कि सारे पानी पर तेल की एक हल्की तह जम जाय. तत्पश्चात किसी प्रकार सब पौधों को इस प्रकार से हिला देना चाहिये कि पौधे तो न टूटें बल्कि उनके पत्तों पर लगे गंधी कीड़े नीचे गिर जाएं. ऐसा करने से ये सारे कीड़े उस मिट्टी के तेल मिश्रित पानी में गिरेंगे और नष्ट हो जायंगे.

४. मिट्टी का तेल किसी प्रकार भी पौधों पर न गिरने पाये वरन पानी में गिरे क्योंकि यदि मिट्टी का तेल पौधों पर गिरेगा तो पौधों को नष्ट कर देगा.

इन साधनों का प्रयोग करते समय बहुत ही सावधानी की आवश्यकता है. यदि उस समय किसान सावधानी से काम न लेगा तो हानि का भय रहता है. अतः उसे नीचे दी गई बातों का ध्यान रखना चाहिए.

१. जिस समय हवा में तीव्रता हो उस समय दवा नहीं छिड़कनी चाहिए.

२. जिस साधन से दवा छिड़की जाय उसका मुंह उस ओर रहना चाहिए जिस दिशा में हवा बह रही हो.

३. जो थैला घुमाया जाय उसे जहां तक सम्भव हो जिस दिशा में हवा बह रही हो उसके विरुद्ध घुमाना चाहिए.

४. जहां जहां पर गन्धी कीड़े पत्तियों पर दृष्टिगत हों वहां वहां से इन्हें एक कपड़े के थैले में एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए. इस कार्य के लिए एक ऐसा थैला होना चाहिए जिसकी

लंबाई ५ फुट, चौड़ाई चार फुट और मुंह १॥ फुट हो. थैले की दूसरी तरफ ३ इंच का मुंह रहना चाहिए जिसे काम में लाते समय बन्द कर देना चाहिए. थैले के ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क देना चाहिए और उसके बड़े मुंह की तरफ दोनों ओर दो डंडे लगाने चाहिएं.

जब कीड़े इकट्ठे हो जाएं तो उन्हें छोटे मुंह को खोलकर ऐसे पानी में डाल देना चाहिए जिसमें मिट्टी का तेल मिश्रित कर लिया गया हो. इसके लिए एक गढ़े मे पानी भर के इतना मिट्टी का तेल छिड़क देना चाहिए कि एक पतली सी तह पानी पर जम जाय. जिस समय पानी में कीड़े डाले जायंगे तो नष्ट हो जायंगे तत्पश्चात मिट्टी से गढ़े को भर देना चाहिए.

धान की कटाई —

यदि पकी हुई फसल खेत में खड़ी रह जाती है तो खराब हो जाती है. अतः जिस समय फसल पक जाए तो उसे हंसिए से काट लेना चाहिए. पौधों को काटते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह जड़ के पास से कटे और उसके बाद इसे सुखाने की आवश्यकता होती है. सुखाने के लिए दो तरीके हैं. या तो पौधों को बांस के बने हुए सीखचो पर लटका देना चाहिए या भूमि पर फैला देना चाहिए. जब ये सूख जाएं तब इन्हें सुविधापूर्वक साफ करके चावल अलग निकाल कर भण्डारों मे भरा जाता है. इस प्रकार हम देखते हैं कि चावल की खेती के लिए भारतीय किसानों को अच्छे अच्छे परीक्षणों द्वारा जाने हुए औजारों को अपनाना चाहिए.

जौ

जौ की खपत गेहूं के पश्चात पहिले क्रम पर आती है. यह हर प्रकार से बहुत ही लाभदायक अनाज है, और संसार भर में पर्याप्त मात्रा में प्रयोग में लाया जाता है.

जहां पर भी जौ की खेती करनी हो उन्नति प्राप्त बीज बोने चाहिएं, क्योंकि जो बीज पहले बोये जाते थे वे अब इतने खराब हो चुके हैं कि अच्छी उपज नहीं दे पाते. बीजों के प्रकरण में जौ की उन्नति प्राप्त जातियों के बारे में बता दिया गया है, उन्हीं बीजों को अपनी भूमि को दृष्टि में रखते हुये बुवाई के काम में लाना चाहिये. जिन-जिन स्थानों पर इन उन्नति प्राप्त जातियों को बो कर देखा गया, वहां इन्होंने बहुत ही बढ़िया फसल दी है.

जौ की खेती करने के लिये वैसे तो कोई विशेष भूमि की आवश्यकता नहीं है. जिस मिट्टी में अन्य फसलों की काश्त की जाती है वहां पर जौ की भी खेती की जा सकती है. फिर भी बहुत अच्छी और बढ़िया पैदावार लेने के लिये जौ के लिये दुमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी गई है. खेती केरने वालों को यह ध्यान रखना चाहिये कि अधिक नमी वाली और नीची जमीनें इसके लिये कभी भी अच्छी नहीं रहतीं. अतः ऐसी जमीनों पर जौ की खेती नहीं करनी चाहिये.

जिन स्थानों पर जौ की खेती करनी हो वहां पर खेत की तैयारी बहुत अच्छे ढंग से करनी चाहिये. और यह ध्यान रखना चाहिये कि आवश्यकता के अनुसार खाद खेत की मिट्टी में पहुँच जाये. कुछ अनुभवी कृषि विशेषज्ञों का ऐसा मत है कि जौ की खेती में खाद की विशेष आवश्यकता नहीं होती, किन्तु फिर भी जौ के खेतों में खाद डालनी ही चाहिये, और खाद के रूप में गेहूं की खेती को चार मास खाली छोड़ने के बाद खाद डाली जाती है. इस प्रकार लगभग दस गाड़ी खाद जौ के खेत में डालनी चाहिये.

जो लोग पहिले खेतों में चरी और मक्का आदि की पैदावार लेते हैं; वहां जौ की पैदावार अच्छी नहीं होती. यदि चना या मटर, जौ की मिश्रित खेता की जाय तो पैदावार बहुत अच्छी हो जाती है. बहुत से स्थानों पर सनई की हरी खाद देकर भी जौ की खेती करने का प्रचार किया जा रहा है. वैज्ञानिकों का मत है कि इससे जानवरों के लिये अच्छा भूसा तैयार हो जाता है, और जौ में कोई अन्तर नहीं पड़ता.

खेत की तैयारी —

खेत को चैत्र-वैसाख और ज्येष्ठ में उन हलों से जोतना चाहिये जो मिट्टी पलटने वाले हों. जिस समय: वर्षा काल हो तब जहां तक संभव हो मूंग, उड़द, या सनई को हरी खाद देने की दृष्टि से बोना चाहिये. और यदि चौमासे के दिनों में खेत को खाली छोड़ा जाये तो समय समय पर मिट्टी पलटने वाले हलों के द्वारा खेत की उचित जुताई करते रहना चाहिये. उचित

जुताई करना बहुत ही आवश्यक है. वर्षा हो जाने के बाद खेतों की अच्छी जुताई करके बुवाई कर देनी चाहिये.

बीज और बुवाई —

जौ का बीज प्रति एकड़ लगभग सवा मन बोना चाहिये. यदि बीज के साथ तिल्हन की फसलें, सरसों अथवा कुसुम आदि की फसलें पंक्तियों में बोई जायें तो उत्तम रहती हैं. इन्हें छिटकवां रीति से नहीं बोना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से पैदावार कम हो जाती है.

जौ को गेहूं, मटर, और चना आदि रबी की फसलों के पश्चात बोना चाहिए. अनेकानेक किसानों का मत है कि जौ की बुवाई चित्रा नक्षत्र के अन्त से लेकर स्वाति नक्षत्र के मध्य तक अवश्य कर देनी चाहिये. क्योंकि यदि इसकी बुवाई में देर हो जाती है तो पैदावार कम हो जाती है.

सिंचाई —

जब खेतों में बीज बो दिया जाय तो तीस दिन के अन्दर ही अन्दर खेत में सिंचाई कर देना भी अत्यन्त आवश्यक है, यदि इस समय सिंचाई नहीं की जाती तो जौ की टहनियां पीली पड़ कर मरने लगती हैं, पहली सिंचाई अगहन मास के आस पास ही कर देनी चाहिए, और यदि माघ में वर्षा का अभाव रहे तो दूसरी सिंचाई उस समय कर देनी चाहिए.

निकाई-गुड़ाई —

जिस समय जौ के खेत को सींचा जाता है, उस समय इनमें गजरा, खर पतवार और बथुआ आदि स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाते

हैं. जिस समय सिंचाई का काम खतम हो जाता है उस समय ये पौधे तीव्रता से जोर पकड़ने लगते हैं, जिसका फल यह होता है कि जौ के पौधे निर्बल हो जाते हैं, अतः जिस समय भी ये पौधे दृष्टिगत हों इन्हें तुरन्त ही उखाड़ कर जानवरों का भोजन बना देना चाहिए.

वैसे तो जौ की खेती में गुड़ाई की विशेष आवश्यकता होती है किन्तु फिर भी खेत में पानी पड़ जाने के बाद भी यदि पौधे छोटे रह जाएं या बीज पूरे न जमे तो लावर हैरो द्वारा थोड़ी थोड़ी गुड़ाई कर देनी चाहिए. ऐसा करने से पौधे बढ़ने लगते हैं और कुरे भी जल्दी फूट आते हैं. इससे जहां पौधे बलशाली होते हैं वहां भूसा भी प्रर्याप्त मात्रा में निकल आता है.

कटाई —

जौ फाल्गुन के अन्त से लेकर चैत्र के आरम्भ तक पक-पक कर तैयार हो जाता है उस समय इसकी फसल को काट लेना चाहिए उस समय एक बात ध्यान में रखनी चाहिए, कि जौ की कटाई से पहिले जो भी फसल तिलहन की साथ लगाई गई हो उसे ध्यान पूर्वक काट लिया जाए. वैसे तो हसियों आदि से ही फसल काटी जा सकती है, किन्तु जहां बड़े बड़े खेतों में जो जौ की खेती की गई हो. वहां कटाई भी नई नई मशीनों से करनी चाहिए.

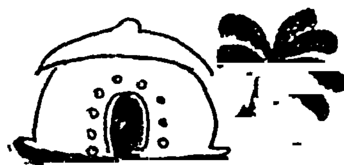
दाने और भूसे को अलग अलग करने के लिए मड़ाई करना आवश्यक है जिससे कि खलिहानों में शुद्ध बीज पृथक रूप से रखा जा सके.

पैदावार —

साधारणतः जो देशी जाति का जौ होता है उसकी पैदावार दस मन प्रति एकड़ तक हो जाती है. किन्तु जो जौ उन्नति प्राप्त बीजों के द्वारा मिलता है वह तीस मन से चालीस मन प्रति एकड़ तक पैदावार देता है. अतः उन्नति प्राप्त बीजों के द्वारा ही इसकी पैदावार करनी चाहिए

रोग-उपाय —

जौ के अन्दर एक छूत की बीमारी लग जाती है जिसे कंडुआ कहते हैं. इस बीमारी के लगने पर बीज की जितनी भी बालियां होती हैं वे सब काली पड़ जाती हैं और इस रोग के जितने भी बीज होते हैं वे सारे के सारे काले ही पैदा होते हैं. जिस समय बीज की बुवाई की जाती है, उस समय यदि सारे बीज को फार्म-लीन में भिगो कर बुवाई की जाये तो इस बीमारी से बचाव हो जाता है. वैसे यदि कापर कार्बोनेट के द्वारा भी बीज को धोलें तो बीज को निरोग बनाया जा सकता है. किसानों को चाहिए कि वे इन सब बातों का ध्यान रख कर उन्नति प्राप्त खेती करने का प्रयास करें और किसी प्रकार की भी बीमारी खेती में न लगने दें.



मक्का

भारत भर में मक्का का पर्याप्त प्रचलन है, और इसी कारण यहां पर मक्का क्षेत्र का आधिक्य भी है. जिन स्थानों पर सिंचाई करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं होते हैं वहां पर खरीफ की फसलें अधिकतर उसी समय बोई जाती हैं, जबकि वर्षा आरम्भ हो जाये. किन्तु जिन स्थानों पर सिंचाई का साधन प्राप्त हो, उन्हें मक्का की खेती अगेती करनी चाहिए. अगेती फसल बाजार में जल्दी आ जाती है और अच्छे पैसों मे बिकती है. साथ ही साथ रबी की फसलें बोने के लिये खेत भी खाली हो जाता है.

जिन लोगों के खेत शहरों अथवा मण्डियों के आस पास हैं उनके लिये मक्का की खेती बहुत ही लाभदायक होती है, क्योंकि बाजारों के अन्दर जिस समय भुट्टे बेचे जाते हैं उस समय तुरन्त ही लाभ हो जाता है. ये भुट्टे लगभग आसाढ़ मास के अन्तिम दिनों तक पक कर तैयार हो जाते हैं, गर्मियों के दिनों में इसकी फसल में दो तीन बार सिंचाई करनी आवश्यक है. ये भुट्टे बाजारों के अन्दर आसाढ़, श्रावण और भादों तक बहुत बड़ी मात्रा में बिकते देखे गये हैं, किन्तु इसके कारण भादों तक खेत नंगा रह जाता है, अतः खेत की अच्छी तैयारी भादों और क्वार मे करके मटर और चना आदि बो देना चाहिये.

वैसे तो मक्का की दो ही जाति होती हैं, देशी और विदेशी किन्तु इन जातियों मे बहुत सी उन्नति प्राप्त उपजातियां भी तैयार की गई हैं, जो खेती के लिये बहुत ही उत्तम हैं.

मक्का की खेती भारी मटियार भूमि में सफलता पूर्वक नहीं की जा सकती. अन्य सभी प्रकार की मिट्टी इसकी खेती के लिये ठीक रहती है. बहुत अच्छी खेती करनी हो तो दुमट भूमि में अच्छी सड़ी गली खाद डाल कर खेती करनी चाहिये. खेत की तैयारी के समय लगभग आठ गाड़ी खाद प्रति एकड़ की दृष्टि से खेतों में डालनी चाहिये किन्तु इस खाद का भली भांति गला सड़ा होना आवश्यक है. खादों के रूप में गोवर और मैंगनी आदि अच्छे माने गए हैं. कहीं कहीं पर खलियों की खाद भी काम मे लाई जाती है जिससे मक्का की खेती पर्याप्त मात्रा में बढ़ी है.

जो लोग भुट्टा बेचते हैं वे लोग मक्का की खेती से पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं, किन्तु जो लोग भुट्टा नहीं बेचते उन्हें चाहिए कि वे मक्का को बीज के लिये तैयार करे. और फिर भी उन्हीं संस्थाओं को बेचना चाहिये जो बीजों का व्यापार करती हों.

जहां खेत की अच्छी तैयारी करके परिश्रम करके खेती की जाती है, वहां पर लगभग साठ मन चारा और बीस मन मक्का पैदा हो जाते हैं. बहुत से लोग मक्का को चरी के लिये बोते हैं, उन्हें लगभग चार सौ मन तक हरे चारे की प्राप्ति भी हो जाती है.

किसानों को ध्यान रखना चाहिए कि जब तक मक्का की फसल खेत में खड़ी रहती है तब तक उसकी पूरी तौर से रक्षा करनी चाहिए क्योंकि छोटी बड़ी चिड़ियां ऐसी होती हैं जो मक्का के बीजों को चुन चुन कर खा डालती हैं. बहुत से जंगली जानवर फसल को नष्ट कर देते हैं. और बहुत से स्थानों पर खेत में मनुष्य भी घुस जाते हैं और भुट्टे तोड़ ले जाते हैं. इन सभी लोगों से खेत की रक्षा करनी चाहिये.

ज्वार

भारत में बहुत से ऐसे प्रान्त हैं जहां पर ज्वार की खपत पर्याप्त मात्रा में होती है. वैसे भी लगभग हर प्रान्त में ज्वार की खेती की जाती है. वास्तव में बात यह है कि ज्वार से चारा पर्याप्त मात्रा मे मिल जाता है, इस कारण से जिन जिन स्थानों में पशु पालन का व्यवसाय किया जाता है, वहां पर चारे के लिए भी ज्वार की खेती अधिक की जाती है.

जिस समय वर्षा आरम्भ होती है उसके बाद ही पशुओं के लिए करवी अथवा चरी की आवश्यकता होती है, और ज्वार बोने वालों को तभी से उसके एवज में धन मिलना आरम्भ हो जाता है. इस प्रकार जितना लाभ ज्वार के दाने से नहीं होता उतना चरी और करवी से हो जाता है, जो लोग चारे के लिए ज्वार की खेती करना चाहें उन्हें यह चाहिए कि वे खेती के लिए ऐसा स्थान चुनें जहां आस पास कोई जलाशय अवश्य हो. और फिर अच्छा खाद पांस डाल कर परिश्रम के साथ खेती करनी चाहिए. जहां पर चारा बोना हो वहां लगभग पच्चीस सेर प्रति एकड़ बीज की बुवाई करनी चाहिए. चारे के लिए दुमट भूमि सर्वोत्तम मानी गई है. जिन खेतों मे ज्वार के दाने के लिए खेती करनी हो वहा लगभग दस सेर प्रति एकड़ तक की बुवाई करनी चाहिए.

जो बीज दाने के लिए बोना हो उसे आषाढ़ के आरम्भ मे और जो चारे के लिए बोना हो उसे ज्येष्ठ के आरम्भ में बोना चाहिए. चारे वाले खेतों में, जब गर्मी के दिन हों तो लगभग

तीन चार सिंचाई कर देनी चाहिए, किन्तु जो फसल अनाज के लिए ही लगाई जाती है, उसके लिए वर्षा का जल ही पर्याप्त होता है. किन्तु फिर भी यदि वर्षा न हो, मौसम सूखा हो तो थोड़ी बहुत सिंचाई की आवश्यकता होती है.

साधारणतः अन्न के लिए ज्वार बोने वाले किसान इसके बीज को अरहर के साथ बोते हैं. कुछ लोग इसे दलहन, और तिलहन की कुछ जातियों के साथ भी बोते हैं. इससे थोड़ा बहुत अन्न मिल जाता है. किन्तु यह तरीका अच्छा नहीं है. अन्न के लिए यदि ज्वार की बुवाई करनी हो तो इसे अरहर के साथ मिला कर ही बोना चाहिए.

ज्वार कई प्रकार की होती है. सफेद, लाल, और मटमैली फिर इसकी बालों में जितने भी दाने लगते हैं उनकी दृष्टि से इसकी कई जातियां की जा सकती हैं, क्योंकि कुछ भुट्टों मे दो दो दाने जहां साथ मिलते हैं उसे दो दनियां कहते हैं. तथा जिन भुट्टों में केवल एक एक दाना ही लगता है, वह एक दनियां कहलाता है. मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश की सरकारों ने इसकी उन्नति प्राप्त जातियां तैयार की हैं, उन्हीं को बोकर अच्छी पैदावार करनी चाहिए.

सधारणतः ज्वार की खेती उस समय की जाती है, जबकि रबी की फसल काट ली जाये. कहीं कहीं पर जहां ज्वार बोने से पहिले चना अथवा मटर की खेती होती है, वहां पर इसकी खेती बहुत ही अच्छी प्राप्त होती है. और उससे लाभ भी पर्याप्त होता है. जिस समय खेतों की तैयारी की जाय. उस समय

दो तीन जुताईयां भी करनी चाहिये. जिस समय ज्वार का बीज बोना हो उस समय उसमें अरहर के बीज लगभग एक सेर मिला लेने चाहिएं. और फिर इन्हें छिटक कर बो दिया जाता है इस प्रकार से बीजों को यदि पक्तियों मे भी बो दिया जाये तो भी अच्छा रहता है. बोने के पश्चात खेत मे पाटा चला कर बीज को दबा देना चाहिये.

जिस समय पौधे उग आवे उस समय खेतो मे निकाई गुड़ाई की भी आवश्यकता होती है. ये निकाई गुड़ाई खुरपियों से ही करनी चाहिये. इन निकाई गुड़ाईयो से वह घास फूस खेतों मे से साफ हो जाता है, जो वर्षा काल मे अनावश्यक उग आता है. वैसे जिस समय घास फूस उग आए तब भी दो तीन बार निकाइ गुड़ाइ करके इन्हें साफ कर देना चाहिए. निकाई गुड़ाई करते समय उन पौधों को थाड़ा दूर कर देना चाहिए जो बहुत ही घने हो गए हों.

कहीं कहीं पर ऐसा देखा गया है कि ज्वार के खेत की मिट्टी बड़ी हो जाती है. ऐसी दशा मे किसी देशी हल के द्वारा हल्के हाथ से मिट्टी को तोड़ देना चाहिये. ऐसा करने से पौधा की बाढ़ अच्छी आती है, और उपज भी अधिक बढ़ती देखी गई है.

ज्वार मे बालें कार्तिक मास मे आनी आरम्भ हो जाती है. उन बालों में से बीज के लिए कुछ बालों को चुन लेना अच्छा होता है. और शेष को अनाज के लिए छोड़ा जा सकता है.

जिस समय ज्वार की बालें पक जाती हैं उस समय उनकी रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जहां छोटी छोटी चिड़ियां आक्रमण करके दाना चुग जाती हैं, वहां बड़े बड़े जानवर भी

खेतों में घुस कर फसल को बरबाद करने में नहीं चूकते. इसकी कटाई भी अन्य फसलों की भांति ही की जा सकती है.

कुछ लोगों को ऐसा भी करते देखा गया है कि वे बालें काट लेने के पश्चात भी पौधों को खेत में ही लगा रहने देते हैं जिससे उन्हें काफी समय तक हरा चारा मिलता रहता है. बीज को अच्छी तरह से साफ करके ही खलिहानों में भरना चाहिए.

ज्वार की पैदावार लगभग बीस मन प्रति एकड़ तक हो जाती है. साथ ही साथ यदि अरहर भी उत्तम जाति की पर्याप्त मात्रा में पैदा हो जाती है तो उससे भी पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता है.

ज्वार के कुछ शत्रु भी होते हैं जिनमें एक लम्बा कीड़ा अधिक हानिप्रद होता है. यह पौधे में छेद कर देता है जिसके द्वारा पौधा रोगी हो जाता है और फसल खराब हो जाती है. यदि अच्छा उन्नति प्राप्त बीज बोया जाय तो इस बीमारी से काफी बचत हो जाती है. खेती करने वालों को भली भांति ज्वार के पौधों की रक्षा करनी चाहिए जिससे कि हानि का सामना न करना पड़े.

जहां जहां ज्वार की खेती में कीड़ा लगता दृष्टिगत हो वहां वहां रासायनिक पदार्थ छिड़क कर उसे मारा जा सकता है अथवा कुछ रासायनिक पदार्थ पानी में मिला कर पौधों पर इस प्रकार छिड़क देने चाहियें जिससे पौधों को तो कोई भी हानि न हो और कीड़े मर जायें. जो लोग इन बातों का ठीक ध्यान रखते हैं वे आसानी से ही अच्छी पैदावार प्राप्त कर सकते हैं. तथा जो लोग इन बातों पर ध्यान नहीं देते वे धन की दृष्टि से हानि उठाते हैं.

बाजरा

खरीफ की फसलों में अन्न देने वाली अच्छी फसल बाजरे की मानी जाती है. यद्यपि इसकी खेती केवल अनाज के लिए ही की जाती है तथापि भारत भर में प्रत्येक प्रांत में इसकी खेती पर्याप्त मात्रा में की जाती है. राजस्थान में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है.

वैसे तो बाजरे को खेती लगभग हर प्रकार की खेती योग्य भूमि पर की जा सकती है, परन्तु इसकी खेती के लिये सर्वोत्तम भूमि दुमट और हल्की भूड़ ही मानी गई है. मिट्टी जिस प्रकार की भी हो उसकी तैयारी उसी की दृष्टि से भली भांति कर लेनी चाहिए. इसकी तैयारी के लिये आषाढ़ का महीना बहुत अच्छा रहता है. बाजरे की बुवाई वर्षा के आरम्भ में जब चिरैया नक्षत्र आता है तब की जाती है. अतः तब तक खेत को तीन चार बार भली भांति जोत कर तैयार कर लेना चाहिए.

जिस समय खेत की तैयारी की जाय तो खेत में लगभग दस गाड़ी प्रति एकड़ के अनुपात से गोबर आदि की अच्छी गली सड़ी खाद डाल देनी चाहिए. रात्रि के समय यदि खेत में भेड़ बिठा दी जाती हैं तो उनकी मेंगनियों से जो खाद बनती है वह भी खेती में बड़ा सहयोग देती है. ऐसा करने से बाजरे की पैदावार अप्रत्याशित रूप से बढ़ती देखी गई है.

बाजरे की खेती भारत भर में बहुत ही प्राचीन काल से होती चली आ रही है, इस कारण से इसकी खेती करने वाले पुराने बीज को ही बोते हैं. किन्तु वास्तव में भारत की कुछ प्रांतीय सरकारों ने बाजरे की भी अच्छी उन्नति प्राप्त जातियां निकाली है, जिन्हें बोकर पर्याप्त लाभ उठाया जा सकता है. बीजों के प्रकरण में उन्नति प्राप्त बाजरे के बीजों का वर्णन किया गया है, उन्हीं को अपनी भूमि और सुविधा के अनुसार खेती के प्रयोग में लाना चाहिए.

जिन स्थानों पर बाजरे की सिंचाई करने के लिए पूरे पूरे साधन उपलब्ध हों उन स्थानों पर बाजरे की खेती अकेली भी सरलता से की जा सकती है, किन्तु जिन् स्थानों पर ऐसे साधन उपलब्ध न हों वहां पर ज्वार की भांति ही बाजरे के बीज में अरहर, उड़द, मकई आदि मिला कर खेती की जा सकती है. अकेले बाजरे की ही जहां पर बुवाई करनी हो वहाँ पर जब पौधे उग आये तो उन्हें लगभग डेढ़ डेढ़ फुट के अन्तर पर और यदि पंक्तियां हों तो उन पंक्तियों को लगभग दो दो फुट के अन्तर पर रखना चाहिए.

खेतों में जब बाजरे के पौधे उगते हैं, तभी उनके साथ जंगली खर-पतवार आदि भी उग आते हैं. अतः उसे नष्ट करने के लिये जब वर्षा हो तो निकाई-गुड़ाई करनी चाहिए तथा खर-पतवार आदि को समूल उखाड़ फेंकना चाहिए. इसके पश्चात यदि विदहना-प्रथा के द्वारा भूमि को नरम कर दिया जाय तो भी बाजरे की फसल बहुत ही अच्छी उतरती है.

साधारणतः बाजरे की फसल कार्तिक मास के अन्तिम दिनों तक पक कर तैयार हो जाती है. जिस समय इसकी बाले पकने लगती है तो इनकी बड़ी चोरी होती है, साथ ही साथ चिड़ियां आदि भी दाने चुग जाती हैं. इन बातों का ध्यान रखकर खेतों का संरक्षण करना चाहिए. पकने पर फसल को काट कर बालों को कटवा लेना चाहिये जिससे कि दाना पृथक निकल आये.

यदि बहुत ही अच्छे ढंग से उन्नति प्राप्त बीज बो कर बाजरे की खेती की जाय तो इसकी पैदावार २० मन प्रति एकड़ तक उतर आती है. किन्तु साधारणतः औसत की दृष्टि से इसकी पैदावार १५ मन तक ही बैठती है

इसकी फसल में सू डी और कडुए नाम के रोग लगते देखे गए हैं, जिनका कारण रोगीले बीजों की बुवाई ही है. इनसे छुटकारा पाने के लिये अच्छे और उन्नति प्राप्त बीजो की बुवाई करनी चाहिए. जो लोग कीडे लगे बीज बो देते हैं वे भी पैदा-वार को बिगाड़ देते हैं. अत. अच्छे बीजो की ही बुवाई करनी चाहिए.



कपास

सभ्यता के आरम्भ से ही भारत भर में कपास उगाने का क्रम निरन्तर जारी है, किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि जो कपास आज से सैंकड़ों वर्ष पूर्व भारतीयों ने उपजाई थी, उतनी अच्छी कपास आज भारत भर में ही नहीं, संसार के किसी भी भाग में नहीं होती. वैसे तौल की दृष्टि से कपास आज भी भारत वर्ष में इतनी होती है कि संसार भर में इसका दूसरा क्रम है. भारतवर्ष की लगभग तीन करोड़ एकड़ भूमि पर कपास की खेती की जाती है, जिसमें से अधिकांश भाग हैदराबाद, मद्रास बम्बई, और मध्य प्रदेश में बोया जाता है. जिस समय भारत का प्रत्येक प्रदेश एक सूत्र में बंधा हुआ था, उस समय की बात तो और थी, और कपास की खेती बहुत अच्छी होती थी किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि देश का बटवारा हो गया और कपास का बहुत बड़ा क्षेत्र ऐसे हिस्से में चला गया जो भारत नहीं कहलाता. इस कारण से भारत में जितनी भी उपज कपास, की की जाती है, वह लगभग एक तिहाई भारतवासियों की ही आवश्यकता पूर्ण करती है. वैसे ५३-५४ में भारत सरकार के अत्यधिक ध्यान देने पर कपास की पैदावार पर्याप्त यात्रा में बढ़ी है, और उसके कारण भारतवासियों को पर्याप्त सुभीता हो गया है. चालू वर्ष में भी कपास की खेती बहुत जोर शोर से की जा रही है और आशा की जा रही है कि अब की बार इसकी मात्रा इतनी बढ़ जायेगी कि यह सारे भारतवासियों की आवश्यकता की पूर्ति

कर सके. भारत भर मे आजकल जहां जहां कपास की खेती वढ़िया तरीके से करने का प्रयास चल रहा है, उसमे मध्य प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि मध्य प्रदेश के क्षेत्रों पर वहुत वड़ी तादाद में कपास के अच्छे अच्छे उन्नतिशील परीक्षण किये गये जिनमें वहुत सफलता प्राप्त हुई. अभी भी सरकार की ओर से वड़ी वड़ी फसल प्रतियोगिताएं होती हैं, जिनमे नये, नये अनुसंधान किये जाते हैं और फिर उन अनुसंधानों के आधार पर अन्य स्थानों पर वढ़िया प्रकार की कपास पैदा करने की कोशिश की जा रही है. सन् ५१-५२ मे एक वहुत वड़ी फसल प्रतियोगिता मध्य प्रदेश में हुई जिस मे एक वहुत ही सफल किसान श्री रा. श्री खानझोड़े ने सोलह सौ सेर कपास प्रति एकड़ तैयार करके दिखाई, और कपास फसल प्रतियोगिता मे विजयी रहे. इस प्रकार से हम देखते हैं कि प्रतियोगिताएं वास्तव में कपास की पैदावार के लिये वरदान सिद्ध होती हैं, और उन प्रतियोगिताओं के द्वारा जिन नये परीक्षणों का सफल नतीजा प्राप्त होता है, किसानों को उन उन्नति शील तरीकों को अपना कर कपास की फसल को वढ़ाने मे सहयोग देना चाहिए, जिस से कि भारत अपनी ही कपास के द्वारा भारतवासियों की पूर्ति कर सके. वहुत से स्थानों पर तो कपास मुख्य पैदावार मानी गई है, जैसे अकोला मे कपास के द्वारा ही आमदनी का अधिकांश भाग राज्य को प्राप्त होता है. इसी प्रकार से अमरावती, वुलढाना, यवतमाल, वर्धा, निमाड और नागपुर आदि मे भी कपास की खेती वहुत ऊंचे पैमाने पर की जाती है. इन आस पास के क्षेत्रों में अकोला का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह कपास क्षेत्र वीचों वीच वसा है, और वैसे भी जो परीक्षण

कपास के इस क्षेत्र पर किये हैं, वे हर प्रकार से बहुत ही सफल परीक्षण रहे हैं.

नियन्त्रण अधिनियम

सन् १६५४ में मध्य प्रदेश राज्य विधान सभा की ओर से एक अधिनियम बनाया गया जिसका उद्देश्य राज्य में कपास की फसलें ठीक बनाये रखना, उन्नति प्राप्त किस्मों में मिलावट न होने देना और इसकी खेती को अच्छे ढंग पर वढ़ाना था. बहुत दिनों से भारतीय केंद्रीय समिति और भारत सरकार इस पर विचार कर रहीं थी कि कपास क्षेत्र को नियमित कर दिया जाय और उस क्षेत्र में बोने के लिए कपास की विशेष उन्नति प्राप्त जातियां निश्चित करदें. वास्तव में ऐसा करने से यह निश्चित ही था कि जैसी कपास जिस स्थान पर हो, उसका वैसा ही माल प्राप्त हो जाये क्योंकि इस अधिनियम से पूर्व एच .४२० और बुरी .०३६४ कपास पैदा करने वालों को बराबर कीमत नहीं मिल पाती थी इस कारण से सरकार ने कपास नियंत्रण अधिनियम बनाने पर विचार किया और कपास के ऊपर· किसानों ने जो विभिन्न प्रयोग और परीक्षण किये, उनके अनुसार सरकार का विचार है कि देशी जातियों में एच, ४२० और अमरीकी जातियों में बुरी, ०३६४ के लिए अमरावती, यवतमाल, निमांड और अकोला जिलों को संरक्षित घोषित कर दिया. बुरी ०३६४ के लिए निमाड जिले की, बुरहानपुर

तहसील में खाकनार रे .ई.सर्किल को संरक्षित क्षेत्र घोषित किया जाए. यही नहीं वरन देशी जातियों में न० ६१ और अमरीकी जातियों में बुरी. ०३६४ के लिए वर्धा और नागपुर के जिलों में संरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिया जाय. इसके लिए यह भी विचार है कि सब से पहले एम-५ए (मालिनी) को उन्नत करने के लिए बुलढाना जिले में स्थित चिखली नाम के क्षेत्र को संरक्षित क्षेत्र घोषित किया जाय और इस प्रकार ठीक स्थानों का चुनाव करके समस्त शेष क्षेत्रों मे भी जो जरोला जाति की कपास बोई जाती है, उसके स्थान पर एम, ५ (मालिनी) को ही बढ़ाया जाय. एक प्रस्ताव के अनुसार यह भी विचार किया गया है कि इसी नियंत्रण के अन्तर्गत एच. ४२० और बुरी.०३६४ के लिए छिंदवाड़े जिले की सौनसर तहसील और चांदा जिले की वरोहा तहसील को भी संरक्षित घोषित कर दिया जाय इस प्रकार जो प्रस्ताव तैयार किए गये हैं और जो विचार चल रहा है, उसके अनुसार यह कपास नियंत्रण अधिनियम सन १६५५-५६ मे लागू हो जाएगा और उसके लिए जो विशेष क्षेत्र निर्धारित किए गये है. उनकी भी अधिकृत घोषणा कर दी जायेगी. अतः कपास की खेती करने वाले किसानों को इन भारी सुविधाओं से पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए और साथ ही साथ उन्हीं जातियों को उन स्थानों पर बोना चाहिये जो वहां परीक्षित हैं और जिन जिन के लिए जो जो स्थान निर्धारित हैं, इस प्रकार से इस अधिनियम के पश्चात और भी बहुत सी ऐसी कमी हैं, जो शीघ्र लाभ के लिए सामने आयेगी, वास्तव में अधिनियम का लाभ तभी है जब कि कपास की खेती करने वाला प्रत्येक किसान अपना कर्त्तव्य समझ कर ठीक प्रकार से परिश्रम से कार्य करे.

भूमि का चुनाव —

भारत भर में दो प्रकार की कपास पैदा की जाती है. एक देशी और दूसरी विलायती. दोनों जाति की कपास के लिए पृथक पृथक प्रकार की भूमि होनी चाहिए अर्थात दोनों जातियों को वैसे तो एक सी ही भूमि मे बोया जा सकता है किन्तु थोड़ा अन्तर अवश्य पड़ता है, उसका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है. देशी कपास बोने के लिए मिट्टी काली हो और साथ ही साथ नरम और पोली हो क्योंकि कपास की खेती में यह विशेपता होती है कि यदि इसके खेत के भीतरी भाग में प्रकाश का प्रवेश न हो तो कपास अच्छी नहीं होती. यदि भूमि सख्त हो तो कपास को खराब कर देती है और यदि पोली न हो तो कपास की बाढ़ को कम कर देती है. वैसे काली मिट्टी के अन्दर कपास को ठीक पोपण देने के लिये लगभग सारे ही गुण विद्यमान रहते हैं किन्तु उसमें इन सभी गुणों के साथ एक अवगुण यह भी पाया जाता है कि यह मिट्टी इतनी सख्त होती है कि इसमें वायु और प्रकाश का प्रवेश नहीं हो पाता. लेकिन कपास को ठीक पोषण देने के लिए जितनी शक्ति काली मिट्टी में होती है अन्य किसी मिट्टी में नहीं होती. इस कारण से इसे अन्य किसी भी मिट्टी में नहीं बोया जा सकता. रही बात इसकी सख्ती की उसे परिश्रम से ठीक किया जा सकता है. भूमि के चुनाव के साथ ही साथ देख लेना चाहिए कि जिस स्थान पर खेती करनी हो वह स्थान ढालवां हो जिससे खेत में व्यर्थ का पानी रुकने की बिल्कुल सम्भावना न हो क्योंकि यदि कपास के खेत में पानी भरा रह जाता है तो लाख चेष्टायें करने पर भी कपास की खेती का संरक्षण नहीं हो पाता और

हानि का सामना करना पड़ता है. साथ ही साथ जहां तक हो इसके लिये ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए जहां गर्मी और धूप की कमी न हो क्योंकि धूप और गर्मी कपास को पोषण देने में वरदान सिद्ध होती है. किन्तु पाले से कपास की रक्षा आवश्यक होती है, इस कारण से यह भी देख लेना चाहिए कि उस स्थान पर पाले का जोर तो नहीं रहता. इसी प्रकार से अमरीकी या विलायती कपास के लिए भी भूमि का चुनाव कर लेना अत्यन्त आवश्यक है. देशी कपास तो फिर भी मिट्टी के थोड़े अन्तर होने पर पोषण पा जाती है, किन्तु यदि अमरीकी या विलायती कपास को उसके लिए बिलकुल उपयुक्त भूमि प्राप्त न हो तो विदेशी होने के कारण इसका भय बना रहता है. वास्तव में यह कपास बहुत ही कोमल प्रवृत्ति की होती है. इस कारण से भूमि के थोड़े अन्तर होने से ही संतुलन खो बैठती है. वैसे तो आम तौर पर इसके लिए भी काली मिट्टी ही उपयुक्त है, लेकिन काली मिट्टी के खेत को ठीक प्रकार से जुताई करके तैयार न किया जा सके तो इस अमरीकी कपास को आधी रेतीली भूमि या दुमट भूमि मे बोना चाहिए. क्योंकि इन दोनों प्रकार की भूमियों मे पर्याप्त पोलापन होता है और विलायती कपास इनमे अच्छा पोषण पा सकती है, साथ ही साथ इसके लिये भूमि का चुनाव करते समय एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि इसके खेत में ठीक प्रकार से सिंचाई का प्रबन्ध हो सके जिससे कि तनिक सी आवश्यकता पर भी इसे जल दिया जा सके अन्यथा जरा सी असावधानी से ही यह कपास प्यासी मर जाती है. अर्थात जिस स्थान पर इसकी खेती की जाये उस स्थान के आस पास पानी की ठीक और अच्छी व्यवस्था का होना आवश्यक है.

वैसे तो कुछ महीने ऐसे होते हैं जिनमें वर्षा के जल द्वारा पर्याप्त मात्रा में सिंचाई की जा सकती है, किन्तु विशेषतः ज्येष्ठ और वैसाख के महीने ऐसे होते हैं जिनमें खेत को पानी की विशेष आवश्यकता होती है क्योंकि प्रकृति के नियमानुसार इस समय वर्षा का अभाव होता है. अतः उस समय किसान के लिये संकटकालीन स्थिति होती है. यदि सिंचाई का ठीक प्रबन्ध करके उस समय किसान संकटकालीन स्थिति पर विजय प्राप्त कर लेता है तो निश्चित ही कपास उसकी होती है, अन्यथा जिस भूमि से पैदा होती है, प्यास से तड़प तड़प कर सदा सर्वदा के लिये उसी की गोद में सो जाती है, और खून पसीने से परिश्रम करने वाला विचारा किसान हाथ मलता रह जाता है. यह सब तो है ही किन्तु विशेष आवश्यकता इस बात की भी है कि कपास का खेत भीतर से भली प्रकार से तैयार किया हुआ हो अर्थात् आवश्वकता के अनुसार नम हो और इतना पोला तथा भुरभुरा हो कि कपास की कोमल जड़ें उस मिट्टी के अन्दर जिधर भी चाहें, स्वतन्त्रता से घुसती चली जायें. यदि इन जड़ों को बढ़ने में कोई भी बाधा दीखती है तो वे बढ़ना छोड़ देती हैं तथा वहीं रुक जाती हैं.

इस सब के कारण पैदावार को बड़ी हानि का सामना करना पड़ता है और इसके विपरीत जहां कपास की जड़ें मिट्टी के अन्दर अपनी इच्छानुसार पूरी तौर पर फैल जाती हैं वहां कपास की पैदावार बहुत ही अच्छी और बढ़िया उतरती है. भूमि का ढालवां होना तथा नम होना दोनों ही बातें आपस में विशेषतः सम्बन्धित हैं क्योंकि ढालवां होने से तो जो पानी

सींचा जायेगा अथवा वर्षा से आयेगा वह खेतों में होता हुआ ढाल की ओर वह जायेगा और मिट्टी की नमी उसको आवश्यकतानुसार खेच लेगी.

इस प्रकार कपास के खेत में जितने जल की आवश्यकता है उसकी भी ठीक प्रकार से पूर्ति हो जायेगी तथा जो वेकार का जल होगा वह भी किसी प्रकार से खेत में व्यर्थ ही खड़ा न रहेगा, वरन नीचे की ओर वह आयेगा. देशी तथा विलायती कपास को कभी भी एक स्थान पर एक ही खेत में नहीं बोना चाहिये, अन्यथा दोनों की ही जातियां बिगड़ जायेंगी और कपास पूर्ण रूपेण घटिया पैदा होगी, अतः भूमि की जातियों का चुनाव करते समय इस वात का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए कि देशी कपास के लिये बिल्कुल पृथक खेत चुना जाय, जिससे कि इनके मिश्रण की कोई सम्भावना न रहे.

खेत की तैयारी —

जैसा कि ऊपर वताया जा चुका है कि कपास के लिये काली मिट्टी अच्छी होती है, किन्तु इसमें सख्ती होती है जो कपास के खेत के लिए अभिशाप सिद्ध होती है. अतः इस सख्ती को समाप्त करने के लिए खेत की तैयारी अत्यन्त आवश्यक है. खेत को कपास के लिए तैयार करने के लिये सर्व प्रथम पहिली फ़सल काट लेने के पश्चात एक अच्छी गहरी जुताई कर देनी चाहिए, जिससे कि करीव २-३ फुट तक की मिट्टी खुद जाय, इसके पश्चात मिट्टी को फावड़े से अच्छी तरह से ऊपर नीचे कर देना चाहिए, ऐसा करने से मिट्टी में पोलापन आ जायेगा और वह इस योग्य

हो जाएगी कि इसमें खाद और रेत मिलाई जा सके. जिस समय इस प्रकार से मिट्टी पोली हो जाय तब उसमें पर्याप्त मात्रा में बालू का मिश्रण कर देना चाहिए. ऐसा करने से मिट्टी में भुरभुरापन आ जाता है और उसकी सख्ती बिल्कुल नष्ट हो जाती है. जिस समय कपास के पौधे यौवन की ओर बढ़ते हैं तो उसकी जड़ें बहुत ही आसानी से मिट्टी में इधर उधर फैल जाती हैं.

जिस समय खेत में यह जुताई की जाय और इसमें बालू मिश्रित की जाये उस समय बालू को खेत की मिट्टी के साथ एक-रस कर देना चाहिए, जिससे कि दोनों का अस्तित्व अलग-अलग न रहे और साथ हो जाय. ऐसा करने से खेती को बड़ा लाभ होता है.

जिस समय खेत की तैयारी की जाय उस समय जुताई के समय ही खेत में से कंकड़ पत्थर पूरी तौर पर साफ कर देने चाहिए, साथ ही साथ पुरानी फसल की जितनी भी जड़ें खेत की मिट्टी में रह गई हों उन्हें भी भली भांति साफ कर देना चाहिए. अन्यथा नई फसल में वह जड़ें हानिकारक सिद्ध होंगी. यही कारण है कि इसकी जुताई गहरी की जाती है और तत्पश्चात मिट्टी को फावड़े से ऊपर नीचे करने की आवश्यकता होती है. ऐसा करने से यह जड़ें भली भांति छांटी जा सकती हैं. मिट्टी में से जड़ें पृथक करने के बाद एक सीधा सा पाटा चला कर मिट्टी के छोटे बड़े ढेलों को तोड़ देना चाहिए, जिससे कि जड़ों को किसी प्रकार की हानि उस समय न हो सके जिस समय कि मिट्टी में इनका पनपने का समय हो. मिट्टी में रेत मिला देने के

पश्चात भी एक आध जुताई और कर देनी चाहिए, जिससे कि रेत और मिट्टी आपस में मिल भी जायें और साथ ही साथ मिट्टी को आवश्यकतानुसार धूप, वायु और प्रकाश प्राप्त हो जाए. इस जुताई से मिट्टी में फोकापन भी आ जाता है, जो अत्यन्त लाभदायक रहता है.

जिस समय खेत में बीज की बुवाई करनी हो उस समय से लगभग दो महीने पहले खेत को भली प्रकार से तैयार कर लेना चाहिए, जिससे कि बुवाई के समय किसी भी कठिनाई का सामना न करना पड़े. जिस समय जुताई कर देने के बाद खेत की मिट्टी में रेत का मिश्रण कर दिया जाय, उस समय एक हल्की सी सिंचाई कर देनी चाहिए जिससे कि बुवाई के समय आसानी रहे और खेत की मिट्टी पर्याप्त नम रहे. ऐसा करने से सारे खेत की मिट्टी एकसार हो जाती है तथा उसमें अन्तर नहीं रहता.

पूर्व की फसलें —

कपास की खेती करने वाले किसानों को यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी खेत के अन्दर निरन्तर प्रति वर्ष कपास की खेती करना नितांत अनुपयुक्त है. क्योंकि जिस खेत में एक बार कपास बो दी जाती है, तो तैयार होते होते कपास मिट्टी में से लगभग वे सारे तत्व खींच लेती है जो उसके लिए उपयोगी होते हैं.

इस प्रकार मिट्टी उसके उपयुक्त नहीं रहती. दूसरी बात यह भी है कि जिस समय कपास की फसल पकती है उस समय कपास पर जीवित रहने वाले कीटाणुओं का जोर हो जाता है

और यदि उसी खेत में दूसरे वर्ष पुनः कपास बो दी जाती है तो निश्चित ही वे कीड़े अधिक बढ़ जाते हैं और कपास की फसल को बहुत हानि पहुंचाते हैं. जिन खेतों में निरन्तर कई वर्ष तक कपास बोई गई है वहां ऐसा देखा गया है कि हर वर्ष अधिक से अधिक परिश्रम करने पर भी कपास की पैदावार तो पर्याप्त मात्रा में घटती ही चली गई है, साथ ही साथ उसकी जाति भी घटिया प्रकार की हो गई है. इसका सबसे बड़ा कारण हमारे सामने स्पष्ट है कि कीटादि पहिली फसल में उत्पन्न हो जाते हैं, वे ही बढ़ कर दूसरी फसल को खराब कर देते हैं. अतः मिट्टी को शक्ति हीन होने से रोकने के लिये तथा खेत के विना बुलाये कीड़े मकोड़ों से वचाने के लिए सबसे अच्छा साधन यही है कि जिस खेत के अन्दर कपास बोई जाय दूसरे वर्ष कपास की खेती न करके अन्य चीजों की खेती की जाय. ऐसा करने से मिट्टी भी शक्तिवान वनी रहती है और पुनः वोई जाने वाली कपास भी अच्छी उतरती है.

वास्तव में कुछ फसलों की प्रकृति ऐसी होती हैं जिन्हें यदि किसी भूमि में वोया जाय तो वे फसलें भूमि के अन्दर ऐसी शक्ति उत्पन्न कर देती हैं, जो कपास को पोपण देने में वरदान की भांति और लाभदायक सिद्ध होती हैं. इनमें मूंगफली और कुलत्थ ऐसी फसल हैं जिन्हें यदि कपास वोने से पूर्व कपास के खेत में वोया जाय तो जिस समय कपास की खेती की जायेगी उस समय कपास वहुत ही अच्छी उतरेगी. वैसे इन दोनों फसलों के अतिरिक्त गेहूं, चना और सन भी इस प्रयोग में लाये जा सकते हैं. कुलत्थ और मूंगफली की फसलें तो इसके

लिये सर्वोत्तम हैं ही किन्तु इनके अभाव में सन, गेहूँ अथवा चने की फसल तैयार करके भी कपास के खेत को अच्छा बनाया जा सकता है.

उपयुक्त खाद —

कपास के अन्दर खाद देने के कई तरीके हैं. अर्थात कुछ खाद तो ऐसी होती हैं जो खेत की तैयारी के समय ही मिट्टी मे डाली जाती हैं, और कुछ ऐसी होती हैं जो कि उस समय प्रयोग में लाई जाती हैं, जिस समय कपास के पौधे कुछ बड़े हो जाते हैं, और कुछ उस समय काम मे लाई जाती हैं, जब कपास के पकने में थोड़ा समय रह जाता है. ऐसा इसलिये किया जाता है कि कपास को कई बार खाद की आवश्यकता होती है, एक बार मे दी गई खाद इसके लिये पर्याप्त नहीं होती है, तथा एक साथ ही बहुत सी दी जाने वाली खाद हानिकारक सिद्ध होती है और फसल को खराब कर देती है. कपास की खेती करने वाले को इस बात की पूरी पूरी जानकारी होनी चाहिये कि किस समय कितनी और कौनसी खाद कपास की खेती मे दी जाय, जिससे कपास को अत्यधिक लाभ हो सके, रासायनिक पदार्थों को खाद के रूप मे प्रयोग करने के लिए और अधिक सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि यदि ये खादें अधिक या कम रह जाती है तो इनसे लाभ नहीं होता, वरन ये हानिकारक ही सिद्ध होती हैं. अतः इनका प्रयोग करने के लिए बहुत ही सावधानी की आवश्यकता है. कपास की खेती मे पहिली खाद उस समय दी जाती है, जबकि खेत को तैयार किया जाय. जिस समय जुताई करने के बाद को

मिट्टी में रेत मिला दी जाय, उस समय खेत की मिट्टी में कम्पोस्ट की खाद या खूब सड़ी गली गोबर की खाद मिट्टी में डालकर अच्छी जुताई कर देनी चाहिये और इस खाद का पूर्ण रूपेण मिट्टी के साथ एक रस मिश्रित कर देना चाहिए, जिससे कि खाद के तत्व मिट्टी के सारे हिस्सों में मिल जायें. ऐसा करने से कपास के लिये शक्तिवान मिट्टी तैयार हो जाती है. फिर जिस समय बीज बोने का समय आये उससे लगभग आधा महीना पहले फिर खाद की आवश्यकता होती है, इसके लिये लगभग ३०० मन मूंगफली की खली को पानी में भिगो कर सड़ा लेना चाहिये और फिर लगभग सवा मन अमोनियम सल्फेट के साथ मिला कर इस मिश्रण को इतना ही प्रति एकड़ खेतों में डालना चाहिए. वास्तव में खाद के रूप में अमोनियम सल्फेट और मूंगफली की खली कपास की खेती के लिए सर्वोत्तम मानी गई है. देखा यह गया है कि अन्य खादों के मुकावले में यह सस्ती भी पड़ती हैं, और खाद के मूल तत्व नत्रजन की इसमें वड़ी मात्रा है. वैसे कपास की खेती में नत्रजन की आवश्यकता वहुत होती है. जब यह खाद खेत में दे दी जाय तो उसके वाद तुरन्त ही खेत में सिंचाई कर देना भी अत्यन्त आवश्यक है. ऐसा करने से यह यह जो खाद खेत में डाली जाती है मिट्टी में मिश्रित होकर मिट्टी को वह शक्ति प्रदान करती है, जिसके द्वारा कपास के पौधे पोपण प्राप्त करते हैं. और जिस समय इस सिंचाई के वाद यह पानी सूख जाय तथा मिट्टी कुछ कुछ नम भी रहे उस समय खेत के अन्दर वुवाई कर देनी चाहिये.

इस रीति से वीज वहुत जल्दी कुरे फेंक देगा. यह खाद देने का दूसरा ढंग यह भी है कि जिस समय वीज वोया जाय उस

समय साथ ही साथ खेत में खाद भी डाल दी जाय. ऐसा करने के लिए अच्छी व्यवस्था यह होती है कि पहले मूंगफली की खली और अमोनियम सल्फेट का मिश्रण कर लेना चाहिये. एक आदमी आगे आगे बीज बोता चले और दो आदमी उसके पीछे पीछे साथ ही साथ खेत में खाद डालते चले. यह खाद उसी खेत में डाली जाती है जिसमें कि बीज बोया गया है, ऐसा करने से एक बहुत बड़ा लाभ यह रहता है कि जो खाद इसके अन्दर डाली जायगी वह पहिली वर्षा का जल पाकर ही कपास के पौधों को शीघ्रातिशीघ्र बढ़ने में पूर्ण सहायता करेगी. कहीं कहीं पर जहां नई खाद के द्वारा नये परीक्षण किए गए हैं. उनमें से भी बहुत से किसानों को बड़े ही विचित्र अनुभव हुए है. सन १६५१,५२ मे तहसील अकोला के हिंगना निवासी श्री. रा. श्री. खानझोडे ने कपास फसल प्रतियोगिता में सर्वोत्तम फसल पैदा की. जिसके बारे के उन्होंने बतलाया कि उस फसल मे एक विशेष और विभिन्न खाद का प्रयोग किया गया था, जो खाद उन्होंने अपनी कपास की प्रतियोगिता वाली फसल में दी थी, वह इस प्रकार थी.

नमक का चूर्ण (बारीक)	२०० पौण्ड,
लकड़ी का भूसा (बारीक)	२०० पौण्ड,
बर्त्तन मांजने से निकली हुई राख	२०० पौण्ड,
मूत्र, मिट्टी, और बकरी की लेंडी (चूर्ण)	२०० पौण्ड,
मिर्ची (फोल, बीज, और डेंठ सहित) चूर्ण	२०० पौण्ड,
सूअरों की विष्टा (चूर्ण)	६०० पौण्ड,
नदी नाले की कपा (बारीक)	६०० पौण्ड.

जिस समय खेत की तैयारी की गई थी उस समय चार गाडी के लगभग मिश्रित खाद डालने के बाद यह खाद डाला गया था,

दो गाड़ी प्रति एकड़ यह डाल कर कूड़े-कचरे को बीन लिया गया था. अगस्त के आरम्भ मे आपने अपनी फसल में ३५० पौंड नदी नाले की कपा तथा ५० पौंड अमोनियम का मिश्रण भी डाला था. कपास की फसल में आपने कहा—"कुटी मिर्च की खाद, कपास, ज्वार और गेहूं को कितना गुणकारी है इसका सर्व प्रथम आभास मुझे तव हुआ जव कि मैंने कुछ हिस्से में उसे प्रयोग करके देखा, इसी प्रकार सूअर की विष्टा का प्रयोग और कपास में उसका गुणकारी होना मुझे तव पता लगा जव कि मैंने सूअर के ढेर के पास लगे कुछ कपास के पौधों की बहुत वढ़िया वाढ़ देखी. जैसा कि मैंने परीक्षण किया है उससे मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि यदि थोड़ा सा भी परिश्रम यह खाद तैयार करके अच्छे गले सड़े गोवर के खाद अथवा मिश्रित खाद के साथ किया जाय तो कपास की फसल और भी अच्छी और वढ़िया प्रकार की पैदा होगी.

इस प्रकार से श्री खानझोड़े ने जो नया और विचित्र अनुसंधान किया है, वह वास्तव में कपास की फसल के लिये एक वहुत ही लाभदायक वरदान के रूप में सिद्ध हुआ है. यदि कपास की खेती करने वाले अन्य किसान भी इसका परीक्षण करके देखें तो निश्चित ही उन्हें वड़ी सफलता प्राप्त हो सकती है, अतः उन्हें चाहिये कि वे पूर्ण परिश्रम करके नये अनुसंधानों को ध्यान में रखते हुए उनसे पूरा पूरा लाभ उठावे, जिससे कि कपास की खेती उन्नतिशील हो. वैसे तो यह पहिले ही वताया जा चुका है कि सन की खाद कपास की खेती के लिए वड़ी उपयोगी होती है. किन्तु कुछ नए परीक्षणों के द्वारा सन की खाद के कई प्रकार से प्रयोग

निकाले गये हैं. जिस समय रवी की फसल होती है, उस समय
खेत में सन बोकर उसके हरे पौधों को खाद के रूप में काम मे
लिया जा सकता है, किन्तु खरीफ की फसल मे यदि सन की खाद
इस प्रकार से काम में लाने की इच्छा हो तो बड़ी कठिनाई होती
है. मध्य प्रदेश के एक सफल किसान श्री वेडेकर ने रामपुरा में
कुछ प्रयोग करके ऐसे ढंग निकाले हैं जिनके द्वारा कपास की खेती
में सन खाद के रूप में ठीक प्रकार से काम मे लाया जा सकता
है. उन्होंने लगभग १० एकड़ खेत में १।। फुट के अन्तर से एक
चांस में सन और एक चांस में वुरी-०३६४ कपास बोया गया. इस
प्रकार से दो फुट चांसों में कपास और सन बोया गया, इस प्रकार
आधे मे कपास और आधे में सन की वुवाई हुई. यह कपास
अधिक शाखाओं वाली होती है और अधिक फैलती है. जब इसे
एक सप्ताह हो गया और कपास मे चार पत्तियां भी आ गई तब
कपास की खेती को लगभग ४० पौण्ड प्रति एकड़ के हिसाब
से अमोनियम सल्फेट दे दिया गया. तत्पश्चात एक डोरे के दोनों
और लोहे की पांस को कस दिया गया और दातो की जगह बबूल
की तरफ एक सिरे पर दांतों से कुछ लम्बे तेज किये हुये दो डंडे
लगाये गये. और फिर यह तेज डडे वाला डोरा इस प्रकार स
कपास के ऊपर चलाया गया जिससे कि कपास दोनों डडों के बीच
में आ गई. और इस प्रकार लगभग एक माह तक यह डोरा सन
और कपास की चांसों के बीच इस ढग से चलाया जाता रहा कि
अमोनियम सल्फेट ठीक प्रकार से कपास को प्राप्त हो गया.
साथ ही साथ कपास के खेत की निराई, गुड़ाई ठीक प्रकार से हो
गई. एक महीने वाद कपास लगभग घुटने घुटने तक की हो गई.
उस समय उन्होंने उसके पौधों को उखाड़ कर उस चास मे चारों

ओर फैला दिये, जहां कपास वोई गई थी. इस काम के लिये उन्हें मजदूर लगाने पड़े, जिससे कि सन भली प्रकार से फैला दिया गया क्योंकि सन की जड़ें भूमि से छूने पर पुनः पौधे को जीवित कर देती हैं, और फिर सन को गलने में अधिक देर लग जाती है. इसी कारण उन्होंने इसे इतनी अच्छी तरह फैलवाया कि सन के पौधे जड़ न पकड़ सकें, और शीघ्र ही खाद के काम में आ जायें. सन को इस प्रकार से गलाने से उनके खेत में कपास की चांसों की दूरी लगभग १-१ गज पर हो गई, जब उन्होंने यह सन फैलवा दिया, तो लगभग आधे महीने के वाद ४० पौण्ड प्रति एकड़ के हिसाव से खेत में अमोनियम सल्फेट पुनः डाल दिया गया. इस प्रकार श्री वेडेकर का कहना है कि यद्यपि खेत लगाते समय चांसों में २-२ फुट का अन्तर छोड़ा. तव भी उन्हें वुरी—०३६४ की कपास से लगभग २८८ पौण्ड प्रति एकड़ के हिसाव से कपास की वहुत ही उत्तम प्रकार की फसल प्राप्त हुई. इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि किसान इस प्रकार भी ठीक प्रयोग करके देखे तो उन्हें पर्याप्त लाभ हो सकता है.

उचित सिंचाई —

कुछ वर्ष पूर्व किसान यही सोचते थे कि कपास के अन्दर सिंचाई होती ही नहीं, किन्तु वाद में कुछ खोज करने वाले किसानों ने यह प्रयोग करके देखा और घोषणा की कि कपास की सिंचाई भी की जा सकती है तभी से इसमें भी सिंचाई की जाती है.

वास्तव में कपास की पैदावर क्योंकि काली मिट्टी में सर्वोत्तम होती है, और काली मिट्टी सख्त होती है अतः यदि

इनमें ठीक सिंचाई करके कपास की पैदावर की जाय तो और भी अच्छा रहता है, इसमे पानी बहुत अच्छ ढंग से देना चाहिए, जिस से कि केवल आवश्यकता की ही पूर्ति हो और बेकार पानी अधिक मात्रा मे न भरा रहे, विलायती कपास ठीक ढंग से सिंचाई करके लगभग १००० सेर कपास प्रति एकड़ प्राप्त की गई हैं, जबकि पहिले इतनी अच्छी खेती नहीं हो पाती थी, अर्थात खेती ५०० प्रतिशत बढ़ी जहां पर सिंचाई की व्यवस्था अच्छी हो सके, वहां कपास के बीज को मई के तीसरे सप्ताह में बो देना अच्छा होता है, ऐसा करने से वर्षा शुरू होने तक कपास के पौधे लगभग आधा फुट ऊंचे हो जाते है, वैसे गर्मियों के अन्दर जहां पर कपास बोनी हो वहां यह बुवाई जल्दी से जल्दी कर देनी चाहिये, फिर सितम्बर के अंतिम दिनों तक इस फसल में पानी की कोई आवश्यकता नहीं होती, जिस समय पौधे कुछ कुछ मुरझाते से दृष्टिगत हों उस समय यह समझ लेना चाहिये कि मिट्टी को पानी चाहिये, उस समय लगभग १०-१० दिन के बाद फसल की ३-४ बार सिंचाई कर देनी चाहिये. जिन खेतों में सिंचाई करनी हो उन खेतों के पौधों मे पर्याप्त अन्तर रख देना चाहिये और उन्हें खाद की भी अधिक आवश्यकता होती है, अतः खाद भी अधिक देना चाहिये, इसमे कोई सन्देह नहीं कि कपास की सिंचाई कहीं कहीं ही की जाती है, किन्तु यह भी एक कटु सत्य ही है कि सिंचाई करके कपास की पैदावार मे अप्रत्याशित लाभ होते देखा गया है. अतः कपास की खेती करने वाले किसानों को सिंचाई करनी चाहिये, इसके लिये एक बात ध्यान रखने की है कि बीज वर्षा आरम्भ होने से लगभग आधा महीना

पूर्व ही बो देना चाहिये, और फिर जब वर्षा आरम्भ हो तो उस जल से ठीक प्रकार से उसका पोषण करना चाहिये. जिन महीनों में गर्मी पड़ती हैं और वर्षा भी नहीं होती उन महीनों में सिंचाई के लिए ठीक व्यवस्था कर लेना अत्यन्त आवश्यक है. इसके लिए यदि खेत के आस पास कुए, तालाब पोखर आदि हो तो बहुत अच्छा है, किन्तु यदि इसका अभाव हो तो वर्षा के दिनों में वर्षा के जल को बड़ी बड़ी खाई खोद कर एकत्रित कर लेना चाहिये, और जिस समय कपास पानी मांगे उस समय ढेकली की सहायता से नालियां बनाकर आवश्यकतानुसार कपास की सिंचाई करनी चाहिए. खेत का ढलाव जिस ओर हो यदि उस ओर ही गढ़ा बनाया जाये तो अधिक उत्तम रहता है, क्योंकि वर्षा के दिनों में जो जल खेतों में से बह कर जाएगा उसके साथ ही खेत में से खाद का भी पर्याप्त अंश बहकर चला जायेगा, और जो पानी गढ़े में एकत्रित होगा वह खाद के मिश्रण से खादमय बन जायेगा, तथा जब कपास के खेतों में उसी जल की सिंचाई की जायगी, तो वह पैदावार के लिए साधारण पानी से कहीं अधिक लाभदायक सिद्ध होगा, इस प्रकार से की गई सिंचाई नया किसानी प्रयोग है.

उन्नति प्राप्त बीज —

कपास की वास्तव में सैंकड़ों जातियां होती हैं जो पृथक पृथक फल देती हैं. बीज का चुनाव करते समय सर्व प्रथम सावधानी तो यह रखनी चाहिए कि खेत की मिट्टी में कौन सी जाति की पैदावार उपयुक्त होगी और यह देखना चाहिये कि किस जाति

को उपजाने के लिए पूरे पूरे साधन प्राप्त हैं, यदि वहीं पर पहले भी कपास की खेती की गई हो तो यह देख लेना चाहिये कि वहां क्या फल कौन सी जाति ने दिया है, उसी के अनुसार बीज का चुनाव करना चाहिए.

अनेकानेक बड़े बड़े क्षेत्रों पर नये अनुसंधानों के द्वारा जो परीक्षण किये गये हैं उनके द्वारा बहुत सी नई और उन्नति प्राप्त जातियों का निर्माण किया गया है. ये जातियां अनेक रूप से लाभकारी सिद्ध हुई हैं, अत. अपने खेत की मिट्टी के अनुसार हर किसान को इन उन्नति प्राप्त जातियों मे से अच्छे बीज चुन कर अपने खेतों में बोने चाहिए. उत्तर प्रदेशीय सरकार ने अनुसंधान के द्वारा पिछले कुछ वर्षों में जो उन्नति प्राप्त बीज तैयार किये हैं, उनमें से न० ४०२, बाई २० और अलीगढ़ १६ बहुत ही अच्छे माने गए हैं उत्तर प्रदेश की जमीन पर इन बीजों के द्वारा बहुत अच्छी कपास की खेती की जा सकती है, ये बीज दुमट या हल्की दुमट मे बहुत अच्छी और बढ़िया पैदावार देते हैं. ये बीज किसानों को सरकारी कार्यालयों से ही प्राप्त करने चाहिएं, ये बीज वहां की भूमि के लिए अच्छी पैदावार देने वाले शुद्ध और सर्वोत्तम सिद्ध हो चुके है. बीजों की शुद्धता स्थिर रखने के लिए और पैदावार की वृद्धि के लिए कपास को अकेली ही बोना चाहिए, किसी अन्य फसल के साथ नहीं बोना चाहिए. मध्य प्रदेश सरकार ने भी अनेकानेक स्थानों पर बड़े परीक्षण करके कपास के उन्नति प्राप्त बीजों का अनुसंधान किया है, जो वास्तव मे बड़े ही अच्छे ढंग से सफल हुए हैं. जिन जातियों को सर्वोत्तम माना गया है वे बुरी-०३६४ और एच-४२०

हैं. जो इस क्षेत्र में बहुत अच्छी पैदावर देने वाली हैं. यदि इनका प्रयोग बड़ी मात्रा में किया जाय तो ये अत्युत्तम रहेंगी ऐसा सरकारी विभाग का मत है. बुरी-०३६४ जो कपास की उन्नति प्राप्त जाति तैयार की गई है इसके लिए सर्वोत्तम खेत नागपुर, वर्धा, और अमरावती के जिलों में हैं क्योंकि इसके लिए उपयुक्त भूमि भारी काली मिट्टी वाली होती है, जो इस क्षेत्र में बहुतायत से ही नहीं है वरन हर खेत की मिट्टी केवल ऐसी भारी ही है. इस जाति में ठीक प्रकार से सिंचाई भी की जा सकती है जो अत्युपयुक्त सिद्ध हुई है. जो बाहर के देशों की कपास है उसे यहां के यवतमाल जिले के प्रक्षेत्रों पर परीक्षण कर के देखा जा रहा है. यदि ये परीक्षण सफल हो गए तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह बड़ी अच्छी और बढ़िया प्रकार की फसल देने में सफल होगी. मध्य प्रदेश में जो बुल्ढाना जिला है इसके खेतों में विशेषतः जरीना जाति की कपास बड़ी सफल सिद्ध हुई है. लेकिन वहां पर और भी उन्नति की हुई जाति बरनार १६७-३ इससे भी अच्छा फल दे रही हैं. यह जाति खान देश से प्राप्त हुई है. इसके साथ ही साथ बुल्ढाना के खेतों के लिये आजकल एम ५-१ जाति भी अधिक प्रचलित होती जा रही है. इससे पर्याप्त अच्छी और संतोषजनक फसल प्राप्त हुई है. शेष सभी क्षेत्रों में सर्वोत्तम फल देने वाली जाति एच ४२० है. यह बहुत अच्छी पैदावार देती है तथा इसके रेशे भी बढ़िया और बड़े होते हैं. मध्य प्रदेश में इसका चलन दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है, अब तक इस कपास को जहां जहां भी बोकर देखा गया है, वहां वहां निश्चित रूप से किसान

को लाभ ही हुआ है और यही कारण है कि उस क्षेत्र के लिए मध्य प्रदेशीय सरकार की ओर से भी इस जाति की अच्छी सिफारिश की गई है. पहिले उत्तर प्रदेश में मनुवा नाम की जाति वोई जाती थी. जिसकी फसल एक वर्ष तक खेत में खड़ी रहती थी. साथ ही साथ इसकी पैदावार घटिया और कम होती थी, उत्तर प्रदेश की भूमि पर जो नये अन्वेषण किये गये उनमें अलीगढ़ नम्बर १९ बहुत ही अच्छी जाति है, वैसे भी उन्नति प्राप्त बीज बढ़िया तथा अधिक पैदावार देते हैं.

वीज वुवाई —

जिस समय वीज-भंडारों से या कृषि विभाग के अधिकारियों से कपास का वीज प्राप्त किया जाता है, उस समय यह वीज तुरन्त ही वो देने योग्य नहीं होता है, क्योंकि इसके चारों ओर रेशे चिपके रहते हैं, और वुवाई से पूर्व इन रेशों को हटा देना अत्यन्त आवश्यक है. ऐसा करने के लिए वीज को रेत में या गोवर में रगड़ना चाहिए, जिससे कि इसके रेशे छूट जायें और वीज के दाने निल्कुल अलग हो जाएं. इसे वोने के लिए जिस समय खेत तैयार किया जाय उस समय क्यारियां और पंक्तिया इस ढंग से तैयार करनी चाहिएं, कि हर पंक्ति एक दूसरी से लगभग १ फुट की दूरी पर हो. इस अन्तर से पौधे भली प्रकार से फैल सकते हैं. कुछ जातियां ऐसी भी होती हैं, जिनकी पंक्तियों को १॥ फुट रखना चाहिए, तथा इन पंक्तियों में जिस समय वीज वोया जाय तो वीज का फासला भी एक दूसरे से ६ - १० इन्च का होना चाहिए.

पहले इसकी बुवाई छिटकवां रीति से की जाती थी किन्तु इस रीति से खेत की व्यवस्था ठीक नहीं रह पाती और खरीफ की फसलें अच्छी नहीं उतरती थीं. नये परीक्षणों के द्वारा जो पंक्तियों की व्यवस्था की गई है, उसी व्यवस्था के अनुसार इसकी बुवाई करनी चाहिए. कपास की बुवाई पंक्तियों में करने से पौधे समान दूरी पर रहेंगे और कोई अधिक दूर कोई अधिक पास न होंगे, इस से फसल बहुत ही अच्छी और एक ही प्रकार की उतरेगी.

जिस समय बीज को तैयार करके खेतों में बोना हो तो एक एक स्थान पर दो दो बीज बोने चाहियें, तथा किसी खुरपी की सहायता से उसे ढांप देना चाहिए. बीज को बोते समय यह ध्यान रहे कि बीज की बीज से दूरी ९ - १० इन्च के लगभग हो. ऐसा करने से बीज जिस समय कुरे फैंकेगा या जब पौधे बड़े हो जायेंगे तो उनकी जड़े ठीक प्रकार से और समान रूप में मिट्टी में फैल सकेंगी. बीज वैसे तो अकेला अकेला भी बोया जाता है किन्तु अच्छी खेती करने के लिए एक साथ दो-दो बीजों को बोना चाहिए. और जब पौधे उग आवे तो उनमें यह देख लेना चाहिये कि कौन सा पौधा स्वस्थ है और कौन सा निर्बल, तथा इस प्रकार खेत में से बढ़िया से बढ़िया स्वस्थ पौधों को छोड़कर समस्त निर्बल पौधों को जड़ से उखाड़ कर दूर फेंक देना चाहिये.

वास्तव में दो बीज इसलिये बोये जाते हैं कि यदि किसी प्रकार से एक बीज न उग सके तो दूसरा तो उगेगा ही. साथ ह यदि एक निर्बल पौधा उग आये तो उस पौधे को हटाया जा सके

तथा खेत में आवश्यकता से कम पौधे भी न रहे, इस तरीके से बुवाई करने में, इसमें कोई शक नहीं कि बीज अधिक पड़ता है, किन्तु यदि देखा जाय तो उस बीज की कोई कीमत नहीं जो कि उस स्वस्थ खेती की है जो ऐसा करने में पोषित होती है. वैसे जहां जहां छिटकवां बुवाई भी किसान करना चाहें तो उन्हें यह ध्यान रखना चाहिये कि बीज दो गुणा बोवें, तथा जब पौधो की बाढ़ आ जावे उस समय उनमें से निर्बल पौधों को निकाल कर फेंक दें और स्वस्थ पौधों को ठीक पोषण दें. ऐसा करने से कपास के जो पौधे खेत में शेष रह जायेंगे उन्हें फैलने का बहुत अच्छा स्थान प्राप्त हो जायेगा, और खेती अच्छी होगी. बुवाई करने से पहले बीज का परीक्षण कर लेना अत्यन्त आवश्यक है अर्थात बीज बहुत ही स्वस्थ होना चाहिए. साथ ही साथ यह देख लेना चाहिए कि वह घुना हुआ, व्याधिग्रस्त या कीड़ों से कटा हुआ तो नहीं है. यदि व्याधिग्रस्त बीज को बो दिया जायेगा तो निश्चित ही सारी की सारी फसल व्याधिग्रस्त ही उतरेगी और खेती करने वाले को लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़ेगी. यदि बीज कई जाति के आपस में मिल गये हों तो उन बीजों को जाति के हिसाब से पृथक पृथक कर लेना चाहिये, जिससे कि किसी प्रकार मिश्रित खेती न हो जाये. क्योंकि यदि कपास के मिश्रित बीजों की खेती की जाती है तो फसल खराब उतरती है.

उपज की हेर फेर —

कपास को एक ही खेत मे निरन्तर हर वर्ष नहीं बोना चाहिये. ऐसा करने से फसल अच्छी नहीं उतरती. मध्य प्रदेश मे वहा के वनस्पति शास्त्री ने कुछ परीक्षणों के आधार पर कपास की खेती

करने वालों को यह आदेश दिया है कि वे लोग तीन फसली हेर फेर किया करें, तीन फसली हेर फेर से तात्पर्य यह है कि जिस खेत में पहली फसल कपास की ली गई हो वहां दूसरी फसल ज्वार की तथा तीसरी फसल मूंगफली की ली जाये. ऐसा करने से वहुत ही लाभ होता देखा गया है. इन तीन फसलों का पृथक पृथक वर्णन इस प्रकार है.

कपास — जिस समय कपास की खेती की जाय उस समय यह ध्यान रखा जाय कि खेत को तीन वर्ष में एक वार वहुत अच्छी और गहरी जुताई करके वहां की मिट्टी में प्रति एकड़ दस गाड़ी के हिसाव से कम्पोस्ट या गोवर का खाद डाल दिया जाये. वीज जो वोया जाय वह वहुत ही उत्तम श्रेणी का तथा उन्नति प्राप्त होना चाहिए. क्योंकि उन्नति प्राप्त वीज १० से २० फी सदी तक अधिक अच्छी फसल देता है. मध्य भारत के कपास क्षेत्र में इसकी पैदावार लेने के पश्चात ज्वार और मूंगफली की हेरा-फेरी वहुत ही लाभकर सिद्ध हुई है. अतः इसका ध्यान रखना चाहिए. कई स्थानों पर दो फसली हेरा-फेरी अर्थात कपास के वाद ज्वार और ज्वार के वाद कपास भी करके देखी गई. किन्तु यह परीक्षण सफल नहीं हुआ और कपास में व्याधियों की वृद्धि हुई, कमी नहीं हो सकी. अतः इस प्रयोग को असफल माना गया.

वीज को वोने से पूर्व यदि मई के महीने में उसे पतले थर में अच्छी धूप में भली प्रकार फैला कर डाल दिया जाय तो उसमें जो भी कीड़े और इल्लियां आदि लगे होते हैं, धूप की तीव्रता से जल कर नष्ट हो जाते हैं, इसके पश्चात वीज को फटक कर साफ

किया जा सकता है. जितनी भी देशी जाति की कपास के बीज हों उन्हें ऐसी पंक्तियों में बोना चाहिए जिनका अन्तर १८ - १८ इन्च पर हो तथा बीज को इससे आधे अन्तर पर अर्थात लगभग ९ इन्च की दूरी पर बोना चाहिए. विदेशी जाति की कपास के बीज जिस समय बोयें तो यह ध्यान रखना चाहिये कि उनमें जो पंक्तियां बनाई जायें उनका आपस में अन्तर लगभग दो फुट हो, तथा बीज भी ९ इन्च के अन्तर पर बोया जाये. किन्तु जिस समय पौधे उग आवें तो पौधों के बीच का अन्तर पौधों को विरले करके एक फुट तक कर देना चाहिए. जिस क्षेत्र के खेतों में ३० इन्च तक वर्षा हो जाती हो वहां पर कपास की इस फसल को लगभग १५ सेर नत्रजन मूंगफली की खली के द्वारा या अमोनियम सल्फेट के द्वारा प्रति एकड़ पहुंचानी चाहिए क्योंकि इन खादों का प्रभाव भारी भूमि पर शीघ्र हो जाता है, इस दृष्टि से यह तरीका परीक्षणों के द्वारा बहुत उत्तम सिद्ध हो चुका है. यदि अमोनियम सल्फेट में आधी मात्रा सेन्द्रिय खाद की मिलाकर भी डाली जाय तो यह अधिक बढ़िया फसल देने का कारण बन जाती है, और खेती करने वालों को लाभ भी अच्छा दे देती है, उसका कारण यह है कि सेन्द्रिय पदार्थ अमोनियम सल्फेट में मिल कर कपास के लिये वरदान सिद्ध होते हैं.

ज्वार — कपास का जितना क्षेत्र हो उसमे हेर फेर के अन्तर्गत जो ज्वार बोई जाय, उसे सम्पूर्ण क्षेत्र के लगभग एक तिहाई भाग में ही बोना चाहिए, सम्पूर्ण खेत मे नहीं बोना चाहिए. जिस समय कपास की फसल उतरी हो उस समय खेत के अन्दर पहिले डाली गई खाद ज्वार के लिए पर्याप्त रहती है. अतः कपास काटने के बाद उसमे ज्वार की ही खेती सर्वोत्तम रहती है.

इसकी जो सुधारी हुई जातियां हैं उनमें सवनोर ई. बी. ३ और १२३ ए. ऐसी जातियां हैं, जिन्हें भारी भूमि पर बोया जा सकता है. वैसे हल्की भूमि पर चरी या दाने के लिए रामकेल जाति की ज्वार अच्छी रहती है. ज्वार के बीज की बुवाई करने से पूर्व कापर कारबोनेट दवा का कल्प कर लेना चाहिए. यह दवा एक मन ज्वार के लिए छटांक भर पर्याप्त होती है. फिर बीज ठीक ढंग से प्रति एकड़ देख कर बो लेना चाहिए. इसमें एक पंक्ति की दूरी दूसरी से लगभग डेढ़ फुट होनी चाहिये और पौधों का अन्तर इस से आधा या आवश्यकता के अनुसार एक आध इन्च बढ़ा लेना चाहिये. जिस समय इसके पौधे कुछ घने मालूम हों और फसल छोटी हो तो पौधों को विरल कर लेना चाहिये.

जिस समय इसका बीज बोया जाए उस समय खेत में लगभग ५ सेर प्रति एकड़ नत्रजन पहुँचाने के लिये मूंगफली की खली या अमोनियम सल्फेट डाल देना चाहिये. ऐसा करने से लगभग २५ प्रतिशत पैदावार बढ़ जाती है और भूमि ठीक प्रकार से बलवान भी रहती है. नत्रजन की यह मात्रा पूरी करने के लिए यदि आधी खाद बीज बोते समय और आधी खाद पौधों की बाढ़ आने पर डाली जावे तो पैदावार की ३० से ३५ प्रतिशत तक वृद्धि हो जाती है. इसके दानों को चुनने और संग्रह करने से पहले तेज धूप में अच्छी प्रकार से सुखा लेना चाहिए जिससे उसमें नमी न रह जाये.

मूंगफली — इन तीन फसलों की हेरा-फेरी में मूंगफली का बड़ा भारी स्थान है क्योंकि मूंगफली की फसल से जहां अच्छा

धन भी प्राप्त होता है, वहां इसकी फसल के बाद खेत कपास को ठीक प्रकार से पोषण देने के लिए तैयार हो जाता है, यही कारण है कि कपास से पूर्व मूंगफली की खेती की जाती है, मूंगफली की जो भी फलियां होती हैं, वे क्योंकि भूमि के भीतर लगती हैं, इस कारण से भूमि नरम और पोली होनी चाहिए.

इस लिए जब ज्वार की फसल काट ली जाय तो मूंगफली की फसल लगाने से पूर्व खेत में अच्छी तरह से हल चला देना चाहिये, तब मूंगफली की बुवाई करनी चाहिए. मूंगफली की जो उन्नति प्राप्त जातियां हैं उनमें रुमाल, जापान, और ए. के. १२ -२४ स्पैनिश पीनट ऐसी जातियां है जिन की फली छोटी होती हैं और भारी भूमि के लिए अच्छी रहती हैं, जहां भूमि हल्की हो वहां रुमाल, या स्पैनिश पीनट अच्छी रहती है. भारी जमीनों के लिये ऐ. के. ८-११ और ऐ. के. १० वाली जातियां भी अच्छी हैं, इनकी फली बड़ी होती हैं, और घरेलू उपयोगों मे अधिक काम आती हैं. जो छोटी फली वाली जातियां हों उन्हें बोते समय ६ - ६ इन्च की दूरी पर ऐसी पंक्तियों मे बोना चाहिए जिनकी दूरी १ - १ फुट हो तथा बड़ी फली वाली जातियों को १ - १ फुट अन्तर वाली पंक्तियों में १ - १ फुट की दूरी पर ही बोना चाहिए.

मूंगफली की फसल को भी लगभग १० सेर प्रति एकड़ नत्रजन पहुंचाने के लिये मूंगफली की खली या अमोनियम सल्फेट डालना चाहिए. ऐसा करने से मूंगफली की फसल अच्छी उतरेगी और साथ ही साथ भूमि कपास के लिये शक्ति-

वान बनेगी. ऊपर बताई गई मूंगफली की जातियां लगभग चार महीने में पक कर तैयार हो जाती हैं और बड़ी फली वाली जाति को पकने में लगभग साढ़े चार माह लगते हैं. पकने पर मूंगफली को भली भांति सुखा लेना चाहिए और फिर विक्रय के लिये भेजना चाहिए. जिस समय मूंगफली को बो दिया जाय, उस समय से लेकर फसल पकने तक उसकी पूरी पूरी पहरेदारी करनी चाहिए जिससे कि कोई हानि न हो.

पुनः कपास — इस हेरा-फेरी के पश्चात कपास के बीज को पुनः उसी खेत में बोने से बहुत ही अच्छी उतरती है, मूंगफली की जो खेती इससे पूर्व की जाती है उसका बड़ा लाभ यही है कि खेत कपास की पैदावार देने के लिये पूर्ण रूपेण तैयार हो जाता है, जो शक्ति दो वर्ष पूर्व ली गई कपास खींच लेती है. वह इस खेत में उत्पन्न हो जाती है.

निराई-गुड़ाई —

निराई करने से खेत की मिट्टी भीतर से पोली हो जाती है, और उसी समय आवश्यकता से अधिक बढ़े हुए निर्बल पौधे तो आसानी से उखाड़े ही जा सकते हैं. साथ ही साथ जो घास या अन्य पौधे कपास के साथ ही साथ उग आते हैं, उन्हें भी भली प्रकार से उखाड़ कर नष्ट किया जा सकता है. जिस समय खेत के अन्दर पौधे उग आवें उस समय उन्हें विरले करने की आवश्यकता होती है.

वर्षा के दिनों में जिस समय आकाश बादलों से बिल्कुल साफ हो उस समय खेत की निराई-गुड़ाई निरन्तर करते रहना चाहिये.

आज के युग में बड़े अच्छे २ यंत्रों का निर्माण हो चुका है, जिनमें निराई-गुड़ाई करने के लिये भी एक अच्छा यंत्र बनाया गया है. यदि किसान लोग इस यंत्र के द्वारा निराई-गुड़ाई करे तो निश्चित ही लाभ होगा. क्योंकि इन यंत्रों के द्वारा बहुत ही उन्नतिशील ढंग से खेत की निराई-गुड़ाई हो जाती है. किन्तु इन यंत्रों के द्वारा निराई-गुड़ाई उन्हीं खेतों में हो सकती है जिनमे पक्तियों के अन्दर कपास की बुवाई की गई हो. जिन खेतो मे छिटकवा बीज बोया गया है, उन खेतों मे खुरपियों के द्वारा निराई गुड़ाई की जा सकती है.

इस प्रकार की लगभग ३-४ अच्छी निराई-गुड़ाई खेत में पर्याप्त होती है. निराई-गुड़ाई करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि कपास की बाढ़ के समय जो आवश्यकता से अधिक और निर्बल पौधे बढ़ गये हों उन्हे उखाड़ दिया जाय. यह प्रकृति का नियम है कि जहां नम भूमि होती है वहां कुछ जंगली पौधे उग ही आते हैं, कोई कोई घास भी उग आती है, जो कपास के खाद्य में से भोजन बंटा लेती है, और इस प्रकार जहां कपास की जाति बिगड़ती है, वहां उसकी पैदावार भी आशा से कम हो जाती है. अतः निराई-गुड़ाई करते समय बहुत ही सावधानी के साथ जिस समय कपास के पौधों को विरला किया जाय, उसी समय इन बिना बुलाये महमान, जंगली-घास और पौधों को भी उखाड़ फैंकना चाहिये.

ऐसा करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि इन घास-फूस और पौधों की जड़ें मिट्टी मे भीतर न रह जाये. अन्यथा ये फिर उग आते है, अत. समूल उखाड़ कर फैंकना चाहिये.

चुनाई और औटाई —

जो कपास ठीक समय पर बो दी जाती है वह लगभग कार्तिक के महीने तक फूट आती है. उस समय खेत में कपास की चुनाई आरम्भ कर देनी चाहिए. जिस समय इसकी चुनाई की जाय, तब यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि सारी कपास एक ही जगह न रखी जाय, वरन बढ़िया एक जगह एकत्रित करनी चाहिए. इसके लिए सबसे सहल तरीका यह है कि जिस समय चुनाई के लिए खेत में जाये उस समय दो थैले पास होने चाहियें. एक थैले में बढ़िया और उत्तम प्रकार की कपास डाली जाय और दूसरे में शेष घटिया प्रकार की अर्थात जो व्याधिग्रस्त प्रतीत होती हो.

इस प्रकार जो बढ़िया प्रकार की कपास होगी वह एक जगह एकत्रित हो जायेगी. जो बढ़िया कपास हो उसे कभी भी शेष कपास के साथ नहीं मिलने देना चाहिए, अन्यथा सारी की सारी कपास के खराब होने का भय रहता है जो व्याधि-ग्रस्त या घटिया कपास एक जगह एकत्रित की गई है, उसे भी ठीक प्रकार से साफ करना चाहिये और जहां तक तथा जितना भी सम्भव हो उसे साफ करके कीट रहित कर लेना चाहिए, जिससे कि वह सूत निकालने का काम दे सके. जिस समय कपास, साफ हो जाए उस समय भी यह ध्यान रखना चाहिए कि ये दोनों कपास, आपस में न मिल पायें. इसके पश्चात पृथक-पृथक इन्हें भली प्रकार से सुखा लेना चाहिये. इसी प्रकार प्रति सप्ताह खेत में से कपास की चुनाई करनी चाहिये और ठीक प्रकार की कपास पृथक-पृथक एकत्रित करते रहना चाहिये. जिस समय कपास चुनी जाय

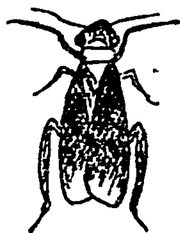
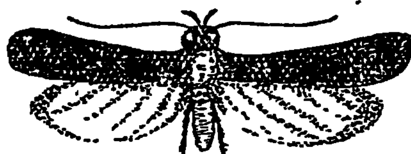
उसके बाद उसके लिये ओटाई का प्रबन्ध करना चाहिये. इसके लिये एक प्रकार की चरखी होती है, जिसके द्वारा वढिया प्रकार की ओटाई की जा सकती है. इसकी ओटाई करने के लिये या तो ओटाई की चरखी खरीद लेनी चाहिए, और यदि ऐसा न किया जा सके तो अपने ही किसी लोहार से बनवा लेनी चाहिये. ओटाई के द्वारा कपास का रेशा और बीज पृथक पृथक हो जाते हैं, और फिर रेशे को धुनवा कर रूई के काम में लाया जा सकता है.

पैदावार —

कपास की पैदावार सामान्यतः प्रति बीघा ५ मन के लगभग हो जाती है जिसमें से लगभग १ मन ३६ सेर के रेशा निकल आता है, और शेष बीज होता है, किन्तु एक बात निश्चित है कि कपास की पैदावार वास्तव में उसकी बीज की जाति और खेती करने के ढंग पर निर्भर रहती है, अर्थात यदि उत्तम बीज की उत्तम रीति से खेती की गई है तो पैदावार भी अधिक होगी और यदि ऐसा नहीं किया गया है तो पैदावार निम्न प्रकार की और कम होगी. इस प्रकार हम देखते हैं कि जितनी बढ़िया प्रकार की और अच्छे ढंग से खेती की जायगी, खेती के द्वारा प्राप्त की हुई रुई भी उतनी ही बढ़िया और अधिक निकलेगी. अतः अधिक आमदनी करने के लिए सावधानी से बढ़िया खेती करनी चाहिये, जिससे कि रुई निकलते ही किसान को तुरन्त लाभ होने की आशा रहे.

- + -

शत्रु और बचाव

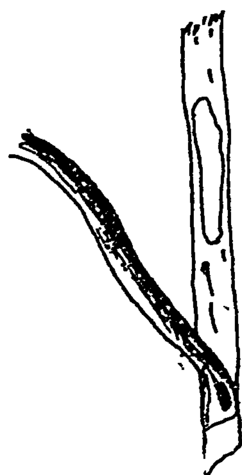
जिस समय कपास के पौधे छोटे छोटे होते हैं उस समय इसकी पत्तियों पर छोटी छोटी इल्लियां भी लग जाती हैं. जब तक ये इल्लियां अत्यधिक संख्या में न पहुँचें तब तक इनके ऊपर फुहारे द्वारा तम्बाकू का घोल छिड़कने से इनका नाश हो जाता है. ऐसा भी देखा गया है कि जड़ों में छोटे किस्म की कीड़ियां या दीमक लग जाती हैं जो कपास की जड़ को खा डालती हैं. और इस प्रकार पौधे मुरझाकर गिरने लगते हैं. इनसे पर्याप्त मात्रा में बचाव करना अत्यन्त आवश्यक है. इनसे संरक्षण करने के लिये जड़ों में रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए. किन्तु वे इतने हल्के हों कि जड़ों को जला न दें. जिस समय मिट्टी में मूंगफली की खली डाली जाय उसी समय उसमें नीम की खली भी मिला देने से इन कीड़ियों का नाश हो जाता है. और यह किसी प्रकार से भी कपास के पौधों को हानि नहीं पहुंचा सकतीं. कपास में एक प्रकार का लाल कीड़ा होता है. यह कहीं कहीं पर झगा, गठझाड़, वेहना, और चौंवा भी यह कहलाता है. इसका रंग सुर्ख

होता है, इसके नर की लम्बाई लगभग १२ मिलीमीटर और मादा की लम्बाई १५ मिलीमीटर होती है. इसके पंख झिल्लीदार से लाल होते हैं. इन पर जहां तहां काले काले धब्बे रहते हैं. इसकी पीठ पर पीले रंग की एक ढाल सी रहती है, पांव काले काले होते हैं तथा शरीर पर सफेद धारी सी होती हैं. मुंह का अंग ऐसा बना होता है, जो चुभोने और चूसने के लिये ठीक रहे.

यह लाल कीड़ा बहुत बड़ी तादाद में होता है. इसकी मादा मिट्टी में या गिरी हुई पत्तियों के नीचे अण्डे देती है, तथा अण्डों को इकट्ठा करके मिट्टी से या पत्तियों से ढक देती है, जिससे कि



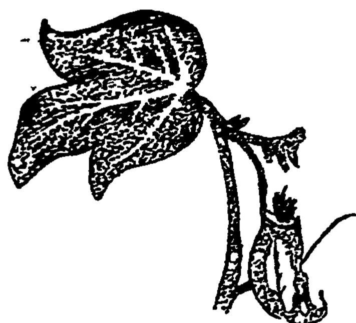
इनका संरक्षण रहता है. मादा का जो गर्भाशय होता है, उसमें लगभग २० अण्डकूप होते है, जिनमें लगभग १०० अण्डे रहते हैं. इसके अन्डे लगभग सफेद और पीले होते हैं. जो एक बार में १०० निकलते हैं. इनका आकार एक मिलीमीटर का होता है, और ये अण्डाकार तथा मुलायम से होते हैं जिस समय अण्डों का जन्म होता है तब ऊपरी हिस्से पर ये ढीले और मुलायम होते हैं, किन्तु बाहर की हवा लगने के तुरन्त बाद ये कठोर चमकीले और चिकने हो जाते हैं. जिस समय मौसम कुछ गर्माई लिये या नम होता है, उस समय लगभग एक सप्ताह मे पीले रंग के अंडे निकल आते हैं, जो कि अधिकांशत. कपास के फूल के आस पास चिपके रहते हैं, लगभग २२ घण्टे के पश्चात कीड़े अपना रंग बदल देते हैं और लगभग १॥ महीने में कुछ प्रौढ़ हो जाते है. इनका सारा ही जीवन का क्रम लगभग पौने दो माह से लेकर तीन माह



डंठल का कीड़ा



अण्डे



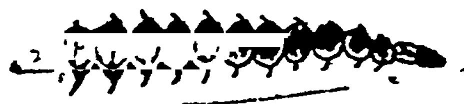
कीड़े द्वारा खाई गई शाखा



बौंड़ी पर आक्रमण



पत्तों पर माहो कीड़ा





कपास की इल्लियां

तक समाप्त हो जाता है, इसके अण्डे अगस्त से नवम्बर तक होते हैं, जो कीड़े अण्डे से निकलते हैं वे इनकी पत्तियों में छिपे रहते हैं और धीरे धीरे पत्तियों को चाट चाट कर खाते रहते हैं. अप्रैल से जुलाई तक ये कीड़े कपास की भिण्डी पर रहते हैं और जब मौसम में गर्मी आती है, उस समय अण्डा दे देते हैं. इस कीड़े में यह विशेषता है कि यह बहुत जल्दी पंख प्राप्त कर लेता है, जिस समय यह अण्डे से बाहर निकलता है उस समय इसके पर नहीं होते वरन वे बाद मे बनते हैं. यह कीड़ा कपास के लिए सबसे अधिक हानिकारक माना गया है. वास्तव में यह कपास के रेशे और बीज दोनों को ही नष्ट कर डालता है. इसकी आदत है कि यह कपास के गूलर पर बैठकर उसके रस को पूर्णतया चूस जाता है और इस तरह गूलर सूख जाता है तथा साथ ही साथ पौधों की बाढ़ भी कम हो जाती है, यद्यपि यह रेशे को खाता नहीं तथापि अपने मल-मूत्र से ही रेशे को खराब कर डालता है. इस कीड़े से बचाव करने के लिये सबसे पहले इसकी पैदावार को रोकना चाहिये और फिर जो कीड़े फसल पर लगे हों उन्हें मारना चाहिये, इसके लिये कुछ साधारण से तरीकों का हम संक्षेप में वर्णन करते हैं.

जिस समय कपास की फसल काट ली जाय उस समय खेत की तुरन्त गहरी जुताई करके मिट्टी को दो तीन बार उलट पलट कर धूप में सुखा देना चाहिए, जिससे कि इसके अण्डे और बच्चे धूप की तेजी से जल कर नष्ट हो जायें. खेत मे जितनी भी जड़ें प्राप्त हो उन्हें एकत्रित करके जला डालना भी बहुत उत्तम होता है, ऐसा करने से जो भी कीड़े कपास की जड़ों मे

एकत्रित हो जाते हैं, वह जल कर नष्ट हो जाते हैं और अगली फसल को कोई हानि नहीं पहुँचा पाते. जिस समय खड़ी फसल पर ऐसे कीड़े दृष्टिगत हों तो उन्हें पकड़ पकड़ कर एक स्थान पर एकत्रित करके नष्ट कर डालना चाहिए किन्तु यह तभी सम्भव होता है जबकि कीड़े अधिक मात्रा में न लग पाये हों, वरन थोड़े से हों, क्योंकि जब इनकी संख्या अधिक हो जाती है तो इन्हें पौधों से दूर करना कठिन ही नहीं, वरन असंभव सा हो जाता है, जिस पौधे पर बहुत ही अधिक ऐसे कीड़े लगे नजर आवें उस पौधे के नीचे एक बड़ी परात में मिट्टी का तेल और पानी मिला कर रख लेना चाहिए तथा पौधे को इस तरह से हिलाना चाहिए कि तमाम कीड़े छूट कर परात में गिर जायें. मिट्टी के तेल में यह शक्ति होती है कि वह इन कीड़ों को नष्ट कर दे. जहां थोड़ी खेती की जाती है वहां तो इस रीति से कीड़ों को नष्ट किया जा सकता है. जहां अधिक खेती की जाती है वहां खेत के चारों ओर भिण्डियां बो देनी चाहिए. ऐसा करने से कपास के कीड़े कपास पर न लग कर भिण्डियों पर लग जाते हैं और इस प्रकार कपास की रक्षा हो जाती है. वैसे यदि बोने से पहले कपास के बीज को गोबर और मिट्टी में भली भांति मल कर साए में सुखा कर पानी से भरे एक बड़े पात्र में डाल कर रखा जाए तो जो बीज व्याधिग्रस्त होगा या किसी भी कीड़े से प्रभावित होगा, वह पानी के ऊपर तैरने लगेगा. इस प्रकार जो बीज पानी के अन्दर बैठ जायें इन्हें साए में सुखा लेना चाहिए और जो बीज पानी में तैरने लगें उन्हें निकाल कर फेंक देना चाहिए. जो बीज ठीक प्रकार से बोये जाते हैं उन पर जल्दी से कीड़ों का आक्रमण नहीं हो पाता.

कपास के जिन पत्तों या फलों में किसी प्रकार की सूंडी या भांज लगी दृष्टिगत हों तो तुरन्त ही यह देखना चाहिये कि फल को खराब तो नहीं कर दिया गया है, यदि फल खराब न हुआ हो तो कीड़े को गिराकर अलग कर देना चाहिये. और यदि फल खराब हो गया है तो उसे तोड़कर जला देना चाहिए, जिससे कि कीड़े से लगी व्याधि अन्य किसी भी फल को किसी प्रकार से प्रभावित न कर सके. यही तरीका पत्तियों के साथ मे भी काम मे लाना चाहिए, ऐसा करने से कपास का पर्याप्त सरक्षण होता है और बढ़िया जाति की अच्छी कपास पैदा होती है और किसान को अपने परिश्रम का पूरा पूरा फल ठीक प्रकार से मिल जाता है. इनके अतिरिक्त डन्ठल का कीड़ा, पत्तों का माहो, फुदकने वाला हरा कीड़ा, बोंडी की गुलाबी इल्ली, पंखी और अन्य प्रकार की कई सूंडियां होती हैं, जिनसे कपास की रक्षा करने के लिये लाल कीड़े की भाति ही उपचार करना चाहिए और अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर इन शत्रुओं से फसल की रक्षा करनी चाहिए जिससे परिश्रम अकारथ न जाये.

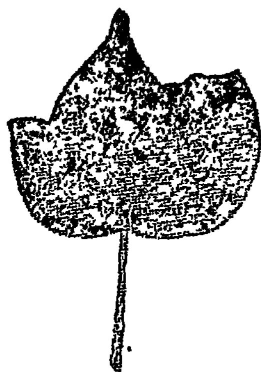


व्याधियां और रोकथाम



कपास में कहीं कहीं पर रोग भी लगते देखे गये हैं, जिनमें पत्र गलना और कवड़ी के रोग बहुत हानिकारक होते हैं. यदि बोने से पूर्व कपास के बीज को रोग-नाशक द्रव्यां मे डुबो लिया जाये तो यह रोग नहीं होता, इस रोग के बचाव के लिये बीज को बोने से पूर्व यदि इस पर फफूंद-नाशक औषधियों का लेप कर लिया जाता है, तो बहुत अच्छा रहता है.

वैसे पत्तों में जहां यह रोग लगे और पत्ते गलने लगें तो उन्हें तोड़कर बाहर फेंक देना चाहिये और यदि कवड़ी का रोग फूल में लगे तो बिनौले के ऊपर के रेशे को गन्धक के तेजाब से



जला देना अच्छा होता है. किसानों को सदा यह देखते रहना चाहिए कि खेती मे कहीं कोई रोग तो नहीं लग रहा क्योंकि कपास के रोगों को फैलते देर नहीं लगती और यदि यह सारे खेत में फैल जाता है तो फिर फसल नष्ट ही हो जाती है. जहां भी कहीं इसकी खेती मे रोग का पता लगे तो तुरन्त ही उपचार करना चाहिए और उसे अन्य पौधों मे नहीं लगने देना चाहिए. यदि किसी पौधे को रोग ने बुरी तरह से घेर लिया हो तो उसका लोभ छोड़ कर उसे और उससे प्रभावित आस पास के कुछ पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिए, जिससे कि खेत के अन्य पौधे सुरक्षित रहें और उन्हें वह रोग औरो की भांति न ग्रस ले. कहीं कहीं ऐसे रोग भी हो जाते है जिनके बारे मे खेती करने वालों को कोई ज्ञान नही होता. उसके लिये सर्वोत्तम ढंग यह है कि पास ही के कृषि-विभाग को उसकी तुरन्त ही सूचना दे देनी चाहिए, जिससे कि तुरन्त ही कोई कृषि-विशेषज्ञ वहां आकर उसके कारण की छान बीन करे तथा उस रोग का निदान हो सके. बाहर के देशों में हाल ही मे हुए नये अनुसंधानों के द्वारा ऐसे इन्जेक्शनों का भी निर्माण किया गया है, जिनसे पौधों की व्याधियां दूर की जा सके. यदि अधिक आवश्यकता अनुभव हो तो इन इन्जेक्शनों का भी प्रयोग किया जा सकता है. गूलरों को चुनने में जल्दी या देर नहीं करनी चाहिए.








कवड़ी-रोग से ग्रसित कपास

अर्थात जब तक वे पूरे न खिलें तब तक उन्हें चुनना नहीं चाहिए और जब पूरे खिल जायं तो उन्हें चुनने में विलम्ब नहीं करना चाहिए. उन्नत कपास को यदि अच्छे ढंग से बोया गया हो तो वह लगभग १५ मन तक की पैदावार दे देती है, जिससे ३५ से ४० प्रतिशत तक और कहीं कहीं तो ५० प्रतिशत तक रूई प्राप्त हो जाती है. यह मात्रा कपास की जाति और खेती के ढंग पर ही आधारित होती है. जितनी बढ़िया, परिश्रम से और नए ढंग से कपास की खेती की जायेगी उतनी ही अधिक प्रतिशत रूई की मात्रा उसमें से प्राप्त हो सकेगी.



गन्ना

हमारे देश के किसानों ने गन्ने की उन्नति पर इतना अधिक विचार नहीं किया है जितना कि अन्य देशों ने किया. हमारे सामने मारीशस और जावा दो ऐसे द्वीप हैं जहां पर प्राचीन काल में कोई गन्ने का नाम तक नहीं जानता था किन्तु केवल मात्र भारत से ही गन्ने की खेती सीख कर वहां के लोगों ने गन्ने की इतनी उन्नति प्राप्त जातियां उत्पन्न कर ली हैं कि उनके मुकाबले की बढ़िया जाति की चीनी, शक्कर आदि भारत आज तक नहीं बना पाया है.

इसका एक बहुत बड़ा कारण है, और वह यह है कि हमारे किसान कभी भी उन्नति की ओर बढ़ने का प्रयास नहीं करते थे या उन्हें इस प्रकार के बन्धनों में कस दिया गया था कि वे ऐसा कर ही न पायें. किन्तु आज देश स्वतन्त्र है और देश के किसानों का कर्त्तव्य है कि वे गन्ने की बढ़िया से बढ़िया जाति का निर्माण करें.

किसी खेत की भूमि में यदि थोड़ी भी सख्ती होती है तो गन्ने बहुत ही पतले और सूखे रह जाते हैं. कहीं कहीं पर तो ऐसा भी देखा गया है कि गन्ने सरकन्ने बन कर ही रह जाते हैं. अतः गन्ने की खेती के लिये सबसे अच्छा स्थान या तो वह होता है जहां हमेशा हर मौसम में अच्छी वर्षा होती रहे या वह क्षेत्र. ऐसा होना चाहिए जिसके ऊपर बड़े बड़े बर्फीले पहाड़ हों..

हिमालय की तराई की या ठंडे शहरों के आस पास की भूमि गन्ने की खेती के लिये सर्वोत्तम रहती है. जहां तक घूम कर देखा गया है कुमाओं की पहाड़ियों के आस पास का क्षेत्र और नैनीताल के निचले हिस्से का जो क्षेत्र तराई-क्षेत्र कहलाता है वहां गन्ने की खेती बहुत अच्छी होती है. सन ५२ व ५३ मे रुद्रपुर, बाजपुर, कीछा, काशीपुर, हल्द्वानी के आस पास जितनी भी खेती की गई उसमे बहुत अच्छी पैदावार हुई. वास्तव मे वहां पर बहुत ही अच्छे वैज्ञानिक ढंग से बड़े बड़े ट्रैक्टरो से भयानक जंगलों को साफ करने के बाद गन्ने की खेती की गई. इसके बाद ही उसमें अच्छापन प्राप्त हुआ. उसका कारण स्पष्ट है कि वहां की सारी जमीन तर है और वहां पर सिंचाई करने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं होती. गन्ने के जितने भी पेड़ और पौधे वहां पर लगाये जाते है वे अपनी जड़ों के द्वारा स्वत. ही भूमि से जल तथा भोजन पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त कर लेते हैं. कहने का तात्पर्य यह है कि भूमि का यदि अच्छा चुनाव किया जाय तो निश्चित ही गन्ने की फसल सफल हो पायेगी. और यदि अच्छी भूमि या उपयुक्त भूमि देखे बिना ही गन्ने की खेती की गई तो निश्चित ही असफलता के कारण निराश होना पड़ेगा. वैसे गन्ने की खेती के लिये सबसे बड़ी बात तो यह देखनी होती है कि वह भूमि गन्ने के योग्य शक्तिवान भी है या नहीं, क्योंकि निर्बल भूमि कभी भी गन्ने को पोषण नहीं दे सकती. निर्बल भूमि से अर्थ यह है कि उसके अन्दर खाद्य पदार्थो का अभाव होना.

गन्ने को इन पदार्थो की बहुत आवश्यकता होती है जिन के अभाव मे यह सपूर्ण नष्ट हो जाता है. अत खेत की शक्ति

को भली भांति देख लेना चाहिये जिससे कि गन्ने को ठीक पोषण देने के लिये वह सदा मजबूत रहे. एक बात यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि जिस भूमि का चुनाव किया जाय वहां वहता पानी तो नहीं जाता है. क्योंकि वहता पानी गन्ने को पूर्ण रूपेण गिराता हुआ आगे बढ़ जाता है, साथ ही साथ उसे जड़ से उखाड़ देता है. फिर भी अच्छी और बड़ी नदी और नहर के पास इसकी खेती बहुत ही उत्तमता से की जा सकती है. इसका भी एकमेव कारण यही है कि इन नदी और नहरों से भूमि को तरी तो मिलती ही रहती है साथ ही साथ यदि वर्षा का अभाव हो जाय या सूखा पड़ जाय तो नहरों और नदियों से सिंचाई की व्यवस्था की जा सकती है और इस प्रकार प्राकृतिक प्रकोप के कारण किसान को निराशा का मुंह नहीं देखना पड़ता. जिस मिट्टी में कीड़े मकोड़े या दीमक लगी हो उस मिट्टी की जुताई करके उसे धूप में सूखने देना चाहिए और इसी भांति कई वार उलट पलट कर सारी ही मिट्टी में धूप का पर्याप्त प्रवेश करा देना चाहिए.

इससे सारे कीट-पतंग पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं. जहां दीमक अथवा इन कीटों का आधिक्य हो वहां मिट्टी को गहरा खोद कर जला देना चाहिये और फिर जली हुई मिट्टी के नीचे उसकी दुगनी मिट्टी खोद कर जली हुई मिट्टी को उसमें मिला देना चाहिए. ऐसा करने से मिट्टी के अन्दर जो भी कीड़े मकोड़े या दीमक आदि होते हैं वह जल कर नष्ट हो जाते हैं, साथ ही साथ उस जली हुई मिट्टी को और मिट्टी में मिलाने से नत्रजन और चूना पर्याप्त मात्रा में उस मिट्टी में रह जाते हैं.

गन्ने की खेती के लिये खेत की मिट्टी में फास्फेट पर्याप्त मात्रा में होना चाहिये. फास्फेट जहां गन्ने में रस वढ़ाने का काम करता है वहां उस में मिठास भी अधिक मात्रा मे भर देता है. जिस खेत की मिट्टी में फास्फेट पर्याप्त मात्रा में होता है उस खेत का गन्ना वहुत ही वढ़िया प्रकार का पाया जाता है. दूसरे फास्फेट के अन्दर एक भारी गुण होता है कि वह मिट्टी मे विद्यमान पौधों के लिये उपयोगी अन्य तत्वों को शीघ्र काम मे आने योग्य वना देता है. इसी कारणवश जव मिट्टी मे किसी खाद की आवश्यकता होती है, तव फास्फेट की खाद देना अच्छा माना गया है.

जिस खेत में प्रथम वर्ष गन्ना वोया जाये, अगले वर्ष उस खेत में गन्ना नहीं वोना चाहिए, वरन लगभग दो वर्ष तक मूंग उड़द और अरहर आदि की दाले या मटर और चना वोना चाहिए. ऐसा करने से उसके वाद जो गन्ना इस खेत मे वोया जायगा उसकी उपज वहुत अच्छी होगी. वास्तव में वात ऐसी है कि गन्ना पूरे एक वर्ष तक खेत की मिट्टी मे से उपयोगी तत्व अर्थात फास्फेट को पूर्ण रूपेण चूस लेता है और इस प्रकार से खेत के अन्दर फास्फेट की कमी हो जाती है. यदि उसी समय उसमें पुनः गन्ना लगा दिया जाय तो फास्फेट की कमी से और अपने अन्य तत्वों को पहली फसल में गन्ने को चुसा देने के पश्चात निर्वल हुई भूमि खाद्य नही दे सकेगी तथा जो गन्ना लगाया गया है उसकी उपज वहुत ही कम रसहीन और घटिया प्रकार की होगी.

फलीदार पौधे इस खेत मे लगा देने से खेत की वह निर्वलता लगभग समाप्त हो जाती है क्योंकि इन्हे फास्फेट की आवश्यकता

नहीं रहती. दो वर्ष तक निरन्तर इन फलीदार पौधों को लगा देने के पश्चात खेत को पुनः तैयार करके उसमें गन्ने की खेती की जा सकती है. जिस समय गन्ने की फसल काट ली जाय उस समय खेत की जुताई करके उसमें जो भी गन्ने की जड़ें निकलें उन सबको एकत्रित करके जला देना चाहिए. ऐसा करने से उन कीटादि का नाश हो जाता है, जो गन्ने की जड़ों में आश्रय पाकर खेत और उपज को हानि पहुँचाने के लिए एकत्रित हो जाते हैं.

इन कीड़ों मकोड़ों को यदि पूर्णतः नष्ट नहीं किया जाता तो यह बहुत अधिक मात्रा में बढ़ जाते हैं और उस खेत में किसी भी प्रकार की खेती नहीं होने देते. जितनी भी गन्ने की जड़े होती हैं वास्तव में ये ही कीड़ों की आश्रयदाता होती हैं क्योंकि गन्ने की जड़ों में मिठास होता है जिसे कीड़े पसन्द करते हैं. यह कीड़े गन्ने के लिये बहुत हानिकारक होते हैं और यदि जीवित बच जाते हैं तो अगली फसल को पनपने नहीं देते और नष्ट कर देते हैं.

उन्नति-प्राप्त बीज —

भारतीय किसानों के लिए तीन प्रकार का गन्ना अच्छा माना गया है. इन तीनों जातियों में एक तो वह गन्ना होता है जो नवम्बर-दिसम्बर में पक कर तैयार हो जाता है, एक वह होता है जो जनवरी-फरवरी में पकता है, और तीसरा वह होता है जो मार्च में पक कर तैयार होता है. बहुत से किसान इनमें से एक ही प्रकार का गन्ना बोते हैं लेकिन ऐसा न करके तीनों प्रकार

का गन्ना बोना चाहिये. किन्तु तीनों प्रकार के गन्नों को बोना पृथक पृथक ही चाहिए. ऐसा करने से नवम्बर से मार्च के महीने तक पका पकाया चीनी के कारखाने के लिए निरंतर मिलता रहेगा. जो लोग एक सा गन्ना बोते हैं उनका गन्ना एक साथ ही पक जाता है, और इस कारण से कम पैसों से चीनी के कारखानों में एक साथ ही देना पड़ जाता है. इसकी बुवाई वास्तव में मिल की मांग पर रहती है, अर्थात गन्ने को ऐसे समय पर बोना चाहिए जिससे कि वह मिल के खुलते ही पका गन्ना मिल को दे सके.

खाद देना —

गन्ने की खेती मे खाद देने का बहुत बड़ा महत्व है, इसकी खेती पर जो धन व्यय होता है, उसमे से एक बड़ा धन का हिस्सा केवल खाद पर ही व्यय करना होता है. भारतीय भूमि मे हम देखते हैं कि नत्रजन नाम के तत्व की कमी है और इस कारण से उस कमी को पूरा करने के लिए खेत मे ऐसी खाद दी जाती है जिसमे नत्रजन हो. जैसे आम तौर पर गन्ने के खेतों मे खाद डाली जाती है उसमे लगभग २ गाड़ी प्रति एकड़ गोबर का खाद डाला जाता है, और इसी के द्वारा नत्रजन की कमी पूरी होती रहती है. वैसे गन्ने की खेती मे खली का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा मे किया जाता है. वास्तव मे नत्रजन की मात्रा खेतों में पहुँचाने के लिए बहुत ही सावधानी से काम करना चाहिए, क्योंकि यदि अधिक नत्रजन खेतों मे पहुँच जाता है तो खेतों में गन्ने की वाढ़ आ जाती है, किन्तु रस की कमी हो

जाती है, यही कारण है कि अब तक अधिकांश में गोबर और खलियों की खाद ही इसके खेतों में प्रयोग में लाई जाती रही है.

कुछ प्रयोगों के द्वारा यह भी पता लगाया लगाया है कि हल्की भूमि में नत्रजन अधिक से अधिक कितना डालना चाहिए. इसके अनुसार नीचे हम कुछ अत्यन्त लाभदायक खाद का वर्णन करते हैं. कहीं कहीं पर जहां भारी मिट्टी होती है, वहां मिट्टी की जाति के अनुसार ७५ सेर से लेकर २२५ सेर तक नत्रजन की मात्रा देने से पैदावार भी उसी अनुपात से अच्छी होती है. जिन स्थानों की भूमि हल्की या रेतीली दुमट हो वहां पर नत्रजन की मात्रा २०० सेर तक दी जा सकती है. लेकिन इससे गुड़ की मात्रा में कमी हो जाती है. इस लिए प्रति एकड़ इससे अधिक मात्रा नहीं दी जानी चाहिये.

यदि कहीं पर भूमि विशेष खराब नहीं है तो नत्रजन की यह मात्रा ७५ सेर प्रति एकड़ ही पर्याप्त है. गोबर की खाद को जहां तक हो पौध खाद, आमोनियम सल्फेट या खली की खाद के साथ मिलाकर देना अच्छा माना गया है. ऐसा करने से पैदावार तो अच्छी होती ही है, साथ ही साथ गन्ने में रस भी अधिक होता है और मिठास बढ़ती है. नत्रजन की पूर्ति के लिये खली की खाद लगभग १५० सेर प्रति एकड़ उपयोगी मानी गई है जिसमें दो तिहाई भाग तो थल खाद के रूप में बोने से पूर्व ही डाल देना चाहिये, तथा एक तिहाई भाग पौध खाद के रूप में उस समय डालना चाहिये जब कि गन्ने बढ़ जाएं. जब गोबर की खाद के ऊपर खली की खाद भी दी जाती है तो परिणाम और भी

अच्छा रहता है, वैसे खली के रूप में १३५ सेर दिया गया नत्रजन गोवर की खाद के रूप में १७५ सेर नत्रजन के वरावर होता है.

वैसे खलियों की दृष्टि से तिल, अरण्डी, राई, कन्जी, महुवा, विनौला अच्छी मानी गई है. लेकिन मूंगफली की खली सवसे सस्ती, और सर्वोपयोगी मानी गई है. इसका प्रयोग अधिक मात्रा में करना चाहिए. वैसे खलियों के साथ अमोनियम सलफेट मिलाकर देना भी अच्छा माना गया है. वैसे तो नाईट्रेट आफ सोडा भी प्रयोग में लाया जाता है, लेकिन उपयोगी नहीं है. नाइट्रेट आफ सोडा से अधिक उपयोगी अमोनियम सल्फेट पाया गया है. जव गोबर और खली की खाद को मिलाकर दिया जाय उस समय इसमे अमोनियम सल्फेट का मिलाना अति उत्तम होता है.

यदि खेती में सन का हरा खाद दिया गया है तो पौध खाद के तौर पर थोड़ा सुपर फास्फेट डालने से पैदावार अच्छी हो जाती है और साथ ही साथ गन्ना भी वढ़िया प्रकार का होता है. इसकी खेती में हरितान्श खाद का प्रयोग किया जाय तो पैदावार अच्छी हो जाती है. सन की हरी फसल का खाद गन्ने के लिए अत्यन्त उपयोगी माना गया है जो खाद ७-८ टन के लगभग खेत में दवाया जाता है वह लगभग ४५० सेर खली के वरावर होता है

हरी खाद का अच्छा फल होता है फसल में जो हरी खाद दी जाय यदि उसमें थोडा सा सुपर फास्फेट मिलाकर खली का पौध खाद भी दिया जाय तो अति उत्तम रहता है. जहां तक गोबर

की खाद का प्रश्न है यदि गन्ने के खेतों में एक रात में ७००० भेड़ों को रक्खा जाय तो उनकी मेंगनी और मूत्र आदि से जो खाद प्राप्त होता है वह लगभग ४०० मन गोबर के बराबर होता है.

कई स्थानों पर इसका परीक्षण करके देखा गया है और इस खाद को गन्ने की खेती के लिये अत्यन्त उपयोगी माना गया है, इस में कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार खाद देने से खेती की गुड़ाई करने का व्यय बढ़ जाता है किन्तु साथ ही यह भी निश्चित है कि गन्ना बढ़िया प्रकार का पैदा होता है, जिन खेतों की भूमि भारी हो वहां लगभग ६०० सेर मूंगफली की खली प्रति एकड़ थल खाद के रूप में डालनी चाहिए और फिर उतनी ही दो बार मार्च और जून में पौध खाद के रूप में डालनी चाहिए. वैसे पौध खाद के रूप में अमोनियम सल्फेट भी खली के स्थान पर दिया जा सकता है. इस प्रकार की खाद से पैदावार बहुत अच्छी होती है, जिन खेतों की भूमि हल्की हो वहां पर अच्छे प्रकार का गन्ना उत्पन्न करने के लिए ७५ सेर नत्रजन से अधिक नहीं डालना चाहिए. अन्यथा गन्ना घटिया प्रकार का होगा. जिन खेतों की भूमि भारी है वहां नत्रजन की यह मात्रा १०० सेर प्रति एकड़ से अधिक नहीं देनी चाहिए.

गन्ने की बुवाई —

भूमि को तैयार करने के पश्चात खेतों में नालियां तैयार कर लेनी चाहिए, तथा गन्ना लगाने से पहले मिट्टी में लगभग ४ मन प्रति एकड़ अमोनियम सल्फेट और उतनी ही रैन्डी की खली का मिश्रण डाल देना चाहिये. अमोनियम सल्फेट में खली का

मिश्रण करने के लिये सबसे अच्छा ढंग यह है कि खली को २४ घन्टे तक पानी में सड़ा लिया जाय, या उस का कम्पोस्ट बना लिया जाय. बीज बोने से पहले खेत की सिंचाई कर देना भी आवश्यक है. जो नालियां खेत मे तैयार की जाये उनकी दूरी लगभग एक-एक गज की होनी चाहिये. इस दूरी का प्रभाव गन्ने पर अच्छा पड़ता है क्योंकि जो गन्ना ठीक दूरी पर बोया जाता है, उसकी पैदावार तो कुछ कम होती है लेकिन वह बढिया प्रकार का होता है और मोटा होता है. जो गन्ना पास-पास बोया जाता है वह संख्या में तो अधिक होता है किन्तु घटिया और पतला होता है.

बुवाई के लिये गन्ने के टुकड़े लगाये जाते हैं, इस प्रकार के लगभग ५००० गन्ने एक एकड़ भूमि के लिये पर्याप्त होते है, यदि अच्छे प्रकार के टुकड़े लगाये जायें तो उनका तोल ४० मन के लगभग होता है. जिस प्रकार का गन्ना लगाया जाय आपस की दूरी उनकी मोटाई पर आधारित होती है, अर्थात मोटे गन्ने को थोड़ा दूर और पतले गन्ने को पास-पास लगाना चाहिये.

जिन नालियों में गन्ने के ये टुकड़े बैठाये जाये वहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि टुकड़ों मे बने अंखुऐ मिट्टी मे नीचे न दब जायें बल्कि ऊपर की ओर रहे, क्योंकि इन अंखुओ मे से ही कुल्ले फूटते हैं, और यदि अंखुए दब जाते है तो कुल्ले अच्छ नहीं फूट पाते. तत्पश्चात नालियों के आस पास की जितनी भी मिट्टी हो उसे डाल कर इन टुकड़ो को लगभग ४ इंच भूमि मे दबा देना चाहिये. खेतों के किनारो पर दीमक और पशुओं के आक्रमण का अधिक भय रहता है अत. वहां दुहरा बीज बोना

चाहिये. बुवाई के लिये खेत को भली-भांति तैयार कर लेना अत्यंत आवश्यक है, जिससे कि भूमि पूर्ण रूपेण इस योग्य हो जाय कि उसमें बोने के पश्चात शीघ्र ही कुरे फूट आयें. जहां खेत की तैयारी पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता, वहां उत्पादन तो खराब होता ही है साथ ही साथ मिट्टी भी आगे के लिये अधिक निर्बल हो जाती है और फिर गन्ने की खेती तो उसमें कई वर्ष तक नहीं की जा सकती.

इस प्रकार भली भांति तैयार किये गये गन्ने के खेत मे बुवाई के लगभग २२ दिन के पश्चात बीज अंकुर फेक देता है. एक बात ध्यान रखनी चाहिये कि कभी-कभी कुरा फूटने से पूर्व वर्षा हो जाती है और खेत की सतह पर पपड़ी जम जाती है. ऐसे समय में कांटा या तख्ता चला कर पपड़ी को तोड़ देना आवश्यक है, अन्यथा वह पपड़ी कुरों को ठीक प्रकार से नहीं फूटने देगी. जिस समय कुरा फूट आवे तब यदि वर्षा हो जाय तो उत्तम है ही, और यदि ऐसा न हो तो उसमें तुरन्त ही सिंचाई की जाय. उसके ४८ घंटे बाद लगभग ढाई इंच मिट्टी डालना आवश्यक है. ऐसा करने से खेतों की नमी कम नहीं हो पाती और ठीक प्रकार से स्थिर रहती है. ये ही वे दिन होते हैं जब कि खेतों में निराई की आवश्यकना होती है क्योंकि गन्नों के साथ ही साथ खेत मे कुछ घास फूस ऐसा उग आता है जो गन्ने के खाद्य पदार्थ में से हिस्सा बांट लेता है. निराई के द्वारा इस घास फूस को खेत से बिलकुल निकाल देना चाहिये. गर्मियों के दिनों में केवल निराई प्रातःकाल और सायंकाल ही करनी चाहिए जिससे कि धूप की तीव्रता खेत की सतह के भीतर प्रवेश न पा सके और भूमि की

आल न सूख जाय, इस समय जो जुताई की जाय उसमें अत्यधिक सावधान रहने की आवश्यकता है क्योंकि गहरी जुताई बीज को उखाड़ डालती है.

अतः इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि इसका फल किसी प्रकार भी खेत मे दो इंच से गहरा न जाय. कुछ किसानों को अंकुरों के ऊपर भी पट्टा चलाते देखा गया है, ऐसा करने से नए कुरे फूट आते हैं किन्तु यह उत्तम रीति नहीं, वरन अंकुरों को यों ही रहने देना चाहिए. गर्मियों में इस प्रकार की निराई बहुत ही लाभदायक रहती है और आवश्यकता को देखते हुए यह निराई तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि वर्षा-ऋतु आरम्भ न हो जाय, अर्थात जून के लगभग अन्त तक निराई अत्यन्त आवश्यक होती है, इसके पश्चात जब वर्षा होती है तो वर्षा का समूचा जल ठीक प्रकार से खेत के काम में आ जाता है तथा खेत की मिट्टी के तत्वों को इस योग्य बना देता है कि वह पूर्ण रूपेण गन्ने की जड़ों के द्वारा काम में आकर गन्ने की खेती को स्वस्थ्य बना दे.

मिट्टी चढ़ाना —

वर्षा आरम्भ होने से पूर्व निराई करते रहने के पश्चात एक महत्वपूर्ण कार्य होता है, तथा वह है मिट्टी चढ़ाने का. वास्तव में जिस समय वर्षा आरम्भ होती है तो गन्ने की जड़े भूमि से पर्याप्त मात्रा मे खाद्य सामग्री या जल प्राप्त नहीं कर पातीं, इस कारण से मिट्टी के ऊपर वाले जोड़ पर से जड़ें निकलनी आरम्भ हो जाती हैं. इन जड़ो पर तुरन्त ही मिट्टी चढ़ा देने की

आवश्यकता है, जिससे कि ये जड़ों की ही तरह भूमिगत रह कर पौधों का पोषण करती रहें. ऐसे समय पर यदि इन पर मिट्टी नहीं चढ़ाई जायगी तो पौधों की बाढ़ में कमी आ जाती है. मिट्टी चढ़ाने से पूर्व वर्षा होते ही खेतों में सात मन अरंडी की खली तथा डेढ़ मन अमोनियम सल्फेट का मिश्रण देना चाहिए.

खली को एक स्थान पर एकत्रित करके उसे पानी से पूर्ण रूपेण तर कर देना चाहिए और चार दिन तक यों ही पड़ा रखने के बाद अमोनियम सल्फेट मे मिला कर खेत में डालना चाहिए. इसे छिड़कते समय यह भली भांति ध्यान रहे कि इस मिश्रण को पौधों से लगभग ३-४ इंच की दूरी पर छिड़का जाय. यह मिश्रण देने के तीसरे दिन खेत में सिंचाई कर देना आवश्यक है. जिस समय इनकी यह सिंचाई कर दी जाती है इसके तुरन्त बाद खेत में लगाए गन्ने का रंग गहराई पर आ जाता है और बाढ़ चढ़ने लगती है.

जिस समय इन पौधों की बाढ़ का समय होता है तभी मिट्टी के ऊपर वाले गन्ने के जोड़ जड़ें फेकने लगते हैं. उस समय उस पर मिट्टी चढ़ाने की आवश्यकता अनुभव होती है. ऐसा करने से पहिले खेत की मिट्टी में एक हलका सा कल्टीवेटर चला कर खेत की मिट्टी को भुरभुरा कर लेना चाहिए, तत्पश्चात राइजिंग हल चला कर मिट्टी चढ़ाने का काम आरम्भ कर देना चाहिए.

जहां पर कुरा फूट आने पर भी वर्षा आरम्भ न हो वहां महीने में दो बार सिंचाई आवश्यक होती है और हर चौथे दिन मिट्टी चढ़ाने की आवश्यकता होती है. लेकिन इस कार्य में जब

जड़ों पर मिट्टी चढ़ती जाती है तो इनके पास की नालियां काफी गहरी हो जाती हैं. इन नालियों को भरने की कोशिश नहीं करनी चाहिए वरन यों ही रहने देना चाहिए. साथ ही साथ जब वर्षा हो तब इन नालियों के मुंह भी खोल देना अच्छा है, जिससे कि जो जल खेतों में आवश्यकता से अधिक आयेगा वह बह कर निकल जायेगा और गन्नों के पौधों को कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकेगा.

खेतिहर को एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये कि जब खेत की नालियों में से यह पानी बह कर बाहर जायेगा तो निश्चित ही अपने साथ खाद का पर्याप्त अंश बहा ले जायेगा. अतः इस खादमय जल को कभी बेकार नहीं जाने देना चाहिए, वरन चावल के खेतों में इसका बहाव कर देना चाहिए. ऐसा करने से चावल को बड़ा लाभ होता है.

जिस समय यह मिट्टी चढ़ाने का क्रम चल रहा हो उसी समय इस खेत में लगभग ४०० मन प्रति एकड़ के हिसाब से खली पुनः डाल देनी चाहिए. खली के अभाव में लगभग २॥ मन अमोनियम सल्फेट या ३ मन सुपर फास्फेट डालना भी अच्छा होता है. एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि खाद की यह मात्रा मिट्टी की शक्ति के अनुसार ही देनी चाहिये, अन्यथा हानि होती है. वास्तव में खाद के जो तीन तत्व प्रमुख होते हैं उनमें से गन्ने को पुटाश की अधिक आवश्यकता होती है. वैसे गन्ने की खेती के लिये नत्रजन तो आवश्यक है ही उसी के साथ साथ पुटाश और सुपर फास्फेट भी अत्यन्त आवश्यक हैं.

गन्ने की खेती में आवश्यकतानुसार खली की खाद और पुटाश मिट्टी चढ़ाते समय देने से बहुत लाभ होता है और गन्ना अधिक मीठा और रसयुक्त उत्पन्न होता है.

सिंचाई —

खेत की तैयारी के समय पहली सिंचाई तो तब करनी चाहिए जबकि बीज बोना हो और दूसरी सिंचाई बोने के लगभग आधा महीने बाद करनी चाहिए. ऐसा करने से अंकुर शीघ्र फूट आते हैं, सिंचाई ही गन्ने की खेती के लिये एक प्रकार से जीवन-दायिनी मानी गई है.

चावल को छोड़ कर गन्ने का जल-प्रिय होने का प्रथम क्रम है अर्थात गन्ने की खेती सिंचाई बहुत चाहती है लेकिन इतना जल-प्रिय होने पर भी गन्ने के खेत में यदि कहीं अनावश्यक जल भरा रह जाता है तो गन्ने की सारी की सारी फसल नष्ट कर देता है. अतः सिंचाई करते समय बहुत सावधानी की आवश्यकता है. जल केवल आवश्यकतानुसार ही दिया जाय उसमें न कमी पड़े और न ही अधिकता हो. गन्ने को जितने जल की आवश्यकता आरम्भ की तिमाही में होती है उसके बाद यह आवश्यकता दुगनी तक बढ़ जाती है.

यह ध्यान रखना चाहिये कि जब गन्ना अंकुर फेंक देता है उस समय वर्षा तो होती नहीं और गर्मी अधिक पड़ती है, ऐसे समय में तुरन्त ही ठीक प्रकार से सिंचाई करने की व्यवस्था कर दी जाये. यदि इस समय खेत को पानी न मिला तो गन्ना प्यासा मर जायेगा और लाख प्रयत्न करने पर भी पुनर्जीवित

नहीं हो पायेगा. अतः ध्यान रखना चाहिये कि जो नालियां खेत की तैयारी के लिये बनाई गई हैं उनमे हर तीसरे सप्ताह या आवश्यकतानुसार उससे पूर्व लगभग चौथाई फुट तक पानी भर देना चाहिए. जिस समय यह पानी सूख जाय तब मिट्टी चढ़ाने का क्रम और भूमि की गुड़ाई भी आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए. जहां की मिट्टी रेतीली होती है या भूमि बंजर होती है, उस मिट्टी को पानी की बहुत आवश्यकता पड़ती है. अतः भूमि का ठीक ध्यान रखकर उसमें जब और जितने पानी की आवश्यकता हो ठीक प्रकार से देते रहना चाहिए. वास्तव मे जो भूमि रेतीली होती है, वह पानी को जल्दी सोख लेती है और उसकी नमी सोख जाती है तथा जो भूमि बंजर होती है उसे सख्त होने के कारण नीचे के जल से कोई भी लाभ नहीं हो पाता. इसी कारण विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है. वर्षा ऋतु समाप्त होने के बाद जिन जिन खेतो में वैज्ञानिक रीति से सिंचाई की जाती है उन खेतों में गन्ने की पैदावार आशा से अधिक होती है. यहां तक कि डेढ़ हजार मन तक गन्ना प्रति बीघा होता देखा गया है. यदि सिंचाई का विशेष ध्यान रखकर साव-धानी के साथ गन्ने की खेती की जाय तो निश्चित ही खेतिहर को उससे बड़ा लाभ हो सकता है.

गन्ने का पकना —

साधारणतः लगभग एक वर्ष मे गन्ना पक कर तैयार हो जाता है, जिस समय यह गन्ना लगभग पकने पर होता है उस समय इसकी बड़ी देख रेख की आवश्यकता है. क्योंकि जब गन्ने के पौधे पर्याप्त लम्बे हो जाते है तो सावधानी न रखने पर खेत

की सतह पर गिर जाते हैं. इन्हें कभी नहीं गिरने देना चाहिए, क्योंकि गिरने के वाद इसके रस में फीकापन आ जाता है और साथ ही साथ रस भी कम हो जाता है जिससे कि जो चीनी आदि बनाई जाती है वह घटिया प्रकार की होती है.

गिरने से रोकने के लिये यदि दस दस या वीस वीस गन्ने चारों ओर से वांध दिये जाय तो गिरने से इनका वचाव हो सकता है. किन्तु कभी कभी जव वांधने से इनका गिरना न रुके तो उन्हें सहारे की आवश्यकता होती है. अतः उस समय उन्हें सहारा देने के लिये वल्लियां या वांस गाड़ कर काम चलाया जा जा सकता है. जिस समय गन्ना पक जाता है उस समय इसके जितने भी पत्ते होते हैं वे गन्ने से पृथक होने के लिये चारों ओर से फटने लगते हैं और उनका रंग पीला पड़ जाता है तथा गन्ने के ऊपर एक प्रकार की चमक और चिकनाई सी आ जाती है. तव ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसमें जवानी भर गई हो. जव गन्ना पक कर तैयार हो जाय उस समय भी जव तक इसे काट कर कहीं न भेजा जाय तव तक संरक्षण की वहुत आवश्यकता है अर्थात उस समय भी यदि उसमें आवश्यकता से अधिक पानी भरा रह गया तो सारी की सारी पकी हुई फसल को नष्ट होने में देर नहीं लगेगी.

वीमारियां और कीट पंतग —

जिस समय खेतों में गन्ना खड़ा होता है उस समय उसे अनेकानेक प्रकार के कीड़ों से भय रहता है. एक तो इसमें दीमक वहुत हानिकारक है जो भीतर ही भीतर गन्ने को खा डालती है

और जड़ों को नष्ट कर देती है जिसके कारण सारी की सारी खेती खराब हो जाती है. दूसरे कुछ कीड़े ऐसे होते हैं जो भीतर ही भीतर गन्ने को चाट चाट कर उसका रस चूस जाते हैं. जिस से गन्ना रसहीन तथा फोका हो जाता है और बहुत से कीड़े ऐसे होते हैं जो गन्ने के अन्दर आर-पार तक चाट चाट कर छेद बना डालते हैं. इन कीटादिकों से गन्ने की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है. यदि इन्हें नष्ट नहीं किया गया तो गन्ने की खेती बर्बाद हो जायगी.

बहुत से कीड़े ऐसे होते हैं जो गन्ने की किसी विशेष जाति को हानि पहुँचा पाते हैं. अतः फसल की जाति को बदल-बदल कर बोने से भी इन कीड़ों से पर्याप्त संरक्षण हो जाता है. ऐसा ही गन्ने की फसल के स्थान पर अन्य फसल बोने से होता है तथा गन्ने के कीड़े नष्ट हो जाते हैं और फिर जब गन्ना पुनः बोया जाता है तो उन कीड़ों का भय नहीं रहता.

जिस समय गन्ना बोया जाय उस समय बीज को देख लेना भी बहुत आवश्यक है अर्थात बीज बहुत ही स्वस्थ और व्याधि रहित होना चाहिये साथ ही यह भी देख लेना चाहिये कि उनमें कहीं कीड़े आदि तो नहीं लगे हैं, वैसे यदि बोने से पूर्व दो तीन दिन तक गन्ने के बीज को चूने के पानी मे भीगते रहने दिया जाय तो यह थोड़ा सा कीट-रहित हो जाता है. बहुत सी सावधानिया रखने पर भी यह देखा गया है कि गन्ना व्याधि-रहित नहीं रह पाता और उसमे कहीं न कहीं कोई बीमारी हो जाती है. कीट-रक्षा के हेतु किसान को अपने खेत में हर पौधे के पास जाकर यह देखना चाहिये कि कोई पौधा बीमार तो नहीं है. और यदि किसी पौधे को ऐसी हालत में

पावें तो उसे तुरन्त ही सावधानी से उखाड़ कर जला देना चाहिये क्योंकि गन्ने की बीमारी एक दूसरे के द्वारा बहुत जल्दी ही सारे के सारे खेत में फैल जाती है और इस प्रकार से पूर्ण खेती व्याधि ग्रस्त होकर नष्ट हो जाती है.

जहां कहीं इन पौधों पर कीड़ों के होने का पता लगे वहां भी तुरन्त ही पहुँच कर कीड़ों को नष्ट करने के उपाय करने चाहियें. यदि अच्छा तमाखू का घोल बना कर ठीक प्रकार से सावधानी के साथ इन पौधों पर छिड़का जाय तो इन पर लगने वाले कीड़े तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं. और भी कई अन्य प्रकार के घोल इन कीड़ों को नष्ट करने के काम में लाये जाते हैं, जिनमें साबुन, सोडा आदि मुख्य हैं.

नई खोजों के अनुसार यह भी देखा गया है कि गन्ने का कीड़ा मक्का को भी बहुत पसंद करता है अतः यदि गन्ने के चारों ओर खेत के किनारों पर थोड़ी सी पंक्तियां मक्का की बो दी जायें तो गन्ने को खराब करने वाले लगभग सारे ही कीड़े गन्ने को छोड़ कर मक्का में जा लगेगें. बहुत से स्थानों पर जहां इस का परीक्षण किया है अतीव सफलता प्राप्त हुई है, और गन्ने का पर्याप्त संरक्षण हुआ है. वैसे यदि बीज बहुत अच्छा और स्वस्थ बोया जाये तो गन्ने को जल्दी से कोई भी बीमारी नहीं लग पाती और वह स्वस्थ रहता है.

पहिले एक प्रकरण में निराई के ऊपर पर्याप्त जोर डाला गया है, उससे भी गन्ने का काफी बचाव हो जाता है क्योंकि गन्ने के अन्दर जो कीड़े आदि लगते हैं वे निराई के समय नष्ट हो जाते हैं और इस प्रकार गन्ना सुरक्षित तथा व्याधि और कीट-रहित

रह पाता है. यही बात सिंचाई के साथ भी लागू होती है, अर्थात बहुत से कीड़े पानी से ही मर जाते हैं, तथा बहुत से उस समय मर जाते हैं जब कि पानी के मिश्रण से मिट्टी में रहने वाले तत्वों मे गैस पैदा होती है. अतः सिंचाई और निराई का ठीक और अच्छा प्रबंध रखना चाहिये.

गन्ने की खेती में दीमक लगने का एक बहुत बड़ा भय बना रहता है जितने भी कीड़े गन्ने के लिये हानिकारक हैं उन सबमें दीमक ही सबसे बड़ा स्थान रखती है. इससे यदि गन्ने की रक्षा कर ली जाये तो यह समझ लेना चाहिये कि इसकी खेती पर्याप्त मात्रा में सफल उतरेगी, वैसे तो जो स्वस्थ बीज चूने में भिगो कर व्याधि-रहित करके बोया जाता है, इससे जल्दी से दीमक नहीं लग पाती लेकिन फिर भी इसका भय कम अवश्य हो जाता है, मिटता नहीं.

जिस समय यह पता लग जाय कि गन्ने में दीमक लग गई है तो जिस समय पौधों पर मिट्टी चढ़ाई जाये उसी समय थोड़ी थोड़ी नीम की खली डाल दी जाय तो दीमक नष्ट हो जाती हैं. दीमक नष्ट करने के लिये यदि मुर्गी और तीतर भी खेतों के अन्दर छोड़ दिये जाये तो यह चुन चुन कर दीमक को खा जाते हैं यदि यह भी उपलब्ध न हो पायें तो गोबर के कुछ उपले लेकर गीला करके ऐसे स्थानों पर रख देना चाहिये जहां दीमक ने छेद बनाये हों. ऐसा करने से दीमक सारी की सारी बहुत बड़ी मात्रा में उन उपलों मे एकत्र हो जायगी, उस समय दीमक को सामूहिक रूप से नष्ट किया जा सकता है. एक बात और भी देखी गई है कि इन दीमकों मे एक दीमक रानी होती है जो अन्य दीमकों से कुछ बड़ी

होती है. केवल इस रानी में ही बच्चे पैदा करने की शक्ति होती है. अन्य दीमकों में नहीं. अतः यदि सम्भव हो पाये तो जो भी दीमक रानी मिल जाये उसे तुरंत ही मार देना चाहिये. यह दीमक रानी लगभग एक लाख दीमक में एक होती है और प्रति दिन हजारों की संख्या में अण्डे देती रहती है. जब यह दीमक रानी मर जाती है तो भी दीमक का भय पर्याप्त मात्रा में कम हो जाता है. यदि सिंचाई करते समय नीम के पत्ते पानी में डाल दिये जायें तो इनके असर से तैयार होकर जो पानी खेत में जायगा उससे भी दीमक नष्ट हो जायगी. इस प्रकार दीमक से बहुत ही सावधानी के साथ गन्ने की खेती का संरक्षण अत्यंत ही आवश्यक है.

जहां गन्ने के ऊपर अन्य अनेक प्रकार के कीड़े दृष्टिगत हों उन्हें भी समय समय पर नष्ट करते रहना चाहिये. अर्थात उनके ऊपर, ऊपर बताये हुये छोल यदि ठीक प्रकार से छिड़के जाते रहे तो यह कीड़े भी मर जाते हैं. वैसे तो जितनी भी रासायनिक खाद गन्ने की खेती में प्रयोग में लाई जाती है इसके द्वारा भी यह कीटादिक नष्ट हो जाते हैं किन्तु फिर भी यदि यह खड़ी खेती के ऊपर लग ही जाये तो जब तक उन्हें नष्ट नहीं किया जायगा तब तक किसी प्रकार से भी अच्छी प्रकार की फसल की आशा मृग-तृष्णा मात्र ही रहेगी. अतः अपने परिश्रम का पूरा पूरा फल प्राप्त करने के लिये इन कीड़ों और व्याधियों से गन्ने के खेत की पूरी पूरी रक्षा करनी चाहिए, असावधानी नहीं छोड़नी चाहिए.

बहुत सी बार ऐसा देखा गया है कि गन्ने तने पर से मुड़ जाते हैं. कभी गोलाई में और कभी कोणात्मक भी हो जाते हैं. इससे वैसे तो गन्ने मे कोई दुर्गुण नहीं आता किन्तु इसमें भी

कोई संदेह नहीं कि जो गन्ने टेढ़े होते हैं, वढ़ना वंद कर देते हैं और इस प्रकार फसल को वड़ी हानि का सामना करना पड़ता है. जव कभी गन्ने में यह रोग उत्पन्न होता दीखे तो इन्हें या तो वांस का सहारा देकर वांध देना चाहिये, या गन्नों को आपस में मिला कर इस ढग से वांधना चाहिए कि एक टेढ़े गन्ने के पास ३-४ स्वस्थ और सीधे गन्ने हों ऐसा करने से यह वीमारी जाती रहती है.

नये नये परीक्षणों के द्वारा पृथक पृथक रूप से अनेकानेक ऐसे कीटनाशक द्रव्यों का पता लगाया गया है जिनसे वे कीड़े मकोड़ें गन्ने के पास नहीं आते जिनसे गन्ने को भय रहता है, इनमें दीमक तो गन्ने की खेती को विल्कुल नष्ट कर डालती है. अतः इन सव वातों का ध्यान रख खेती करनी चाहिये. हम नीचे कुछ ऐसे द्रव्य देगें जिनके घोल में एक दो दिन भिगोकर यदि गन्ने के टुकड़ो को लगाया जाय तो उसमें कोई कीटाणु नहीं लग पाते.

लगभग साढ़े वारह मन पानी में ५ पौन्ड नीला थोथा मिला कर घोल तैयार कर लेना चाहिए, और फिर गन्ने के स्वस्थ टुकड़ों को दो दिन तक उसमे भिगो देना चाहिये. पहले दस सेर पानी में डेढ़ सेर क्रूड आयल घोल कर इसका मिश्रण तैयार करना चाहिए. उसे क्रूड आयल इमल्शन कहा जाता है. जिस समय यह इमल्शन तैयार हो जाय तो इसमे से सवा सेर इमल्शन को साढ़े वारह मन पानी मे डाल कर घोल तैयार कर लेना चाहिए. फिर गन्ने के वीज को दो दिन पूर्व इसमे डाल कर भीगते रहने देना चाहिए.

लेड आर्सनेट नाम का एक विष होता है जिसे १० सेर पानी में आधा सेर घोल लेना चाहिए और फिर १२॥ मन पानी के

अन्दर घोल कर उसमें १२ घन्टे तक बीज क डाल लेना चाहिये. १० सेर पानी में जो लेड आर्सनेट डाल कर घोल बनाया जाय उसमें भी बीज को भिगोया जा सकता है किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि जहर तीव्र होता है, अतः गन्ने के टुकड़ों को ५ मिनट तक डूबने के वाद ही इस में से निकाल लेना चाहिए.

लेड आर्सनेट को प्रयोग में लाने की एक और भी विधि है वह यह है कि २ सेर चूना और १ सेर पैरीस ग्रीन या केवल ५ सेर चूने में लगभग आधा सेर लेड आर्सनेट डाल कर इतना पानी डाल लें कि वह पतला हो जाय और तत्पश्चात उसे अच्छी तरह मिला कर १२-१३ मन पानी में डाल देना चाहिये तत्पश्चात उसमें गन्ने के टुकड़ों को डुबो कर काम में लाना चाहिए.

गन्ने के टुकड़ों को ५ मिनट तक २।। प्रतिशत मर्करी क्लोराइड के घोल में डालकर निकाल लेना चाहिये. यह भी एक अच्छी विधि है. यदि तम्बाकू का अर्क या सैनीटरी फ्ल्यूर में भी गन्ने को डुबोया जाय तो अच्छा है. इसके लिये लगभग दो प्रतिशत का का मिश्रण तैयार करना चाहिये और गन्ने के टुकड़ों को केवल १ घंटे तक ही इस घोल में डालना चाहिये. तम्बाकू का अर्क निकालने के लिये लगभग एक गैलन पानी में आधा सेर तम्बाकू डालकर उसे एक घंटे तक अच्छी तरह उबालना चाहिये. तत्पश्चात उसे भली प्रकार से छान कर उसमें लगभग आधा पौंड किसी साबुन का चूरा डालना चाहिये, इसके वाद उसे पुनः औंटा कर ठंडा कर लेना चाहिये. किन्तु यह ध्यान रहे कि उपयोग में लाते समय उस मे ५-६ गुणा पानी और मिला दिया जाय.

यदि घोल में इन गन्ने के टुकड़ों को न भिगोना हो तो इन पर पैरीसग्रीन या लेड आर्सनेट का वारीक चूर्ण बुरकने से भी

अच्छा रहता है. क्योंकि ये दोनों द्रव्य विषैले हैं, इस कारण से कीड़े मकोड़े नहीं लगने देते.

एक और विप डाम्बर होता है, जिसे कोलतार भी कहा जाता है, उसे गर्म करके भली भांति पतला कर लिया जाय और गन्ने के टुकड़ों के दोनों छोर उसमें डुबो डुबो कर सुखा लिये जायें तथा सूखने के वाद इन्हें वो दिया जाय. इसके अतिरिक्त यदि मिट्टी के अन्दर वीज वोने से पहिले ३५ मन प्रति एकड़ कपास के पत्ते या २० मन प्रति एकड़ नीम की खली भली प्रकार से गाड़ दी जाय तो उस खेत मे दीमक आदि कीड़े लगने का भय नहीं रहता, और फसल का संरक्षण किया जा सकता है.

जिस समय गन्ने के पौधे कुछ बढ़ जायें. यदि उस समय दीमक के उत्पात का भय हो या दीमक लग गई हो तो क्रूड आयल इमल्शन का प्रयोग करना चाहिये. इसको प्रयोग में लाने का ढंग यह है कि लगभग २॥ सेर प्रति एकड़ के हिसाब से क्रूड आयल इमल्शन को टाट में बांध लेना चाहिये और सिंचाई करने की नहर में इस तरीके से डाल देना चाहिये कि यह धीरे धीरे अपने आप ही घुलता जाय और इस प्रकार सिंचाई के पानी के साथ ही साथ गन्ने की जड़ों मे पहुँच जाये, यह क्रिया अप्रैल से जून तक दो तीन वार करने से गन्ने की खेती में लगी दीमक खत्म हो जाती है. और इस प्रकार फसल का संरक्षण हो जाता है. इस प्रकार की विधि काम में लाते समय यह अवश्य ही ध्यान मे रखना चाहिये कि टाट में बांधा हुआ क्रूड आयल इमल्शन पानी मे घुलता रहे.

यदि ऐसा प्रतीत हो कि वह पानी में घुल नहीं रहा तो किसी आदमी को वहां पर बैठा देना चाहिये, जो इसे धीरे धीरे चला कर पानी में घोलता रहे.

ये जितने भी तरीके ऊपर बताये जा चुके हैं यदि ठीक प्रकार से इन्हें ध्यान में रखकर गन्ने का बीज बोया जाय तो गन्ने की खेती में दीमक आदि का आक्रमण जल्दी से नहीं हो पाता और यदि हो भी जाता है तो उससे संरक्षण किया जा सकता है. ऊपर दिये गये अनेकानेक घोलों में बताई गई सावधानी का ध्यान रख कर भिगोये हुये गन्ने के टुकड़ों को पहले भली भांति छाया में सुखा लेना चाहिए. और उसके बाद ही उन को बोना चाहिए. क्योंकि जब तक वे सूखेंगे नहीं तब तक उस घोल का उन पर कोई प्रभाव नहीं होगा. सुखा लेने का अर्थ यह है कि जिस घोल में बीज को डुबोया गया है वह घोल ठीक प्रकार से गन्ने के बीज में प्रविष्ट हो जाय, ऐसा करना गन्ने की खेती के लिए वरदान सिद्ध होता है.

कटाई —

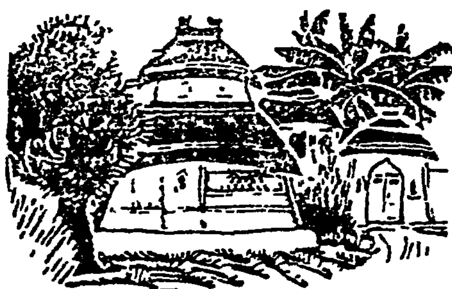
गन्ने की खेती को पकने में लगभग एक वर्ष लग जाता है अर्थात जो गन्ना नवम्बर में बोया जाता है वह दूसरे वर्ष के नवम्बर तक पक कर तैयार हो जाता है और काटा जा सकता है, इसी प्रकार इसकी बुवाई और कटाई का क्रम मार्च तक चलता रहता है, वैसे इसकी बुवाई और कटाई का क्रम फसल की जाति पर निर्भर है. कुछ फसलें ऐसी होती हैं जो शीघ्र पक जाती हैं. तथा कुछ ऐसी होती हैं जिनके पकने में समय लगता है. जहां तक दो

गन्ने की कई जातियां बोनी चाहिये जिससे कि उन्हें एक ही साथ काटने की आवश्यकता अनुभव न हो वरन नवम्बर से लेकर मार्च तक निरन्तर धीरे धीरे काट कर चीनी के कारखानों मे भेजा जा सके. जो फसल जल्दी तैयार हो जाती है उसे काट लेना चाहिये. खेतों में खड़े रहने से हानि ही होती है, लाभ नहीं. इस प्रकार क्रमशः गन्ने की जो फसल जिस जिस प्रकार से पकती जाय, उसे उसी प्रकार से काटते रहना चाहिये.

कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि लालची किसान गन्ने को पक जाने के बाद भी खेत में से इसलिये नहीं काटते कि बाजार में गन्ने का भाव कब चढ़े. लेकिन पक जाने के पश्चात गन्ने को इस प्रकार खेत में ही खड़ा रहने देने से वह धीरे धीरे सूखने लगता है, और उसमें रस की कमी हो जाती है. यदि बाजार भाव बढ़ भी जाता है तो भी जो लाभ किसान को बढ़े हुये भाव के कारण होता है उससे अधिक हानि गन्ने के सूख जाने से होती है. जिस समय गन्ने की कटाई की जाय उस समय यह भी अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए कि गन्ने को बिलकुल जड़ से काटा जाय. अर्थात दराती जमीन को छूती हुई चलानी चाहिए, जिससे कि गन्ने के नीचे का हिस्सा भूमिगत न रह जाय वरन गन्ने के साथ ही कट आए. बहुत से लोग जो इस पर ध्यान नहीं देते उन्हें हानि होती है. क्योंकि एक तो तोल में भी गन्ने के नीचे का भाग भारी होता है साथ ही साथ उसका रस भी अधिक मीठा होता है. यदि यह हिस्सा छोड़ दिया जाता है तो किसान को मनों और टनों का नुक्सान होता है. अतः इस बात का ध्यान रखते हुए ही गन्ने को ठीक प्रकार से जड़ से ही काटना चाहिए.

जिस समय गन्ना खेत से काट लिया जाय तो उसके तुरन्त बाद खेत की एक गहरी जुताई कर देना चाहिये, तथा जितनी भी गन्ने की जड़ की खूंटियां मिट्टी में दबी हों उन सब को काट छांट कर निकाल लेना चाहिये और जला देना चाहिये. ऐसा करने से जो कीड़े इन जड़ों में उत्पन्न हो जाते हैं, वे सब नष्ट हो जाते हैं और दूसरी बार बोने वाली फसल को हानि का भय नहीं रहता. जड़ों को जलाने के पश्चात जो राख बने उसे भी भली प्रकार से मिट्टी में मिला देना चाहिए. ऐसा करने से मिट्टी में जो कुछ कीड़े मकोड़े रह गये होंगे वे सब नष्ट हो जायगे.

खेती करने के साथ ही साथ किसान को चाहिये कि वह खेत की मिट्टी की भी रक्षा करे. यदि खेत की मिट्टी में कीड़े मकोड़े बढ़ जाते हैं, बीमारीयों का जोर हो जाता है, या वह निर्बल हो जाती है, तो फिर जब तक कई वर्ष तक उसे खाली छोड़कर खेती जैसा परिश्रम और धन व्यय न किया जायगा, तब तक वह सुधर नहीं पायेगी अतः किसी भी लालच में आकर अथवा परिश्रम से बचने के लिये इन जड़ों को खेतों में कभी नहीं छोड़ना चाहिये. और खेत को साफ रखना चाहिये.



अच्छे फूल

यदि भारत वर्ष में पौधों की उपज के लिये उपयोगी जलवायु देखा जाए तो हम भारत को तीन भागों मे बांट सकते हैं, गर्मी सर्दी, और वर्षा. साधारणतः मई और जून के महीने मे ही यहां पर अधिक गर्मी पड़ती है, दिसम्बर तथा जनवरी में अधिक शीत रहती है तथा रात्रि को पाले का भी जोर रहता है. वर्षा लगभग जुलाई मास से आरम्भ होकर सितम्बर तक रहती है. वैसे जून और अक्टूबर ऐसे महीने होते हैं जिनमे कभी कभी कहीं पर वर्षा का थोड़ा बहुत जोर रहता है. वैसे दो महीने मार्च और अप्रैल के ऐसे होते हैं जो अधिकतर सूखे रहते हैं. समस्त भारत के बाग बगीचों का सारा काम इसी हिसाब से किया जाता है, क्योंकि पौधों के संरक्षण के लिये समय समय पर जलवायु के परिवर्तन से बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है. हम देखते है कि वर्षा ऋतु के अन्दर यदि कहीं पर अधिक पानी पड़ जाये ता वह छोटे छोटे कोमल पौधों को नष्ट कर देता है. जहां पर पानी अधिक भर जाता है वहा या तो पौधों की जड़ें गला देता है या जो टहनियां पौधों के नीचे की ओर झुक जाती हैं वे पूर्णतया गल जाती हैं, और इस प्रकार सारे का सारा पौधा नष्ट हो जाता है या कभी कभा यदि वर्षा का अभाव हो तो भी पौधे सूख जाते हैं या गर्मी की तेजी से जल कर नष्ट भी हो जाते हैं.

शीत काल में जब कभी सर्दी पड़ती है और पौधे कोमल होते हैं तब कोमल पत्ते और टहनियां शीत के कारण गल जाते हैं. दूसरे शीत काल में रात के अन्तिम प्रहरों में जिस समय गहरा पाला पड़ता है उससे भी कोमल पत्ते, पौधे, टहनियां आदि गल जाती हैं और इस प्रकार ठीक पनप नहीं पाते.

फूलों के छोटे पौधे क्योंकि अत्यन्त कोमल होते हैं इस कारण से उनके ऊपर मौसम का प्रभाव फौरन ही पड़ जाता है. अतः मौसम के अनुसार ही फूलों के पौधे लगाने चाहियें. फूलों वाले जो छोटे पौधे होते हैं उन पर तो इस मौसम का प्रभाव जल्दी ही हो जाता है लेकिन फूलों के जो बड़े बड़े पेड़ होते हैं उन पर मौसम का प्रभाव जल्दी से नहीं होता क्योंकि उनमें सहने की शक्ति अधिक होती है. जितने भी बड़े बड़े पेड़ हैं वे तो वर्षा काल में ही फलते हैं, लेकिन फिर भी बहुत से अन्यान्य मौसमों में अधिक अच्छे रहते हैं.

यदि हम इस समय बड़े पेड़ों को छोड़ दें और छोटे पौधे वाले फूलों का ध्यान करें तो जलवायु की दृष्टि से हमें उन पौधों का शीत काल में सर्दी और पाले से, गर्मियों में धूप की तेजी से और वर्षा में मूसलाधार पानी से संरक्षण करने की बहुत बड़ी आवश्यकता पड़ती है.

जितने भी योरोपियन अथवा देशी फूल होते हैं उन्हें साधारण ऋतु की दृष्टि से सितम्बर अक्तूबर में बोना चाहिये क्योंकि इस समय शीत काल का आरम्भ होता है और फूलों के पौधे अच्छे ढंग से पनप जाते हैं. इसी प्रकार शरद और इन जैसे पौधों की छंटाई शीतान्त में करनी चाहिये

क्योंकि मार्च-अप्रैल में शव्ब आदि अच्छे फूलते हैं. जिस समय वर्षा आरम्भ हो उस समय देशी फूलों के पौधों को ठीक प्रकार से स्थानान्तरित कर देना चाहिये. साथ ही साथ शीत काल में लगाई गई गुलाब आदि की कलमों को काट छांट देना चाहिये और इनकी रक्षा करना भी इस समय अत्यन्त आवश्यक हो जाता है.

सबसे बड़ी ध्यान में रखने वाली बात यह है कि पानी पौधों में खड़ा न रहे वरन बाहर निकल जाय, पानी खडा रहने से पौधा गल जाता है या अत्यंत शिथिल पड़ जाता है. इस प्रकार जल वायु का ठीक प्रकार से ध्यान रखना चाहिये तभी फुलवारी सफल हो सकती है अन्यथा नहीं.

भूमि —

फुलवारी लगाते समय हमें किसी विशेष प्रकार की मिट्टी का चुनाव आवश्यक नहीं है. यह अवश्य देख लेना चाहिये कि जो मिट्टी सख्त हो उसको किस प्रकार ठीक किया जाये और किस किस प्रकार की मिट्टी में किस किस खाद का सम्मिश्रण किया जाय जो मिट्टी सख्त हो उसे एक गज के लगभग खोद कर उसमें थोड़ी सी बालू और गोबर का बहुत ही सड़ा हुआ पुराना खाद मिला देना चाहिये या सूखे पत्तों की सड़ी हुई खाद के रूप मे प्रयोग करना चाहिये जो मिट्टी गमलों मे डाली जाए वह यदि किसी तालाब की हो तो अच्छा है.

वंजर जमीन फुलवारी के लिये कभी अच्छी नहीं होती ऐसी मिट्टी का प्रयोग न करना ही अच्छा है. फुलवारी लगाने के लिये नहरों की मिट्टी भी उपयोगी सिद्ध हुई है. पुष्पवाटिका तैयार करने के लिये जिस मिट्टी का भी प्रयोग किया जाय

उसमें योग्य खाद मिलाकर उसे भली भांति तैयार कर लेना चाहिये जिससे वाद में किसी परेशानी का सामना न करना पड़े, इस प्रकार से जो भी मिट्टी तैयार की जाती है वह फूल आदि के पौधों के लिये उपयोगी रहती है और इसके अन्दर लगाये हुये पौधे योग्य समय पर योग्य पोषण पा कर अच्छे फूलते हैं.

सबसे पहले खाद की आवश्यकता तब पड़ती है जब कि प्रयोग में लाई जाने वाली मिट्टी खाद के मिश्रण से इस योग्य हो जाती है कि वह फूलों के तमाम पौधों और झाड़ियों को भली-भांति भोजन और पोषण दे सके. वास्तव में फूलों के लिये मिट्टी में वह तत्व मिलाने की आवश्यकता है जो कोमल पौधों को कोई भी हानि न पहुँचा सके तथा उसको पोषण दे सके. फूलों के लिये जो खादें उपयोगी सिद्ध हुई हैं उनमें से थोड़ी सी खादों का संक्षिप्त वर्णन नीचे पृथक पृथक रूप से दिया जाता है.

गोबर की खाद—जहां कहीं भी फूलों के पौधे, झाड़ियां अथवा उद्यान वनाने की इच्छा हो वहां मिट्टी में गोवर की खाद का प्रयोग उत्तम रहता है, लेकिन साथ ही साथ यह भी अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि गोवर की खाद वहुत पुरानी और पूर्ण रूपेण सड़ी हुई होनी चाहिये. यदि यह खाद अधिक सड़ी हुई और पुरानी न होगी तो इसकी तीव्रता के कारण फूलों के कोमल कोमल पौधे जल जायेंगे. इसकी खाद इस प्रकार मिट्टी मे दवाकर रखनी चाहिये कि तिग्मांशु की प्रखर रश्मियां अपनी तीव्रता से खाद के तत्वों को खींच कर हवा के साथ न मिला दें.

मानस मल मूत्र —वैसे तो खेती वाड़ी में भी मनुष्यों का मल मूत्र वहुत उपयोगी रहता है लेकिन मनुष्यों का मल मूत्र फूलों के

पौधों के लिये खाद की दृष्टि से अति उत्तम रहता है लेकिन इसको प्रयोग में लाने का ढंग भी यही है कि इसे मिट्टी में भली प्रकार से मिश्रित करके पूरी तौर से सड़ा लेना चाहिये. इसकी खाद उद्यानों के लिये इसलिये अच्छी मानी जाती है कि इसके भीतर विद्यमान तत्व फूल में चमक और रंग में सुन्दरता उत्पन्न करते हैं. साथ ही साथ पौधों को बलवान भी बनाते हैं.

पत्तो की खाद —प्रायः देखा गया है कि जो पत्ते पतझड़ आने पर बड़े बड़े फल वृक्षों स अथवा छोटी छोटी झाड़ियों से झड़ जाते हैं उन्हें फेंक दिया जाता है. किन्तु ऐसा करना अपने धन को नष्ट करना है.

इन सब पत्तों को एकत्रित करके कुछ मिट्टी मिला कर यदि किसी बड़े गढ़े में नमी देकर सड़ा लिया जाये तो बहुत ही अच्छी खाद बन जाती है. यह खाद फुलवारी के लिये और विशेषतः साये में उगाये जाने वाले गमलों के लिये बहुत ही उत्तम रहती है. पत्तों की खाद को बारीक छानकर और साफ करके मिट्टी में मिश्रित किया जाये तो यह भारी भूमि को हल्का बना देती है तथा जो भूमि हल्की हो उसे सुधार देती है.

पत्तों की राख — उद्यान के जितने भी पौधे व्याधिग्रस्त हो जाते हैं सूख जाते हैं या इतने निर्बल हो जाते हैं कि पनप न सकें तो उन्हें तथा झड़े हुये या कटे हुये पत्तों को एकत्रित करके कुछ कुछ सुखा लेना चाहिए. तत्पश्चात उन्हें जला कर राख तैयार कर लेनी चाहिये. वैसे तो यह राख पत्तों की खाद के साथ मिलने में उपयोगी रहती है किन्तु आवश्यकतानुसार इसे अकेले ही बुरका

जा सकता है. इसके डालने से पौधे वलिष्ठ होते हैं. फूलों को कीड़ा नहीं लग पाता तथा जड़ों में व्याधि नहीं होती.

घोल वाली खाद— जिस समय फूलों के पौधों मे वाढ़ आ जाती है, उस समय पौधों का निर्वल सा हो जाना स्वाभाविक है. ऐसे समय मे घोल वाली खाद काम में आती है. एक वड़े पानी के वर्तन मे गोवर और भेड़ वकरी की मेंगनी आदि को डालकर चार पांच दिन तक घोल तैयार होने देना चाहिये. जव घोल तैयार हो जाय तो उसमें इतना पानी और मिला देना चाहिये कि घोल हल्के वादामी रंग का हो जाय तव इसे उद्यानों के अन्दर हल्की मात्रा में छिड़का जा सकता है. इसका प्रयोग शीघ्र प्रभाव डालने मे अधिक सफल रहा है. ध्यान रखने की वात केवल इतनी है कि यह घोल इतना तेज न हो जाये जिससे पौधों की जड़ों के जलने का भय रहे.

सावुन का घोल— सावुन को पानी में भली भांति घोल लेना चाहिये तव इसे पौधों की जड़ो मे डालना वहुत उपयोगी रहता है. इसके डालने से फूलों के अन्दर चमक और सफाई आ जाती ह साथ ही सुन्दरता भी द्विगुणित हो जाती है. गुलाव के, गेंदा के और मल्लिका के जो पौधे निर्वल हो गये हों, वीमार हो गये हों या सूखे से जान पड़ते हों उनकी जड़ों में यदि सावुन का घोल डाला जाये तो वे तुरन्त ही हरे हो जाते हैं. यह घोल वास्तव में फूलों के वीमार पौधों के लिये रामवाण औषधि की भांति सफल सिद्ध हुआ है.

कंकरीट और मोरटर— यह ऐसी जगहों पर अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है जहां पर उद्यान वनाने के लिये कृत्रिम पर्वत अथवा

टीले बनाये जाते हैं. गमलों में लगाये जाने वाले फूल पौधों के लिये भी कंकरीट उत्तम रहता है. भवन निर्माण करने वाले बड़े बड़े ठेकेदारों के पास यह आसानी से मिल जाता है. कंकरीट जितना पुराना होगा फूल पौधों के लिये उतना ही अधिक लाभदायक भी रहेगा.

इसको बारीक पीस कर यदि मिट्टी में मिला दिया जाता है तो गमले मे से पानी का निकास आसान हो जाता है और पौधे अपनी जड़ों को इच्छानुसार मिट्टी मे फैला सकते है, साथ ही साथ अपनी खुराक भी आसानी से ले सकते हैं. जो छोटे छोटे गमले हों उनमें इसके टुकड़े काबली चने के बराबर करके डाल देने से पानी का निकास ठीक हो जाता है और इस प्रकार आवश्यकता से अधिक जल गमले मे पौधों को हानि पहुँचाने के लिये ठहर नहीं पाता.

भूमि की तैयारी —

किसी भी बाग को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने के लिये उसकी भूमि को तैयार कर लेना अत्यन्त आवश्यक होता है. जिस समय भूमि भली प्रकार से तैयार हो जाती है तब उद्यान लगाने मे बहुत ही कम परिश्रम करना पड़ता है और थोड़े से ही परिश्रम से अच्छी अच्छी पुष्पवाटिकायें सजाई जा सकती है. जिस समय भूमि ठीक प्रकार से तैयार हो उस समय स्वाभाविक ही फूलों के पौधे अच्छे पनपते है तथा फूल भी अच्छे आते हैं. जब कभी भी नये स्थानों की भूमि को पुष्पवाटिका के लिये तैयार करना हो उस समय यह ध्यान मे रखना चाहिये कि उस स्थान को सर्व प्रथम लगभग एक गज गहरा खोदा जाये और फिर उसके ढेले

आदि तोड़ कर उसमें खूब गली सड़ी गोबर या पत्तों की खाद मिला दी जाये.

इसके बाद उसमें हल्की सी सिंचाई कर दी जाए. इसके पश्चात जिस समय भूमि नम हो तब फूलों के बीज बखेरने चाहिएं या कलम लगानी चाहियें. ऐसा करने से पौधे शीघ्र बड़े हो जाते हैं और जल्दी फूलते हैं. जो भूमि नई न हो और उसमें पहले से ही उद्यान लगाया गया हो वहां पर जिस समय अप्रैल और मई के महीने में पुष्प खिल चुके हों उस समय उस उद्यान की भूमि को एक गज के लगभग खोद डालना चाहिए और फिर उसमे टूटे फूटे पेड़ पौधे और गिरे-पड़े पत्ते एकत्रित करके डाल देने चाहियें, इसके बाद उसमें आसपास का कूड़ा कर्कट एकत्रित करके डाल देना चाहिये. वैसे इसमें गोबर, लीद, मेंगनी आदि की खाद का मिलाना भी अच्छा माना गया है.

यह ध्यान रखना चाहिए कि इस खाद का प्रयोग वर्षा ऋतु से पहले ही करना चाहिए जिससे कि वर्षा के जल से खाद मिश्रित भूमि उद्यान के लिये उपयोगी बन जाये. जिस समय बोने के लिए क्यारियां तैयार करनी हों उस समय से लगभग एक महीने पहले ही यह सारा का सारा कार्य ठीक प्रकार से व्यवस्थित कर लेना चाहिए क्योंकि फूलों के पौधों के लिए बीज बोने अथवा कलम लगाने से एक मास पूर्व ही क्यारियों का बन जाना आवश्यक है.

जिस समय बीज की बुवाई का समय हो उस समय भूमि की मिट्टी को भुरभुरा बनाना भी आवश्यक होता है इसलिए उसको खोद कर समतल कर लेना चाहिए. जो मिट्टी पोली, चिकनी

और नर्म होगी उसके अन्दर पौधे भी अच्छे लगेंगे क्योंकि ऐसी मिट्टी में पौधों की जड़े पूर्णरूपेण फैल जाती हैं. और अपनी इच्छानुसार पूरा पूरा भोजन प्राप्त कर लेती हैं.

उद्यान लगाने के लिए जिस स्थान की मिट्टी अधिक रेतीली हो उसके अन्दर किसी तालाब या जोहड़ की चिकनी मिट्टी तोड़ कर मिला लेनी चाहिये और यदि मिट्टी में सख्ती हो तो उस में बालू मिला लेनी चाहिए. जो मिट्टी ऊपर से ठीक हो और उसका भीतरी भाग अच्छा न हो तो उसे उलट पलट कर इस प्रकार से खोद डालना चाहिये जिससे कि भीतरी मिट्टी को भली प्रकार से धूप लग जाये. ऐसा करने से वह मिट्टी भी उद्यान के लिए तैयार हो जाती है.

सिंचाई —

फूलों के पौधों के लिये सिंचाई का ठीक ध्यान रखना भी आवश्यक होता है. हमारे देश में जितना भी तराई का क्षेत्र है वह किसी प्रकार की खेती वाड़ी के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती. इस प्रकार वहाँ पर फूलों के बाग और पुष्पवाटिकायें बहुत ही आसानी से तथा कम परिश्रम करके लगाई जाती हैं.

भारत का जितना उत्तरी क्षेत्र है उसमें गर्मी की ऋतु में सिंचाई की जरा भी कमी नहीं होने देनी चाहिये अन्यथा शरब आदि के पौधे और उसके साथ में लगाई गई घास सब नष्ट हो जाती हैं. इसी प्रकार यदि बंग प्रदेश में उद्यान लगाया हो तो वहाँ लगभग आधे अक्टूबर तक वर्षा होती ही रहती है, ऐसे स्थानों पर उद्यान लगाया जाता है तो सिंचाई की जरूरत नहीं होती.

अक्टूबर के आस-पास जो बीज डाला जाता है वह अपने पौधों को जनवरी के आस-पास बाढ़ देता है, उस समय भूमि का सूखने का समय होता है, जिस समय भूमि सूख-सी जाये उस समय सिंचाई करना उद्यान को जीवन प्रदान करने के समान है क्योंकि उस समय पौधों की बाढ़ होती है जो पानी का सहारा पाकर हरी-भरी तो रहती ही है साथ ही पौधों को बल भी प्रदान करती है.

पानी कितना और कब दिया जाये इसके लिए कोई विशेष नियम नहीं है क्योंकि पानी देते समय सर्व प्रथम यह देखना आवश्यक होता है. कि उस भूमि में जो फूल लगाया गया है उसमें उस ऋतु में कितना पानी डालने की आवश्यकता है और फिर यह देख लेना भी अत्यन्त आवश्यक है कि किस जाति की मिट्टी में बुवाई की गई है. मिट्टी की जाति देखने का अर्थ यह है कि उस मिट्टी में जल की मांग कितनी है तथा वह कितना जल सहन कर सकती है.

सिंचाई के समय असावधानी कभी भी नहीं करनी चाहिये क्योंकि पानी की कमी पौधों को सुखा कर नष्ट कर सकती है. यदि पानी का आधिक्य हुआ तो पानी जड़ों में खड़ा रहेगा और इस प्रकार वह पौधों को गला कर नष्ट कर देगा. अतः सिंचाई इतनी संतुलित होनी चाहिए कि न अधिक होवे न कम. देशी फूलों की जितनी भी जातियाँ है उन सब में इतने अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती जितनी कि विदेशी फूल वाले पौधों को होती है. अतः इनमें पर्याप्त सिंचाई का ध्यान रखना

चाहिए, किन्तु पानी एक ही साथ अधिक न दिया जाये वरन धीरे धीरे आवश्यकतानुसार ही देना चाहिए.

भूमि की दृष्टि से यदि देखा जाये तो बलुआ भूमि मे अधिक पानी देने की आवश्यकता होती है तथा मटियार भूमि मे कम पानी की सिंचाई ठीक समय पर होनी चाहिए अर्थात जिस समय पौधे पानी मांगें सिंचाई तभी होनी चाहिए. इस बात को जांचने के लिए यह देख लेना चाहिए कि जिस समय पौधों के पत्ते कुछ मुरझाने लग जाएं और टहनियां कुछ शिथिल पड़ जाएं और भूमि कुछ फटने लगे उस समय यह समझ लेना चाहिए कि पौधे पानी मांग रहे हैं. ऐसे समय में तुरन्त ही सिंचाई कर देनी चाहिए.

सिचाई का ढंग —

उद्यानों तथा पुष्प वाटिका में दो तरीके से सिचाई होती है. एक तरीका तो हजारे के द्वारा ऊपर से जल छिड़कने का है तथा दूसरा तरीका नालियों के द्वारा सिंचाई करने का है. फूलों के जो पौधे गमलों में लगाये जाते हैं, नर्सरी मे लगाये जाते हैं या क्यारियों मे लगाये जाते हैं, उनमें सिंचाई ऊपर से हजारे के द्वारा जल छिड़क कर हो सकती है. वैसे उद्यानों के अन्दर जब तक पौधे शक्तिवान न हो जायें तब तक सिंचाई जल छिड़क कर ही करनी चाहिए जब भी कभी नया पौधा रोपा जाये या कलम लगाई जाये लगभग एक सप्ताह तक उसकी सिंचाई फुहारे या हजारे के द्वारा ही करनी चाहिए.

जिस समय यह पौधे कुछ बड़े हो जायें और इनमें भूमि में जमे रहने की शक्ति उत्पन्न हो जाये तब इनकी सिचाई नालियों के द्वारा ही करनी चाहिए. नालियों के द्वारा सिंचाई करने में इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि उद्यान की भूमि पूर्णरूपेण समतल हो जिससे कि हर पौधे को जल बराबर मात्रा में प्राप्त हो यदि भूमि समतल न होगी तो सिंचाई का जल हर पौधे को बराबर नहीं मिलेगा. इससे जिन पौधों को जल की कमी अनुभव होगी वह निर्बल हो जायेंगे तथा जिनमें जल अधिक पहुंच जायेगा वह गल जायेंगे.

बीज और उनकी बुवाई —

बीज हमेशा साफ सुथरे और बहुत ही पके हुए होने चाहिएं. जो बीज कम पके हुए या अधकच्चे होते हैं उनमें कुरा फेंकने की शक्ति नहीं होती अर्थात केवल वही बीज बोने के काम में लाना चाहिए जो पूरी तौर से पक गया हो. बीज बोने से पहिले उनको साफ कर लेना भी अत्यन्त आवश्यक है. जो बीज निर्बल हो, छोटा हो या घुना हुआ हो उसे कभी भी नहीं बोना चाहिए अन्यथा या तो पौधा लगेगा ही नहीं और यदि लगेगा भी तो फूलेगा नहीं.

बीज के लिए सदा अपने ही उद्यान के पके हुए बीजों को प्रयोग में लाना लाभकर रहता है क्योंकि वह बीज नये होते हैं. साथ साथ उसी भूमि में उपजने और पकने के कारण उस भूमि के उपयुक्त रहते हैं. जितने भी देशी बीज होते हैं वह जल्दी और अच्छे जमते हैं तथा जितने भी विदेशी बीज होते हैं वह देर से और कठिनता से जमते हैं. अतः कोशिश यही होनी

चाहिए कि अधिकतर देशी बीज का ही प्रयोग किया जाए और वह भी अपने ही यहां तैयार किये हुए या बहुत ही उत्तम प्रकार के होने चाहिएं, जिससे किसी भी प्रकार व्यर्थ न जाने पाएं और फुलवारी तथा पुष्पवाटिका भी अच्छी सजे. अपने यहां बीज को ठीक प्रकार से एकत्रित करना चाहिए. बीज का यही तरीका होता है कि जिस समय वह पूर्णरूपेण पक जाता है या तो स्वतः ही भूमि पर गिर जाता है या जरा से इशारे से ही झड़ जाता है. कुछ दिन तक बीज को पके होने पर भी धूप मे फैला देना अच्छा होता है जिससे कि यदि उसमें कुछ कचाई रह गई हो तो निकल जाय और बीज अच्छी तरह से पक जाए. वैसे तो सर्वोत्तम यही होता है कि बीज पौधे से तभी तोड़ा जाय जब कि वह पूरी तौर से पक गया हो.

जिस समय बीज ले लिया जाय उसे साफ करके बन्द कर लें अथवा बंद डिब्बों में भर के रखना चाहिए क्योंकि बाहरी हवा लगने से बीज के खराब होने का भय रहता है. बाग के अन्दर जो अच्छे और बड़े फूल हों उन्हें पकने देना चाहिए, और फिर जहां तक सम्भव हो उन्हीं फूलों से बीज भी प्राप्त करने चाहिएं, जिस समय पुष्पवाटिका मे समस्त फूल पूरे यौवन पर हों उस समय उन फूल वाले पौधों को कोई चिन्ह लगा कर छोड़ देना चाहिए, और उन से फूल न तोड़ने चाहिएं वरन उन फूलों को बीजों के लिए सुरक्षित रखना चाहिए. बीज सदा ठीक समय पर बोना चाहिए जिससे पौधे ठीक प्रकार से उग सकें.

इससे पूर्व कि बीज बोया जाए भूमि को भली प्रकार से

तैयार करके बीज बोने योग्य बना लेना चाहिए जिससे कि पौधे ठीक प्रकार से उग सकें. बीजों को एक साथ नहीं बोना चाहिए, वल्कि थोड़े थोड़े कुछ अन्तर पर बोने चाहिएं. बीजों को एक साथ इकट्ठा नहीं बोना चाहिए अन्यथा पौधे भी कमजोर आएंगे.

जो स्थान बीज बोने का होता है पौधे जब चौथाई फुट के लगभग हो जाएं उस समय उन्हें दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित कर देना चाहिए. ऐसा कर देने से पौधे बलिष्ठ होते हैं और उनमें फूल भी अच्छे आते हैं. पानी कभी भी अधिक या कम नहीं देना चाहिए वरन उतना ही देना चाहिए जितने की आवश्यकता हो और तब देना चाहिए जब कि पौधे पानी की मांग दर्शाते हों, और भूमि शुष्क पड़ गई हो, पौधे निर्बल हो गए हों, पत्ती मुरझा गई हों उस समय पानी देना बहुत ही आवश्यक है, जिसे न देने से पौधों का बढ़ना या फूलना बंद हो जाता है.

बीज की जैसी नस्ल हो फूल भी उसी प्रकार का होता है. यदि बीज अच्छी नस्ल का होगा तो फूल भी अच्छा नहीं आता है यह बागवानी करने वाले के हाथ में होता है अर्थात यदि पौधों को बढ़िया खुराक दी जाय अच्छी तरह से उनका संरक्षण किया जाय और पत्ती और टहनियों की उपयुक्त समय पर काट छांट की जाय तो निश्चय ही फूल अच्छा और दोहरा पैदा होता है. बीज दोहरे फूल वाले पौधों से लेना चाहिए जिससे कि फूल भी वैसे ही आए. बीजों के बोने के दो ढंग हैं एक तो यह कि उन्हें गमले, टीन बक्स और जमीन में बोया जाय और उपयुक्त समय

पर उनका स्थानान्तरण कर दिया जाय और दूसरा यह कि पौधों को उन्हीं स्थानों पर बोया जाय जहां पर फूल लेने हों. ऐसे स्थानों पर वह पौधे लगाए जाते हैं जो स्थानान्तरण नहीं सह सकते और यदि उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित किया जाये तो वह मर जाते हैं, या उनमें फूल बिलकुल भी नहीं आते. अतः बीज बोने से पूर्व यह देख लेना अत्यन्त आवश्यक है कि जो पौधे स्थानान्तरण बरदाश्त कर सकते हों, उन्हें ही ऐसे स्थानों पर लगाना चाहिए जहां से स्थानान्तरण की आवश्यकता है, और जिस जाति के पौधे स्थानान्तरण सहन करने में असमर्थ हों उन्हें सीधे ही बोना चाहिए, जहां पुष्पवाटिका तैयार करनी हो अथवा फूल लेना हो.

प्रथम श्रेणी के बीज — प्रथम श्रेणी के बीज वह कहलाते हैं, जिनके फूल शीत काल के आरम्भ में और वर्षा के अन्त मे प्राप्त किये जायें. यह समय ऐसा होता है जब कि बाहर खुले खेतों के अन्दर फूलों के पौधे उपजाना बहुत ही कठिन होता है. इन दिनों फूल प्राप्त करने के लिए यह अच्छा होता है कि बीजो को टीन बक्स या गमलों के अन्दर बोया जाए. इसका कारण यह है कि जिस समय तीव्र वर्षा हो अथवा तेज गर्मी हो तो इन गमलों आदि को मौसम की इस खराबी से बचाया जा सकता है. खुले मैदानों अथवा खेतों में न तीव्र गर्मी से रक्षा की जा सकती है और न मूसलाधार वर्षा से. जिन गमलों मे प्रथम श्रेणी के बीज बोए जायें उन गमलों को दिन की तीव्र गर्मी मे सायेदार स्थान पर तथा रात्रि की शीतलता में खुले स्थान पर रखना चाहिए जिससे संरक्षण ठीक प्रकार से हो सके इसी प्रकार वर्षा से भी इनका बचाव करना चाहिए. जिस समय ह की धूप हो उस समय इन गमलों

को धूप में भी रहने देना चाहिये जिससे कि बीज जल्दी जमे और पौधे बलवान हों. यदि एक भाग बहुत ही साफ और सफेद बालू, दो भाग खूब अच्छी तरह सड़ा हुआ और बहुत ही बारीक छना हुआ पत्तों का खाद तथा एक भाग अच्छी प्रकार की मिट्टी का अच्छा मिश्रण तैयार किया जाये तो पौधे बहुत अच्छे लगेंगे. इस प्रकार का मिश्रण तैयार करके ढेर लगा लेना चाहिये. गमले का जो सूराख होता है उसके ऊपर किसी टूटे हुए मिट्टी के बर्तन का ठीकरा इस प्रकार से रखना चाहिए कि यदि उसमें पानी डाला जाये तो वह निकल जाये. इसके पश्चात कुछ और ठीकरे उसके ऊपर कुछ छोटे-छोटे कंकड़ बखेर देने चाहिएं. उसके ऊपर थोड़ी सी पत्तों की खाद ऐसी डालनी चाहिए जो कुछ कम सड़ी हुई हो, इसके बाद तैयार की हुई मिट्टी गमले में इस तरह से भर देनी चाहिए कि न तो सख्त ही रहे और न अधिक पोली. जब गमले में उपरोक्त रीति से मिट्टी भर दी जाए तब इसके ऊपर थोड़ी बालू और छिड़क देनी चाहिए. जिस समय गमले बीज बोने के योग्य हो जाते हैं जितने भी बड़े बीज होते हैं डेढ़ से दो इंच की दूरी तक बोना चाहिए और जो छोटे होते हैं उन्हें गमलों की सतह पर आधी इंच या एक इंच की दूरी पर बोया जा सकता है. जिस समय बीज बो दिए जाएं उस समय उसके ऊपर चार कोल का चूरा बारीक पत्ती की खाद और अच्छी रेत बराबर मिलाकर बीजों को ढक देना चाहिए. गमलों मे बीजों को बोते समय पानी की आवश्यकता होती है अतः हजारे को फव्वारे से गमलों मे पानी छिड़क देना चाहिए. जब जब भी गमलों में शुष्कता आये तब ही थोड़ा-थोड़ा पानी डाल कर उन्हें तर कर देना चाहिए. पानी डाल देने के बाद गमलों को ऐसे स्थान पर रखना

चाहिये जहाँ वह धूप से बच सकें. बोते समय बीज दूर-दूर बोने चाहिएं और गमले सूखे नहीं रहने चाहिएं. पौधों का धूप से संरक्षण होना चाहिए और साथ ही गमलों को ऐसे स्थान पर रखने का प्रबन्ध होना चाहिए जहां प्रकाश और वायु का प्रवेश पर्याप्त मात्रा में हो, इन तरीकों से पौधे सबल रहते हैं और फूल भी बड़े सुन्दर और अधिक देर टिकने वाले लगते हैं. फुलवारी लगा देने के पश्चात पौधे की बीमारियों का ध्यान रखना चाहिए. जो पौधे बीमार हो जायं और उसके कारण अत्यधिक निर्बल हो जायें उन्हें निकाल फेकना चाहिए तथा जो मामूली तौर पर बीमार होकर शिथिल पड़ जाएं उन्हें तुरन्त ही नई मिट्टी वाले दूसरे गमलों में स्थानान्तरित कर देना चाहिए.

स्थानान्तरण — प्रथम श्रेणी के बीजों से उत्पन्न पौधे यदि ठीक-रीति से और ठीक समय पर स्थानातरित किये जायें तो शक्तिशाली हो जाते हैं. यदि इन बीजों को अधिक पास पास बोया गया हो तो जिस समय दो पत्ती निकल आयें उस समय और यदि दूर-दूर बोया गया हो तो जिस समय चार पत्ती निकल आई हों उस समय स्थानान्तरित कर देना चाहिए. स्थानान्तरण के लिए समय का ध्यान रखना अति आवश्यक है. जिस समय सूर्य निकला होता है उस समय पौधों को कभी भी स्थानान्तरित नहीं करना चाहिए.

यदि सूर्य को नग्न जड़ के दर्शन हो गये तो पौधे नष्ट हो जायंगे, अत: पौधे स्थानान्तरण का समय सूर्य निकलने से पूर्व अथवा सूर्यास्त के पश्चात का होता है. जिस समय आकाश में बादल छाये हों तब भी पौधों को स्थानान्तरित किया जा सकता है. जब पौधों को बदल कर लगा दिया जाये तब लगभग एक सप्ताह

के लिए उस स्थान के ऊपर साये का ऐसा प्रवन्ध कर देना चाहिए जिससे पौधों पर न तो धूप ही पड़ सके और न ही वर्षा का जल. जिस समय पौधों को उखाड़ा जाये यह ध्यान रखना चाहिए कि पौंधों की जड़ का कोई भाग टूट न जाये और जड़ के साथ थोड़ी थोड़ी मिट्टी अन्दर दवानी चाहिये.

पौधा लगाने से पूर्व मिट्टी को नम कर लेना चाहिए, जिससे कि जड़ें ठीक प्रकार से और जल्दी मिट्टी में अपने लिए स्थान वना सकें. स्थानान्तरण के वाद सिंचाई का ठीक ध्यान रखना चाहिए जिससे कि पौधे सूख न पाएं. जिन पौधों को दो वार स्थानान्तरित करके तीसरी वार उपयुक्त पुष्प वाटिका या उद्यान में लगाया जाए तो पौधे शक्तिवान वने रहते हैं और फूल भी अच्छे आते हैं साथ ही अधिक दिन तक आते रहते हैं.

नरसरी में वुवाई — वैसे प्रथम श्रेणी के वीजों को गमले में में ही वोना चाहिए किन्तु यदि मौसम ठीक हो तो इन वीजों को सीधे नर्सरी की क्यारियों में वोया जा सकता है. जिस समय वीजों को नर्सरी में वोना हो उस समय विलकुल खुले हुये स्थान पर नर्सरी तैयार करनी चाहिए और उसमें व्यवस्थित ढंग से क्यारियां तैयार करनी चाहियें. क्यारियां सभी समतल हों, ऐसी नर्सरी विलकुल खुले स्थान पर वनानी चाहिए जहां न वड़े वड़े वृक्ष हों और न ही कोई मकान आदि हों जिन से हवा के रुकने का भय हो, जहां पर दिन में अधिक गर्मी पड़ती है, वहां पर पौधों के लिए साये का प्रवन्ध होना चाहिए. नर्सरी को साधारण भूमि से लगभग आधा फुट ऊंचा वनाना चाहिए, फिर उसे ठीक प्रकार से लगभग १८ इंच खोद कर समतल करना चाहिए और उसके ऊपर लगभग आधा फुट चारकोल का चूरा, वालू और पत्ती की खाद

मिला देनी चाहिए. इसके पश्चात तत्काल ही पानी डाल देना चाहिए.

फिर बीज ढांकने के लिए जो तरीका गमलों में प्रयोग में लाया जाता है वही नर्सरी में भी काम में लाना चाहिए. जो भी घास-पात व्यर्थ ही नर्सरी में उग आए उसे समय समय पर परिश्रम के साथ निकालते रहना चाहिए. जिस समय नर्सरी की भूमि पानी मांगे उस समय फौरन ही समय पर सिंचाई करनी चाहिए. इसकी सिंचाई भी हजारे के फुवारे के द्वारा ही करनी चाहिए.

द्वितीय श्रेणी के बीज — यह बीज उन्हीं स्थानों पर सीधे बोए जाते हैं जहां पुष्प वाटिका तैयार करनी हो अथवा फूल प्राप्त करने हों, क्योंकि इनके पौधे स्थानान्तरण को सहन नहीं करते. इन की बुवाई के लिए भी ठीक प्रकार से क्यारियां बना कर भूमि को एक गज के लगभग खोद कर उसमें खाद और बालू मिलाकर पानी से तर कर के छोड़ देना चाहिए, और जब सूख जाए उस समय पाटा आदि चला कर समतल करनी चाहिए, जिससे कि पानी सब पौधों को एक साथ ही प्राप्त हो. जब क्यारियां ठीक प्रकार से तैयार हो जाय तब क्यारियों के अन्दर बीजों की जाति ध्यान रखकर उतनी २ दूरी पर ही मिट्टी मे पंक्तियां खींच लेनी चाहिएं तथा उसके बाद उन पंक्तियों मे ठीक प्रकार से बीज बोना चाहिए.

बीजों को हल्की मिट्टी से ऊपर से ढक देना चाहिए और तुरन्त बाद हजारे के द्वारा क्यारियों पर छिड़काव कर देना चाहिए जब बीज ठीक प्रकार से जम जाए और कुरा फूट निकले. पौधे कुछ बड़े हो जाएं, तब समय समय पर पौधों की छंटनी भी करते रहना

चाहिए जिससे कि पौधे इतने पास-पास न हो जाएं कि उनकी जड़ें आपस में टकराने लगें. पानी देने के लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिदिन प्रातः काल और सायंकाल को दोनों समय पौधों में ठीक प्रकार से हजारे के द्वारा पानी देते रहना चाहिए. जिस समय पौधे बड़े हो जाएं उस समय हर तीसरे दिन आवश्यकतानुसार नालियों के द्वारा भी पानी दिया जा सकता है. पौधों के बीच में व्यर्थ का घास-पात नहीं उगने देना चाहिए तथा तेज धूप से भी पौधों की रक्षा करनी चाहिए. यदि पौधों का ठीक प्रकार से ध्यान रखा जायेगा तो फूल भी अच्छा ही प्राप्त होगा. पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं तब अपने बोझ से अथवा वर्षा या हवा के झोंके से गिरने लगते हैं अतः संरक्षण के लिए उनके आस-पास सूखी लकड़ियां लगा देनी चाहिएं, जिससे कि पौधों को सहारा मिले. अच्छे फूल प्राप्त करने के लिए सब से सफल और सर्वोत्तम तरीका तो यही है कि पौधों को पहिले गमलों में तैयार किया जाए और इसके पश्चात बहुत ही सावधानी के साथ ठीक प्रकार से उद्यानों के अन्दर स्थानान्तरित कर दिया जाए. ऐसा करने से पौधे पूर्ण रूपेण रक्षित रहते हैं.

निंदाई —

जहां भी उद्यान तैयार किये जायें या पुष्प वाटिका लगाई जाये वहां निंदाई करना भी आवश्यक है. निंदाई करने से जहां उद्यानों में व्यर्थ के उगे हुऐ घास-फूस को नष्ट किया जा सकता है वहां जो भूमि सख्त हो जाती है उसमें पोलापन भी आ जाता है तथा खुल भी जाती है. निंदाई तब करनी चाहिये जब सिंचाई हो चुकी हो और भूमि कुछ कुछ सूख गई हो. ऐसा करने से मिट्टी आसानी से बदल जाती है और उसमें इतना पोलापन आ जाता

है कि पौधों की जड़ों को फैलने में पूरी आसानी हो जाती है और वह अपनी खुराक जमीन से शीघ्र खींच लेती है जिस से पौधे वलिष्ट होते हैं और फूल अच्छे आते हैं. निंदाई करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि जब पौधे छोटे हों तब निंदाई कम गहरी होनी चाहिये और जब पौधे कुछ वड़े हो जायं तब निंदाई गहरी होनी चाहिये. निंदाई करते समय पौधों की जड़ों को किसी प्रकार की भी हानि नहीं पहुँचानी चाहिये वरना पौधों को हानि होगी. जिस समय निंदाई की जाये उस समय मिट्टी का नर्म होना आवश्यक है और उसी समय सारे घास-फूस को इसमें से उखाड फेंकना चाहिये साथ ही जो पौधे खराब हो गये हों उनको काट देना चाहिये और जो पत्ते अधिक वड़े हो गये हों उन को काट कर फेंक देना चाहिये. इस प्रकार हम देखते हैं कि निंदाई करना वहुत ही लाभदायक है. जिस समय तक पौधे छोटे छोटे रहते हैं तब तक निंदाई जल्दी जल्दी करनी चाहिये जिससे पौधों की जड़ें मिट्टी में शीघ्रातिशीघ्र वढ़ें. ऐसा करने से पौधों मे फूल जल्दी आते हैं और अधिक देर तक ठहरते हैं, क्योंकि इसके द्वारा जहां पौधों की वाढ़ नियंत्रित रहती है वहां पौधे वलिष्ठ भी रहते हैं और निंदाई के द्वारा उन्हें वढ़ने में पर्याप्त सहयोग प्राप्त हो जाता है.

वर्षा का जल —

पुष्प वाटिका के लिए उतने ही जल की आवश्यकता है जितना जल पौधे मांगे. जो पानी आवश्यकता से अधिक क्यारियों या उद्यानों में खड़ा रहता है वह पौधों की हत्या करने वाला होता है. अतः यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जब कभी भी

ऐसा पानी भर जाये तभी उसे अविलम्ब क्यारियों से बाहर निकाल देना चाहिए जिससे कि किसी प्रकार की हानि पुष्प-वाटिका को न पहुंच सके. पुष्प वाटिका लगाने वालों को इस बात का विशेष ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है. हमारे देश में उत्तर भारत आदि ऐसे स्थान हैं जहां की भूमि से वर्षा का जल बह कर बाहर नहीं जा पाता वरन भूमि पर खड़ा रहता है. इससे आस पास की पुष्प वाटिका में पानी भर जाता है. कई बार तो कई सप्ताह तक वाटिकाओं में पौधे जल में डूबे रहते हैं. इससे जब भी उन वाटिकाओं में जल सूखता है तभी तिग्मांशु की तेजी से पौधे झुलस कर नष्ट हो जाते हैं. ऐसे स्थानों पर बहुत ही साव-धानी से काम करने की आवश्यकता है, जिससे कि पानी से पौधों को कोई हानि न हो सके. इससे बचाव के लिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि उद्यानों के पास ही एक और बड़ी खाई खोद लेनी चाहिए, जिसमें से बढ़े हुये जल को बहाया जा सके, और उद्यान वृक्षों की तथा वाटिका के पौधों की रक्षा की जा सके. ऐसे स्थानों पर यदि इस पानी के निकास का ध्यान नहीं रखा जाता है तो उद्यान नष्ट हो जाते हैं, और पुष्प वाटिका के ऊपर किया गया परिश्रम व्यर्थ जाता है, तथा उद्यान लगाने वाले को अस-फलता और निराशा ही हाथ लगती है.

साये का प्रबन्ध —

असावधानी बरतने से प्रायः देखा गया है कि जो पौधे नये नये होते हैं वे सूर्य की तेजी से नष्ट हो जाते हैं. नये लगे हुये पौधे क्योंकि कोमल होते हैं और सूर्य की तेजी से नष्ट हो जाते हैं और उनमें अधिक गर्मी सहन करने की शक्ति नहीं होती और वे

गर्मी से जल जाते हैं, अतः जब तक पौधे छोटे रहें तब तक उनके ऊपर ऐसे साये का प्रबन्ध आवश्यक है जो तेज धूप से उनका संरक्षण कर सके. जितने भी बीज उद्यानों की क्यारियों या नर्सरी मे बोये जायें तेज धूप और वर्षा के जल से उनकी रक्षा करने के लिए सिरकियों का प्रयोग करना चाहिए.

कहीं कहीं पर गमलों को बन्द छज्जों में रखा जा सकता है. जहां पास ही बड़े बड़े पेड़ लगे हुए हों वहां पर गमलों को उनके साये में भी रखा जा सकता है. जहां पर बिल्कुल मैदान हो वहां पर साये के लिए चटाइयां या सिरकी के छप्पर प्रयोग मे लाने चाहिएं, जिससे कि धूप और वर्षा से एक साथ ही पौधों का संरक्षण रहे. जिस समय पौधे बड़े हो जाते हैं उस समय कुछ जाति के फूलों को छोड़ कर अन्य फूल वाले पौधों को इस संरक्षण की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती. किन्तु जब तक पौधे छोटे रहें तब तक इस साये का प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है.

शीश घर —

शीश घर का अर्थ यह है कि वह स्थान पौधों का तेज धूप से तो संरक्षण करे किन्तु वहां उचित प्रकाश का प्रवेश भी रहे, उसके अन्दर वायु भी आ सके और वर्षा भी कोई हानि न पहुँचा सके. जहां कहीं शीश घर तैयार करना हो कम व्यय से उसे तैयार करने के कई साधन हैं. उनमें से सर्वोत्तम साधन यह है कि पुष्प वाटिका के चारों ओर लगभग दो गज ऊंची कच्ची दीवारें तैयार कर लेनी चाहिएं और फिर उनके ऊपर लगभग इतने ही ऊँचे कुछ मोटे बांस लगभग दो दो तीन तीन गज की दूरी पर लगा लेने चाहिएं. तत्पश्चात उनके ऊपर खपच्चियां बांध कर

चटाइयां इस प्रकार से डाल देनी चाहिएं, जिससे कि थोड़ी थोड़ी रोशनी अन्दर भी जा सके. यदि तीव्र वर्षा हो तो कुछ जल भीतर भी जा सके जो उसकी प्रखरता से पौधों को कोई हानि भी न पहुँचा सके. इसके साथ ही साथ वर्षा की तेज बौछारों से तथा आंधियों से संरक्षण भी पूरा-पूरा हो जाता है. जहां पर विदेशी बीज बोये जायें वहां पर साथ ही साथ सदा बहार के पौधे भी जरूर लगा देने चाहिएं. ऐसा करने से शक्ति और शुष्कता साथ-ही साथ बनी रहती है. उसके चारों ओर थोड़ा थोड़ा सा स्थान छोड़ कर इस प्रकार की कुछ छोटी दीवारें सी बना देनी चाहिएं. जिन पर बेलें आसानी से चढ़ाई जा सकें. जिस समय तक पौधे छोटे रहें उस समय तक गमले में रख कर इसी प्रकार से इनका संरक्षण करना चाहिये. जिस समय पौधे कुछ बड़े हो जायें उस समय इन्हें धूप में रखा जा सकता है. जब तक पौधे छोटे रहते हैं तब तक ही धूप उन्हें हानि पहुँचा सकती है, तत्पश्चात नहीं. जिस समय बीज को बोया जाये उस समय धूप उसके लिए हानि कारक होती है, ऐसे समय पर गमलों को धूप से बचाने के लिए साये में रखना चाहिए. जो लोग धनवान होते हैं वह शीशे का शीश घर बनवाने में समर्थ होते हैं. जिन लोगों को ऐसा शीश घर तैयार करना हो उन्हें शीश घर के लिए बड़े बड़े पेड़ों से दूर निर्जन स्थान ही प्रयोग में लाना चाहिए.

घास और हेज—

घास की विशेष आवश्यकता इसलिए होती है कि मनुष्य को तर वातावरण प्राप्त हो सके. जिन स्थानों पर बहुत ही तेज और अधिक लू चलती है वहां पर हरी घास के मैदान उस लू को तेजी

से मनुष्य मात्र का संरक्षण करते हैं. जो भी हवा चलती है वह हरी घास से छूकर तर हो जाती है, और जो गर्मी मनुष्य के लिए हानिकारक होती है, वह नष्ट हो जाती है. जो लोग हरी घास के मैदानों के पास रहते हैं उन लोगों को लू नहीं सता पाती और मस्तिष्क को भी तर और ताजा रखती है. फूलों के पौधों के आस-पास भी घास के मैदान लगाने से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि जो गर्म हवा फूल पौधों के लिए हानिकारक होती है वह घास की हरियाली से तर हो जाती है, और इस प्रकार फूल पौधों को कोई भी हानि नहीं पहुँचा पाती. ऐसे मैदान लगाने के लिए यह आवश्यक है कि घास के मैदान भली प्रकार से काट छांट कर समतल कर लेने चाहिएं. ऐसा करने से जो भी हवा चलेगी वह बराबर तर होती रहेगी. जहां पर भी घास उगानी हो वहां के लिए दूब ही अच्छी रहती है, जिसको अंग्रेजी में (Cynodon dactylon) कहते हैं. जहां इस पर घास का मैदान लगाना होता है वहां पर ईंट, चूना और मलवा आदि डालकर कूट देना चाहिये. जहां पर इस प्रकार से कूटे हुए स्थान पर यह दूब लगाई जाती है वहां पर बहुत अच्छी तरह से उगती है. इस प्रकार से जितने भी घास के मैदान तैयार किये जाते हैं उतने ही बढ़िया ढंग की पुष्प वाटिकायें सजती हैं और उद्यान भी वह ही अच्छे ढंग के माने जाते हैं जिनके अंदर बड़े बड़े और अच्छे घास के मैदान लगे हुये हों. घास के मैदान लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि जहां घास उगाई जाये वह मिट्टी कंकड़, पत्थर और रोड़ों से साफ कर ली जाये और फिर ऐसी दूब लगायें जिसमें पूरी पूरी जड़ें मौजूद हों, तत्पश्चात जब तक घास में अधिक कोमलता रहे तब तक उसमे निरन्तर प्रति-

दिन जल देते रहना चाहिये. जिस समय दूब पक जावे उस समय पानी आवश्यकतानुसार देना चाहिये. मार्च के महीने में सर्दियां लगभग समाप्ति पर होती हैं तथा गर्मियों का आरम्भ होता है. इस प्रकार यह मौसम न अधिक गर्म होता है और न अधिक शीत अतः घास लगाने का कार्य अधिकतर इसी मौसम में किया जाता है. जहां पर घास के अच्छे मैदान तैयार करने हों वहां पर बीज भी अच्छा बोया जा सकता है. जहां पर पहिले कभी भी घास लगाई गई हो अथवा और कोई चीज भूमि में पैदा की गई हो उस मैदान को गहरा जुतवाना चाहिये और फिर उसमें से पुराने घास-पात, कंकड़, पत्थर तथा रोड़ों की सफाई कर देनी चाहिये. इसके बाद जितनी भी मिट्टी हो उसे कई बार हेर फेर कर बदल देना चाहिये. इसके पश्चात भूमि को भली प्रकार से समतल करके उसके ऊपर लगभग चौथाई फुट गोबर डालकर नीचे की लगभग आधा फुट तक की साफ की हुई मिट्टी में मिला देना चाहिये.

यह बहुत ही आवश्यक होता है कि ऐसे स्थानों पर से वर्षा के पानी के निकास का पूरा पूरा प्रबन्ध कर लिया जाये जिससे कि वर्षा का जल किसी प्रकार से भी आवश्यकता से अधिक मात्रा में और अधिक देर तक खड़ा रहने से बोई हुई घास को नष्ट न कर दे. जब उपरोक्त रीति से भूमि को समतल कर लिया जाये तब उसके ऊपर इतना जल छिड़क देना चाहिये कि भूमि भीतर तक तर हो जाये और जब ऊपर की मिट्टी सूख जाये उस समय उसमें बीज बो देना चाहिये. बीज की बुवाई के फौरन बाद छिड़काव के द्वारा भूमि मे जल देना चाहिय और छिड़-

काव के द्वारा ही तव तक भली भांति जल देते रहना चाहियें जब तक कि घास काटने योग्य न हो जाए. जिस समय घास लगभग एक माह की हो जाए उस समय उसे कैंची से या मशीन से काट डालना चाहिए और इसके पश्चात सड़े हुए गोबर का सूखा हुआ खाद खूब बारीक करके घास में डाल देना चाहिये. ऐसा करने से दूब अच्छी लगती है. दूब मे पानी की बहुत आवश्यकता रहती है अतः पानी ठीक समय पर देते रहना चाहिये और सिंचाई के पश्चात घास के मैदानों में से अच्छी निंदाई करके दूधी और मोथादि व्यर्थ की उन घासों को निकालते रहना चाहिये जो बिना बुलाए मेहमानों की भांति उग आती है. दूब के मैदानों को सदा सायेदार स्थानों से और बड़े बड़े पेड़ों से दूर तैयार करना चाहिये जिससे कि यह मैदान धूप से भी पूरा पूरा लाभ उठा सके. जहां बड़े बड़े मैदान तैयार करने होते हैं वहां तो यह दूब काम देती ही है लेकिन जहां पुष्प वाटिकाओं में कुछ स्थानों को एक दूसरे से पृथक करने की आवश्यकता होती है वहां बीज मे हेज लाभदायक रहती है. पुष्प वाटिकाओं में बड़ी बड़ी क्यारियां बनाकर उन क्यारियों को पृथक पृथक चारों ओर से हेज लगाकर घेरा जाता है जिससे वह अन्य क्यारियों से पृथक प्रतीत होती है. हेज लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि इसको परिश्रम की अधिक आवश्यकता होती है. हेज तैयार करने मे यदि थोड़ी भी असावधानी हो जाती है तो हेज शीघ्र ही बरबाद हो जाती है.

इसको तैयार करने में कटाई-छंटाई और सिंचाई-निंदाई का बहुत ध्यान रखने की आवश्यकता है. यह तैयार हो जाने के

पश्चात हरी-भरी घास पर अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है. उत्तम शरवों में मुरीकाटा और केसरीना वहुत अच्छी हेज मानी गई हैं. यह क्यारियों के एक भाग को दूसरे भाग से अलग करने के लिये अच्छी रहती हैं. जहां पर इन शरवों से सीमा वांधने या दीवार का कार्य लेना हो वहां ऐस चीची मीनी, शीशवान, पार्कन, सोरियां और केसीया मोडेस्टा आदि अच्छी-अच्छी हेजों से काम लेना चाहिये. और जहां पर हेजों को केवल सौन्दर्य की दृष्टि से ही लगाना हो वहां पर डुरंटा, इंगाडुलसिस, जेडोनिया, विसीडा और फिलान्थस जैसे पौधे अच्छे माने गये हैं.

जहां हेज लगानी हो वहां पर एक आधा गज चौड़ी नाली तैयार करनी चाहिए और उसकी लगभग दो फुट गहरी खुदाई करके उसमें भली प्रकार से अच्छी गोवर की खाद मिश्रित कर एक नलकी से सिंचाई कर देनी चाहिए. जब यह नाली सूख जाये तव पुनः इसकी खुदाई करके मिट्टी को समतल कर देना चाहिये. इस नाली की चौड़ाई में लगभग आधे-आधे फुट पर दो पंक्तियों में हेज के वीजों को भली प्रकार से ढांप देना चाहिए, और फिर उस नाली में पानी दे देना चाहिये. जब तक वीज न जमें और पौधे छोटे-छोटे तथा कोमल रहें तब तक सिंचाई छिड़काव के द्वारा ही होनी चाहिये. तत्पश्चात पौधे जब वड़े हो जायें तब उनकी आवश्यकता देखकर नालियों के द्वारा दिये जाने वाले पानी की सिंचाई की जा सकती है.

जैसे हेज लगाने के लिये सबसे अच्छा समय वर्षा ऋतु का है. ऐसे समय पर हेज लगाने के लिये विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती. प्रत्येक कार्य को करने के लिए कोई युक्ति होती है, जिससे कि कार्य सुव्यवस्थित ढंग से किया जा

सकें. जो भी कार्य युक्ति-पूर्वक व्यवस्थित ढंग से नहीं किया जा सकता वह कभी भी सफल नहीं होता, जिस प्रकार खेती करने की अनेक युक्तियां हैं, इसी प्रकार पुष्प वाटिकायें तथा उद्यान तैयार करने की भी अनेक युक्तियां हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन पृथक रूप से किया जायगा.

गमलों की फुलवारी —

ऐसी फुलवारी जो थोड़ी सी धूप से तिलमिला जाए अथवा थोड़ी सी वर्षा से शिथिल पड़ जाए गमलों में अच्छी रहती है. फुलवारी को गमलों में लगाने से सजावट भी बढ़िया होती है. जितने भी गमले फुलवारी के लिए प्रयोग में लाने हों उन्हें सदा स्वच्छ रखना चाहिए. यदि कोई गमला खाली भी रहता है तो उसे भी गन्दा न रख कर साफ करके एक ओर रखना चाहिए. ऐसा करने से जब भी कभी गमले की आवश्यकता होगी तब ही गमला स्वच्छ और साफ किया हुआ प्राप्त हो जायगा तथा जहां भी फुलवारी से सजावट करनी होगी वहा साफ होने के कारण गमला शोभा नहीं बिगड़ने देगा.

गमलों में जो पौधे लगाए जाते हैं हमारे देश में उनके लिए दो समय निर्धारित हैं. एक पौधे तो ऐसे होते हैं जो वर्षा के आगमन पर गमलों में लगाए जाते हैं और दूसरे वह जो सर्दी के आरम्भ मे गमलों मे लगाए जाते हैं. जो पौधे शीत काल मे अपने यौवन पर रहते हैं उन्हें शीतकालारम्भ के समय पर अन्य गमलों में बदल देना चाहिए, और जो पौधे ऊष्ण जलवायु के हों या देसी हों उन्हें या तो फरवरी में बदल देना चाहिए या फिर वर्षा से पूर्व.

जो पौधे एक गमले से दूसरे में बदलने हों उनके लिए सबसे अच्छा ढंग यह है कि जिस गमले में पौधे को बदलना हो उस गमले को तैयार की हुई मिट्टी से आधा भरना चाहिए. जिस गमले में पौधा लगा हुआ हो उसकी मिट्टी को भली प्रकार से तर कर देना चाहिए. फिर किसी नुकीली चीज से गमले की ऊपरी मिट्टी को चारों ओर गमले से पृथक करने का प्रयास करना चाहिए. फिर गमले को उल्टा करके उसकी संपूर्ण मिट्टी को पौधे समेत थोड़ा सा हिला कर दूसरे हाथ पर ले लेना चाहिए.

इस प्रकार से मिट्टी समेत जब यह पौधा हाथ पर आ जायें तो पहले गमले में रखे गये ठीकरे और कंकड़ आदि जो भी मिट्टी में चुभे हुये हों उन्हें सावधानी के साथ इस प्रकार निकाल देना चाहिए जिससे कि पौधों की जड़ों को किसी प्रकार भी हानि न हो पाये. यदि पौधों की जड़ टूट जाती है तो वह पौधा खराब हो जाता है, या तो वह उगता ही नहीं और यदि उग आता है तो इतना शिथिल रहता है कि उसमें फूल भली प्रकार से लग नहीं पाते अतः बहुत ही सावधानी के साथ गमले में से पौधे को ऐसी युक्ति से बदलना चाहिए कि वह समस्त हानियों से बचा रहे.

इस निकाले हुये पौधे को मिट्टी समेत उस गमले में रख देना चाहिए जिसमें आधी मिट्टी भरी है. नये गमले में चारों ओर थोड़ी थोड़ी मिट्टी और डाल कर सीधा जमा देना चाहिये. इसके बाद थोड़ा सा जल डाल कर इसे सायेदार स्थान पर रख देना चाहिये, जिससे कि धूप की तीव्रता इसकी कोमलता को नष्ट न कर दे. जिस समय पौधा कुछ-कुछ बड़ा होने लगे उसे तब कभी-कभी हल्की धूप में रख कर सूर्य के दर्शनों के लिए खुले स्थान

पर रखना चाहिये जिससे कि वह अपने यौवन पर आकर चमक उठे.

जो भी पौधा कभी भी रुग्न सा दीख पड़े उसका नई और अच्छी मिट्टी में तुरन्त ही स्थानान्तरण कर देना चाहिए जिससे कि उसकी व्याधि नष्ट हो जाये और वह पूर्ण स्वस्थ हो जाये. जिस समय फूलों के पौधे रुग्न हों और इन्हें नई मिट्टी मे बदलने का प्रबन्ध न हो पाये तो इनके अन्दर १४५ डिग्री फार्नहीट गर्म किया हुआ जल डाल देना चाहिए. ऐसा करने से जिस प्रकार आज के युग में चाय पी लेने से साधारण और सामयिक रोग नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार गर्म पानी गमलों में डाल देने से पौधों की साधारण बीमारियां नष्ट हो जाती हैं.

यह ध्यान रहे कि जिस समय पौधों में गर्म पानी दिया जाये उस समय प्रभाव संतुलित रखने के लिए बाहर से पर्याप्त गर्म पानी से धोकर उसे पूर्ण रूपेण गर्म रखना चाहिए. पानी देने के लिये इतनी सावधानी से काम लेना चाहिये कि जिस समय पौधे बढ़ रहे हों उस समय पानी अधिक देना चाहिये. जिस समय पौधों ने बढ़ना बिलकुल बन्द कर दिया हो उस समय पानी थोड़ा थोड़ा डालना चाहिये, ऐसा करने से पौधे खराब नहीं होते.

जो पौधे ठन्डी जलवायु के होते हैं वह सूखी मिट्टी मे नहीं रह सकते, और साथ ही साथ अधिक वर्षा भी सहन नहीं कर सकते. इन पौधों में जिरानियम और कार्वेशन ऐसे पौधे होते हैं, जो यदि वर्षा में से हटा दिये जायं तो नष्ट हो जाते हैं. अतः जिन गमलों में इन्हे लगाया गया हो उनमें से जल के निकास का ठीक-ठीक प्रबन्ध करके गमलों को वर्षा मे ही छोड़ देना चाहिए.

जब तक यह पौधे छोटे छोटे रहें तब तक इनमें हजारे से ही पानी डालना चाहिये तथा पानी डालते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वह पानी फूल और पत्तों पर न पड़कर केवल जड़ों में ही पड़े अन्यथा पौधों की सुन्दरता मारी जायगी. जो सुन्दर पौधे गमलों में लगाये जाते हैं इनके पत्तों पर धूल सी जमती देखी गई है, इस धूल को हर सप्ताह सावधानी से धो देना चाहिए.

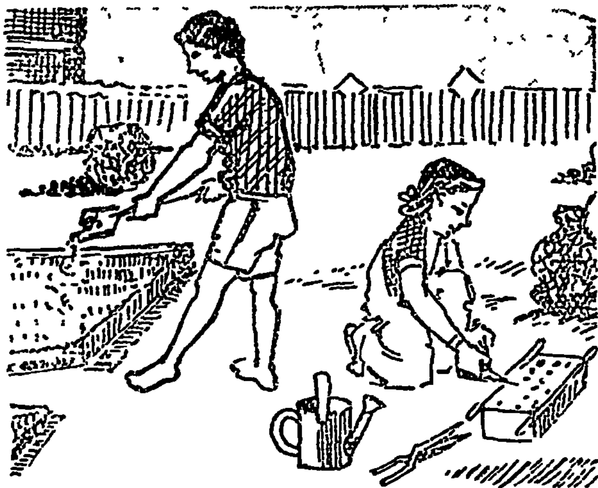
कलम लगाना — जो पौधे कलम लगाकर तैयार किये जाते हैं उनके लिये उपयुक्त समय देख लेना आवश्यक है अर्थात जो पौधे ठन्डे देशों के हों उन्हें शीतकाल के आरम्भ में तथा जो पौधे देशी हों उन्हें वर्षा में लगाना चाहिए. कलम लगाने का ढंग यह है कि जो पौधा लगाना हो उसकी पकी हुई टहनी पौन फुट के लगभग काट लेनी चाहिए और फिर ३ इंच के लगभग मिट्टी के ऊपर छोड़कर शेष सारी ही भूमि में दबा देनी चाहिये. जिस समय कलम काटी जाये उस समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह दोनों सिरों पर अंखुओं पर ही कटे, जो भाग भूमी में दबाया जाये उसका सिरा सीधा कटा होना चाहिए और जो भाग ऊपर हो उसका सिरा तिरछा कटा होना चाहिए. कलम की लकड़ी पृथक पृथक ढंग की होती है जैसे गुलाब और प्रबीलिया की जो कलमें लगाई जाती हैं वह लगाने के योग्य तब होती हैं जबकि पूर्ण रूपेण पक जाती हैं. रुबेलिया तथा बुहीमिया (कचनार) की कलमे लगाने योग्य तब होती हैं जब लकड़ी भूरी हो जाए. रंगाढुल सिम और बार लोरिया की कलमें लगाने योग्य तब होती हैं जबकि वह हरी हो गई हों या एक वर्ष की हो गई हों. पेड़ या पौधे के ऊपरी भाग की जो टहनियां कलमों के काम में लाई

जाती है. वे बहुत शीघ्र ही फूल देने लगती हैं. जो कलमे नीचे लटकती हुई टहनियों से काटी जाती है वह यद्यपि पौधे तो स्वस्थ तैयार करती हैं किन्तु एक तो स्थान अधिक घेरती है दूसरे उनमे फूल नहीं लगते.

जो पौधे छोटी आयु के होते है यदि उनकी कलमे प्रयोग मे लाई जायें तो पौधे बड़े होगे और अधिक दिनों तक फूल भी देते रहेंगे जो कलमे टहनियों के सिरे पर से काटी जाती है वह फूल तो शीघ्र ही देती हैं किन्तु ऊंचाई मे छोटी रहती है. साधारण भूमि मे कलमों को आधे से लेकर एक फुट तक के अंतर पर खुले मैदान में कुछ तिरछा गाड़देना चाहिये, जिस समय कलम लगा दी जाये उस समय कलम वाली क्यारियो को जल से ठीक प्रकार से भर देना चाहिये. और फिर जैसे जैसे आवश्यकता हो उसी प्रकार से सिंचाई करते रहना चाहिये.

दब्बा लगाना — यह भी एक प्रकार की युक्ति है जिसके द्वारा यद्यपि कलम की अपेक्षा पौधे देर मे तैयार होते हैं, तथापि इसमे कोई सन्देह नहीं कि यह युक्ति विश्वासपात्र है. कुछ पौधों को छोड़ कर शेष सभी को इस यक्ति से तैयार किया जा सकता है. इसके लिए एक वृक्ष की ऐसी पकी हुई लकड़ी लेनी चाहिए जो टूटे नहीं और मुड़ जाए और कलम की भांति ही इसे तैयार कर लेना चाहिए. तत्पश्चात इसके ऊपरी भाग पर जो अखुआ हो उस पर तेज चाकू से एक चीरा लगा देना चाहिए और मध्य में लकड़ी का एक ऐसा छिलका लगा देना चाहिये जो दोनों फांकों को मिलने न दे.

इसके पश्चात इस कलम को भी सीधा भूमि मे दबा देना



खाद देना

सिंचाई

चाहिए. ठीक प्रकार से इसे दवा कर इस पर ईंट रख कर यदि जल देते रहें तो या वर्षा सिंचाई करती रहे तो लगभग दो महीने में पौधा तैयार हो जाता है. इस प्रकार यह भी कलम की भांति ही दवा कर तैयार की जाती है इसलिए इसे दव्वा कहते हैं।

चश्मा चढाना -- यह तैयार करने के लिए बीज भी वोये जा सकते हैं, वीज के द्वारा पौधे तैयार करने के लिए जनवरी और फरवरी का समय उपयुक्त रहता है. उस समय जब कि वर्षा होने वाली हो और पौधे तैयार हो जाएं इन्हे क्यारियों मे लगभग दो दो फुट के अन्तर पर लगा देना चाहिए. पौधों मे से यदि दो से अधिक टहनियां फूट निकले तो अच्छी और स्वस्थ टहनियों को छोड़ कर शेष सभी टहनियों को काट डालना चाहिए. इसमें भी सिंचाई और निंदाई की पर्याप्त आवश्यकता होती है, अतः आवश्यकतानुसार इसका ध्यान रखना चाहिए.

यदि पौधे कलमों के द्वारा तैयार करने हों तो उपयुक्त समय पर कलमें लगा कर जब पौधे तैयार कर लिए जायं तब जुलाई मे चश्मा चढ़ाने के साथ साथ लगभग दो-दो फुट के अन्तर पर स्थानान्तरित कर देना चाहिये. चश्मा चढ़ाने के लगभग तीस दिन पहले दो ऐसी स्वस्थ टहनियों को छोड़कर जो एक वर्ष की हो गई हों शेष सब काट डालनी चाहिएं. ऐसे स्थानों पर जहां चश्मा लगाना हो पानी खूब अच्छी तरह से भर देना चाहिए.

जो भी पौधे इस प्रकार से तैयार किये जाएं उनकी जड़ से लगभग चौथाई फुट ऊपर उनके धड़ के ऊपर किसी तेज चाकू से (T) का निशान बना देना चाहिए. लेकिन बनाते समय यह ध्यान रहे कि पौधों के धड़ की केवल छाल ही छाल कटे और जो छाल के

भीतर लकड़ी होती है उस में चाकू की नोक बिलकुल भी न लगे वरना पौधे को हानि पहुँचेगी और पौधा शिथिल पड़ जायेगा, इस के पश्चात जब काष्ठ से छाल का सम्बन्ध हट जाये तो उस में एक आंख बैठा देनी चाहिये तथा उसको सन से इस भांति बांध देना चाहिये कि उसमें वायु का प्रवेश न हो पाये किन्तु आंख नीचे को न दबे वरन खुली रहे.

जो स्वस्थ टहनी बीज के लिये लाई गई हो, उस पर तेज चाकू इस भांति चलाना चाहिए कि जहां पर पत्ते का जोड़ हो वहां से लगभग आधा इंच ऊपर से लेकर बीच के काष्ठ का थोड़ा सा भाग चाक करता हुआ पत्ते के जोड़ से लगभग पौन इंच तक नीचे निकल जाये, फिर आंख की जो छाल हो उसके काष्ठ को छुड़ा लेना चाहिए, जिससे कि उसे पौधे पर जहां बैठाना हो वहीं बैठ जाये. आधा हिस्सा पत्तों का ऊपर से काट कर हटा देना चाहिए तथा जब यह स्वतः ही गिर पड़े, तब समझ लेना चाहिए कि चश्मा सफलता पूर्वक लग गया है, चश्मा लगाते समय यह ध्यान रहे कि इसे उत्तर की दिशा मे लगाया जाए.

जब इस चश्मे मे कोंपल निकल आए और बड़ी हो जाए तो उसके लगभग आधा फुट ऊपर टहनी काट देनी चाहिये और जो बांध बांधा गया है उसे ढीला करदेना चाहिए और लगभग दो महीने के पश्चात इस बांध को बिलकुल निकाल देना चाहिए.

इस प्रकार जो चश्मा बांधा जाए यदि उसमें से किसी प्रकार का जंगली कुरा फूटे तो इस बांध को समूल नष्ट कर देना चाहिए, चश्मा चढ़ाने के लिए फरवरी और नवम्बर का समय सर्वोत्तम माना गया है. जिस समय चश्मा चढ़ाया जाय उस समय

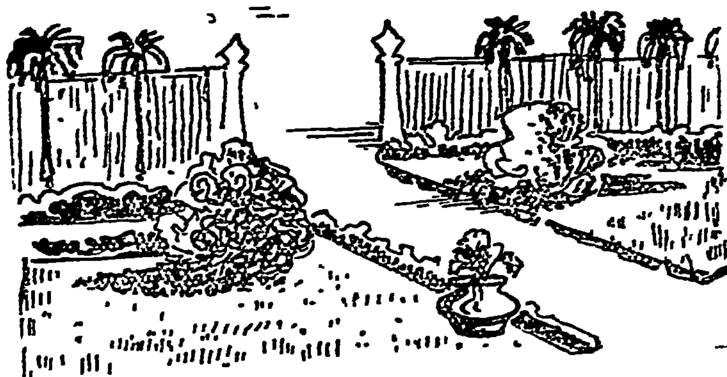
सिंचाई और निंदाई बहुत ही व्यवस्थित ढंग से होनी चाहिए. उसके अन्दर किसी प्रकार की ढिलाई हानि पहुँचा सकती है.

इस प्रकार पौधों में चश्मा चढ़ा कर पौधों की नस्ल सुधारी जा सकती है और फुलवारी भी बढ़िया प्रकार की हो सकती है.

अंटा लगाना — अंटा लगाने के लिए सबसे बढ़िया तरीका यह है कि इसकी किसी एक आंख का गोल घेरा बनाना होता है, अर्थात एक अच्छी पकी हुई स्वस्थ टहनी लेकर उसकी एक आंख पर चारों ओर से लगभग एक इंच चौड़ा गोला बनाना चाहिए और फिर उतनी ही छाल को उतार कर अन्दर के काष्ठ को साफ कर लेना चाहिए. तत्पश्चात इसके ऊपर मिट्टी बांधनी होती है, जिसके लिए जहां पर कटाव हो उस के लगभग दो इन्च की दूरी पर धड़ की ओर लगभग एक फुट लम्बी चौड़ी चट्टी के टुकडे को इस प्रकार से बांधना चाहिए कि वह चट्टी कुपाकार बन जाए, इसके पश्चात उसमें मिट्टी भर कर और चट्टी को लपेट कर इसमें उसके ऊपर पूरी तरह से बांध देना चाहिए. मिट्टी इतनी भरी जाए कि जो कटाव किया गया है उसके चारों ओर से लगभग दो इंच रहे. जो भी मिट्टी इसके अन्दर डाली जाय वह साधारणतम होनी चाहिए.

इसके पश्चात किसी टहनी को उसके ऊपर झुका कर उसमें छेददार कोई ऐसी हांडी पानी की भरकर बांध देनी चाहिए जिससे कि बूंद बूंद पानी उसके ऊपर टपकता रहे. बर्तन में पानी हमेशा भरा रहना चाहिए. ऐसी कलमें तैयार होने में दो महीने से ढाई महीने तक का समय लेती हैं.

पौधे लगाना — गुलाब और शरब आदि के वह पौधे जो नर्सरी



फुलवारी सजाना



काट छांट

में उगाए जाते है या गमलों में तैयार किए जाते हैं बाद में उन्हें खुले स्थान मे भी लगाया जाता है. ऐसे पौधों के लगाने का समय या तो जौलाई का है जब कि वर्षा का आरम्भ होता है या नवम्बर का है जबकि शीत काल का आरम्भ होता है. जितने भी देशी पौधे लगाए जाते हैं उन्हें हमेशा जौलाई मे तथा जितने विदेशी पौधे लगाये जाते हैं उन्हें नवम्बर में निर्धारित स्थान पर लगाया जाता है.

जितने साधारण ऊंचे वृक्ष होते हैं या छोटे शरव होते हैं उन्हें दो फुट की चौड़ाई और दो फुट की गहराई मे लगाना चाहिए, तथा बड़ी शरव और बड़े वृक्ष को लगाने के लिए इससे लगभग ड्योढ़े चौड़े और गहरे गढ्ढे की अवाश्यकता है. जिस गढ़े मे इन्हें लगाया जाये उसमे पहिले से ही मिट्टी को साफ और बारीक करके उसमे पत्तों और गोबर की अच्छी साफ खाद मिला देनी चाहिए. फिर गढ़े की मिट्टी को भली प्रकार से समतल कर देना चाहिए. इसके पश्चात उसमे भली प्रकार से पानी छोड़ देना चाहिए, जब मिट्टी सूख जाए तब पुन. उसे खोदकर और समतल कर देना चाहिए. जब मिट्टी सूख जाए तब उसकी निंदाई करके बराबर सिंचाई करते रहना चाहिए.

गमलों मे या फुलवारी में जो भी पौधे लगाए जाये उनका स्थानान्तरण अत्यन्त आवश्यक होता है. जो भी पौधे स्थानान्तरित किए जाये उन्हें बहुत ही सावधानी से बदलना चाहिए. उनकी कोई भी जड़ जरा सी भी न टूटने पाए और न ही खुरची जाए. फिर जब पौधे को मिट्टी मे से निकाला जाए तो तुरन्त ही उसकी जड़ों को मिट्टी लगाकर उसमे पानी दे देना चाहिए तथा फौरन ही अन्धेरे मे रख देना चाहिए. जिस पौधे का गमला

टूट जाए उसे भी फौरन दूसरे गमले में बदल देना चाहिए. ऐसे बदले हुए गमलों को दिन में किसी सायेदार अन्धेरे स्थान में रखना चाहिए. और रात्रि को खुले स्थान पर ओस में. फिर जब यह पता लगे कि पौधा स्थिर है तो उसे खुले सायेदार स्थान में रखना चाहिए फिर एक सप्ताह में ही उसे दो तीन दिन धूप में रखकर निर्धारित स्थान पर लगा देना चाहिए.

काट छांट — फुलवारी के लिए जितने भी पौधे लगाये जाते हैं लगभग सारे ही काट छांट से पर्याप्त मात्रा में सुधर जाते हैं. मार्च-अप्रैल में जिस समय शरब आदि के पौधे खिल चुकते हैं उसके पश्चात इनकी काट छांट होती है. जब इन पौधों की छंटाई हो जाती है तब इनमें से नई टहनियां फूटती हैं और जहां पौधा रूपवान हो जाता है, टहनियां सुन्दर हो जाती हैं वहां फूल भी घने घने आने लगते हैं क्योंकि कटाई-छंटाई पौधों की फूलने की शक्ति को बढा देती है. काट छांट के लिए पौधों की सारी ही टहनी तथा पत्तों को हटा देना चाहिए जिससे कि पौधे ऊपर की ओर को बढ़े. जिस समय यह काट छांट की जाए उस समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उस काट छांट से पौधों का सौन्दर्य और रूप बढ़े.

इसी प्रकार से कभी कभी जड़ों की काट छांट की भी आवश्यकता पड़ती है. वृक्ष तथा पेड़ों के आस-पास की मिट्टी को खोदकर इस प्रकार बदल देना चाहिए कि उसमें धूप लगे. थोड़े दिनों के बाद इसमें अच्छी खाद का मिश्रण कर अच्छी तरह से पानी देना चाहिए. जिस समय जड़ की काट-छांट कर दी जाए उस समय पौधों के चारों ओर की लगभग आधा फुट मिट्टी को वहां से हटने नहीं देना चाहिये. ऐसा करने से जड़ों को कोई नुकसान नहीं हो पाएगा.

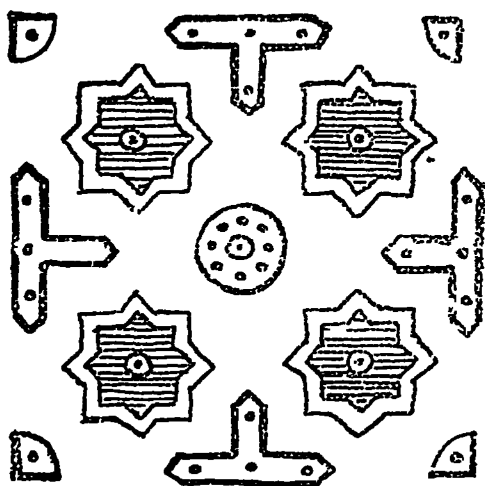
पुष्प वाटिका

अभी तक जो कुछ बताया गया है साधारण तथा हर प्रकार की पुष्पवाटिकायें तैयार करने के लिए उपयोगी तरीका है. यदि ठीक प्रकार से जमीन, खाद और जलवायु का ध्यान रखकर पुष्प वाटिका सजाई जाये तो सफलता पूर्वक लगाई जा सकती है. पुष्पवाटिका तैयार करने के लिए यद्यपि पीछे बताए गए सारे ही नियम अत्यन्त उपयोगी हैं, तथापि इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि फूल की जाति, जमीन की जाति और जलवायु के कारण कहीं-कहीं पर यह नियम सर्वोपयोगी सिद्ध नहीं होते, वरन अनेकानेक और ढंगों से पुष्पवाटिकाये तैयार होती हैं.

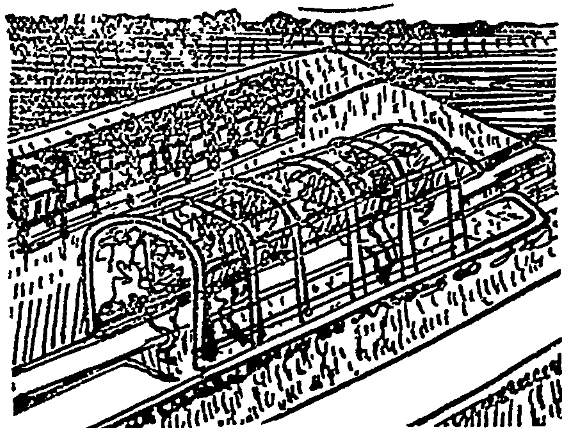
पुष्पवाटिकाओं में पृथक पृथक जाति के फूल लगाने के लिये अलग अलग तरीके काम में लाए जाते हैं. कुछ प्रमुख फूलो के बारे मे हम संक्षिप्त में पृथक पृथक वर्णन करेंगे.

गुलाब --

गुलाब एक बहुत ही सुन्दर और सुगन्धिपूर्ण फूल होता है. वास्तव में गुलाब के फूल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि वह जितना अधिक सुन्दर होता है उतना ही अधिक सुगन्धित भी होता है. यद्यपि बहुत से लोग कमल को गुलाब से बड़ा मानते हैं तथापि वास्तव में यदि देखा जाये तो कमल मे केवल सौन्दर्य होता है, तथा गुलाब में सौन्दर्य और सुगन्ध दोनों.



नक्शा।



परगोला

गुलाब लगाने की संक्षिप्त रीति नीचे देखिये. गुलाब के पौधे लगाने के लिए अच्छा स्थान चुनने की आवश्यकता है अर्थात इसके लिये ऐसे स्थान की खोज करनी चाहिये जो बिल्कुल खुला हो, उसके ऊपर वृक्षादि की छाया न पड़ती हो. जहा भी गुलाब के फूल लगाने का विचार हो उन्हें पृथक पृथक स्थानों पर ही लगाना चाहिये. यदि इन्हें वार्षिक फूलों के साथ लगाया जाता है तो गुलाब की जाति घटिया हो जाती है और फूल मे सुगन्ध कम हो जाती है.

गुलाब के लिये क्यारी का तैयार कर लेना बहुत आवश्यक है. जहां पर इसे लगाना हो वहां की मिट्टी को लगभग पौना फुट खोदकर बाहर निकाल देना चाहिये और फिर इसी प्रकार एक फुट मिट्टी और खोदकर बाहर निकाल देनी चाहिये. तत्पश्चात नीचे की मिट्टी में लगभग एक फुट की खुदाई और कर देनी चाहिये

जब यह खुदाई हो जाय तब इस मिट्टी के ढेलों को तोड़कर मिट्टी को समतल करके इसके ऊपर लगभग आधा फुट खाद फैलाकर मिट्टी में मिला देनी चाहिये और फिर जो मिट्टी खोदकर बाहर निकाली गई हो उसे पुन. उसी स्थान पर ही भर देना चाहिये. फिर पाटा चला कर मिट्टी को समतल कर देना चाहिए, इसके पश्चात तुरन्त ही अच्छी सिचाई कर देनी चाहिए. इस प्रकार क्यारी पौधे लगाने के योग्य तैयार हो जाती है. जितने भी स्टैन्डर्ड गुलाब या बेलें लगानी हों वहां पर पौधों के लिए लगभग ३ फुट व्यास के और तीन फुट गहरे गड्ढे खोदने चाहिये तथा उपरोक्त रीति से ही खाद डालकर क्यारी तैयार कर लेना चाहिए.

जितने भी पौधे चश्मे चढ़े हुए होते हैं उन पौधों को चश्मे से एक इंच नीचे तक मिट्टी में गाड़ देना चाहिये और जो पौधे कलम के द्वारा लगाए गए हों उनको लगभग दो इंच भूमि में गाड़ देना चाहिये. गुलाब के पौधे लगाने के तीन ही ढंग अधिक प्रयोग में लाये जाते हैं, चश्मा चढ़ाकर, कलम लगाकर या दब्बा बांधकर इनके पौधे तैयार किए जाते हैं.

चश्मा चढ़ाने के बारे में पिछले प्रकरण में बताया जा चुका है. जिस स्थान पर चश्मा चढ़ाया गया हो उस स्थान को छोड़कर यदि अन्यत्र कहीं भी फुटाव निकल आया हो तो उसे छुटा देना चाहिये.

निदाई और सिंचाई इन दोनों का भी ठीक ठीक ध्यान रखना चाहिए. फरवरी के महीने में या शीतकाल के अंत में इसकी क्यारियों में गोबर का बहुत अच्छा सड़ा गला खाद डालना चाहिये. ऐसा करने से जौलाई के महीने तक पौधे स्थानान्तरण के लिए तैयार हो जाते हैं और नवम्बर के समय में इन पौधों को निर्धारित स्थान पर स्थानान्तरित कर देना चाहिए.

जिस समय गुलाब के पौधों की छंटनी की जाए उस समय उनकी टहनियों में जो उत्तम और पकी हुई कलम हो उसे उसी उद्यान में लगा देना चाहिये. किन्तु हिबरिड परपीचुवल की कलमें लगाने से कोई लाभ नहीं होता अर्थात इसके लगाने से पौधों मे केवल पत्तों ही पत्तों की बाढ़ आती है और फूल बिल्कुल भी नहीं आते. वैसे टीज और हिबरिड टीज की कलमों से तैयार किये हुए पौधे अच्छे पुष्प देते हैं. जो भी कलमें पौधा तैयार करने के काम में लाई जायें वह लगभग एक साल की टहनी की

पकी हुई होनी चाहियें. इसे लगभग जनवरी के अंत तक लगाना चाहिए. इस समय इन पौधों की जड़ें मिट्टी में भली प्रकार से फैल जाती हैं.

जब इनकी जड़ें फैल जायें तब इन्हें गमलों मे स्थानान्तरित कर देना अच्छा होता है और जब भी उपयुक्त समय हो इन्हें अपने स्थान पर लगा देना चाहिये. गुलाब को और भी सुन्दर रूप प्रदान करने के लिये भी कुछ परीक्षण किये गए हैं.

परगोला — परगोला बनाने का अर्थ यह है कि ऐसे हलके साये का स्थान बनाया जाए जिसमे से होकर निकलने से मनुष्य का मस्तिष्क सुगन्धिपूर्ण हो जाए. इसे तैयार करने के लिए भूमि के अन्दर लगभग चार-चार गज ऊंची लोहे की सलाखें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर गाड़ देनी चाहिये.

और उसके ऊपर के सिरों को तार बांध कर एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित कर देना चाहिये कि तार बीच मे कमान की भांति लटका रहे. इन सलाखों के नीचे पास ही गुलाब की बेल लगा देनी चाहिएं. जब वह बढ़े तब उन्हें सलाखो के ऊपर चढ़ाना चाहिये. इस प्रकार बढ़ते बढ़ते वह बेले पूरी सलाखो पर और तारों पर छा जाती हैं. इस प्रकार का परगोला पुष्पवाटिकाओं मे ऐसे स्थानों पर बनाया जाता है जहा थोड़ा सा रास्ता पार करके दूसरी ओर जाना हो. बीच मे पगडडी होती है और दोनों ओर इस प्रकार का गुलाबी उद्यान, ऐसा करने से पुष्प वाटिका का सौन्दर्य बहुत बढ़ जाता है. ऐसे परगोले बनाने के लिए ग्लोरी डिडिजन, कोरोलाइन टैस्टाऊट, मारशलनील तथा लेडी ऐश टाउन गुलाब बहुत ही अच्छे प्रकार के माने गये है.

पिलर रोज—कभी कभी छोटे स्थानों पर भी पुष्पवाटिका लगाई जाती हैं. ऐसी जगह में पुष्पवाटिका का सौन्दर्य बढ़ाने में पिलर रोज बहुत उत्तम रहता है, क्योंकि स्थानाभाव के कारण गोला नहीं बन पाता, वहां पिलर रोज लगाना अच्छा होता है. उसका कारण यह है कि पिलर रोज के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता नहीं होती वरन थोड़े में ही काम चल जाता है, जहां घास के मैदान होते हैं वहां तथा परगोले के पीछे इनकी पंक्तियां बहुत ही सुन्दर प्रतीत होती हैं. पिलर रोज लगाने के लिये एक अच्छा लगभग चार गज़का शहतीर भूमि में गाड़ना चाहिये. उस के चारों ओर लगभग पांच फुट की दूरी पर खूंटियां गाड़ देनी चाहियें.

शहतीर के ऊपरी हिस्से से इन खूंटियों से ऐसे तार बांधने चाहिये जो तम्बू की शक्ल में बन जाये. खूंटियों के आसपास गुलाब की बेलें लगाकर इन तारों पर इस प्रकार से चढ़ा देनी चाहिये कि यह बेलें बिलकुल तम्बू की भांति गोल बन जाये. इस प्रकार बहुत सुन्दर स्थान बन जाता है. इसके लिये एक ढंग यह भी है कि शहतीर की जड़ों में पौदा लगा दिया जाये और उसको शहतीर के ऊपर इस प्रकार से चढ़ा दिया जाय कि इसकी शाखाए चारों ओर उन तारों पर भी उलझती रहे.

इस प्रकार पौधा एक बहुत ही सुन्दर गोल त्रिकोण का रूप धारण कर लेता है जो नीचे से गोल तथा ऊपर को नुकीला होता है. इस प्रकार का त्रिकोण गोल बनाने के लिये मरमेड, ऐबल चैटनी, क्लाइम्बिंग मैडम् प्लाज, स्कारलैट, क्लाइम्बर, और अमरीकन पिलर इत्यादि बहुत ही अच्छे प्रकार के गुलाब रहते हैं.

स्टैन्डर्ड रोज — स्टैन्डर्ड रोज एक ऐसा गुलाब है जिसे कहीं भी उगाया जा सकता है. इसके पौधे के लिए कोई विशेष पाबंदी की आवश्यकता नहीं होतीव रन हर स्थान पर पुष्पवाटिका की शोभा बढ़ाने के लिए इसे प्रयोग मे लाया जा सकता है. जहां पर स्टैन्डर्ड रोज लगाया जाये वहां इसके चारो ओर लगभग ढाई-ढाई फुट के अन्तर पर पोल-पन्था के छोटे छोटे पौधे लगाने चाहिएं. लेकिन यह ध्यान रहे कि पोल-पन्था ऊंचा न हो पाये. स्टैन्डर्ड की कलम का चश्मा चढ़ाकर तैयार किया जाता है. इस चश्मे से तैयार किये जाने वाले गुलावों मे कैरोलाइन टैस्टाउट, मैडम एवल चैटनी, ग्रूस ऐमटेपारिज, लेडी ऐश टाउन, हक डिक्सन, जनरल मैकार्थर, लेडी हिलिंगडन, एडमाइरेशन, मैसर्ज हर्वर्ट, स्टीवन्ज और वीटी अपरिचार्ड आदि बहुत ही उत्तम होते हैं.

वीपिंग स्टैन्डर्ड — जो गुलाव लम्बी और पतली ऐसी टहनियां देते हैं जो नीचे लटके, वह इस कार्य के लिये बहुत अच्छे रहते हैं. वीपिंग स्टैन्डर्ड बनाने के लिये इसे लगभग तीन गज ऊंचे तने पर बनाना चाहिये, क्योंकि स्टैन्डर्ड के लिए बहुत ही मजबूत सहारे की आवश्यकता होती है, और यह तेज हवा चलने से न टूट जाये इसकी जड़ों मे पौधों को मजबूत रखने के लिये अच्छी खुराक देने की आवश्यकता है. इस काम के लिये लेडी गे ऐक्सेलस डोरोथी, पारकिन अमेरिकन पिलर और डरोथी, डेनीसम आदि गुलाब सबसे अच्छे माने गये हैं.

पैगिंग डाउन — पैगिंग डाउन तैयार करने के लिये किन्ही अच्छे नमूने की क्यारियां तैयार करनी चाहिएं. इन क्यारियों के किनारे पर खुशबूदार खूंटियां गाड़ देनी चाहिये जो लगभग

एक फुट जमीन में गाड़ी हुई हों, और डेढ़ फुट जमीन के ऊपर यह खूंटियां ऐसी होनी चाहियें कि जिनके ऊपरी सिरों पर छेद हों.

उन छेदों में से लोहे के तार क्यारियों के किनारों के साथ सारी क्यारी में बिखेर देने चाहियें. जिस समय क्यारी में लगाए गए पौधे टहनियां फैंकने लगें तो इन तारों के ऊपर उन्हें वल दे देना चाहिए. वल देते समय टहनी में जो कुरे आयें उन्हें ऊपर सीधे कर देना चाहिए. जिस समय एक फूल आ चुके तब इन पुरानी टहनियों को काट डालना चाहिये, और इसके बाद जब नई टहनियां आयें तब उन्हें भी पहली टहनियों की भांति तारों के साथ वल दे देना चाहिए. इस प्रकार से जो गुच्छे तैयार होते हैं उन्हें पैंगिग डाउन कहते हैं. पैंगिग डाउन तैयार करने के लिए हफ डिक्सन, विलियम ऐलन रिचार्डसन, जेवी क्लार्क, लेडी वाटरलो, पौल नीरन और फाकर्ल हरस्की नाम के गुलाब अति उत्तम हैं.

कटाई-छंटाई — गुलाब में यह विशेषता है कि इसके पौधों की जितनी भी काट-छांट होती रहती है, उसमें उतने ही बढ़िया, बड़े और सुगन्धित फूल उत्पन्न होते हैं. वास्तव में योग्य और समय पर काट-छांट करना फूलों को जीवन प्रदान करना है. यह बात अवश्य ही ध्यान में रखनी चाहिये कि पौधे की काट-छांट उस समय की जाये जब कि पौधा एक साल के लगभग हो जाये. वैसे परपीचुअल हिबरिड टीज और हिबरिड जाति के गुलाब तब तक छंटाई सहन नहीं कर पाते जब तक कि वे दो वर्ष के न हो जाएं.

गुलाब के जो पौधे बहुत अधिक बढ़ने वाले हों उनकी कम छंटाई और अधिक बढ़ने वाले हों उनकी बहुत अधिक छटाई करनी चाहिए. वास्तव में कटाई छंटाई करते समय यह देख लेना चाहिये कि जो शाखाये एक दूसरे के पास आ गई हों उनके बीच के स्थान को खाली रखना आवश्यक है. एक दूसरी के पास आने वाली शाखाओं को ही काटना चाहिए. सारी ही कच्ची और सूखी टहनियों को बिल्कुल नहीं काट डालना चाहिये. जो शाखाये नीचे के तले से ऊपर जा रही हों और मजबूत हा उन्हें भूमि से लगभग डेढ़ फुट ऊपर तक काट देना चाहिए. उनकी जितनी भी छोटी शाखायें हों उन्हें भी कुछ आंखों को छोड़कर शेष को हटा देना चाहिए.

गुलाब के जो पौधे प्रदर्शनी के लिए तैयार करने हों उनकी हमेशा अधिक छंटाई-करनी चाहिए. पौधों की जितनी भी उप-शाखायें हों उन पर केवल दो-दो आंखें छोड़कर शेप सभी उप-शाखाओं पर लगा देनी चाहिएं, और जो मोटा शाखाये होती हैं उन्हें भूमि से लगभग सवा फुट की ऊंचाई पर काट डालना चाहिए.

छंटाई सदा आंख के बाहर की ओर से ही करनी चाहिए जिससे कि टहनियां बाहर की तरफ ही निकले. हिवरिड टीज और हिवरिड परपीचुअल दो ऐसी जाति के पौधे होते हैं जिनमे धिनकी बाढ़ नहीं आती है. इन पौधों की अधिक छंटाई की आवश्यकता होती है, न छांटी गई जो बड़ी शाखायें होती हैं उन्हें आधे मे से छांट देना चाहिए अर्थात पाच-छः आंखो तक उनकी कटाई कर देनी चाहिये. जितने भी बेल वाले गुलाब

होते हैं उनकी केवल कच्ची रसदार और सूखी शाखाओं को ही काटना चाहिए. टीरोजेज़ की जितनी भी बड़ी बड़ी शाखाएं होती हैं उनकी लम्बाई का लगभग एक तिहाई भाग काट देना चाहिए और जितनी भी उपशाखाएं हों उनकी चार आंखों को छोड़ कर शेष सभी को काट देना चाहिए.

इस जाति के पौधों को घना नहीं रहने देना चाहिए. विशारियाना रोज के पौधों में जो भी कच्ची, पुरानी या नई बाढ़ की टहनियां हों उन्हें तथा टहनियों की तमाम उपशाखाओं को काट डालना चाहिए. बर्बन रोज की सारी खराब तथा पुरानी शाखाएं काट डालनी चाहिएं और जो नीचे की शाखायें हों उन्हें भी कुछ आंखें छोड़कर काट डालना चाहिए. नोइन्जटिज जाति के गुलाब की केवल पुरानी तथा खराब शाखाओं को ही काटना चाहिए तथा साथ ही साथ इसकी टहनियों को आधा काटना चाहिए, तने को भी कुछ छोटा कर देना चाहिए.

यह ध्यान रहे कि इसकी पुरानी टहनियों में जो स्वस्थ हों उन्हें छोड़ देना चाहिए. परनोशदाना जाति के गुलाब की बाढ़ भी घिनकी नहीं होती अतः इसे अधिक छंटाई की आवश्यकता होती है. इस कारण से इसकी जो पहिले न काटी गई बड़ी शाखाएं हैं उन्हें आधा काट डालना चाहिए और उपशाखाओं को पांच आंखों तक काट डालना चाहिए. जैसे अन्य कार्यों के लिए कुछ समय निर्धारित किये गये हैं उसी प्रकार गुलाब के पौधों की काट छांट के लिए सितम्बर के माह से तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए तथा अक्टूबर के महीने मे यह काट-छांट करनी चाहिए.

जब इसकी कटाई कर दी जाए तब मिट्टी की गहरी खुदाई

करके उसमें लगभग ३ इंच अच्छी गोबर व पत्ती की खाद का मिश्रण भर देना चाहिए और तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए. इस सिंचाई का प्रभाव लगभग पन्द्रह दिन तक रहता है. इसके बाद जब मिट्टी सूखने लगे तब इसकी निंदाई करके मिट्टी को प्रकाश तथा हवा में सूखने देना चाहिए. इसके बाद पूर्ण सिंचाई कर देना चाहिए. निंदाई और सिंचाई इसी प्रकार ठीक तरह करते रहना चाहिए.

गुलाब के पौधों में कभी कभी घोल खाद की भी आवश्यकता होती है. अतः इसमें आवश्यकतानुसार घोल खाद भी डालते रहना चाहिये. गुलाब की जो जातियां कम बाढ़ वाली होती हैं उन्हें गमलों में भी लगाया जा सकता है. गमलों में लगाने योग्य हिबरिड टीज और टीज आदि कुछ अच्छे पौधे होते हैं, जिनके लिये पौन फुट से लेकर एक फुट तक ऊंचे गमले प्रयोग मे लाये जा सकते हैं. उन्हें लगाने के लिये मिट्टी का अच्छा मिश्रण तैयार करना चाहिये अर्थात एक भाग गोबर के खाद को दो भाग मिट्टी में मिला लेना चाहिये और फिर पीछे बताये प्रकरणों के अनुसार मिला लेना चाहिये. जिस समय गमलों मे मिट्टी भरी जाये उस समय यह बात ध्यान देने योग्य है कि गमलों मे से पानी के निकास का पूरा प्रबन्ध रहे.

गमलों में लगाये जाने वाले गुलाब के पौधो के लिये हर वर्ष मिट्टी का बदल देना आवश्यक होता है. मिट्टी को बदलने के लिये नवम्बर का महीना अच्छा है. समय समय पर आवश्यकतानुसार प्रति सप्ताह इनमे घोल खाद का प्रयोग भी लाभदायक होता है.



गेंदा हज़ारा



गुलाब

गेंदा और हज़ारा —

गेंदा और हजारा के फूलों के अन्दर थोड़ा-सा अन्तर होता है किन्तु इसके पौधों में कोई अन्तर नहीं होता. इसमें वारीक वारीक पत्तियां होती हैं इन्हीं के गुच्छे से यह फूल वनता है. यह फूल वास्तव में सुगन्धित तो नहीं होता किन्तु भरा हुआ होने के कारण अति सुन्दर अवश्य प्रतीत होता है. यह फूल अन्य फूलों की अपेक्षा देर में सूखता है और सूखने के वाद भी काफी दिनों तक पौधों में लगा रहता है तथा पुष्पवाटिका की शोभा और सुन्दरता को स्थिर रखता है.

प्राय: देखा गया है कि जहां गेंदे और हजारे के फूल लगते हैं, सूखने के वाद वे वहीं झड़ जाते हैं तथा इसके पश्चात यदि मिट्टी ठीक होती है तो उसी स्थान पर दुवारा उग आते हैं. कहीं-कहीं पर इसके लिये सिंचाई की कोई विशेष आवश्यकता अनुभव नहीं होती किन्तु फिर भी इनमें पानी की कमी होती है तो पौधे मुरझा जाते हैं, तभी पानी दे देना चाहिये. वैसे तो गेंदे और हजारे को गमलों में भी लगाया जाता है, किन्तु क्यारियों में भी यदि इसे पास-पास तथा गोलाकार या कोई नमूना वनाकर लगाया जाये तो वहुत अच्छा लगता है.

जहां जिसके वीज वोने हों वहां की मिट्टी को अच्छी खाद डाल कर साफ कर लेना चहिये. तत्पश्चात उसमे हलकी नमी देकर वीज वो देने चाहियें. उग आने के पश्चात जो पौधे निर्वल अथवा रुग्न जान पड़ें उन्हें उखाड़ कर सुखाकर तथा जला कर राख वना लेनी चाहिये. क्यारियों मे कीटाणु आदि का भय हो तो उनमे आवश्यकतानुसार इसे वुरकना चाहिये. इसके पौधों को

जो जो टहनियां सूखती जायें समय समय पर काट कर पौधों को स्वच्छ रखना चाहिये. ऐसा करने से फूल बड़े और अधिक खिले हुये होते हैं. जिन पौधों के बीज प्राप्त करने हों उन पौधों में बड़े और स्वस्थ फूलों को पकने देना चाहिये, और जब फूल पक जाये तथा पौधे पर ही सूख-से जायें तब उन्हें तोड़ कर हलकी धूप में भली प्रकार से सुखा लेना चाहिये. ऐसा करने से बीज सूख कर तैयार हो जाते हैं तथा पुनः बोने के काम में लाये जा सकते हैं.

सदाबहार —

सदाबहार के फूल यद्यपि छोटे-छोटे होते हैं तथापि बहुत सुन्दर प्रतीत होते हैं. यह पौधे हल्की मिट्टी में थोड़ी सी खाद डाल कर लगाने चाहिएं. इसे किसी भी मौसम में उपजाया जा सकता है, इसलिए इसे सदाबहार कहा जाता है.

जिस समय इसके पौधे छोटे हों उस समय इन्हें धूप से बचाना चाहिए, जिससे कि पौधे मुरझाने न पाएं. पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं तब इन में पानी देते रहना चाहिए. सदाबहार के पौधे अधिकतर गमलों में अच्छे रहते हैं, क्योंकि गमलों का पोषण आवश्यकतानुसार ठीक होता रहता है. ठीक पोषण पाकर पौधे सबल रहते हैं. और इन में फूल भी अच्छे खिलते हैं वैसे सदाबहार के फूल दो तीन दिन में मुरझा जाते हैं, किन्तु पहिले फूल मुरझाने से पूर्व नये फूल खिल आते हैं, इसी प्रकार पौधों की सुन्दरता नष्ट नहीं होने पाती. जिस समय ये पौधे मुरझाने से लगें उस समय इनमें पानी दे देना चाहिए. जब जब

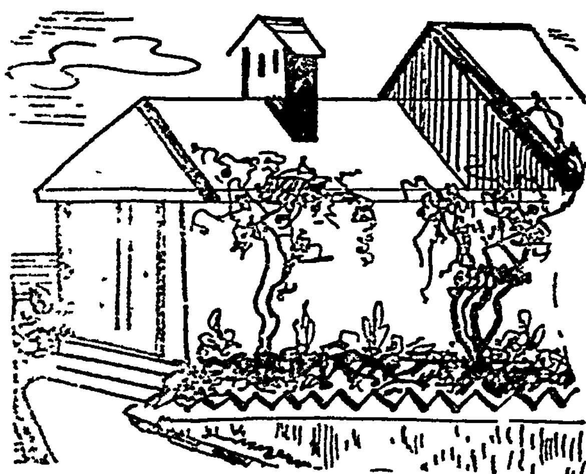
भी पत्ते सूख जाएं या गल जायें तब तब ही उन पत्तों को पौधों से हटा देना चाहिये. ऐसा करने से पौधों में कोई व्याधि नहीं लग पाती और वह सुन्दर प्रतीत होते हैं. इन्हें लगाने के लिए अच्छा यह है कि छोटे-छोटे गमलों मे ही इन्हे पृथक-पृथक लगाया जाए.

ऐसा करने से पौधे अधिक फूल देते है और उन फूलों में सौन्दर्य भी अधिक होता है. वर्षा के समय मे इनकी रक्षा की जाय तो यह पुष्पवाटिका के लिये उत्तम रहते हैं और पुष्पवाटिका की सुन्दरता को बढ़ाते हैं. सदाबहार के फूल दो प्रकार के होते है, एक छोटे और एक बड़े. छोटे फूल वालों को गमले मे ही लगाना चाहिए. बड़े फूल वाले पौधों को क्यारियों मे भी लगाया जा सकता है. पानी सदाबहार में जहां तक हो हजारे से अन्यथा छिड़काव के द्वारा देना चाहिए. तेज वर्षा और तेज हवा से इन की रक्षा करनी चाहिए, जिससे कि पौधे टूटने या उखड़ने से बचे रहें. जब सदाबहार का पौधा तने पर से टूट जाता है तब उसका बचना कठिन हो जाता है और वह फूल देना बन्द कर देता है.

ऐसे समय मे ऐसे पौधों को नष्ट कर देना चाहिए. घरों के चौक कोठियों के दलान और पुष्पवाटिका की छोटी छोटी क्यारियां सजाने के लिये सदाबहार के बराबर के पौधे बहुत अच्छे रहते हैं. सुन्दरता स्थिर रखने के लिए सदाबहार के बराबर के पौधे लगाने चाहिएं. प्रातः काल के समय इन पौधों पर हजारे से थोड़ा थोड़ा जल छिड़क देना चाहिए. ऐसा करने से पौधों पर चमक आ जाती है और उस तरी से फूल सबल रहते हैं.



सदा बहार



शीश घर

पाम —

पाम बंगलों तथा उद्यानों की शोभा बढाने के लिए अच्छा रहता है, वास्तव में यह साज सजावट के काम में ही लाया जा सकता है. यह पौधा बड़ा ही शक्तिशाली होता है अर्थात बुरे मौसम का असर इस पर जल्दी से नहीं हो पाता. पाम के पौधों को अधिक तर उपवनों की सजावट के काम में लाया जाता है. अतः इसे बडे बड़े गमलों मे अथवा बड़े बड़े टबों में उगाते हैं. ऐसा करने से इन्हें समय समय पर जहां चाहें वहां उठा कर रख सकते हैं. जहां पर पाम के पौधे तैयार करने हों वहां की मिट्टी में गोबर की खाद तथा पत्ती की खाद को बराबर बराबर मिश्रित कर लेना चाहिये और उसमे थोड़ी सी रेत भी डाल देनी चाहिए. ऐसा करने से पाम के लिए उपयुक्त मिट्टी तैयार हो जाती है, तथा बहुत ही आसानी से पास के पौधों को संरक्षण दे सकती है.

जिन टबों मे या गमलों में इन्हें लगाना हो उनमें नीचे की ओर ठीकरे या कंकड़ों को इस प्रकार से जमा लेना चाहिये जिस से कि इनमें से भी पानी का निकास व्यवस्थित रहे, और पानी उसमें जमा न हो पाये, यदि पानी जमा हो जायेगा तो जडों के लिए हानिकारक सिद्ध होगा. पाम बोने के लिये जिस समय वर्षा का समय हो तब बीज गमलों या टबों मे डालना चाहिये. इसके बीज लगभग एक वर्ष में जम पाते हैं. यदि जल्दी जमाने की आवश्यकता हो तो बोने से लगभग आधा घण्टा पूर्व बीजों को गरम पानी में डाल देना चाहिए.

ऐसा करने से बीज कुछ जल्दी जम जाता है. बीज जिस समय कुरा फेंक दे और छोटी छोटी पौध भी बन जायं तब उनको

स्थानान्तरित कर देना चाहिए. पाम का प्रत्येक पौधा पृथक पृथक गमलों मे लगाया जाता है. जिस समय यह पौधा गमलों में लगा दिया जाय, तब इसे धूप से थोड़ा बचाना चाहिये और साये दार ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहां पर गर्मी और ठंडक हो.

गमलों में सदा पानी का भरा रहना आवश्यक है जिससे कि इसकी सतह तर रहे. जब पौधे कुछ बड़े हो जायं तो उन्हें कुछ बड़े गमलों में और फिर इसी प्रकार बड़े से बड़े गमलों में बदलते रहना चाहिये क्योंकि पाम की जड़ें अधिक फैलती हैं और यदि उचित समय पर इसको नहीं बदल दिया जाता तो यदि गमला कमजोर होता है तो इसकी जड़ें गमले को तोड़ देती हैं और यदि गमला मजबूत होता है तो इसकी जड़ें भिच जाने के कारण पौधों का ठीक प्रकार से बढ़ना रुक जाता है और पाम के पौधों का मुर्झा जाने का भय रहता है.

पाम के पौधे जल अधिक चाहते हैं अतः इनमें पानी की कमी नहीं होने देनी चाहिए. जब इन टबों पर गमलों में मिट्टी कम हो जाय तो मिट्टी का जैसा मिश्रण गमलों में बीज बोने से पूर्व तैयार किया गया था डाल देना चाहिए जिससे कि गमलो मे खाली स्थान न रह पाये. जहां तक हो सके प्रति वर्ष इसके पौधों मे गोबर और पत्ती की खाद देते रहना चाहिये. खाद देते समय थोड़ी चिमनी की राख का घोल भी दे देना अच्छा होता है. ऐसा करने से पत्तों पर बहुत अच्छी चमक आ जाती है.

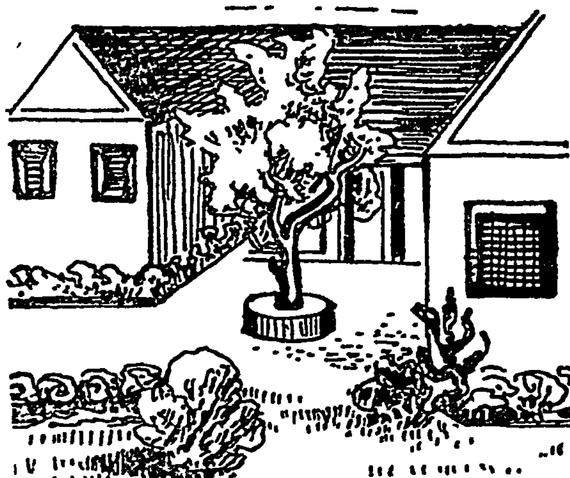
स्वीट पीज ––

फूल-मटर का फूल बहुत ही सुन्दर होता है, इसकी गिनती

वार्षिक फूलों में है. अधिकतर इसके पौधे पगडन्डियों के दोनों ओर लगाये जाते हैं. कभी कभी घास के किनारों पर भी लगाते हैं. इसके लगाने से वाटिका की शोभा वढ जाती है, इसके साथ वार्षिक फूलों का वड़ा ही मेल है. जहां पर मटर के पौधे लगाए जाएं, यदि साथ ही साथ वार्षिक फूलों का वौडर भी लगा दिया जाता है तो अधिक शोभायमान रहता है.

इसके लगाने के लिये उचित रीति यह है कि आवश्यकतानुसार लगभग एक गज़ चौड़ी और एक गज गहरी नाली खोद लेनी चाहिये. इसमें एक गज गहरी जो मिट्टी खोदी गई हो उसे ठीक प्रकार से सुखा लेना चाहिये. लगभग एक सप्ताह के पश्चात जब मिट्टी सूख सी जाय तव उस मिट्टी में से लगभग आधा फुट मिट्टी उस नाली में भर देनी चाहिये. तत्पश्चात उस मे लगभग आधा फुट अच्छी खाद डालकर उस पर शेष मिट्टी भी डाल देनी चाहिये और फिर मिट्टी को भली प्रकार से समतल करके उसमें गहरी सिंचाई कर देनी चाहिये. जिस समय मिट्टी सूख जाय तो उसे पुनः समतल करके नाली के वीच में लगभग आधा फुट की दूरी पर दो पंक्तियां वना ले.

इन पंक्तियों पर लगभग दो दो इंच की दूरी पर बीज वो दें. इसके वीज ऐसे समय पर वोने चाहिएं जव कि वर्षा समाप्त हो गई हो. यदि वर्षा से पूर्व इसके फूल प्राप्त करने हों तो नाली न वनाकर कुछ ऊंची क्यारियां वनानी चाहिएं, जिससे कि वर्षा का जल क्यारियों मे खड़ा रहकर इसके पौधों को नष्ट न कर दे, वरन उनका विकास ठीक प्रकार से स्थिर रहे. जव पौधों की घनी वाढ़ करनी हो तव क्यारियों की ऊपरी सतह मे भी लगभग आधा



साये का प्रबन्ध





गमला बदलना

फुट खाद का मिश्रण कर देना चाहिए लेकिन जब बाढ़ यदि घनी हो भी जायगी तो फूल इकहरा रह जायगा.

जब इसके पौधे लगभग दो फुट के हो जाएं तब भी क्यारियों की सतह पर थोड़ी थोड़ी खाद का छिड़कना लाभदायक होता है. यदि स्वीट पीज के फूल अधिक देर तक लेने हों तो बीज-कलियों को तोड़ देना चाहिये. इनका तना बहुत निर्बल होता है अत. इसे सहारा देने के लिए लगभग तीन तीन गज की लोहे की मजबूत सलाखें गाड़नी चाहियें, इन सलाखों के ऊपर से एक फुट छोड़ कर एक तार गुजारना चाहिए. इसी प्रकार जड़ो मे से भी लगभग एक फुट का स्थान छोड़कर एक तार सभी सलाखों के बीच से गुजारना चाहिए फिर उन दोनों तारों के मध्य मे भी एक तार सारी सलाखों में से गुजारना चाहिए. यह जो तार बाधे जाये इनमें लगभग आधा फुट के अन्तर पर इन तारों को मिलाने वाली बांस की खपच्चियां बाध देनी चाहिएं और जब स्वीट पीज की कुछ बेलें बढ़ाने लगें तब इन्हे खपच्चियों और तारों पर ठीक प्रकार से चढ़ाते रहना चाहिए क्योंकि इसकी बेलों को लगभग तीन इंच होने के बाद से सहारे की आवश्यकता अनुभव होने लगती है. फूल आने से कुछ पूर्व यदि इसमे घोल खाद डाल दिया जाता है तो फूल बहुत अच्छे आते हैं.

कैना —

कैने को कहीं पर गुलतसबी भी कहते हैं. इसे पानी की बहुत ही अधिक आवश्यकता रहती है, जिन स्थानों पर पानी की कमी हो वहां पर कैना वर्षा ऋतु मे ही लगाना चाहिए और जहा पानी

का पूर्ण प्रबन्ध हो वहां पर कैनों को किसी भी ऋतु में लगाया जा सकता है. इसकी तैयारी के लिए वर्षा आरम्भ के आधे महीने पहिले क्यारियों की मिट्टी को लगभग एक गज खुदवाकर उसमें खूब अच्छा गोबर या लीद डाल मिट्टी को और खाद को अच्छी तरह मिश्रित कर समतल कर लेना चाहिए और उनके बाद उसमें गहरी सिंचाई कर देनी चाहिये.

जब सिंचाई के बाद मिट्टी सूख जाये तब उसमें लगभग दो दो फुट की दूरी पर कैना लगा देना चाहिये. कैना लगाने के लिए जो क्यारियां तैयार करनी हों उन्हें कैना लगाने के लगभग आधा महीना पहिले ही तैयार करके रखना चाहिए.

इन क्यारियों की निंदाई और सिंचाई का बहुत ही ध्यान रखना आवश्यक है. जिस समय वर्षा काल समाप्त हो जाये तब इसकी क्यारियों की सतह पर थोड़ी थोड़ी खाद डाल कर फैला देनी चाहिये. ऐसा करने से फूल अच्छे आते हैं तथा देर तक आते रहते हैं. यदि पौधों को घिनका करना हो तो जब पौधे तीन माह के हो जायें, पौधे की वह टहनी काट देनी चाहिये जिसमें फूल आते हों.

वर्षा का जब अन्त होता है उस समय कैने में फूल आ जाते हैं और फिर यह फूल तमाम गर्मी और तमाम सर्दी निरन्तर आते रहते हैं. कैने के सारे पौधों को ठीक प्रकार से सम्हालते रहना चाहिये. यदि यह अधिक घिनके हो जाते हैं तो जब इनमें फूल मुरझा जाये उस समय उन्हें तुरन्त ही काट देना चाहिये, जिससे कि उस काटे हुए स्थान से और टहनी निकल आयें क्यों कि इसके स्थान पर जो टहनी निकलती है वह भी फूलती है.

जिस समय वर्षा होनी हो उससे लगभग आधा महीना पहिले पौधों को जड़ समेत उखाड़ कर ठंडे और सायेदार स्थान में खड़े कर देना चाहिये, तथा जब इन्हें लगाना हो उस समय कैने की जड़ों मे स्वस्थ और अच्छी जड़ो को छोड़कर शेप सबको हटा देना चाहिये, और इन स्वस्थ जड़ों को उस भूमि मे लगा देना चाहिए जहां पर फूल प्राप्त करने हो. उन्हें लगाने से पूर्व पौधे के ऊपर का हिस्सा काट देना चाहिए, जिससे कि नया पौधा पुनः तैयार हो जाय.

गुल दाऊदी —

उद्यानों में गुलदाऊदी के पौधे बिलकुल भिन्न रीति से लगाये जाते हैं साथ ही साथ गुलदाऊदी की क्यारियों में वर्ष भर काम करने को आवश्यकता होती है. जिस समय इस के पुष्प मुरझा कर नष्ट हो जाते हैं उस समय जिस डंडी में पुष्प आता है उसे नीचे से आधा फुट तोड़ कर काट डालना चाहिये. ऐसा करने से गमलों मे जड़ों की संख्या अधिक हो जातो है. तब मिट्टी मे खाद डालकर मिलाते रहना चाहिये इसके पौधों को खुली हवा मे रखना चाहिए. दिसम्बर जनवरी के महीनों मे खाद डालकर निराई करना अच्छा होता है. जो पौधे तीन इंच से अधिक ऊंचे बढ़ जाते हैं या निर्बल होते हैं उन्हें उखाड़ डालना चाहिए.

जो जड़वे अच्छे हों उन्हें सावधानी से काटकर क्यारी या नर्सरी मे लगा देना चाहिए. इन पौधों को जल और प्रकाश की बहुत आवश्यकता होती है किन्तु फिर भी तिग्मांशु की तीक्ष्ण तरुणायें यह पौधे सहन नहीं कर सकते. अतः उन्हें तेज धूप से बचाना चाहिए जहां सजावट और सुन्दरता के लिए यह पौधे लगाने हों वहां इन्हें छोटे छोटे फूल प्राप्त करने के लिए पत्ती या

गोबर का खाद रेत और मिट्टी को बराबर बराबर लेकर भली भांति मिला लेना चाहिये.

इसके पश्चात इनमें कलम लगानी चाहिये. यह कलमें लगभग एक माह के पश्चात जड़ें फेंक देती हैं. जब इसकी जड़ें बड़ी हो जाती हैं तब ये इन छोटी क्यारियों में से बाहर निकलने लगती हैं. ऐसे समय में इन पौधों को आधा फुट ऊंचे गमलों में स्थानान्तरित कर देना चाहिये. इन गमलों में जो मिश्रण डाला जाये उसमें थोड़ी लकड़ी की खाद, राख और थोड़ी सी हड्डी की खाद अवश्य डाल देनी चाहिये.

यह स्थानान्तरण आधे अप्रैल तक समाप्त कर देना चाहियें. इन पौधों का स्थानान्तरण करते समय प्रातःकाल नौ बजे से सायंकाल चार बजे तक धूप से सायेदार स्थानों में रखकर इनकी रक्षा करनी चाहिए. जिस समय आधा फुट वाले गमलों से भी उसकी जड़ें बाहर निकलने लगें तो पौधों का स्थानान्तरण आठ इंच वाले गमलों में कर देना चाहिए.

आठ इन्च वाले गमलों में जिस समय इन्हें बदला जाये तब बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है. गमलों की मिट्टी पोली रहनी चाहिए, गमले साफ रहने चाहियें. मिट्टी में रोशनी का और गमलों से पानी के निकास का ठीक प्रबन्ध रहना चाहिए. इन गमलों के लिये मिट्टी का मिश्रण इस ढंग से करना चाहिए कि दो भाग रेत, दो भाग पत्ती का खाद और एक भाग साधारण मिट्टी का होना चाहिए. साथ ही थोड़ा सा हड्डी का खाद चौथाई भाग में मिला देना चाहिये.

जिस समय इन गमलों में पौधों का स्थानान्तरण किया जाय

उस समय यह ध्यान रखना चाहिए कि हरी काई न जम जाये. साथ ही साथ इसे बड़े बड़े पेड़ों की छाया में भी न रखना चाहिये. इसके स्थानान्तरण का कार्य जून के आधे महीने तक समाप्त कर देना चाहिए. पौधों को धूप की तेजी से बचाना चाहिये और इनमें पानी खूब अच्छी तरह से डालना चाहिये.

गुलदाऊदी के पौधों की एक बार और बदली होती है जिसे अगस्त का अन्तिम आधा माह और सितम्बर का प्रारम्भिक आधा माह तक अच्छा होता है. इसके लिए लगभग दस इंच का गमला ठीक रहता है. इसका स्थानान्तरण करने के लिए मिट्टी का मिश्रण गमलों में डाला जाता है.

इसे लगभग एक महीने पहिले तैयार कर लेना चाहिए. साथ ही प्रति सप्ताह इसे खुली हवा देने के लिए उलट पलट देना चाहिये. मिश्रण तैयार करने के लिये एक भाग मिट्टी, एक भाग रेत, एक भाग पत्ती का खाद, एक भाग गोबर का खाद, चौथाई भाग पुराने कंकड़ और चौथाई भाग लकड़ी की राख मिलाकर तैयार कर लेना चाहिए.

जिस समय पौधों का स्थानान्तरण किया जाये उस समय इन गमलों को लगभग एक सप्ताह तक सायेदार स्थान पर रखना चाहिए. यदि फूल क्यारियों मे प्राप्त करने हो तो क्यारियों मे इन पौधों का स्थानान्तरण करके एक सप्ताह के लिए साये का प्रबन्ध करना चाहिए या उस समय करना चाहिए जब कि आकाश में बादल छाये हों.

सावधानी — गुलदाऊदी के पौधों को आवश्यकतानुसार ठीक समय पर जल देते रहना चाहिये. इसके पौधो को तीसरी

बार स्थानान्तरित करने के पश्चात इसमें घोल खाद डाल देना चाहिए और तब तक डालते रहना चाहिए जब तक कलियां आनी शुरू न हो जायें. जिस समय कलियां कुछ बड़ी हो जायें उस समय पुनः घोल खाद तब तक डालते रहना चाहिए जब तक कि कलियां आधी खुली न हो जायें.

इसके बाद घोल खाद का देना बन्द कर देना चाहिए. कभी कभी पानी की असावधानी से मिट्टी गमले से बाहर निकल आती है, यदि ऐसा हो तो गमलों में खाद और मिट्टी का मिश्रण डालते रहना चाहिये. गुल दाऊदी के पौधों में जो कलियां निर्बल दीखें उन्हें हटाते रहना चाहिये, और केवल सब से ऊपर रहने वाली एक स्वस्थ कली को लगे रहने देना चाहिये. जिस समय इन पौधों की ऊंचाई एक फुट तक के लगभग हो जाये उस समय बांस की खपच्चियां गाड़ कर या सुतली बांध कर इन पौधों को सहारा देना चाहिए.

गर्मी के दिनों में इन पौधों के ऊपर तम्बाकू के पानी को छिड़कते रहना चाहिये. इन्हें ऐसे स्थान पर रखना चाहिये जहां बाल सूर्य की स्वर्ण रश्मियां इन पर ठीक प्रकार से पड़ती रहें. इन्हें ऐसे साये में रखना चाहिए जहां पर यदि प्रकाश भी पड़े तो हल्का अथवा छन कर पड़े, क्योंकि धूप इसके रंग को पी जाती है, और इस प्रकार यह पौधे और फूल भद्दे हो जाते हैं. इन पौधों में जो जुड़वां फूल वाली जाति होती है उसे अघेता आरम्भ करना चाहिये.

इन पौधों में केवल घोल खाद ही डालना चाहिये, गोबर की खाद की कोई आवश्यकता नहीं. वर्षा काल के समय इनके

गमलों में इस प्रकार से मिट्टी भर देनी चाहिये कि वर्षा का पानी किसी प्रकार से भी गमलों में खड़ा न रहे वरन नीचे बह जाय, साथ ही साथ इसके गमलों को ढालू भूमि पर ही रखना चाहिए.

क्यारियों में लगाना — पहिले कलम लगाकर उसके पौधों को तीन इंच की गमलियों में ही पोषित करना चाहिए और जिस समय कलमें जड़ें फैलादें उस समय उन्हें क्यारियों के अन्दर लगभग आधा-आधा इंच की दूरी पर लगा देना चाहिए. पौधों को क्यारियों में लगाने से पूर्व मिट्टी को तैयार रखना होता है. इसके लिए क्यारियों को अच्छा गहरा खोदना चाहिए और फिर मिट्टी में गोबर की खाद का भली भांति मिश्रण करके क्यारियों को समतल कर अच्छी सिंचाई कर देनी चाहिये.

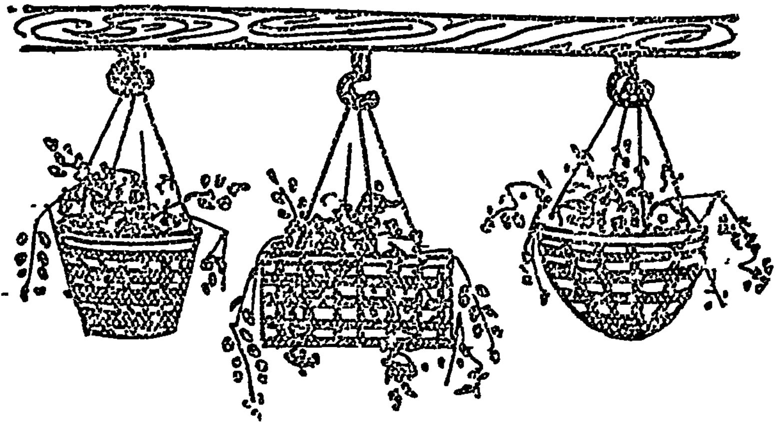
जिस समय सिंचाई का जल कुछ शुष्क हो जाये तो मिट्टी को पुनः समतल कर इसमें कलमें लगा देनी चाहियें. क्यारियों में लगा देने के पश्चात भी जब पौधे लगभग एक फुट के हो जायें तब इनको सहारा देने की आवश्यकता है. फिर जो रीति ऊपर बताई गई है उसी के अनुसार इसमे घोल खाद का प्रयोग करते रहना चाहिए. साथ ही साथ आवश्यकतानुसार सिंचाई निंदाई और शत्रुओं से बचाव का भी पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए.

अन्य प्रकार के पौधे —

फूलों के छत्तेदार, झाड़ीदार और घने पौधे भी लगाये जाते हैं जिनके लिए छोटे गमलों मे कलमे लगा कर पौधे तैयार करने चाहियें और जिस समय यह पौधे लगभग चार इंच के हो जायें तब इनके ऊपर का कुरा काट देना चाहिए. ऐसा करने से उनमें से और टहनियां फूट निकलेंगी. इन पौधों मे से जब यह टह



फूल-पौधे



आर्किड्ज़

नियां चारों ओर से निकलनी आरम्भ हो जायें तब पौधों का स्थानान्तरण कर देना चाहिए.

स्थानान्तरण करते समय कुछ स्वस्थ शाखाओं को छोड़कर शेष सभी शाखायें काट देनी चाहियें और जब यह छोड़ी हुई शाखायें भी आधे फुट के लगभग हो जायें तब इनके कुरे काट देने चाहिये. ऐसा करने से अन्य उपशाखायें निकल आती हैं. उनमें से नौ दस स्वस्थ शाखाये छोड़कर शेप सभी शाखायें काट देनी चाहियें. पौधों में जो फुटाव आदि हों उन्हें तोड़ देना चाहिए. तत्पश्चात उसका स्थानान्तरण बड़े गमलों मे कर देना चाहिए.

अच्छा गुच्छेदार पौधा तैयार करने के लिए उसमें लगभग बीस-पच्चीस शाखायें तैयार होती हैं, जिन्हें सहारा देने के लिए गमलों के चारों ओर चार खपच्चियां लगा देनी चाहियें और उनके साथ मोटी टहनियों को बांध देना चाहिये. यदि पौधों को छोटा रखने की इच्छा हो तो आधे जून के महीने तक पौधों को उपरोक्त रीति से तैयार करना चाहिए और फिर उसे ४ इंच के लगभग ऊपर की ओर काट देना चाहिए और पौधों के आकार की दृष्टि से उसका स्थानान्तरण बड़े गमलों मे कर देना चाहिये. इस तरह से गुल दाऊदी से भिन्न-भिन्न प्रकार के ऊंचे नीचे पौधे तैयार किये जा सकते हैं. इन्हें जब कभी सजावट के प्रयोग मे लाना हो तो ठीक ढंग से नमूना बनाकर रखना चाहिए. ऐसा करने से बंगलों की, उद्यानों की और वाटिकाओं की शोभा बहुत बढ जाती है.

आर्किड्ज़ —

वैसे तो आर्किड्ज पर्वतों के ढालों आदि पर पत्थरों की छाया

में या कभी कभी बड़े बड़े वृक्षों की जड़ों में स्वतः ही उग आते हैं किन्तु सुन्दर होने के कारण इन्हें उद्यानों तथा पुष्प वाटिकाओं में भी लगाया जाता है. जहां इन्हें लगाना हो वहां पर स्वच्छता, साया, नमी, खुली हवा, गर्मी और पानी के निकास की पर्याप्त आवश्यकता होती है. आर्किड्ज उद्यानों की दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं. इनमें जो मिट्टी में उपजाये जाते हैं उन्हें रैस्ट्रीयल आर्किड्ज कहते हैं.

यह पौधे मिट्टी में ही अपना पोषण पाते हैं. इन्हें गमलों में और लटकती हुई टोकरियों में लगाया जाता है. जिन गमलों में यह आर्किड्ज उपजाये जाते हैं उनमें पत्ती की खाद, पुराने चूने के टुकड़े, चारकोल और छोटे-छोटे ईंटों के टुकड़े मिला दिये जाते हैं. यह जो टुकड़े भरने हों उनमें से बड़े टुकड़े नीचे की ओर और छोटे टुकड़े ऊपर की ओर रखने चाहिये. इसके पश्चात इन गमलों और टोकरियों में टैरेस्ट्रीयल आर्किड्ज लगा देने चाहियें और फिर तुरन्त ही पानी दे देना चाहिये.

इन्हें रखने के लिए ठन्डे खुले और सायेदार स्थानों की आवश्यकता है. दूसरे प्रकार के आर्किड्ज सेलेस्ट्रियल कहलाते हैं. यह पौधे लकड़ियों के झुकाओं पर लगते हैं जिन्हें ताम्बे के तारों से बांध देना चाहिए. इनकी जड़ों को झुकाव पर इस प्रकार से मिला देना चाहिये कि कोई आघात न पहुँचे. इन्हें तैयार करने के लिए इनके साथ और घास लगाने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती. इनके पौधे अपने आप ही लकड़ी से चिपके रहते हैं और वहीं स्वतः जड़ें फैंकते हुए बढ़ते रहते हैं.

इन पौधों को नमी की विशेष आवश्यकता होती है. जिसमें

किसी प्रकार की कोई कमी नहीं होने देनी चाहिए, यह नवम्बर से मार्च तक फूलता है. जिसके बाद तुरन्त ही इसके पौधों का दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण कर देना चाहिए. जिस समय इसका स्थानान्तरण हो जाये तब लगभग एक सप्ताह तक इसमे या तो हजारे से पानी डालना चाहिए या छिड़काव द्वारा, पानी बहुत सारा एक साथ नहीं देना चाहिए, वरन थोड़ा थोड़ा करके कई बार डालना चाहिए.

जिस समय पौधे जितने जितने बढ़े उस समय पानी की मात्रा भी उतनी उतनी ही बढ़ाते रहना चाहिए. यह पौधे केवल फरवरी और मार्च तक के महीने तक ही बढ़ते हैं. तत्पश्चात इनमे थोड़ा थोड़ा पानी केवल इसलिए डालते रहना चाहिए कि पौधे सूख ही न जायें और जीवित रहें और जब पौधे पुनः बढ़ जायें तब उनमें पानी भी इसी प्रकार से डालते रहना चाहिए. ठन्डे देशों में आर्किड्ज लगाने में कई अलग अलग रीतियां हैं.

भारतवर्ष में जहां अधिक ठंड रहती है उन्हीं प्रदेशों मे इस रीति को अपनाना चाहिए. इसके गमलों में एक भाग ईंट के छोटे छोटे टुकड़े और दो भाग खाद का मिश्रण इस प्रकार से भर देना चाहिए कि पानी के निकास का ठीक प्रबन्ध रहे. और जिस समय शीत काल समाप्त हो जाये और कुछ कुछ गर्मी आ जाये तब इन पौधों को लकड़ी के वर्गी टुकडों से पृथक कर लेना चाहिए और पहिले की भांति बाद को लगाना चाहिए. ऐसा करने से जून तक यह पौधे खूब अच्छे लगे रहते हैं.

संवर्धन — डैड्रोबियम आदि कुछ ऐसे आर्किड्ज भी होते हैं. जिन्हें खिल लेने के बाद हिस्से करके बढ़ाया जा सकता है. इसकी

जड़ों में जो गढ़ी होती है उसे इस प्रकार से काट कर और चीर कर गमलियों में लगा देना चाहिए कि उनकी जड़ों में कोई आघात न पहुँचे और जब तक यह बढ़ने न लगे तब तक निरंतर इसमें पानी देते रहना चाहिए. डैंड्रोबियम पिशाच्यू और डैंड्रोबियम नोबिलिस दोनों को दो प्रकार से लगाया जा सकता है. टोकरी या गमलों में जिस प्रकार से जिसमें इन्हें लगाया जाय पुरानी गढी को चारों ओर को लटका देना चाहिये. जो पुरानी खिली हुई गढी हो उसे काट लेना चाहिए. और फिर गीली मौर में दवा देना चाहिए. ऐसा करने से उसमें जड़ें निकल आयेगी. तब गमलों के अन्दर इनका स्थानान्तरण कर देना चाहिए.

इसी प्रकार एगरोयेक्रम रैन नव्यीरा वन्ड, पेपटिज साको लेवियम जाति के आर्किड्ज को दो प्रकार से ही बढाया जा सकता है. इसकी एक रीति तो यह है कि पौधे की जड़ से कोई शाखा लेकर लगा दी जाये और दूसरी रीति यह है कि पौधे की जड़ या चोटी नीचे से थोड़ी सी काट कर लगादी जाए.

ऐसा करने से यह उग आती है. डैंसीफ्लोरम डैंड्रोवियम एम श्रीगेटम जाति के दूसरे आर्किड्ज भी जड़ के टुकड़े करके संवर्धित किये जाते हैं. इसी प्रकार से कौस्योजिनी, केर्टालया, वलोटिया, ऐपीड्रेडियम और सिम्बीडियम जाति के आर्किड्ज भी जड़ों के टुकड़े लगाने से तैयार हो जाते हैं. वैसे तो कुछ आर्किड्ज ऐसे होते हैं जिनका संवर्धन नमी प्राप्त करके वर्षा काल में अच्छा होता है. किन्तु इसके संवर्धन के लिये उपयुक्त समय फरवरी का ही है.

वल्ब पौधे —

उद्यानों और पुष्प वाटिका की सुन्दरता के लिये वल्ब पौधे बहुत अच्छे रहते हैं. इनकी सुन्दरता वाटिकाओं की शोभा को अद्वितीय कर देती है. इन्हें लगाने के लिये भूमि को पहिले आधा गज खोद देना चाहिये. उसकी मिट्टी को हवा में फैला देना चाहिये. तथा बाद में नीचे को आधा गज खोद कर उसमें लीद और गोबर की अच्छी खाद का मिश्रण कर देना चाहिये. जब यह उस में पूर्ण रूपेण मिश्रित हो जाये उसके पश्चात ऊपर की आधा गज खोदी हुई मिट्टी को डालकर उसके अन्दर वल्ब लगा देना चाहिये. खाद के लिये यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि गोबर वल्ब से बिलकुल न छुये. यदि छूता रह जायगा तो वल्ब को सड़ा देगा. भूमि को जिस समय भी खोदा जाये उसके पश्चात् कुछ सप्ताहों तक उसमें दूब लगने देना आवश्यक है. ऐसा करने से मिट्टी कीट रहित हो जाती है और उसमे फुलवारी अच्छी तरह फूलती है. वल्बों को अपनी लम्बाई से हमेशा ड्योढ़ा नीचा गाढ़ना चाहिये. जिस समय वल्ब खिलने लगें, उसके बाद जब उन्हें उठाया जाये तो उस स्थान पर कभी नहीं लगाना चाहिये वरन किसी दूसरे स्थान पर लगाना चाहिये.

जिन वल्बों को गमलों मे लगाना हो उनके लिये उपयुक्त समय सितम्बर और अक्टूबर का है. इन्हें लगाने के पूर्व एक भाग पत्ती की खाद, एक भाग रेत और दो भाग मिट्टी भली प्रकार से धोये हुए गमलों के अन्दर भर लेने चाहिएं और फिर पानी के निकास का ठीक प्रबन्ध करके उसके अन्दर वल्ब पौधे लगा देने चाहिएं,

बाद में गमलों में पानी दे देना चाहिए. गमलों को ऐसे स्थानों पर रखना चाहिये, जहां पर पौधों को धूप और हवा पर्याप्त मात्रा में मिलती रहे.

थोड़े दिनों के बाद उसके चारों ओर चिकनी मिट्टी इस प्रकार से लगा देनी चाहिए कि वह बाहर से केवल दो इंच ऊपर रहे. ऐसा करने से जड़ें शीघ्रता से फैलती हैं, साथ ही साथ पौधों की रक्षा करने के लिए गमलों के ऊपर उतने ही खाली गमले एक के ऊपर एक इस प्रकार से उलटे रख देने चाहियें कि बल्ब पौधे इस गमले से न छू पायें. इस प्रकार दो-ढाई महीने तक बल्ब पौधों को इन्हीं के नीचे दबाये रखना चाहिये, तत्पश्चात इन गमलों को हटा कर ऐसे सायेदार स्थानों पर रखना चाहिए, जहां इन पर धूप की तेजी असर न कर पाए किन्तु धूप का प्रवेश अधिक रहे क्योंकि धूप का प्रवेश इसके संरक्षण को सहयोग देता है.

जिस समय जितने पानी की आवश्यकता हो उस प्रकार जल डालते रहना चाहिए. जब तक बल्ब पौधे में फूल न आयें तब तक प्रति सप्ताह हल्की घोल खाद डालते रहना चाहिए. यदि पौधों से फूल प्राप्त करने की शीघ्रता हो तो जब इनमें कलियां आ जायें तो इनको ऐसे स्थान पर रखना चाहिये जहां कि गर्माई ६५ फार्नहीट के लगभग हो. गर्माई इससे अधिक भी नहीं होनी चाहिये वरना फूल बिगड़ जायेंगे.

यदि संभव हो तो वायु और प्रकाश का ठीक ध्यान रख कर इन गमलों को शीशों के पास रखना चाहिये. जिस समय गमलों को मिट्टी के बाहर निकाला जाय उस समय एकाएक ही उन्हें

प्रकाश से हीन रखना चाहिये. जिस समय पौधों का पीला रंग हरे रंग मे परिवर्तित हो जाता है उस समय समझ लेना चाहिये कि पौधे धूप मे रखना अच्छा रहता है. बहुत से शौकीन लोग इन वल्व पौधों को चीनी के वर्तनों मे और अच्छे अच्छे फूलदानों मे लगाते हैं. ऐसा करने के लिये बहुत ही फीकी मिट्टी भरनी चाहिये क्योंकि इन में पानी के निकास का कोई स्थान नहीं होता. इसमें भरने के लिए बहुत ही साफ और बढ़िया हल्के मिश्रण की आवश्यकता होती है.

ऐसा मिश्रण बनाने के लिये एक भाग रेत, एक भाग पत्ती का खाद और एक भाग ईंटों के छोटे छोटे टुकड़े या कंकरीट मिलाना अच्छा होता है. जिन वर्तनो म इन पौधों को लगाया जाये उनमें मिट्टी इस प्रकार भरनी चाहिये कि वह पात्र ऊपर से आधा इंच के लगभग खाली रहे तत्पश्चात इन पात्रों मे वल्व पौधे लगा देने चाहिये और फिर पात्रों को इस प्रकार हिला देना चाहिये कि उनकी सतह समतल रहे. साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि मिट्टी सख्ती से न भरी जाये अन्यथा जड़ें ठीक प्रकार से मिट्टी के भीतर नहीं वैठेगी वरन ऊपर को निकल आयेगी इनमे थोड़ा पानी देते रहना चाहिये.

जिस समय वल्व लगा लिये जाये उस समय उनके ढकने का ठीक प्रवन्ध होना चाहिये. यदि पानी को खुले स्थान पर रखकर मिट्टी और पत्तियों से ढक दिया जाय तो दो ढाई महीने तक न तो इसमे पानी देने की आवश्यकता होगी और न ही पौधे बिगड़ पायेगे. पौधों को हवादार ठन्डे स्थान मे भी रखा जा सकता है. ऐसे समय मे हजारों के द्वारा आवश्यकता पड़ने पर पानी डाल देना चाहिये जब जड़ों को नमी की आवश्यकता हो.

जिस समय यह पता लगे कि जड़ें निकलने लगी हैं तो पानी भी उतना ही अधिक देना आरम्भ कर देना चाहिये. पानी देते समय यह ध्यान रहे कि यह पात्रों में भरा न रहे. यदि अधिक पानी गिर भी जाये तो पात्र टेढा करके पानी फैंक देना चाहिये. यदि इन पात्रों को उजाले वाले तथा कम ठन्डे हवादार स्थान पर रखा जावे तो भी इसका पोषण हो सकता है. ऐसा करने के लिये पानी हजारे से ही देना चाहिये. लेकिन इन पात्रों को ऐसे स्थानों पर कभी नहीं रखना चाहिये जहां वायु कठिनाई से प्रवेश हो पाती हो. जिस समय वल्व से पौधे फूट निकलें तब उन्हें ऐसे स्थानों पर रखना चाहिये जहां वह वल्व सूर्य की स्वर्ण रश्मियों के दर्शन पा सके, इन पौधों को रात्रि के समय ५० से ५५ तक और दिन में ५५ डिग्री से ६० डिग्री की गर्मियों में रखना उत्तम होता है. जिस समय यह पौधे कुछ कुछ बड़े हो जायं तब उनमें थोड़ी सी घोल खाद का प्रयोग भी कभी कभी कर देना आवश्यक होता है.

घास के साथ लगाना — यदि घास के साथ इन वल्व पौधों को उपजायें तो यह वड़े सौन्दर्यमान लगते हैं. कभी कभी जव इन्हें सड़क के किनारे लगाया जाता है तो वड़े वृक्षों की जड़ों मे अथवा हेज की नालियों में लगाना अच्छा होता है. वाडरों को सजाने के लिये लिली और डेफोडिल उत्तम माने गये हैं.

शरवरी के जितने वड़े वड़े पेड़ होते हैं उनके साये में वड़े वड़े मैदानों मे तथा नीचे नीचे टीलों मे जहा घास वर्षा की ऋतु का सहारा पाकर उग आती है, वहां उसका लगाना वहुत ही शोभायमान रहता है. वल्वों को जव कभी लगाना हो तो घास के

अन्दर उन्हें वेतर्तीव से फेंक देना चाहिए, व्यवस्थित ढंग से लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि अव्यवस्थित छोड़ देने से इनमें प्राकृतिक शोभा आ जाती है. जिस स्थान की भूमि सख्त हो वहां वल्व नहीं लगाने चाहियें, जिस समय वर्षा होती हो उस समय वल्वों को लगाना अच्छा रहता है.

जहां वर्षा का अभाव हो वहां वल्वों में तीन चार वार जल देने की आवश्यकता होती है. जहां पर मिट्टी कमजोर हो वहां जितना वड़ा वल्व हो उसमे कुछ वड़ा छेद करके ये उपयुक्त ढंग से तैयार की हुई मिट्टी इस प्रकार से भर देनी चाहिए कि वल्व खुला न रहे. ऐसा करने से पौधों की वाढ़ अच्छीआयेगी. शोभा स्थिर रखने के लिए घास को अप्रैल के महीने तक काटते रहना चाहिये, जिससे कि घास तव तक वल्वों से छोटी ही रहे जव तक पौधे खिल न पायें.

ऐसा करने से घास छोटी रहती है और वल्व वड़े, इस प्रकार अनायास ही जन हृदय को आकृष्ट करने वाली प्राकृतिक शोभा तैयार हो जाती है. वल्व पौधों को वास्तव में सौन्दर्य वृद्धि का अनुपम साधन मानना चाहिये क्योंकि यह जहा छोटे छोटे होने के कारण कहीं भी उठाकर सजाये जा सकते हैं वहां साथ ही साथ इनसे उद्यानों की सुन्दरता भी वढ़ती चली जाती है. इन्हें लगाने के लिए केवल सावधानी ही आवश्यक है. जिसका पूरा पूरा ध्यान रखकर इन्हें लगाना चाहिए फिर इनका वैसे भी जहां आवश्यकता हो उपयोग उठाया जा सकता है.

गुलेवांस —

गुलेवांस के फूल वड़ी विचित्रता रखते हैं, इनका रंग पीला

लाल, कत्थई, सफेद और पचरंगा होता है, कभी कभी तो एक ही पौधे में कई रंग के फूल खिलते देखे गये हैं. अधिकतर ऐसा देखा गया है कि एक पौधे में एक वार एक रंग का फूल खिल आता है तो दूसरी वार दूसरे रंग का. यह फूल अधिकतर वर्षा के दिनों में आते हैं, इसके पौधों की टहनियों में लगभग छः छः इंच की दूरी पर गांठे सी होती है.

इसका वीज काले रंग का होता है. कभी इसे वोना हो तो क्यारियों में कुछ पत्ती तथा गोवर की खाद मिलाकर क्यारी को एकसार कर लेना चाहिए. तव वाद में वीज की वुवाई करनी चाहिये.

वीज तीसरे या चौथे दिन में ही फूट आता है और शीघ्र ही इसके पौधे वड़े हो जाते हैं तथा जल्दी ही फूल भी देने लगते हैं. इसकी वुवाई के लिए कोई विशेष परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं होती. कभी कभी इसके वीज स्वतः ही सूख कर क्यारियों में झड़ जाते हैं तथा इस प्रकार अपने आप ही पौधे उग आते हैं और जल्दी ही फूल देने लगते हैं. इसके फूल क्यारियों और गमलों में दोनों ही जगह आसानी से आ जाते हैं. खाद की भी कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती. साधारण खाद से ही काम चल जाता है किन्तु सिंचाई का अवश्य ध्यान रखना चाहिए.

यदि इसकी सिंचाई ठीक समय उचित प्रकार से नहीं होती है तो पौधे सूख जाते हैं. जहां क्यारियों में इसके पौधे लगाने हों वहां पर मिट्टी को पोला कर देना चाहिए जिससे कि उसमें

जड़ें भी आसानी से फैल जायें और साथ ही मिट्टी में प्रकाश तथा वायु का प्रवेश भी ठीक स्थिर रहे. इसका फूल बहुत ही शीघ्र आता है. इस कारण से सदा फूला हुआ नजर आता है.

वैसे अधिकांश लोग इसे घरों पर ही छोटी छोटी क्यारियां बना कर चौक में लगा लेते हैं. तथा यह बिना परिश्रम किये ही भली प्रकार से फूलता रहता है. इसकी टहनियां जिस समय इधर उधर को फैलने लगें तो उसी समय उन्हें ठीक प्रकार से व्यवस्थित करके पास पास डोरे से इस प्रकार बांध देना चाहिये कि फैलने से बची रहे. साथ ही इनकी ऊंचाई को रोकने के लिये भी विशेष ध्यान की आवश्यकता है क्योंकि इसकी अधिक लम्बी टहनी बहुत जल्द ही टूट जाती है. अतः जिस समय इसे बांधा जाये उस समय इसकी टहनियों को नीचे की ओर दाबते हुये ही बांधना चाहिये.

इसे सहारे की भी आवश्यकता होती है. इसके लिए बांस की खपच्चियो को गाड़ कर इसके साथ बांध कर काम मे लाना चाहिये. ऐसा करने से बांधने में भी आसानी रहती है तथा साथ ही साथ पौधों को भी सहारा प्राप्त हो जाता है. ऐसा करने से जहां पौधों को उचित सहारा प्राप्त हो जायगा वहां वे व्यवस्थित हो जायेंगे, फैले हुए नहीं रहेंगे. इससे जब भी कभी बीज प्राप्त करने हों तो उन्हें पौधों पर ही सूखने देना चाहिए.

बीज जिस समय पूर्ण पक जाता है तो वह बिलकुल काला हो जाता है तथा साथ ही साथ उसमे दाने आ जाते हैं. और बहुत ही चमकदार प्रतीत होने लगता है. जिस समय बीज

छूने मात्र से गिर पड़े तब उसे ले लेना चाहिये. सब एकत्रित किये हुये बीजों में से बोने के लिये मोटे बढिया चमकदार स्वस्थ बीज रख लेने चाहियें.

लिली —

इसकी भी आजकल बहुत मांग है, वैसे भी यह वाटिका की अथवा बंगले की सुन्दरता बढ़ाने में बड़ा सफल पौधा रहा है. यह पौधा चिरस्थायी होता है फूल इसमें केवल वर्षाकाल में ही अधिक आते हैं. एक पौधे में अधिक से अधिक तीन फूल खिलते देखे गए हैं जिनका रंग श्वेत होता है. अधिकांश लोग इसे फूल प्राप्त करने के लिये नहीं लगाते वरन इसका पौधा ही बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है. अधिकतर इसे कोने पर रखा जाता है.

लिली के पौधे जिस समय तक छोटे रहें तब तक उन्हें एक, एक गमले में कई कई एक साथ लगाए जा सकते हैं. किन्तु जब पौधे बड़े हो जायें तो उन्हें तुरन्त ही पृथक पृथक स्थानान्तरित कर देना चाहिए जिससे कि वे ठीक प्रकार से पनप सकें और उनकी जड़ें ठीक प्रकार से स्थान पा सकें. लिली को जिस गमले में लगाया जाये उस गमले में पौधा लगाने से पूर्व एक भाग मिट्टी एक भाग रेत तथा एक भाग पत्ती की खाद का मिश्रण डाल देना चाहिए. साथ ही इसे जल की भी पर्याप्त आवश्यकता पड़ती है. अतः समय समय पर इसमें जल अवश्य देते रहना चाहिए.

वैसे भी इसका जीवन पूर्णतः जल पर ही आधारित रहता है. इसके जो भी पत्ते जब पीले पड़ जायें तो उन्हें तुरन्त ही काट डालना चाहिए अन्यथा वे पत्ते अन्य पत्तों को भी निश्चित ही

गला डालेंगे. फिर पीले पत्ते सौन्दर्य को भी नष्ट करते हैं और पौधा रुग्न सा जान पड़ता है अतः ऐसे पत्तों को पौधों में कभी भी नहीं लगे रहने देना चाहिए.

जहाँ लिली को क्यारियों में लगाना हो तो सदा बड़ी जाति की लिली ही अच्छी रहती है. इसे लगभग एक एक फुट की दूरी पर लगाना चाहिए. यदि छोटी जाति की लिली लगानी हो तो उन्हें पास पास भी लगाया जा सकता है किन्तु एक बात ध्यान रखने की है कि इनकी जड़ की गट्ठियां थोड़ी थोड़ी दूर रहें आपस मे टकरायें नहीं वरना पौधों पर चमक नहीं रह पायेगी.

जिस समय लिली पर फूल आ जाय उस समय उसमे अधिक पानी देना चाहिए और जहां तक सम्भव हो हज़ारे से ही देना चाहिए. ऐसा करने से लिली की पत्तियां जो कि पतली और लम्बी होती हैं चमकदार हो जाती हैं और देखने में आकर्षक प्रतीत होती हैं और वाटिका अथवा उद्यान की सुन्दरता को बढ़ाने मे सहयोगी होती हैं.

लिली के गमलों को अधिकतर कोनों पर सजाया जाता है या फिर फूल क्यारी के चारों ओर लगाया जाता है. फूल भी इसका कई दिन तक बहुत अच्छी तरह लगा रहता है तथा इसमे कोई अन्तर नहीं आ पाता. जिस समय यह पूर्ण रूपेण फूल चुके तो तुरन्त ही इसकी वह डन्डी काट देनी चाहिये जिसमे से फूल की कलियां निकली हों.

छोटी मोटी नहरों के दोनों किनारों पर लिली के पौधे शोभायमान होते हैं. वहां पर इन्हें लगाने मे कोई विशेष परिश्रम भी नहीं करना पड़ता क्योकि वहां की मिट्टी स्वतः ही पर्याप्त तर होती

है. ऐसे स्थानों पर लिली बहुत ही चमकदार रहती है. इसके पौधे न तो सूख ही पाते हैं और न ही मुरझा पाते हैं. बड़े बड़े उद्यानों और पुष्प वाटिकाओं में भी, जहां कि कुछ नहरें या बड़ी नालियां सिंचाई के लिए बनाई गई हों उनके किनारों पर लिली के पौधों को लगाना चाहिए जिससे वहां पर प्राकृतिक सौन्दर्य भी आ सके.

मोरपंखी —

यह हरे रंग का बारीक मुलायम कांटों का गुच्छेदार पौधा होता है, यह पौधा भी स्वतः ही सुन्दर होता है. गुलाब के फूल के या अन्य अच्छे फूलों के जब भी गुलदस्ते बनाये जाते हैं तभी इस की बड़ी आवश्यकता होती है. यह फूलों के सौन्दर्य में चार चांद लगा देती है. इसके पौधे इस प्रकार के होते हैं कि इन्हें फैलावदार चाहें तो वैसा बना सकते हैं और यदि लम्बोतरा चाहें तो वैसा भी बना सकते हैं. बहुत से अच्छे उद्यान तैयार करने वाले इसके पौधों को जैसा चाहते हैं काट लेते हैं और उसी प्रकार से यह पौधा बढ़ता जाता है.

बहुत से उद्यानों में इसे लम्बा बढ़ाते हैं और या तो बीच-बीच में या कोनों पर इसे लगाते हैं. तब यह बड़ा ही शोभायमान होता है. वैसे यह गर्मी भी सहन कर लेता है किन्तु फिर भी आवश्यकतानुसार पानी इसमें पहुँचाते रहना चाहिए वरना या तो वह बढ़ना ही बंद कर देता है या कोंपलों पर से सूखने लगता है. कभी कभी यह भी पीला पड़ जाता है तो वैसे ही इसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है.

इसे भी जिस समय लगाया जाय तब एक बड़े थांवले (लगभग छः इंच के गड्ढे) में चारों ओर मेंड़ बनाकर लगाना चाहिए. उसकी मिट्टी को साफ करके लगभग छः इंच मिट्टी में अच्छी पत्ती की और गोवर की खाद मिला देनी चाहिए. जिस समय इसके पौधे मुर्झाने से लगें तो उनमें कभी कभी घोल खाद भी डालते रहना चाहिए.

ऐसा करने से इसकी जड़ें भूमि से जो तत्व प्राप्त करने में असमर्थ रह जाती हैं वे तत्व उन्हें प्राप्त हो जाते हैं. पानी की भी इसके वास्ते कमी नहीं रहनी चाहिये. इसके पौधों को यदि फैलावदार बनाना हो तो समय समय पर चोटी की छंटाई करते रहना चाहिये. और यदि उन्हें लम्बोतरा बढ़ाना हो तो चारों ओर से छंटाई करते रहना चाहिये.

फिर इच्छानुसार इसे जैसा भी लगाना हो इसकी वैसी ही छंटाई करते रहना चाहिये. सड़कों के किनारे उद्यानों के किनारे या बंगलों में पगडंडियों के किनारों पर ये बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं. मोरपंखी को जितना भी काटना हो सदा टहनियों के जोड़ पर से ही काटना चाहिये, जिससे कि काटे हुए स्थानों पर नई टहनियां तुरन्त निकल आये. जो जो भाग मोरपंखी के पौधों के पीले पड़ते जायें या सूखते जायें तो समय समय पर काटते रहना चाहिए जिससे कि इन पौधों के प्राकृतिक सौन्दर्य मे कोई किसी प्रकार की कमी उत्पन्न न हो सके.

इसके सौन्दर्य को और अधिक वढ़ाने के लिये फुहारों के द्वारा इसके पौधों को जब तब ऊपर से नीचे तक धोते रहना चाहिए. ऐसा करने से पौधों की मिट्टी धुल जाती है, तथा उसमें चमक

आ जाती है. इस चमक को स्थिर रखने के लिए यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जब तब आवश्यकतानुसार इसमें खाद भी डालते रहें. मोरपंखी के पौधे जितने कोमल और हरे रहेंगे उतने ही अधिक सुन्दर प्रतीत होते हैं.

यदि इन्हें गमलों में लगाने की इच्छा हो तो बड़े गमलों में ही लगाना चाहिये जिससे कि यह बढ़ भी सकें. गमलों में भी एक भाग गोबर और पत्ती के खाद तथा एक भाग रेत का मिश्रण कर इन्हें लगाना चाहिए. पानी ठीक प्रकार से आवश्यकतानुसार देते रहना चाहिये, काट छांट का भी ठीक ध्यान रखकर इनका संरक्षण भी करते रहना चाहिए, जिससे कि यह ठीक लगे रहें.

चमेली और मोतिया —

ये दोनों प्रकार के फूल बड़े ही सुगन्धित होते हैं. इनकी मालाये और गजरे बहुत उपयोग में लाये जाते हैं. चमेली की तो कलियां भी मालाओं में बहुत ही सुन्दर दीखती हैं. इनकी अधिकतर बेलें ही होती हैं. वैसे तो चमेली की बेल को गमलों मे भी लगाया जाता है. किन्तु इसे बहुत ही साफ की हुई मिट्टी की क्यारी में लगाना अधिक अच्छा होता है. मोतिया और चमेली को लगाने के पूर्व क्यारी की मिट्टी को बिलकुल कंकड़ विहीन कर लेना चाहिए और फिर उसमें खाद के साथ ही थोड़ी सी बालू मिलाकर भुरभुरी कर लेनी चाहिये.

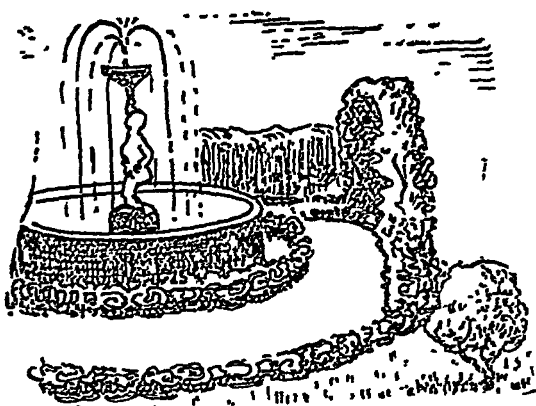
ऐसा करने से मोतिया और चमेली बहुत अच्छे फूलते हैं, तथा इसके फूल भी चमकदार और टिकाऊ आते हैं. इनमें पानी आवश्यकतानुसार अवश्य ही डालते रहना चाहिये, अन्यथा

ये नष्ट हो जाते हैं. चमेली और मोतिया में जिस समय कली आ जाये तो घोल खाद का प्रयोग भी बहुत ही अच्छा रहता है, और इसमें फूलों की अच्छी वाढ आती है. फूलों में सुगन्ध भी अधिक समय तक टिकाऊ रहती है. फूल वडे और चमकदार भी आते हैं.

एक बात यह भी ध्यान में रखनी चाहिए कि जब जब पौधों की टहनियां सूखने लगें तभी तुरन्त उन सूखी टहनियों को तोड देना चाहिए. कभी कभी इनकी टहनियां गलती सी प्रतीत होती हैं उस समय उन टहनियों के गले भाग को भी तुरन्त ही पृथक कर देना चाहिये अन्यथा वह पौधों को भी गला देगा, जो फूल भी गलते दृष्टिगत हों उन्हें भी तोड़ देना चाहिए.

इसके लिए धूप से पर्याप्त संरक्षण की आवश्यकता है. इसका सबसे बड़ा कारण तो यह है कि इनमें कोमलता बहुत होती है, इसके कारण ये धूप को सहन नहीं कर सकते और पानी का अभाव भी इन्हें नष्ट कर देता है अतः प्रातः तथा सायंकाल दोनों ही समय इनमें ठीक प्रकार से. जल देते हो रहना चाहिए. जल कभी भी दोपहर के समय नहीं देना चाहिए वर्ना पौधों के बिगड़ने का अधिक भय रहता है.

उद्यानों में इनकी क्यारियां बड़े ही व्यवस्थित ढंग से सजानी चाहिए. वहां जब यह क्यारियां फूलती हैं तो सफेद ही सफेद दृष्टिगत होती हैं और साथ ही इनमें से महक भी बहुत उठती है. छोटी छोटी पगडंडियों के दोनों ओर यदि इनकी क्यारियां लगाई जायें तो उनमें से बड़ी महक आती है और आने जाने



मोरपंखी





सूरजमुखी

वालों के मतिस्ष्क तर हो जाते हैं. इनमें जल छिड़क कर ही डालना चाहिये.

सूरजमुखी —

वैसे तो सूरजमुखी के पौधे जंगलों में भी स्वतः ही उग आते हैं, किन्तु फिर भी उद्यानों और वाटिकाओं मे उन्हे लगाने के लिए विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है. इसके फूलो मे एक विशेषता होती है कि ये फूल सदा सूर्य की ओर ही मुख रखते हैं. सूर्य जिधर भी चलता जाता है इन फूलो का मुख भी उधर ही घूमता चला जाता है. इन्हें लगाने के लिए सर्व प्रथम तो स्थान देख लेने की आवश्यकता है कि वह जगह बिलकुल खुली हुई ही होनी चाहिए. ऐसे स्थान पर किसी भी ऊंचे मकान अथवा वृक्ष की छाया बिलकुल भी नहीं पड़नी चाहिए अन्यथा पौधे नहीं दीखेगे. इन्हें लगाने के पूर्व मिट्टी को भली भांति साफ कर लेना चाहिए ताकि उसमे कंकड़ आदि न रह पायें और सूर्यमुखी की जड़ों को फैलाव का ठीक आश्रय मिलता चला जाय.

लगाने से पूर्व मिट्टी में खाद भी थोड़ा बहुत मिला देना चाहिए और फिर ऊपर की सतह पर मिट्टी को समतल रखना चाहिए. प्रातकाल के समय और सायंकाल के समय इनमे पानी डालने का ध्यान रखना चाहिए. यदि उन्हें गमलों मे लगाना हो तो पानी के निकालने का भी विशेष ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा इसकी जड़ों के गल जाने का बड़ा भय रहता है.

जिस समय सूरजमुखी मे फूल आने लगे उस समय उसमे थोड़ा-थोड़ा घोल खाद का डालना बड़ा उपयुक्त रहता है, इसके

फूल बड़े और अधिक समय तक टिके रहने वाले आते हैं. जहां तक सम्भव हो इसके पौधों में जल छिड़क कर ही देना चाहिए तथा कम कम कई वार देना चाहिए. इसमें एक साथ पानी भर देना हानिकारक होता है. जब तक पौधे छोटे रहें तब तक उनके संरक्षण की ठीक व्यवस्था रखनी चाहिए, जिससे कि वह नष्ट न हो जायें अथवा शिथिल न रह जायें, क्योंकि यदि वे शिथिल या निर्वल रह जाते हैं तो भी उनमें फूल अच्छे, वड़े सवल और चमकदार नहीं आ पाते.

सूरजमुखी के पौधे की पत्तियों पर कभी कभी वारीक कीड़ियां चलती देखी जाती हैं. वे पौधों की पत्तियों को खा जाती हैं. इनसे संरक्षण करने के लिये यदि तम्बाकू का हल्का घोल इन पर डाल दिया जाय तो ये कीड़ियां नष्ट हो जाती हैं, और पौधों को किसी प्रकार से भी हानि नहीं पहुँच पाती. वाटिकाओं को सजाने के लिये वड़े पौधों वाली क्यारियों के किनारे किनारे इन्हें लगाया जा सकता है.

इन्हें पंक्तियों में लगाना अधिक शोभायुक्त तरीका है. वीच के फूलों के सौन्दर्य को यह इस प्रकार वढ़ा देते हैं जैसे सुन्दर साड़ी के सौन्दर्य को अच्छा वार्डर वढ़ा देता है. लाल सूरजमुखी का रंग लाल या गुलावी होता है. उसके सारे गुण भी अन्य सूरजमुखी के फूलों के समान ही होते हैं तथा अन्य सूरजमुखी फूलों की भांति ही इन्हें लगाया भी जा सकता है.

रात की रानी —

रात की रानी का फूल दीखने में तो कोई विशेष सुन्दर प्रतीत

नहीं होता किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि इसकी उत्कृष्ट महक से आस-पास का सारा ही क्षेत्र सुगन्धित हो जाता है. इसके फूलों में यह विशेषता है कि रात्रि को ही खिलते हैं. उनमें महक भी रात्रि के समय ही आती है. यही कारण है कि इसे रात की रानी कहा जाता है. इसे जहां भी लगाना हो वहां पर मिट्टी को पहिले बहुत अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिये, और फिर उसे भुरभुरी करने के लिए उसमें थोड़ी सो रेत का भी सम्मिश्रण अवश्य कर देना चाहिए.

इसके पश्चात रात की रानी की एक अच्छी पकी हुई कलम गाड़ देनी चाहिए और तुरन्त ही उसमे पानी दे देना चाहिए. जब तक कलम के कुरे फूटे तब तक उसकी रक्षा करनी चाहिए और जिस समय कुरे फूट आयें उस समय उसके कुरों का ऐसा संरक्षण करना चाहिये कि वे जल कर सूख न पायें.

जब पौधे कुछ बड़े होने लगें तो इसको बेल किसी साये के स्थान पर भली भांति चढ़ा देनी चाहिए. जड़ से लेकर छत तक डोरी बांधकर इसकी बेल को चढ़ाया जा सकता है. जल देने का बहुत ही ठीक प्रबन्ध रखना चाहिए क्योंकि रात की रानी की बेलों मे कोमलता बहुत होती है. इस कारण से उसके सरक्षण की व्यवस्था रहनी ही चाहिए. बेल ऐसे स्थान पर होनी चाहिए जहां उसे प्रकाश भी मिलता रहे किन्तु धूप की तीव्रता से वह रक्षित रहे.

यदि इन्हें बड़े गमलों मे लगाया जाये तो पानी के निकास का ठीक ध्यान रखना चाहिए तथा उपयुक्त समय पर पानी देते भी रहना चाहिए. जो पत्तियां पीली पड़ जाएं या गल सी जायें उन पत्तियों को बेल पर से जब तब झाड़ते रहना चाहिये.

कणेर —

कणेर के पौधे दो जाति के होते हैं. एक तो वह जो बड़े-बड़े वृक्षों के रूप में होते हैं तथा दूसरे वे जो छोटे पौधों के रूप में होते हैं. कणेर के फूल हर मौसम में खिलते रहते हैं. इनके कई रंग होते हैं, विशेषतः सफेद, पीला हरा और लाल रंग अच्छे लगते हैं. कणेर के छोटे पौधे क्यारियों में जब फूलते हैं तो अतीव सुन्दर प्रतीत होते हैं, यद्यपि इनमें सुगन्ध का नाम तक नहीं होता किन्तु फिर भी यह वाटिका को सौन्दर्य प्रदान कर सकते हैं इसमें कोई संदेह नहीं कि इसके पौधों को किनारों पर लगाना अच्छा होता है. जहां इन्हें लगाना हो वहां की मिट्टी को लगभग तीन फुट गहरा खोदकर उसमें लगभग आधा फुट गोवर की तथा पत्ती की अच्छी खाद मिला देनी चाहिए.

इसके वाद इसे मिट्टी में भली प्रकार से मिलाकर क्यारी को समतल करके उससे कणेर लगा देनी चाहिये. जहां तक हो इसे वर्षा काल में ही लगाना चाहिए तथा पानी के निकास का ध्यान रखना चाहिए. यदि इन्हें ऐसे समय पर लगाया जाय जब कि वर्षा का अभाव हो तो जल देने का वहुत ही अच्छा प्रवन्ध रखना चाहिये, जिससे कि पौधे विलकुल भी मुर्झा या गिर न पाये फिर जब जब भी जहां से पौधों की टहनियां सूखती सी लगें उन्हें वहां से तुरन्त ही काट डालें या सावधानी से तोड़ देने का ध्यान रखना भी आवश्यक है.

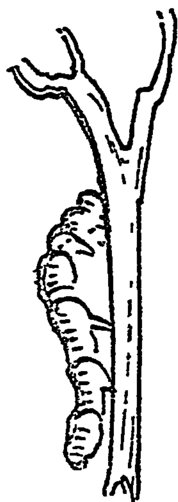
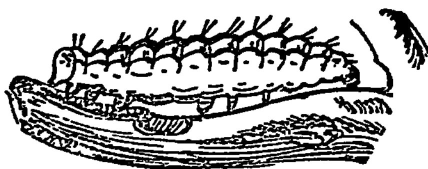
ये पौधे जब भलीभांति सजा सजा कर क्यारियों के किनारों पर लगा दिये जाते हैं. तो फूलकर वड़ी शोभा देते हैं. वैसे भी

कणेर एक ऐसा पौधा होता है जिसमें जल्दी से कोई कीट नहीं लग पाता, वैसे भी कोई अन्य जानवर इसके पौधों को जल्दी से कोई हानि नहीं पहुँचा पाते. इसके पौधों की टहनियां बहुत फैलती हैं. यदि इन्हें नियन्त्रित रखना हो तो आपस में किसी पतली डोरी से बांध देना चाहिए. ऐसा करने से उसका फैलाव नियंत्रित हो जायगा और पौधा अच्छा लगेगा, फूल भी सुन्दर व्यवस्थित प्रतीत होंगे.

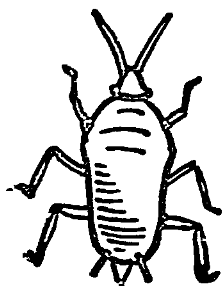
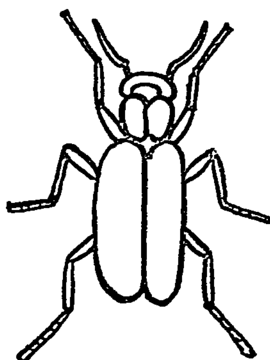
जितने भी बड़े वृक्षों वाले कणेर होते हैं वे सारे दीवारों के पास किनारों पर लगाये जाते हैं, इसके ऊपर फूल जब खिलते हैं तो बड़े सुन्दर लगते हैं. जहां पर वर्षा का अभाव हो तो वहा इन वृक्षों की जड़ों में ठीक ढ़ंग से जल भर देना चाहिए जिससे कि पेड़ो में ठीक ढंग से जल कार्य करता रहे. यहा यदि इसके नीचे जल के लिए थांवले भी न बनाये जायें तो पेड़ सूख जाते हैं. छोटे पौधों में जब तब घोल खाद का प्रयोग भी अच्छा रहता है इससे फूलों की बाढ़ अच्छी आती है तथा साथ ही वे फूल टिकाऊ तथा चमकदार भी और अन्य फूलों की अपेक्षा अधिक ही फूलते रहते हैं.

शत्रु और उनके बचाव —

जहां मनुष्य परिश्रम करके अपने खून पसीने से बड़े बड़े उद्यान और पुष्पवाटिकाओं को सजाने सुधारने और अच्छा बनाने का प्रयास करते हैं, वहां ईश्वर के बनाए हुए कुछ ऐसे जीवधारी भी होते हैं जो इनके इस परिश्रम को नष्ट कर देने के लिए सदा तत्पर रहते हैं. उन सबसे ठीक प्रकार से यदि बचाव न किया जाय तो अपनी हृदय वाटिका जैसी पुष्पवाटिका लगान


इल्लियां


टिड्डियां

वाले को ऐसी असफलता का सामना करना पड़ता है, जो उसके सामने आत्म हत्या के समान होती है.

छोटे छोटे कीट व पतंगों के चींटे बोये हुवे बीज को भूमि मे से खींच ले जाते हैं और खा डालते हैं. यदि किसी क्यारी में चींटों के होने का भय हो तो उस क्यारी के चारों ओर मिट्टी का तेल इस प्रकार से डाल देना चाहियें कि जिस मिट्टी में बीज बोया गया है उसमें किसी भी तरीके से तेल न पड़ सके. मिट्टी के तेल की दुर्गन्ध से सारे चींटे इस स्थान को छोड़ कर तत्काल ही भाग जाते हैं.

जहां पौधों के लिए नर्सरी बनाई गई हो वहां इन चींटों को भगाने के लिए नैप्थलीन का चूरा डालना चाहिए. कभी कभी ऐसा देखा गया है कि गिलहरी, चूहे, घूस और चिड़ियां भी बीज को चुग जाते हैं या कुतर डालते हैं. बीजों को इनसे बचाने के लिए नीले थोथे के घोल मे डुबो कर रखना चाहिए. इससे इन्हें जानवर मुंह नहीं लगाते. बहुत जगहों पर देखा गया है कि नये पौधे को दीमक से बड़ा भय लगा रहता है, क्योंकि जहां दीमक लग जाती है, वहां फुलवारी की फुलवारी नष्ट हो जाती है.

दीमक से बचाव रखने का सर्वोत्तम साधन यही है कि वहां अच्छी सिंचाई और गहरी निंदाई होनी चाहिये. जिस स्थान पर दीमक लग जाये उस स्थान की मिट्टी को खोदकर खुली हवा और तेज धूप मे डाल देना चाहिए, और भी कई एक साधन ऐसे हैं जिन से दीमक को नष्ट किया जा सकता है.

इसके लिए घोल भी तैयार किया जा सकता है जिसे बनाने

की विधि यह है कि चार सेर मिट्टी के तेल को एक वड़े वर्तन में डालकर उवालना चाहिए जो परिमाण में इससे तिगुना हो, जव यह तेल उवलने लगे तव आधा सेर सावुन का घोल तैयार कर थोड़ा थोड़ा करके इसमें मिला देना चाहिए. इसके पश्चात इसे थोड़ा थोड़ा करके ऐसे ऐसे स्थानों पर छिड़क देना चाहिए जहां पर दीमक लगी हुई हो, लेकिन मिट्टी का तेल आग को जल्दी पकड़ लेता है अतः जिस समय तेल को गर्म किया जाय उस समय इतना सावधान रहना चाहिए कि आग की लपट तेल तक न पहुँचे और तेल के जलने का भय न रहे, क्योंकि यदि तेल में आग लग जाती है तो जल्दी से वुझाना कठिन ही नहीं वरन असम्भव हो जाता है और इस प्रकार दीमक को मिटाने का विचार रखने वाला काल के कराल गाल में विलीन हो जाता है.

ऐसा भी देखा गया है कि कुछ जमीनें पहले से ही खराव होती हैं और उनके अंदर पुष्पवाटिका को हानि पहुँचाने वाले कीड़े रहते हैं. जिस समय फुलवारी लगाई जाती है उस समय वह उसे नष्ट कर देते हैं. ऐसे स्थानों पर फुलवारी का वीज वोने से पूर्व ही उस मिट्टी में खूव खौलता हुवा पानी डाल देना चाहिए, और जव मिट्टी सूख जाये, उस समय वीज वो देना चाहिये और वीज वो देने के पश्चात जव वीज जम जाए तव पौधे के अंदर चिमनी की थोड़ी थोड़ी राख छिड़क देनी चाहिए.

ऐसा करने से जितने भी कीड़े आदि मिट्टी के अन्दर होते हैं वह सव नष्ट हो जाते हैं और पुष्पवाटिका को कोई भी हानि नहीं पहुँचा पाते.

चिमनी की राख में इतनी तेजी होती है कि छोटे मोटे कीड़े

मकोड़ों को नष्ट कर देती है तथा खौलता हुआ पानी इन कीड़े मकोड़ों को अपनी गर्मी से मार देता है.

जिन पुष्पवाटिकाओं के अन्दर चूहे अधिक हो जाते हैं उन में चूहों के विलों को तलाश करना चाहिए और उन विलों के मुंह पर कोई ऐसी वस्तु जलानी चाहिए जिसका धुआं जहरीला हो, ऐसा करने से जितने चूहों के छोटे छोटे वच्चे होते हैं वह मर जाते हैं, और जितने भी वड़े चूहे होते हैं वह निकल कर भागने की कोशिश करते हैं.

जिस समय चूहे विलों से निकल कर भागें उस समय तत्काल ही उन्हें मार देना चाहिए. गर्म पानी के अन्दर नीला थोथा घोल कर विलों के अन्दर डाल देने से चूहे मर जाते हैं. इस प्रकार चूहों से रक्षा हो सकती है.

खुले स्थानों पर वोए जाने वाले जितने भी फूल होते हैं उन के वीज चिड़ियां निकाल कर खा जाती हैं, अत: इन वार्षिक फूलों की रक्षा के लिए इनके ऊपर किसी ऐसी जाली का प्रवन्ध करना चाहिए जिससे इसकी पूरी पूरी रक्षा हो सके और वह चिड़ियां इन वीजों को न चुग सकें.

वल्वों के पौधे गमलों में लगाये जाते हैं. उन्हें कौवों से वड़ा नुकसान होता है. यहां तक कि पौधों की जड़ों मे चोंच मार मार कर कौवे जड़ों तक के टुकड़े कर डालते हैं. कौवा वड़ा चालाक जानवर होता है यदि एक कौवा मार कर कहीं पर लटका दिया जाए तो उसके आस पास डर के मारे कौवे कभी नहीं आते.

यदि ऐसी फुलवारियों पर जाल डालने का प्रवन्ध हो जाये तो भी वहुत उत्तम होता है. छोटे जानवरों मे खरगोश भी पौधों

को बड़ी मात्रा में हानि पहुँचाते हैं, वड़े वड़े जाल डाल काँटेदार झाड़ लगा कर खरगोशों से भी इन पौधों की पूरी रक्षा की जा सकती है, क्योंकि यह पुष्पवाटिका के पत्तों को तो खा ही जाते हैं साथ ही साथ इतनी तेजी से इधर उधर भागते फिरते हैं कि छोटे छोटे पौधे अनायास ही नष्ट हो जाते हैं.

वास्तव में छोटे बड़े सभी प्रकार के जानवरों से पुष्पवाटिका की रक्षा होना आवश्यक है, अतः जहां पर इनकी रक्षा के लिए वड़ी वड़ी मेढ़ या दीवारें न वनवाई जा सकें वहां पर कांटेदार ऐसे झाड़ लगा देने चाहिएं जिनमें हो कर किसी प्रकार के भी छोटे वड़े जानवर पुष्पवाटिका में प्रवेश न पा सकें. छोटे मोटे जो कीट आदि होते है उन से रक्षा करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि जो खाद उद्यानों मे डाली जाय वह वहुत ही सड़ी गली होनी चाहिए, फिर जिन पौधों को कोई किसी प्रकार की भी वीमारी लगी हो, पता चलते ही उन्हें तुरन्त ही जला डालना चाहिए.

जो कीड़े मकोड़े मिट्टी के भीतर रहते हैं, अच्छी जुताई करने से जव मिट्टी वाहर आती है इसके साथ ही साथ वह भी निकल आते हैं. इस समय या तो तेज धूप उन्हें जला डालती है या जो छोटी मोटी चिड़ियां होती हैं वह उन्हें चुग डालती हैं. अतः कीट आदि को नष्ट करने के लिए भी गहरी जुताई और मिट्टी का उलट फेर अत्यन्त लाभदायक है. यही कारण है कि वार वार उद्यानों की गहरी जुताई लाभदायक सिद्ध होती है.

वीज हमेशा ऐसे वोने चाहियें जो अत्यन्त स्वस्थ और कीट आदि से रहित हों. ऐसा करने से उन वीजों के द्वारा जो पौधे

तैयार होते हैं वह व्याधि रहित ही रहते हैं. जो पौधे नर्सरी में तैयार किए जाते हैं उनमें फगस नाम का एक रोग लग जाता है. जिससे पौधे नष्ट हो जाते हैं. इस रोग के होने का कारण अधिक सिंचाई है.

जिस समय पौधों में यह रोग लग जाये और पौधे गल कर मरते से दिखाई दें, तो तुरन्त ही उनमें पानी की कमी कर देनी चाहिए. ऐसा करने से इस भयानक रोग से पौधों की रक्षा हो सकती है. जिस समय पौधे लगा देने के पश्चात उद्यानों मे इन कीड़े मकोड़ों की अधिकता हो जाय तो उन्हें विष द्वारा मार देना चाहिए. इन विषैली औषधियों मे दो प्रकार की दवायें होती हैं, एक वह जिसके खाने से कीट आदि मरते हैं, तथा दूसरी वह जिसके स्पर्श मात्र से ही यह कीड़े नष्ट हो जाते हैं.

जो कीड़े पत्ते खाने वाले होते हैं, उन्हें मारने के लिए लैड-क्रौमिट नाम का विष प्रयोग मे लाया जाता है. यह ल्हेसदार होता है और पत्तों पर चिपक जाता है, जिसे खाने से कीट आदि मर जाते हैं. यह विष पौधों पर डालने के लिए एक छटांक एक एक मन पानी के अन्दर मिलाकर इसके घोल को पिचकारियों के द्वारा या हजारे के द्वारा पौधों पर छिड़कना चाहिए.

जितने भी कीड़े रस चूसने वाले होते हैं उन्हें मारने के लिये एक मन पानी में लगभग तीन पाव क्रूड आइल इमल्शन को घोल कर पौधों पर डालना चाहिए. इसके स्पर्श से छोटे छोटे कीड़े मकोड़े मर जाते हैं. कीट आदि को मारने के लिए तंबाकू का काढ़ा भी प्रयोग मे लाया जाता है. इसके बनाने की रीति यह है कि एक सेर तम्बाकू को लगभग दस सेर पानी मे चौबीस घंटे

भिगो लेने के बाद उसे छान कर उसमें पाव भर साबुन का घोल मिला लेना चाहिये, और फिर लगभग सात गुना पानी मिलाकर उसे पौधों पर छिड़क देना चाहिए.

बीजों को कीट-रहित करने के लिये कार्बन बाई सलफाई प्रयोग में लानी चाहिये. एक बड़े पात्र में बीज डालकर ढाई तोला प्रति मन के हिसाब से यह दवा बीजों पर डालकर पात्र को बिल्कुल बन्द कर लेना चाहिये, क्योंकि प्रकाश अथवा अग्नि के पास होने से यह जल्दी आग पकड़ लेती है अतः अग्नि और प्रकाश से इसकी रक्षा करनी चाहिये.

इन कीट आदि को नष्ट करने के लिये वोर्डियो मिश्रण भी काम में लाया जाता है, इसे बनाने की सहज रीति यह है कि एक पात्र में लगभग सवा पाव चूना लेकर उसे पानी में धीरे धीरे बुझाकर अच्छा घोल तैयार कर लेना चाहिये और एक बड़े मिट्टी के पात्र में लगभग आधा सेर नीला थोथा एक कपड़े में बांध कर लगभग आधा मन पानी में डाल देना चाहिये और फिर चूने वाले घोल में थोड़ा सा जल और मिलाकर इतना कर देना चाहिये कि वह घोल भी आधा मन के लगभग हो जाये. तत्पश्चात दोनों को मिश्रित कर यह देख लेना चाहिये कि वह मिश्रण यदि चाकू पर डाला जाये तो चाकू ताम्बे के से रंग का हो जाये, यदि ऐसा हो तो उसमें थोड़े से चूने का मिश्रण और कर लेना चाहिये तथा जब चाकू पर तांबे का रंग न जमे तब उस मिश्रण को खेतों में डाला जा सकता है, इसके डालने से कीड़े मकोड़े नष्ट हो जाते हैं.

—◆—

फलों की बागवानी

फल वास्तव में मनुष्य के शरीर के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, क्योंकि फलों के अन्दर वह शक्ति विद्यमान रहती है जो मनुष्य में बल और पौरुष का निर्माण करती है. अनाज के पश्चात फल ही शक्ति-वर्धन के काम में आते हैं, भारत भर में फलो की जितनी बागवानी होनी चाहिये वास्तव में उतनी नहीं होती इस कारण से फल महंगे भी बिकते हैं और साथ ही साथ प्रति मनुष्य जितने मिलने चाहियें उतने नहीं भी मिल पाते.

राष्ट्रोन्नति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि फलों की अच्छी से अच्छी और अधिक से अधिक बागवानी की जाये जिससे कि भारत के प्रत्येक नागरिक को भली-भाति उतने फल सस्ते दामों में प्राप्त हो जायें जितने की उनके शरीर को आवश्यकता है. जब तक हम उन्नत फलों की बागवानी ठीक प्रकार से भारत भर में नहीं करेंगे तब तक आवश्यकतानुसार शक्ति-वर्धन यहां के व्यक्तियों में होना संभव नहीं है, इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये ही हमें अच्छी बागवानी पर ध्यान देना चाहिये.

एक बात फलों की बागवानी में और ध्यान रखने योग्य है और वह यह कि बागवानी करने वाले जितना भी परिश्रम करें वह योग्य होना चाहिये और ढंग से उसका सम्पादन होना चाहिये क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता है तो परिश्रम व्यर्थ जाता है और बागवान उससे कोई भी लाभ नहीं उठा पाता, इस युग मे बाग-

वानी करने के अनेकानेक उन्नत तरीके द्वारा हर बागवान को उन्नतिशील और नये साधन-प्रसाधनों के द्वारा बागवानी करनी चाहिये.

भूमि का चुनाव —

फलों की बागवानी के लिये यह देखना अत्यन्त आवश्यक है कि वहां की मिट्टी कैसी है, क्योंकि फलों पर मिट्टी का बहुत प्रभाव पड़ता है. जहां पर भी भूमि का चुनाव किया जाये वहां मिट्टी को एक गज नीचे तक खोद कर देख लेना चाहिए कि जो मिट्टी ऊपर है वही मिट्टी भीतर भी है अथवा नहीं क्योंकि यदि सतह की मिट्टी अच्छी होती है और भीतरी मिट्टी खराब होती है तो फलों के झाड़ ठीक प्रकार से पोषित नहीं हो पाते हैं.

साधारणतया दोमट भूमि में हर प्रकार के फलों की बागवानी न्यूनाधिक परिश्रम करके की जा सकती है. वैसे यदि भूमि के अन्दर थोड़ा बहुत अन्तर भी हो तो उसे अन्य प्रकार की मिट्टी मिलाकर दोमट में परिवर्तित किया जा सकता है. जो मिट्टी बिल्कुल ही खराब हो वहां पर तुरन्त ही बाग नहीं लगाने चाहियें वरन् छोटी मोटी हरी फसल दो तीन वर्ष तक वहां पर लगानी चाहिये और उसके बाद मिट्टी को काफी गहराई तक खोद कर फलों के लिये उपयोगी खाद मिट्टी में भली-भांति मिला देनी चाहिये जिससे कि मिट्टी फलों के लिये ठीक प्रकार से तैयार हो जाये.

भूमि का चुनाव करते समय यह भी भली भांति ध्यान रखना चाहिये कि उसके आस-पास नहर आदि का होना आवश्यक है जिससे आवश्यकतानुसार सिंचाई की व्यवस्था की जा सके. यदि

आस-पास नहर न हो तो पोखर तालाब या कुओं का होना अत्यन्त आवश्यक है किन्तु जो स्थान जलवायु की दृष्टि से ऐसे हों जहां पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती अर्थात या तो वर्षा का जल ही पर्याप्त मात्रा में भूमि को मिल जाता हो अथवा भूमि के अंदर जल विद्यमान रहता हो वहां पर यदि पोखर, तालाब, कुए अथवा नहर न हों तो भी कोई बात नहीं है.

जो भूमि बागवानी के लिये चुनी जाये उसमें यह अवश्य देख लेना चाहिये कि यहां पर खुली हवा और पूरा प्रकाश आ पाता है अथवा नहीं, जिन स्थानों पर किसी चीज की छाया पड़ती हो या खुली हवा पहुँचने में अड़चन पड़ती हो वहां बागवानी नहीं करनी चाहिये क्योंकि फलों की बागवानी पर मुक्त प्रकाश तथा खुली हवा का बहुत प्रभाव पड़ता है.

भूमि की जांच करके यह देख लेना चाहिये कि उसमे किन रसायनों का मिश्रण है. वास्तव में फलों की बागवानी के लिये भूमि में चूना, पोटाश, नत्रजन, और प्रस्फुरिक का होना अत्यन्त आवश्यक है, जांच के बाद इन रसायनों में से जिस जिस पदार्थ की कमी अनुभव हो उसी पदार्थ की खाद ठीक अनुपात से भूमि के अन्दर मिला देनी चाहिये जिससे वह भूमि फलों की बागवानी के लिये उपयोगी बन जाये.

फल-वृक्षों की सिंचाई—

भारतवर्ष में पैदा होने वाले फलों की अपेक्षा विदेशी जाति के फलों के लिए सिंचाई एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भाग है. सिंचाई के अभाव में ऐसे स्थान बहुत ही थोड़े मिलेंगे जहा फलों

की बागवानी की जा सके. कभी कभी तो उन स्थानों पर भी सिंचाई की आवश्यकता पड़ जाती है, जो सामान्यतः बिना सिंचाई के बागवानी के योग्य होते हैं. इसलिए फलों की बागवानी करने के लिए सिंचाई के अनेकानेक साधनों में से किसी एक का होना अति आवश्यक है. वास्तव में प्राकृतिक वर्षा के जल पर निर्भर रहना मूर्खता का कार्य होगा क्योंकि वर्षा मनुष्याधीन नहीं होती है. इसके अतिरिक्त कुछ फलों के पौधे ऐसे भी होते हैं, जिन्हें उस समय भी सिंचाई की आवश्यकता होती है जबकि मौसमी वर्षा के दिन ही नहीं होते. इस अध्याय में हम सिंचाई के कृत्रिम साधनों और सिंचाई के तरीकों का वर्णन करेंगे

सिंचाई के साधनों में मुख्यतया कुआ, तालाब, बावड़ी और नहरें होती हैं जिनके द्वारा कृत्रिम सिंचाई की जा सकती है.

कुआ — फलों के बगीचों की सिंचाई के लिये कुआ जभी बनवाना चाहिए जब बाग के निकट कोई नहर या तालाब न हों क्योंकि कुआ बनाने के लिये काफी धन की आवश्यकता पड़ जाती है. वैसे कुआ खोदने से एक लाभ यह भी हो जाता है कि जमीन के अन्दर की सतहों की मिट्टी का पता चल जाता है जो बागवानी के ज्ञान के लिये आवश्यक होता है.

कुआ खोदते समय निम्नलिखित बातों पर अमल करने से सिंचाई में कभी कठिनाई का सामना नहीं पड़ेगा.

१. कुआ हमेशा बाग के ऐसे स्थान पर खोदना चाहिये जो सभी पौधों से समान दूरी पर हो और कुए से पानी जाने के लिये चारों ओर ढाल हो अर्थात कुआ बाग के सब से ऊंचे स्थान पर बनाना चाहिये.

२. कुआ पर्याप्त गहरा होना चाहिये जिससे आवश्यकता पड़ने पर एक साथ दो चरस चलाने पर भी कुए का पानी समाप्त न हो जाय. बहुत से बागवान उथले कुए बना लेते हैं, जिनसे पर्याप्त सिंचाई नहीं हो पाती.

३. उपरोक्त बातों के अतिरिक्त तीसरी मुख्य बात यह है कि कुआ मीठे पानी का होना चाहिए. यदि पानी का स्वाद मीठा न हो और उसमे भूगर्भी लवणों का मिश्रण हो तो पानी की जांच करा लेनी चाहिए कि वह पानी सिंचाई के लिये उपयुक्त है अथवा नहीं.

तालाब — तालाब का पानी भी सिंचाई के प्रयोग में आता है और इसकी गणना भी कृत्रिम सिंचाई मे की जाती है. परन्तु बहुत से तालाब ऐसे भी होते हैं जिनका पानी गर्मी के दिनों मे सूख जाता है. ऐसे तालाबों से सिंचाई का कार्य शरद ऋतु मे हो सकता है.

तालाब से प्राप्त हुआ पानी सिंचाई के लिये पर्याप्त लाभदायक होता है क्योंकि तालाब में बहकर एकत्रित हुआ जल अनेक स्थानों के खाद के तत्व अपने साथ बहा लाता है.

तालाब से बगीचों में पानी पहुँचाने के लिए चरस. रहट, बलदेव-बाल्टी और पंपिंग इन्जनों का प्रयोग किया जाता है, पानी निकालने अथवा खैंचने के साधनों मे इनका वर्णन है.

नहर — सरकार द्वारा नदियों मे बांध बना कर जल संग्रह करके नहरों में सिंचाई के लिये भेजा जाता है. आजकल भारत वर्ष मे अनेक स्थानों पर बड़े बड़े बांध बनाये जा रहे हैं जिनसे

बड़ी बड़ी नहरों द्वारा करोड़ों एकड़ भूमि की सिंचाई का प्रबन्ध तो नहरों के द्वारा हो ही जायेगा साथ ही साथ बांधों पर एकत्रित किये गये जल को ऊंचाई पर से गिरा कर जल विद्युत (हाइड्रो-इलेक्ट्रिक) पैदा की जा रही है जो नगरों में प्रकाश और कारखानों के काम तो आती ही है, साथ ही साथ ग्रामों तथा खेतों में इसके द्वारा ट्यूब वैल भी चलाये जाते हैं.

नहर से सिंचाई का पानी प्राप्त करने के लिये नहर विभाग से स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है तथा जितनी भूमि में सिंचाई की जाती है उसके हिसाब से सरकार को पानी का मूल्य देना होता है. नहर से जिस समव पानी लेना हो, उससे लगभग १५ दिन पूर्व नहर विभाग से स्वीकृति ले लेनी चाहिये. जहां पर नहरों का पानी सिंचाई के लिये उपलब्ध हो वे स्थान आर्थिक दृष्टि से बागवानी के लिये बड़े उपयुक्त रहते हैं.

सिंचाई के साधन — उपरोक्त वर्णित सिंचाई के साधनों का उपयोग करने के लिये कुआ और तालाब आदि पर अन्य उपकरणों की आवश्यकता होती है जिनके द्वारा पानी ऊपर निकाल कर बाग के पौधों तक पहुँचाया जा सके. कहीं कहीं पर नहर का पानी भी आस-पास की भूमि से नीचा होता है, वहां भी किसी यन्त्र का होना आवश्यक है.

पानी निकालने के लिये चरस, रहट और बिजली अथवा तेल इन्जन के पम्पिग सेट लगाने होते हैं.

चरस — पुराने साधनों में चरस की गणना की जाती है. चरस को कहीं कहीं मोठ भी कहते है. यह भी दो प्रकार के होते

हैं. एक वाल्टी या थैलानुमा तथा दूसरा दुमदार वाल्टीनुमा. चरस चलाने के लिये दो आदमियों की आवश्यकता होती है, एक आदमी वैलों को हांकता है तथा दूसरा आदमी चरस ऊपर आ जाने पर खाली करता है.

दुमदार चरस में एक ही आदमी सिंचाई का कार्य कर सकता है क्योंकि इसके पानी के थैले में नीचे की ओर एक लम्बी मुंह-दार थैली लगी होती है, इस थैली का मुंह जब चरस ऊपर खींचता है तो थैली से ऊपर रहता है, इसलिए पानी नहीं निकल पाता. थैली का ऊपरी मुह जिधर से पानी निकलता है एक पतली रस्सी से जो मुख्य वेलों के साथ ही खिंचती रहती है, बंधा होता है. पतली रस्सी कुए के ऊपर चरखी पर न चलकर उसके लिए एक लम्बी वेलनाकार चरखी होती है. जब थैला ऊपर आता है तो रस्सी के साथ खिंचता हुआ थैले का मुह पानी गिरने के स्थान पर आ जाता है जहां पर पानी गिर जाता है. यही क्रिया निरन्तर होती रहती है.

चरस के थैलों को अधिक दिनों तक वनाए रखने के लिए समय समय पर इनमें अन्डी का तेल लगा देना चाहिए जिससे चमड़ा खराव न होने पाये.

रहट — कुए से पानी निकालने के लिए रहट मामूली यन्त्र है जिसे एक वैल द्वारा चलाया जा सकता है. वैल भी तेली के कोल्हू की तरह गोलाकार घेरे में चलता रहता है. इसलिए इसे १०-१२ वर्ष का वालक भी चला सकता है. इसके द्वारा पानी भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाता है इसलिए रहट को उन्हीं

बागों में लगाना लाभप्रद रहता है जिनका क्षेत्रफल ८-१० एकड़ हो.

रहट खरीदते समय बाग की आवश्यकता के साथ साथ कुए की गहराई का भी ध्यान रखना होता है कि कुआ कितना गहरा है और कितना पानी दे सकता है. क्योंकि यदि कुए में पानी का उभार (स्रोत) अच्छा नहीं होता तो थोड़ी देर रहट चलने के बाद पानी उतर जाता है और थोड़ा पानी हो जाने पर बाल्टियां नहीं भरती हैं.

रहट छोटे बड़े कई आकार के होते हैं. छोटे कुओं के लिए छोटी बाल्टियों वाले रहट ही लेने चाहिएं.

रहट खरीदते समय एक बात का ध्यान रखना लाभप्रद रहता है; वह यह कि यदि हो सके तो बालबेरिंग वाला रहट खरीदा जाय, यह अधिक समय तक चलता रहता है और खराब भी शीघ्र नहीं होता, साथ ही बैलों पर जोर भी अधिक नहीं पड़ता है. यदि बाल बियरिंग का रहट न मिले और साधारण पीतल की कुशों का हो तो उसे चलाने से पूर्व भली भांति तेल दे देना चाहिए.

पम्प — आज कल खेती बाड़ी में पम्पिग का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है. यह यन्त्र दो प्रकार का होता है. एक बिजली से चलने वाला दूसरा मिट्टी के तेल, पेट्रोल अथवा डीजल से चलने वाला. इनमें जहां बिजली हो वहां तो बिजली का भी सस्ता रहता है अन्यथा मिट्टी के तेल अथवा डीजल से चलने वाला ही लेना चाहिए. पेट्रोल का व्यय डीजल से अधिक बैठता है.

पम्पिंग इन्जनों को प्रयोग में लाने का कार्य इसके अनुभवी अथवा पढ़े लिखे मनुष्य ही भली-भांति कर सकते हैं किन्तु यदि बागवानी करने वाले को इसके यन्त्र को चलाने का ज्ञान न हो तो थोड़े दिनों के लिए वेतन पर किसी अच्छे किसान को रख लेना चाहिए. बाद में स्वयं चलाना आ जाता है.

पम्प से सिंचाई का कार्य दिनों की बजाय घन्टों मे हो जाता है, साथ ही परिश्रम भी अधिक नहीं पड़ता और एक ही आदमी सरलता से सारे बाग की सिंचाई कर लेता है.

पानी खींचने वाले पम्प अनेकानेक कम्पनियों के आते हैं. इनकी पानी खींचने की शक्ति भी भिन्न-भिन्न होती है. इसके मुख्यतया दो भाग होते हैं. एक वह यन्त्र जो पानी खींचता है तथा दूसरा मोटर या इन्जन जो इसे चलाता है. जो यन्त्र पानी खींचता है उसकी शक्ति भी भिन्न-भिन्न होती है. उदाहरण के तौर पर यदि पम्प के पानी खींचने की शक्ति २० फुट और फैंकने की १५ फुट तो इसका अर्थ यह हुआ कि किसी जल के भी सतह से ३५ फुट ऊपर तक पानी खींचा जा सकता है. पांच फुट पाइप का हिस्सा कुए के जल में रहना आवश्यक होगा क्योंकि पानी खींचने पर कुए का स्तर गिरने की सम्भावना रहती है, वैसे भी गर्मियों के दिनों में कुओं मे पानी कम हो जाया करता है.

इसलिए पम्प खरीदते समय अपने कुए के पानी की गहराई और जल की नीचाई पम्प बेचने वाली कम्पनी को बता देनी चाहिए, उदाहरण के तौर पर यदि आप के कुए मे पानी ४० फुट नीचे है और पानी की गहराई १२ फुट है तो आप को ऐसा पम्प लेना चाहिए जिस की पानी फैंकने की क्षमता ५० फुट हो अर्थात

३० फुट नीचे से पानी खींच कर २० फुट ऊपर फेंकने वाला पम्प लगाना होगा. इस पम्प को आप को अपने कुए में पानी से २५ फुट ऊपर लोहे अथवा सलीपरों का बेस बनाकर फिट करवाना होगा.

इस प्रकार पम्पिग सेट की नीचे से पानी खींचने की शक्ति २५ फुट तक ही करनी होगी, यदि २-४ फुट पानी उतर भी जायेगा तो भी खींचा जाता रहेगा क्योंकि इन्जन की पानी खींचने की क्षमता ३० फुट है. इसी प्रकार ऊपर पानी फैंकने की क्षमता इंजन में २० फुट है जबकि उसे १५ फुट ही फैंकना होगा. इस प्रकार इंजन की. शक्ति के अनुसार पानी प्राप्त किया जा सकेगा.

पानी खींचने के पाइप का जो सिरा जल के अन्दर रहता है है उसकी लम्बाई ५-६ या ८-१० फुट गहराई के अनुसार रक्खी जानी चाहिए. साथ ही पाइप के मुंह पर जाली लगा देनी चाहिए जिससे कूड़ा करकट आकर पम्प में न फंस जावे.

ट्यूब वेल — आधुनिक सिंचाई के साधनों में ट्यूबवैल का प्रसार उन स्थानों पर वहुत अधिक होता जा रहा है जहां कि विजली की सुविधा है. उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में डीजल के इंजन से चलने वाले ट्यूब वैल भी लगाये जा रहे हैं.

वास्तव में ट्यूब साधारण सिंचाई के लिए अच्छा साधन है इसमें पूरा कुआ न खोद कर पम्पिग सेट का पाइप जमीन के अन्दर बोरिंग सिस्टम से जल की सतह तक पहुँचा दिया जाता है. फिर जल की निचाई के अनुसार पानी खींचन के लिए ऊपर भूमि पर

पम्पिग सेट बिजली अथवा डीजल के इंजन से चालू कर लिया जाता है.

यदि जल काफी गहराई में हो या पम्प के पानी उठाने की शक्ति कम हो तो कुए का आकार का गड्ढा उतनी गहराई तक खोद लिया जाता है जहां से पम्प आसानी से पानी खींच सके. उस स्थान पर पक्की कोठरी बनाकर पम्पिग सेट और नाप के इंच दोनों लगा दिये जाते हैं.

कहीं कहीं पर चलते फिरते पम्पिग सेटों से भी सिंचाई की जाती है, यह वे ही लोग कर सकते हैं, जिनके पास पावर पुली का ट्रेक्टर होता है. ऐसे ट्रेक्टरों से जुताई माल-ढुवाई तो करी ही जाती है, पावर पुली द्वारा पम्प इंजन भी चलाए जाते हैं.

ट्रेक्टर के पिछले हिस्से में घूमने वाली पुली होती है जिस पर बेल्ट या पट्टी चढ़ा का पम्पिग सेट को चलाया जाता है. कुछ सेट ऐसे भी होते हैं जो ट्रेक्टर के साथ पीछे के ट्रेक्टर पर कस कर जहां चाहो वहां ले जाकर सिंचाई के काम आते हैं. इन इंजनों में पानी खींचने और फैंकने के पाईप लोहे के न होकर मोटे रबड़ के होते हैं जो सुविधानुसार लपेट कर रखे जा सकें.

सिंचाई की विधियां —

फलों के पौधो को यदि गलत तरीके से पानी दिया गया तो उसका प्रभाव उलटा होता है. इस प्रकार अनेकानेक पौधे नष्ट होते देखे गये हैं, बहुधा देखा गया है कि इस सिंचाई के विज्ञान से परिचित न होने के कारण अनुचित रूप से सिंचाई करते हैं. बहुत से किसान पेड़ के आस-पास चार-पाच फुट का थाली या

रकाबी के आकार का गढ़ा खोद लेते हैं और पानी भर देते हैं.

इस प्रकार से पानी भरकर सिंचाई करने से पेड़ों की जड़ों का फैलाव ठीक नहीं होता और उसका प्रभाव वृक्ष पर भी बुरा पड़ता है; साथ ही जड़ के पास पानी भरा रहने से वृक्ष की पीड़ (तना) और उसकी छाल गलने लगती है.

अनेकानेक प्रयोगों के बाद सिंचाई के लिये जो विधियां उत्तम प्रमाणित हुई हैं उनका ही वर्णन नीचे किया जाता है. इस प्रकार से पानी देने की तीन मुख्य विधियां हैं, पहली थाले बनाकर, दूसरी खाइयां बनाकर तथा तीसरी पारियां बनाकर.

पहली विधि — थाले बना कर सिंचाई करने के लिये पौधे जड़ के चारों ओर तथा उसकी जड़ के समानान्तर छः सात इंच गहरी नाली बना दी जाती हैं, जड़ से इसकी दूरी एक या डेढ़ फुट तक की ठीक रहती है. चारों ओर गोलाकार बनी नाली में एक तरफ जल प्रवेश की नाली होती है जो मुख्य नाली या नाले से जल लाकर इसको भर देती है. बाग के सभी वृक्षों के लिये इस प्रकार के थाले बना दिये जाते हैं तथा पौधों की दो पंक्तियों के बीच जल की मुख्य नाली होनी चाहिए.

इस प्रकार से सिंचाई करते समय पानी जब बड़े नालों में छोड़ा जाय तब पौधों के सभी थालों की प्रवेश नालियां बन्द हो जानी चाहियें. इस प्रकार जल सीधा अन्तिम थाले का प्रवेश द्वार खोलकर अन्तिम पौधे के थाले में ही भरना चाहिए. जल भर जाने पर उस थाले का मुंह बन्द कर देना चाहिये तथा उसके सामने वाले थाले का मुंह खोलकर उसे भरना चाहिये इस प्रकार से पीछे को लौटते हुए प्रत्येक थाले को भरना चाहिए.

गर्मी के दिनों में सिंचाई करते समय पानी जब थालों में भर जाय तथा पानी जमीन सोख ले, तब उसके ऊपर पतली मिट्टी की थर डाल देने से पानी नहीं उड़ता. इस प्रकार की सिंचाई करनी छोटे पौधों के लिए अधिक उपयुक्त रहती है.

दुसरी विधि — इस विधि से सिंचाई कुछ बड़े वृक्षों की भी की जाती है क्योंकि जैसे जैसे पौधा बढ़ता है उसकी जड़ें दूर दूर तक फैल जाती हैं. इसलिए पारे बनाकर सिंचाई करनी ही लाभप्रद रहती है. इस प्रकार के पारे दो पंक्तियों के बीच बनाए जाते हैं इन पारों का दोनों पेड़ों की कतारों के बीच मे होना आवश्यक है साथ ही इस बात का ध्यान रहे कि पारे में ढाल इतना अधिक न हो कि पानी शीघ्रता से बह जाय.

इस लिए इन पारों में धीरे धीरे पानी छोड़ना चाहिए. इस प्रकार दो एक बार सिंचाई करने पर यदि पारों में घास इत्यादि उग आये तो बखर चला देना चाहिये. इस बीच में यदि खाद भी दी जाय तो भी बखर चला देने से सारा खेत समान हो जायेगा और अच्छी तरह गुड़ाई हो जाएगी. पारे बनाने की विधि स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये.

तीसरी विधि — जिन स्थानों पर पुराने और अच्छे बढ़े हुये झाड़ हों, और पानी काफी मिल जाता हो, वहां पर खाइयां खोद कर सिंचाई करना अच्छा रहता है, क्योंकि उनमें से जड़ें सुविधानुसार जल खींच लेती हैं.

जब इस विधि को उपयोग में लाना हो तो जिन ढालों पर झाड़ों की पंक्तियां लगी हों, बीच में डेढ फुट चौडी, एक फुट गहरी

खाईदार नाली खोद ली जाती हैं. इन खाइयों को पानी से भर दिया जाता है. पेड़ अपनी आवश्यकता के लिए अपनी जड़ों से, इच्छानुसार जल खींचते रहते हैं. वर्षा के दिनों में वही खाइयां वर्गाचे से अधिक पानी निकालने (पानी के निथार) के लिए काम में लाई जा सकती हैं.

फलों के बागों की बागवानी करने में यह ध्यान रखना चाहिए कि जब पौधे छोटे होते हैं तब या उन में बाढ़ अधिक होती है, और जब वे फूलते फलते हैं तब भी उन को अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है. अतएव ऐसे अवसरों पर सिंचाई की कमी नहीं होनी चाहिये. सिंचाई की कमी होने से पौधों की बाढ़ पर उसका बुरा असर पड़ेगा और फ़सल खराब हो जायेगी.

सावधानियां — वैसे तो क्रिया और अभ्यास द्वारा अनेकानेक बातें धीरे धीरे समझ में आ जाती हैं, पर अन्यान्य लोगों का अनुभव ही विशेष लाभप्रद होता है. बागवानी के विशेषज्ञों का मत है कि प्रत्येक पेड़ और पौधा उसकी स्थिति स्पष्ट कर देती है, कि उसे पानी की आवश्यकता है या उसे अधिक पानी दे दिया गया है. उदाहरण के तौर पर जब किसी पेड़ या पौधे में निकलते हुए नये पत्ते पीले पड़ने लगे तो समझना चाहिये कि पानी अधिक दिया गया है, तथा जड़ों को हवा की आवश्यकता है. ऐसी दशा में पानी देना बन्द कर देना चाहिए और सिंचाई के समय भी थोड़ा पानी देना चाहिये तथा जड़ों के पास या तो हल्का हल चला देना चाहिये अन्यथा वहां की मिट्टी की पपड़ी तोड़ देनी चाहिए. इसी प्रकार पूर्ण रूप से बढ़े हुए पौधों के पत्ते पीले पड़ने लगें तो समझ लेना चाहिये कि पेड़ को पानी की आवश्य-

कता है. ऐसे पौधों को तुरन्त पानी देना चाहिए, इसी प्रकार कभी कभी पानी के अभाव में भी पौधे मुरझाने लगते हैं. इस लिये हर दशा को ठीक प्रकार से समझकर फलों के पौधों की सिंचाई करनी चाहिए.

ऊपर बताई गई रीतियों से फलों की बागवानी करने वाले को सदा ठीक ढंग से सिंचाई करनी चाहिए जिससे झाड़ों को जल आवश्यकतानुसार प्राप्त भी हो जाए और साथ ही साथ अधिक भी न रहे. क्योंकि जहां इसके झाड़ों को पानी का अभाव हानिकारक है, वहां अधिक पानी भी कम हानिप्रद नहीं. फलों के पौधों की कटाई छंटाई का ध्यान रखना चाहिये. अन्यथा जहां पेड़ों की बनावट बिगड़ जाती है, वहा साथ ही साथ फलों की पैदावार भी कम होती है. अतः पेड़ पौधों की उचित और आवश्यक काट-छांट समय समय पर अवश्य करते रहना चाहिए.

सिचाई के सिद्धांत —

फलों की बागवानी करने के लिए वृक्षों तथा पौधों की जाति और प्रकृति के अनुसार ही उसकी सिंचाई आवश्यक होती है. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भिन्न भिन्न प्रकार के फल-वृक्षों को उनकी अपनी आवश्यकता के समय ही की गई सिंचाई लाभप्रद होती है. किन्तु हमने सिंचाई के उन मोटे सिद्धांतों का उल्लेख किया है जो सामान्यतः सभी फल वृक्षों के लिए उपयोगी होते हैं यह तो निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक पौधा अपने पोषक-तत्वों को जड़ों के द्वारा ही ग्रहण करता है. जमीन से खाद के रूप मे दिए गए तत्वों का उपयोग तब तक बेकार रहता है जब तक पौधों की उचित सिंचाई न की जाये.

पौधों को दी गई खादें पौधों की जड़ें ग्रहण करती हैं और जड़ें खाद ग्रहण करने में तभी समर्थ होती हैं, जब पौधों की जड़ों में दिया गया खाद सिंचाई के पानी में घुल कर पतला रसायन बन जाता है. पानी घुल जाने पर ही पौधों की जड़ों के बारीक रेशे उन्हें चूसने में समर्थ हो पाते हैं.

फलों की बागवानी में सिंचाई का प्रबन्ध इस दृष्टि से भी करना होता है कि वहां का मौसम और वातवरण फलके नुकूलअ हो जाये क्योंकि बहुत से फल अनुकूल वातावरण न मिलने पर भी सिंचाई की सहायता से पैदा कर लिये जाते हैं.

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त सिचाई के सिद्धांत कुछ अन्य बातों पर भी निर्भर करते हैं जैसे पौधों की बाढ़ और उनकी जाति विशेष की आवश्यकतानुसार, ऋतुकालीन वर्षा का अभाव तथा जमीन का रेतीलापन भी पानी देने की मात्रा में कमी बेशी कर देता है.

भारी जमीन में सदैव अधिक पानी की आवश्यकता होती है किन्तु पानी देने के बीच का समय भी अधिक रहता है क्योंकि भारी जमीन से पानी उड़ता भी देर में है. इसके विपरीत हल्की और रेतीली जमीन में पानी जल्दी जल्दी और थोड़ा थोड़ा देने की आवश्यकता होती है.

पौधों की सिंचाई करते समय यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि पानी की मात्रा अधिक हो जाने पर भी पौधे मर जाते हैं उनकी जड़ें गल कर बेकार और निश्प्राण हो जाती है. पेड़ के पत्ते सूखते तो नहीं किन्तु कुम्हलाकर लटक जाते हैं. पेड़ की

ऐसी दशा होने पर सिंचाई बन्द करके जड़ों को हवा और धूप दिखा देनी चाहिए.

अधिक पानी देने से दूसरी हानि यह भी होती है कि पौधे को दिये गये खाद के तत्व पानी मे घुलकर जमीन के नीचे अधिक गहराई पर चले जाते हैं जो जड़ों द्वारा नहीं लिए जा सकते हैं.

उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुये सिंचाई करनी चाहिये और परिश्रम में कमी नहीं करनी चाहिए.

उपयुक्त खाद —

फलों की बागवानी करने के लिए दो प्रकार से खाद की आवश्यकता होती है. एक तो छोटे पौधों के लिए और एक झाड और पेड़ों के लिए, जिस समय पौधे छोटे होते हैं उस समय जो खाद प्रयोग में लाई जाती है वह ऐसी होनी चाहिए जिससे पौधों की बाढ अधिक आए, पौधे जल्द बढ़ें और उनमें पत्तियों की बाढ़ भी अच्छी आए. जिस समय बड़े झगड़ों को खाददी जाती है उस समय उस खाद का उपयोग फलों लिए होता है. अतः इन दोनों बातों को ध्यान में रख कर ही खाद का प्रयोग करना चाहिए. यही कारण है कि छोटे पौधों को नत्रजन की अधिक आवश्यकता है और बड़े पेड़ों को पुटाश तथा प्रस्फुरिक की.

जिस समय पौधे छोटे हों उस समय जिस खाद का प्रयोग किया जाय उसमें ६ प्रतिशत भाग प्रस्फुरिक ८ भाग पुटाशियम और ४ भाग नत्रजन का होना चाहिए. और जिन झाड़ों में फल लगने वाले हों उनमे १२ प्रतिशत भाग फुटाशियम ४ भाग नत्रजन और ८ भाग प्रस्फुरिक होना चाहिए.

अनेकानेक अनुसंधान करने वालों का मत है कि खेत की मिट्टी में पूरी मात्रा प्रस्फुरिक की डाल दी जाय तो फल का छिलका पतला हो जाता है और फल पट्टीदार सा आता है. वास्तव में पेड़ की आयु मिट्टी में उपजाऊ पदार्थों का होना और फलों का आकार आदि यह सब खाद पर ही निर्भर रहते हैं. अतः हमें जो भी खाद देनी हो उसे हर झाड़ की दृष्टि से खाद दी जायेंगी तो झाड़ों के कम या अधिक होने के कारण उसका हिसाब ठीक नहीं बैठेगा.

जिस समय भूमि में पौधे लगाये जायें उस समय छोटे पौधों के लिए जो खाद का मिश्रण बताया गया है उसे लगभग आधापौंड हर झाड़ की मिट्टी में मिला देना चाहिए. यदि झाड़ों को शीत-काल में लगाया जाए तो जून के महीने में एक पौंड और सितम्बर के आरम्भ में लगभग आधा पौंड अधिक-खाद भूमि में प्रति-झाड़ डालनी चाहिये. यह प्रथम वर्ष के लिए ठीक रहता है किंतु दूसरे वर्ष में यह हिसाब बढ़ा देना चाहिए.

ऐसा करने से जितने भी पेड़ और पौधे होते हैं वे सारे शक्तिवान बने रहते हैं तौर झाड़ों की बाढ़ भी घट नहीं पाती. नीचे की सारिणी में हम वह वार्षिक हिसाब देते हैं जो हर झाड़ को उसकी पूरी बाढ़ तक खाद के रूप में मिलना चाहिये.

प्रथम वर्ष	३ पौंड
द्वितीय-वर्ष	४॥ पौंड
तृतीय वर्ष	६ पौंड
चतुर्थ वर्ष	८ पौंड
पंचम वर्ष	६ पौंड
छठे वर्ष	१४ पौंड

आवश्यकतानुसार यह परिमाण थोड़ा बहुत घटाया-बढाया भी जा सकता है. जो वृक्ष फलने वाले हों उनके लिए बताई गई खाद का परिमाण लगभग ८ से १५ साल तक फल वाले वृक्षों को २० से ३० पौंड तक देना चाहिए. जो खाद बाजार में मिलती है उस में कितना परिमाण किन चीजो का रहता है इसके बारे मे नीचे दी हुई सारिणी से समझा जा सकता है. जिन चीजों की कमी खाद के अन्दर प्रतीत हो उसे उतना ही बढ़ाकर अपने परिमाण के अनुसार खाद का मिश्रण तैयार किया जा सकता है.

खाद का नाम	प्रस्फुरिक प्रतिशत	नत्रजन प्रतिशत	पोटाशियम प्रतिशत
१. अमोनियम सल्फेट	—	२०	—
२. तिल्ली, करंजी अन्डी, या मूंग फली की खली	३	५	१. ५०
३. पोटाशियम सल्फेट	—	—	५०
४. सुपर फास्फेट	२०	—	—

जैसा ऊपर लिखा है कि फलो के पौधे और फलदार वृक्षों के लिए उपयुक्त मिश्रण नीचे बताये जाते हैं. यह मिश्रण प्रतिशत के परिमाण मे है, उसी के हिसाब से आवश्यकतानुसार इनकी खाद बनानी चाहिए.

छोटे पौधों के लिये

आमोनियम सल्फेट	३० पौंड
सुपर फास्फेट	४० ,,

पुटाशियम सल्फेट	४० ,,
खली	६० ,,
	२०० पौंड

इसका मूल्य लगभग २ आने प्रति पौंड अर्थात कुल २५ रुपये होता है.

फलदार वृक्षों के लिये

अमोनियम सल्फेट	३४ पौंड
सुपर फास्फेट	३८ ,,
पुटाशियम सल्फेट	५४ ,,
खली	७४ ,,
	२०० पौंड

इसके कुल का मूल्य लगभग २० रुपया पड़ता है जिसके हिसाब से लगभग १ आने ६ पाई प्रति पौंड पड़ता है.

प्रयोग का तरीका

बागों में खाद देने का समय वह है जबकि थोड़ी थोड़ी वर्षा हो रही हो. अर्थात न तो वर्षा अधिक हो और न मौसम शुष्क ही हो. वास्तव में खेतों में उर्वरक देने का जो सही समय है वो उस समय होता है जबकि जड़ों का फैलाव आरम्भ हो. वृक्ष की जड़ें लगभग दिसम्बर के महीने में और जून के आरम्भ मे फैलनी शुरू होती हैं. यही समय उर्वरक खाद देने का भी होता है. खाद देने के लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि जितनी

दूर में पेड़ का ऊपरी फैलाव हो उतनी ही दूर के घेरे में खाद को एकसार फैला देना चाहिए जिन बागों को ८-१० वर्ष से अधिक हो गये हों वहां झाड़ों की जड़ें बहुत फैल जाती हैं. ऐसे स्थानों पर खाद को भली-भांति जमीन पर फैलाकर उथली-उथली जुताई कर देनी चाहिए.

पेड़ों को पोषण देने के लिए प्राणप्रद वायु कार्बन डाईः-आक्साइड, लोह, क्षार, चूना, मेग्नेशिया, फास्फेट और सल्फेट की आवश्यकता होती है. यदि फलों के पौधों का विश्लेषण करके देखा जाय तो स्पष्ट इन्हीं तत्वों का समावेश प्राप्त होगा. इस प्रकार हम देखते हैं कि इसकी खेती में गन्धक, लोह, कैल्शियम आक्सीजन, मेग्नेशियम, कार्बन पोटैशियम, हाइड्रोजन, प्रस्फुरिक और नत्रजन आदि विशेष तत्वों की बहुत आवश्यकता है, इनके अतिरिक्त जिंक बोरीन जैसे कुछ और भी तत्व हैं जिनका प्रयोग चाहे बहुत ही कम परिमाण में हो, किन्तु उनके द्वारा फलों के बागों को लाभ बहुत होता है.

वास्तव में इन तत्वों की आवश्यकता का एक मूल कारण यह भी है कि फलों को इन पदार्थों की अधिक आवश्यकता होती है. और इस प्रकार से जितने भी फलों के वृक्ष होते हैं वे थोड़े से वर्षों में ही भूमि मे से यह तत्व समाप्त हो जाते हैं. वैसे ऊपर वर्णित लगभग सभी तत्वों की खेत मे आवश्यकता होती है किन्तु फलों के खेत में नत्रजन पुटाशियम और प्रस्फुरिक परम आवश्यक हैं. यही कारण है कि यदि इन खेतों में इन तीनों मे से किसी की कमी हो जाय तो फल-वृक्ष तुरन्त ही सूचना देते हैं, और इन्हीं कमियों को पूरी करने के हेतु बागों मे खाद का प्रयोग किय :

जाता है. इन सब तत्वों के अलावा चूने का भी पर्याप्त प्रयोग फल का वृक्ष चाहता है.

नीचे हम अघुलनशील राख की सारिणी देते हैं.

अघुलनशील राख में

प्रस्फुरिक	=	१.६ प्रतिशत
सिलीका	=	६ ,,
लोह मेंग्नीज	=	१ ,,
मेग्नेशियम	=	७ ,,
चूना	=	४५ ,,
		६०.६

पौधे की राख में

घुलनशील राख	=	६.६ प्रतिशत
अघुलनशील राख	=	६०.४ ,,
		१०० भाग

खाद तत्वों का महत्व

सर्व प्रथम खादों में नत्रजन का ही सबसे बड़ा उपयोग है क्योंकि नत्रजन पौधों की अच्छी बाढ़ लाता है, साथ ही साथ पौधों को शक्ति-प्रदान करता है. खाद के रूप में खेत में जितने भी तत्व दिये जाते हैं उन सबका पृथक पृथक समय पर पृथक-पृथक महत्व होता है. पोटैशियम के द्वारा पौधों में निरोगी

रहने की शक्ति आती है, अर्थात अनेकानेक रोग पोटैशियम की खाद के प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं, और इस प्रकार पौधा व्याधियों से पर्याप्त मत्रा में बचा रहता है. साथ ही साथ यह पौधों में अच्छे प्रकार के स्वादिष्ट फल देने वाली शक्ति को बढ़ाता है.

प्रस्फुरिक की खाद के द्वारा पेड़ पौधों की बाढ़ मे अधिक से अधिक कार्य करने की शक्ति आ जाती है. फल रसदार और बड़े आकार के आते हैं. बाग की अनुपयुक्त अम्लता को इसके प्रयोग से नष्ट किया जा सकता है, साथ ही चूना खाद के रूप मे दिये गये अम्ल पदार्थों को इस योग्य बना देता है कि पेड़ पौधों की जड़ें उन तत्वों को शीघ्र ही काम मे ले आवे. इस प्रकार चूना भी फलों की खेती के लिए बहुत आवश्यक है.

पेड़ पौधों के लक्षणों को देख कर यह आसानी से जाना जा सकता है कि खेत में किस तत्व की कमी है और फिर इन लक्षणों की ठीक जाच करके खेतो मे उसी अनुपात से उसी पदार्थ की खाद का ठीक प्रयोग करना चाहिये. यदि खेत की मिट्टी मे नत्रजन की कमी रहती है तो पेड़ पौधों की टहनिया कमजोर, फल छोटे और पत्ते पीले तथा रुग्न हो जाते है. उस समय समझ लेना चाहिए कि पौधे नत्रजन युक्त खाद माग रहे हैं.

यदि पेड़ पौधों की टहनियां मजबूत हों, पत्तियां गहरी हरी हों तथा पौधे स्वस्थ हों, किन्तु फल बहुत ही कम संख्या मे या रस हीन से अथवा कम रस वाले लग रहे हों, तो समझ लेना चाहिये कि मिट्टी में प्रस्फुरिक की कमी है. ऐसे समय मे प्रस्फुरिक युक्त खाद का प्रयोग करना चाहिए. यदि झाड़ स्वस्थ न हों

फलों का रंग रूप व आकार विकृत हो गया हो या उसके रस का स्वाद बिगड़ा हुआ हो तो समझ लेना चाहिये कि मिट्टी में पोटेशियम की कमी हो गई है और पोटाश युक्त खाद का प्रयोग कर उस कमी को तुरन्त ही पूरा करना चाहिये.

फलों की बागवानी करने वालों को सदा अपने पौधों की देख-भाल करते रहना चाहिये और जिस समय जिन तत्वों की कमी अनुभव हो तुरन्त ही उस कमी को पूरा करके पेड़ पौधों की हालत को भली भांति सम्हाल लेना चाहिये.

खाद अनेक प्रकार के होते हैं, उन्हें हम संक्षेप में नीचे देते हैं, खादों को सामान्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है.

सेन्द्रिय खाद —

फलों के बागों में सेन्द्रिय खाद के तत्वों का विद्यमान रहना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ये पदार्थ हर प्रकार की मिट्टी में भली-भांति मिल कर एक रस हो जाते हैं तथा अपने गुणों के द्वारा मिट्टी को भुरभुरी और ऐसी बना देते हैं जो पानी को शीघ्र ही सोख ले तथा उसे खड़ा न रहने दे. यदि खेत में सेन्द्रिय खाद की कमी रह जाती है तो कृत्रिम खाद पूर्ण रूपेण पेड़ पौधों के काम नहीं आ सकती और फसल किसी भी हालत में अच्छी नहीं आ सकती वरन बिगड़ जाती है. सेन्द्रिय खादें कई प्रकार की होती हैं जिनका वर्णन पृथक पृथक संक्षेप में नीचे दिया जाता है.

गो-मूत्र — इसकी खाद छोटे छोटे पौधों के लिए या नर्सरी के लिये बहुत ही लाभदायक रहती है. जिस समय इसकी आवश्यकता हो तो बड़ी बड़ी गोशालाओं में, या जिस स्थान पर गऊ

बैल आदि बांधे जाते हों, वहां लगभग ३ इंच सूखी मिट्टी फैला देनी चाहिये, जिससे कि यह मिट्टी अपने गुण के अनुसार मवेशियों का मूत्र सोख ले. लगभग आधे मास के पश्चात इसी मिट्टी के ऊपर उतनी ही अच्छी सूखी मिट्टी और बिछा देनी चाहिए, तथा दो महीने इसी क्रम को जारी रखना चाहिए.

उस प्रकार ये मिट्टी चार बार बिछाने से २ फुट ऊंची हो जाती है और उस समय इसे प्रयोग में लाया जा सकता है. किसी बड़े गढ़े में एकत्रित करके इसे जब तक चाहे सुरक्षित रख सकते हैं, तथा जिस समय प्रयोग के लिये इसकी आवश्यकता हो तो प्रयोग में ला सकते हैं. गोबर की खाद प्रयोग में लाने से पूर्व यह ध्यान रखना चाहिये कि यह पूर्ण रूपेण गली सड़ी हो, उसका कारण यह है कि यदि गोबर की खाद भली भांति सड़ी हुई नहीं होती तो भूमि में अनेकानेक छोटे मोटे जानवरों की उत्पत्ति हो जाती है और इस प्रकार फसल को हानि पहुंचती है.

इसकी प्राप्ति के लिये कोई विशेष कठिनाई की आवश्यकता नहीं वरन जहां पर मवेशी बांधे जाते हों वहां से कूड़े कचरे के साथ ही साथ गोबर भी आसानी से एकत्रित किया जा सकता है.

जहां गोशालाएं हों वहां पर प्रति दिन सफाई की जाती है और उसी के साथ साथ वहां का गोबर कूड़ा कचरा आदि बाहर फेंक दिया जाता है. खेती करने वालों को चाहिये कि उसे एकत्रित करते रहें और किसी गढ़े में डालकर उसके ऊपर मिट्टी की तह बिछा दे, साथ ही साथ गढ़े के ऊपर ऐसी छाया कर देनी चाहिये जिससे धूप का सहारा पाकर खाद के मूल-तत्व वायु में विलीन न हो जायें, तत्पश्चात एक वर्षा के जल से उसे भली-भांति सड़ा

लेना चाहिए. इस प्रकार वर्षा के केवल मात्र एक मौसम में ही इसका अच्छा खाद तैयार किया जा सकता है.

गोवर की खाद, खाद की दृष्टि से पूर्ण खाद मानी जाती है, फलों की खेती के लिए भी गोवर का खाद ही सर्वोत्तम माना गया गया है, क्योंकि इसके अन्दर सभी सेन्द्रिय पदार्थ विद्यमान रहते हैं.

घोड़े की लीद — गोवर की खाद की भांति ही घोड़े की लीद की खाद भी बनाई जा सकती है, इसे घुड़सालों से एकत्रित कर के सड़ाया जा सकता है. इस खाद का प्रयोग बहुत ही कम मात्रा में करना चाहिए और प्रयोग से पूर्व भली भांति सड़ा गला लेना चाहिए, क्योंकि इसमें बहुत गर्माई होती है जो गलत तरीके से खेत के काम में लेने से फसल को हानि पहुंचाती है.

कूड़ा करकट (कम्पोस्ट) —

कम्पोस्ट का खाद तैयार करने के लिए पहले एक बड़ा गढ़ा खोदना चाहिये और उस गढ़े में समस्त कूड़ा करकट एकत्रित करते रहना चाहिए. इस कूड़े करकट में गमलों के डन्ठल और खेतों के नीचे घास पत्त आदि डाले जा सकते हैं, जिस समय गढ़े में आधा फुट तक ये डाल दिए जाएं तो उसके ऊपर जो गो-मूत्र और गोवर को एक में मिश्रित करके हड्डी का पिसा हुआ चूर्ण और राख भली भांति छिड़क देना चाहिए. इस प्रकार की हर आधे फुट के पश्चात यही क्रिया करनी चाहिए और जब गढ़ा ऊपर तक भर जाय वल्कि खेत की सतह से भी डेढ़ दो फुट ऊंचा हो जाय तब उसके ऊपर मिट्टी की एक हल्की तह डाल देनी चाहिए.

अच्छी कम्पोस्ट तैयार करने के लिए गढ़े को पोला-पोला भरा जाय जिसमे उसके अन्दर वायु का प्रवेश भी अच्छा रहे साथ ही साथ आर्द्रता भी रहे. जिस समय पानी की आवश्यकता अनुभव हो, तुरन्त ही इसमे पानी सींच देना चाहिये. एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि पानी थोड़ा सींचा जाय और वह ढेर सारे का सारा गीला न हो जाय. इस प्रकार लगभग तीन महीने बाद उसे खोद कर भली-भांति उलट-पलट कर ऊपर नीचे कर देना चाहिये. ऐसा करने से इस गढ़े की मिट्टी को हवा भली-भाति मिलनी चाहिये.

जो कम्पोस्ट इस प्रकार से तैयार किया जाता है उसे पूर्ण रूपेण तैयार'करने में लगभग तीन महीने का समय लगता है, बहुत से शहरों मे नगरपालिका भी कम्पोस्ट तैयार करती है. समय समय पर आवश्यकतानुसार उससे भी मोल लेकर कम्पोस्ट प्रयोग में लाया जा सकता है. इनके अतिरिक्त हरी फसल की खाद फलों की खेती के लिये पर्याप्त उपयोगी रहती हैं, यदि फलों को खाद देनी हो तो इसके बगीचों मे वर्षा काल के आरम्भ से सन की फसल लगा देनी चाहिये. इस प्रकार सितम्बर के आरंभ तक इन की बाढ़ आ जाती है. इससे पूर्व कि सन की डन्डियों में कड़ाई आए उसे कुचल कर अथवा पट्टा चलाकर भूमि मे गाड़ देना चाहिये. तत्पश्चात खेत की कई बार सिचाई कर देनी चाहिये.

यह हरी फसल सड़ गलकर फलों के वृक्षो के लिये उपयोगी बन जाती है, सन की फसल यदि ठीक प्रकार से लगाई जाय तो प्रति एकड़ ३०० मन तक हो जाती है और फिर खाद के रूप मे इसका

प्रयोग किया जाता है. यह पूर्ण सेन्द्रिय खाद का काम देती है. इसका प्रयोग फलों की बागवानी के लिए उत्तम माना गया है, कभी कभी यदि उसी खेत में कोई फसल न उगाई जाय तो इस प्रकार की हरी फसल बाजार से लाकर बागों में गाड़ी जा सकती है और वहां की मिट्टी में उसे सड़ाकर वृक्षोपयोगी बनाया जा सकता है.

सड़ी गली सूखी पत्तियां —

सूखी पत्तियों को भी सड़ा गला कर अच्छी खाद तैयार की जा सकती है. जो पत्तियां सूख कर या गलकर पेड़ पौधों के नीचे इकट्ठी हो जाती हैं उन्हें एकत्रित करके किसी गड्ढे में भर लेना चाहिए, और जब वे काफी मात्रा में हो जायें तो उन पर गोबर और पानी के मिश्रण का छिड़काव करना चाहिए. इस प्रकार बहुत जल्दी ही उनका चूर्ण सा तैयार हो जावेगा. सड़ी गली सूखी पत्तियों की खाद अधिकतर बेहन, नर्सरी में प्रयोग में लाई जाती हैं क्योंकि छोटे पौधों की बाढ़ लाने के लिए इसकी खाद उत्तम रहती है.

हड्डियों का चूरा — हड्डियों की अच्छी खाद बनाने के लिए इन्हें थोड़ा बहुत भट्टियों में जला लेना चाहिये, जब ये अधजली हो जायें तो चना पीसने की चक्कियों द्वारा चूर्ण बना लेना चाहिए. जिस समय हड्डियों का चूर्ण बन जाता है तब इन्हें खाद के प्रयोग मे लाया जा सकता है. वैसे तो बाजार से बना बनाया चूर्ण भी प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु वह इतना महंगा पड़ता है कि किसान उसके द्वारा विशेष लाभान्वित नहीं हो पाता. अतः फलों की खेती करने वालों को हड्डियों की खाद स्वयं ही बनानी चाहिए.

खली — खली की खाद भी फलों की बागवानी के लिए अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि इसमें सेन्द्रिय पदार्थ तथा नत्रजन का बाहुल्य होता है. कुछ खलियां ऐसी होती हैं जिन्हें मवेशी नहीं खा सकते. इस कारण से वे सस्ते दामों में प्राप्त हो जाती हैं, वे खलियां मूल्य की दृष्टि से और लाभ की दृष्टि से हर प्रकार से फलों की बागवानी के उपयुक्त ही रहती हैं.

रासायनिक पदार्थ — बागवानी में जो भी शुष्क रासायनिक पदार्थ प्रयोग में लाये जाते हैं वे नमक के रूप में होते हैं. विशेषतः अमोनियम सल्फेट, पोटेशियम सल्फेट, सुपर फास्फेट और निसीफास ही अधिक उपयोगी माने जाते हैं. अमोनियम सल्फेट नत्रजन की पूर्ति के लिए प्रयोग में लाया जाता है. इसमें नत्रजन की मात्रा लगभग २०·६ तक पाई जाती है. यह पौधों की अच्छी बाढ़ लाने में उपयोगी सिद्ध हुआ है. पोटेशियम सल्फेट पुटाश पूर्ति के लिए प्रयोग मे लाया जाता है, इसमे पोटाशियम की मात्रा ४८ प्रतिशत तक पाई जाती है. सुपर फास्फेट बागों में विशेषतः प्रस्फुरिक की पूर्ति के लिए प्रयोग मे लाया जाता है.

यह दो प्रकार का होता है एकाकी तथा दोहरा, एकाकी मे लगभग १८.२० प्रतिशत तक प्रस्फुरिक की मात्रा पाई जाती है तथा दोहरे में लगभग ३९.४५ प्रतिशत तक प्रस्फुरिक की मात्रा होती है. रासायनिक खादों में निसीफास का बड़ा महत्व है इसके द्वारा खेतों में नत्रजन और प्रस्फुरिक दोनों ही रसायनों की पूर्ति हो जाती है. निसीफास क्र० १ में लगभग ४१ प्रतिशत प्रस्फुरिक तथा लगभग १४ प्रतिशत नत्रजन होता है, तथा क्र० २

में नत्रजन और प्रस्फुरिक दोनों पदार्थ बराबर-बराबर मिलकर कुल २५ प्रतिशत तक होते हैं.

वैसे तो यह खाद अत्यन्त उपयोगी है किन्तु आजकल कठिनाई से प्राप्त होती हैं. मिश्रित खाद बागवानी करने वालों के लिए मध्य प्रदेशीय कृषि विभाग ने जो अनुसन्धान करके खाद मिश्रण बनाए हैं वे हम नीचे देते हैं.

प्रथम मिश्रण

अमोनियम सल्फेट	१० पौंड
पोटाशियम सल्फेट	१६ पौंड
सुपर फास्फेट	३० पौंड
खली	४० पौंड
कुल	१०० पौंड

द्वितीय मिश्रण

पोटेशियम सल्फेट	१६ पौंड
निसीफास क्र० २	१२ पौंड
खली	७२ पौंड
कुल	१०० पौंड

ऊपर लिखित दोनों मिश्रणों में से कोई सा भी एक मिश्रण जो सुविधानुसार शीघ्र और सस्ता बैठे प्रयोग में लाया जा सकता है. पौधे जितने पुराने होते जायें इस मिश्रण की मात्रा भी उतनी ही बढ़ाते जाना चाहिये. अर्थात प्रथम और द्वितीय वर्ष के पौधों के लिए लगभग ३ पौंड मिश्रण प्रति एकड़ पर्याप्त होता है.

इसके पश्चात दूसरे-तीसरे वर्ष ४।। पौंड, तीसरे-चौथे वर्ष में ५।। पौंड, पांचवें में ८ पौंड और छठे वर्ष में लगभग १० पौंड प्रति एकड़ तक देना चाहिए. जिस समय पेड़ पौधे फल देने योग्य होते हैं उस समय के लिए निम्नलिखित खाद का मिश्रण तैयार कर लेना चाहिये.

खाद	प्रतिशत
अमोनियम सल्फेट	१० पौंड
पोटेशियम सल्फेट	२० पौंड
सुपर फास्फेट	४० पौंड
खली	३० पौंड
कुल	१०० पौंड

झाड़ जब तक ६ वर्ष की आयु के न हों तब तक उक्त मिश्रण को प्रति झाड़ आवश्यकतानुसार ८ पौंड तक डाला जा सकता है. तत्पश्चात जब झाड़ ६ वर्ष का हो जाये तो प्रति झाड़ १० पौंड मिश्रण बढ़ाते रहना चाहिए. जब झाड़ १२ वर्ष का हो जाए तो उसमें इस मिश्रण की मात्रा २० पौंड तक की जा सकती है. इससे अधिक कभी भी नहीं डालना चाहिये अन्यथा फसल खराब हो जाएगी. इस प्रकार के एक मिश्रण का सुझाव कृषि अनुसंधान करने वाले श्री एलन ने भी दिया है जो उपयोगी है, जिसमें सेन्द्रिय पदार्थ भी है और रासायनिक पदार्थ भी सम्मिलित हैं. आवश्यकतानुसार इसका भी प्रयोग किया जा सकता है.

नीचे हम एक सारिणी देते हैं जिसमे इस मिश्रण का परिमाण झाड़ की आयु की दृष्टि से दिया गया है.

खाद	तोल प्रथम वर्ष	तोल दसवें वर्ष
अमोनियम सल्फेट	॥ पौंड	५ पौंड
सुपर फास्फेट	॥ पौंड	६ पौंड
गोवर की खाद	२० पौंड	१०० पौंड
राख	१ पौंड	१० पौंड

ऊपर दी गई सारिणी में प्रथम वर्ष दसवें वर्ष के लिये वृक्षों में दिये जाने वाले खाद के मिश्रण के आंकड़े दिये गये हैं. बीच के वर्षों के लिए इसी अनुपात से आवश्यकतानुसार वढ़ाते रहना चाहिये. गोवर की खाद पर्याप्त भारी होती है, अतः पौधों को एक वर्ष गोवर की खाद तथा दूसरे वर्ष गोमूत्र की खाद देनी चाहिए. यही क्रम अच्छा रहता है, फलों के झाड़ों में गोवर का प्रयोग वर्षाकाल के आरम्भ में और मिश्रण खाद का वर्षा का समाप्ति पर करना चाहिए.

आँख बांधना —

फलों की वागवानी के लिए अनेकानेक नये अनुसंधान हुए हैं. आंख वांधना भी उन अनुसंधानों का एक वड़ा परीक्षण है. वास्तव में आंख वांधने से पेड़ में पत्ते और टहनियों की वड़ी अच्छी वाढ़ आ जाती है. साथ ही साथ फल भी वढ़िया और अधिक आते हैं. उसका कारण यह है कि पेड़ में जो आंख वांधी जाती है उसके वढ़ने का गुण पेड़ अपना लेता है. इसलिए जो कुरा वांधने को चुना जाता है उसका तरुण होना आवश्यक है. अर्थात ८ वर्ष से अधिक आयु के पेड़ की आंख नहीं निकालनी चाहिए.

फल के पेड़ों को तैयार करने ने लिए आंख बांधकर तैयार करना भी सर्वोत्तम साधन सिद्ध हुआ है. आंख लगाना कठिन नहीं है. अभ्यास करने से बहुत ही शीघ्र समझ मे आ जाता है किन्तु फिर भी आंख बांधने के लिए पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता है. आंख बांधने से पूर्व, इससे पहले कि पौधो में आख बांधी जाय पौधे को उसके उपयुक्त तैयार करना आवश्यक है. पौधे की तैयारी के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि भूमि की सतह के पास से जो भी टहनियां निकलें उनको काटते रहना चाहिए, अन्यथा बड़ी होकर ये टहनियां हानिकर सिद्ध होती हैं. आंख बाधने के समय से लगभग २ सप्ताह पूर्व खेत की अच्छी सिंचाई कर देनी चाहिए. यह सिंचाई आवश्यकतानुसार एक या दो बार की जानी चाहिये. ऐसा करने से पौधों मे रस का ठीक ठीक संचार हो जाता है.

आंख बांधने के लिए जो समय चुना जाये उससे पूर्व पेडों की उन टहनियों का चुनाव कर लेना चाहिए जिनकी आंखें निकाल कर बांधनी हैं. फलों के पौधों में आंख बांधने के लिए अधिकतर जम्बेरी की आंखें ही काम मे लाई जाती हैं. सरकारी अनुसंधान कर्ताओं के अनुसार भी सभी कार्यो के समान पौधो मे आंख चढ़ाने का कार्य भी ठीक समय पर ही करना चाहिए. इसके लिए सामान्यतः अक्टूबर से जनवरी तक का समस्त समय ठीक रहता है. आंख बांधने का काम उन दिनों मे करना चाहिए जब मौसम साफ हो तथा आंख भी सुबह सूर्योदय के समय ही बांधनी चाहिए.

आंखों का चुनाव — जैसा पूर्व बताया जा चुका है कि आंख

उसी पेड़ की लेनी चाहिए जिसके फल स्वादिष्ट और पेड़ निरोगी हो तथा उसकी आयु भी अधिक न हो. इसके लिए बगीचे में जाकर अच्छे अच्छे पेड़ों पर सुन्दर आंखें पहले से देख लेनी चाहिए. जिन पेड़ों पर से आंखें ली जायें उनकी आयु ६ वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए. उस पेड़ के तने की किसी अधिक मोटी टहनी पर से आंखें लेना भी ठीक नहीं रहता. उचित आंखें उसी टहनी की ठीक रहती हैं जो मोटाई मे पैंसिल से कम पतली और अंगूठे से अधिक मोटी न हो. इस टहनी की आयु लगभग एक वर्ष की होनी चाहिए.

आंख के चुनाव में निम्न बातों का भी ध्यान रखना आवश्यक है. किसी भी टहनी के छोर की आंख नहीं लेनी चाहिए. उस टहनी की आंख भी ठीक नहीं रहती जिसमें बहुत सी छोटी टहनियां और पत्ते हों. यदि आंख ठीक हों किन्तु वे ठीक तरह से न उभरी हों तो उनको उभारने के लिए उस टहनी की अन्य छोटी शाखाएं और पत्ते काट डालने चाहिएं. ऐसा करने से आंख २-१ दिन में उभर आएगी.

पहचान — नये व्यक्ति जो इस बागवानी का कार्य पहली ही बार शुरू करें शायद उन्हें आंख पहचानने में कठिनाई हो. वास्तव में पेड़ में कोई आंख नहीं होती किन्तु बागवानी की उस भाषा में जिसे आंख कहते हैं उसका समझ लेना आवश्यक है. पेड़ों की टहनियों में वर्षा के पश्चात नई शाखाये निकलनी आरम्भ होती हैं. टहनी के जिस स्थान पर नई शाखा के लिए छोटा सा हरा और लालिमा लिए हुए अंकुर निकलता है उसी को आंख कहते हैं. प्रारम्भिक अवस्था में अर्थात यहां से पत्ती और टहनी

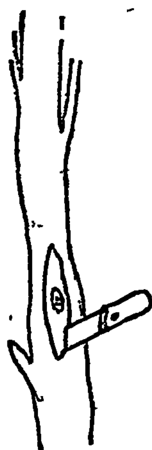
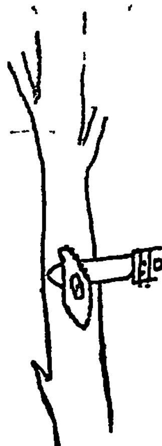
निकलने से पूर्व इसका आकार आंख से ही बहुत मिलता जुलता होता है.

आंख निकालने की विधि —

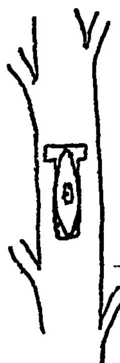
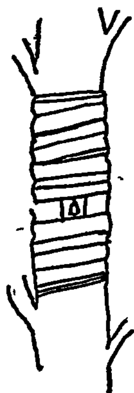
जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, जिस पेड़ में से आंख निकालनी हो उसका स्वस्थ होना आवश्यक है, साथ ही उसकी आयु के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेना लाभप्रद रहता है. आठ-नौ वर्ष से अधिक आयु के वृक्ष होने लगते हैं. इसलिए इन पेड़ों की निकाली हुई आंखें सुन्दर फल प्रदान नहीं करतीं. जो टहनी चुनी गई हो उसकी आंख से छः इंच नीचे और छः इंच ऊपर किसी तेज चाकू से काट लेना चाहिए. इस टहनी की मोटाई पैंसिल से लेकर हाथ के अंगूठे तक उचित रहती है. यदि इसकी आयु लगभग एक वर्ष हो तो अच्छा है. इस प्रकार की कटी हुई आंखों से टहनियों को एक गीले कपड़े में लपेट कर रखते जाना चाहिये.

आखें निकालने के लिए एक विशेष प्रकार का चाकू जिसे बीडिंग नाइफ कहते हैं प्रयोग में लाया जाता है. इस पद्धति में भी दो तरीके ही अब तक अपनाये गये हैं.

पहला — इस तरीके से आंख निकालने के लिये टहनी में जिस स्थान में आंख होती हैं, उसके पौन या एक इंच ऊपर चाकू से आड़ा चीरा लगाया जाता है. इसके पश्चात नीचे व ऊपर के सिरे चाकू की धार से टहनी की छाल को चीरते हुए मिला दिये जाते हैं. बायें हाथ से टहनी को पीछे झुकाकर चाकू के सहारे के साथ टहनी की कुछ लकड़ी भी छिल आवे तो उसे


आँख निकालना

आँख चढ़ाना

होशियारी से पृथक कर देना चाहिए, और आंख को किसी पानी के बर्तन में डाल देना चाहिए. इस क्रिया को समझने के लिए साथ में दिये हुए चित्र का अध्ययन आवश्यक है.

दूसरी विधि — इस विधि से आंख निकालने के लिए आंख वाली टहनी पर बीड़िंग नाइफ के सिरे से मुख्य आंख के चारों ओर आधे और पौन इंच के अन्तर पर एक लम्बाकार खांचा लगाते हैं फिर चाकू की धार खांचे के ऊपरी सिरे मे फसाकर बायें हाथ के सहारे से टहनी को पीछे झुकाकर चाकू को नीचे दाबते हुए आंख उतार लेनी चाहिए.

आंख किसी भी विधि से निकाली जाय लेकिन हर हालत में यह ध्यान रखना चाहिए कि उस आंख का पृष्ठ या उसका कोई अंश आंख से पृथक होकर टहनी मे न रह जाय. बहुधा शीघ्रता वश ऐसी गलती हो जाया करती है और फल कुछ नहीं होता. जिन पौधो में आंखें चढ़ानी हो उनकी तैयारी पहले से ही कर लेनी चाहिए, जिससे उन पौधों के रस का संचार तीव्रतम हो. जिस स्थान पर आंख लगानी हो उससे एक फुट ऊंचाई पर उस पौधे को काट देना चाहिए. इसके साथ ही साथ यदि उसमें कोई छोटी मोटी अन्य शाखायें हों तो उन्हें पृथक कर देना चाहिए. ऐसा करने से उस पौधे मे उसकी शक्ति एकत्रित होने लगेगी और जब आंख बांधी जायेगी तब यह शक्ति आंख के बैठने में काम आएगी.

वह स्थान जो आंख बांधने के लिए चुना गया है, उस हर अंग्रेजी के अक्षर टी के आकार का चीरा लगाया जाता है. यह चीरा आई के आकार का भी बना लेना अनुपयुक्त नहीं रहता.

चाकू से इस प्रकार का चीरा लगाकर पौधे की तने की छाल को होशियारी के साथ पृथक कर लेना चाहिए, इन चीजों का आकार आंख की जो छालें हों उनके प्रकारों से नाम मात्र को छोटा होना चाहिए. बाएं हाथ से चीरे लगे हुए तने (पीड़) को अपनी ओर झुकाकर चीरे के आस-पास की छाल ढीली कर लेनी चाहिए. दाये हाथ से एक आंख को होशियारी के साथ नीचे की तरफ से रखते हुए पूर्ण रूप से चीरे के चारों तरफ फंसा देना चाहिए.

चीरे में आंख फंसाने के बाद उसके ऊपर केले की छाल की पट्टी बांध देनी चाहिए. पट्टी बांधते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आंख का वह हिस्सा जहां से अंकुर फूटेगा. पट्टी में दब न जाये.

यदि आंख चढ़ाते समय आंख की छाल का कुछ हिस्सा जहां चीरे से बाहर रह जाये तो बढ़े हुये हिस्से को सावधानी के साथ चाकू से काट कर पृथक कर लेना चाहिए और आंख के किनारे को चीरों में फंसा देना चाहिए.

आंख को जल्दी बढ़ाने के लिए दो तरीके काम में लाये जाते हैं. पहिली रीति में आंख बांधने के बाद ही पीड़ को दो इंच ऊपर से काट डाला जाता है. दूसरी रीति इसको शनैः शनैः काटने की होती है. प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि दूसरी विधि अधिक उपयोगी होती है. इसलिए जब आंख लगभग एक डेढ़ इंच बढ़ जाय पीड़ को ऊपर से थोड़ा थोड़ा काटते रहना चाहिए, जब तक कि वह आंख से एक इंच ऊंचा न रह जाय. वास्तव में इस विधि से पेड़ को यकायक धक्का नहीं लगता, उसकी शक्ति जो रुकती है आँख के द्वारा ग्रहण कर ली जाती है.

—◆—

– डॉ. सौ अडनालीस –

सन्तरा

इस समय हमारे देश में लगभग तीस लाख एकड़ भूमि पर फलों की खेती होती है, जो खेतों में से एक प्रतिशत भी नहीं, और इस प्रकार फलों का कुल उत्पादन लगभग सत्रह सौ (१,७००) लाख मन हो पाता है. यदि हिसाब लगाया जाय तो हम देखेंगे कि हमारे देश के एक व्यक्ति के पीछे लगभग चार तोला के फल पड़ते हैं और यदि सन्तुलित आहार की दृष्टि से देखा जाय तो यह स्पष्ट है कि हर व्यक्ति को दिन में कम से कम १॥ छटांक फल तो अवश्य ही मिलना चाहिये. अतः यदि इस संतुलन को भी देखा जाय तो यह स्पष्ट है कि फलो की खेती कम से कम दुगनी ही और होनी चाहिये. अब तक फलों की बागबानी पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया, यह खेद की बात है. किसानों को चाहिये कि फलों की बागबानी अधिक से अधिक करें.

प्राचीन काल में एक धार्मिक प्रथा थी कि बहुत से व्यक्ति एक एक फल वृक्ष लगाते थे और अपने जीवन काल में स्वयं ही उसका पालन पोषण करते थे. उससे यह लाभ होता था कि फल वृक्षों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जाती थी और इस प्रकार फलों का उत्पादन बढ़ता चला जाता था. इस प्रथा को पुनः जीवित करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को सम्मिलित होना चाहिये.

भारत में संतरे की खेती अनेकानेक स्थानों पर की जाती है. वैसे तो लगभग हर स्थान पर इसकी खेती थोड़ी बहुत की ही जाती है किन्तु विशेषतः नागपुर के क्षेत्र में इसकी खेती बहुत ही सफल हुई है. यहां तक कि भारत भर में नागपुरी संतरे को ही सबसे अच्छा माना जाता है.

वैसे साधारणतः सन्तरे की खेती नागपुर (मध्य प्रदेश) सिलहट (आसाम) तथा मध्य और पूर्व हिमाचल की निचली घाटियों पर सिक्किम, नेपाल, गढ़वाल, कुमाऊं में दिल्ली और दक्षिण भारत में पूना तथा कुर्ग में भी बड़े पैमाने पर की जाती है. भारत में इसका क्षेत्र अनुसंधानवेत्ताओं के अनुसार लगभग ६५ [पैंसठ] हजार एकड़ है और इस समूची भूमि में से सबसे अधिक क्षेत्र अर्थात लगभग ३६ हजार एकड़ मध्य प्रदेश में ही है.

जलवायु —

संतरे के वृक्ष के लिये ऊष्णता अधिक चाहिये, वैसे समशीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों पर भी इसकी खेती भली भांति की जा सकती है, जो क्षेत्र ऊष्ण होते हैं वहां पर सन्तरे के पौधे की बहुत अच्छी बाढ़ आती है.

साथ ही साथ यह फलता भी उत्तम है किन्तु इसके पेड़ों को अधिकतर तुषार बहुत हानिप्रद होती है.

ऊष्णता में भी यह ध्यान रखना चाहिये कि गर्मियों की तीव्र धूप सन्तरे के फल को रस हीन बना देती है. अतः जहां पर गर्मियों या कभी कभी क्वार के महीने में धूप अत्यधिक तीव्र पड़ती हो वहां पर संतरे की पैदावार अच्छी नहीं हो सकती.

बहुधा ऐसे स्थानों पर इन दिनों तेज हवायें पेड़ों को उखाड़ डालती हैं. इसलिये ऐसी आंधियों से भी फसल को बहुत हानि हो जाया करती है, ऐसे स्थानों पर यदि जमीन की मिट्टी सन्तरे की खेती के लिये उपयुक्त हो तो खेती की जा सकती है पर इन हवाओं से सुरक्षा का प्रबन्ध करना आवश्यक है. इसके लिये संतरे के बगीचों मे मेंहदी, सेवरी या बबूल की बाढ़ लगा देने से काफी सहायता मिलती है. इन बागों की हरियाली संतरे के वृक्षो की सूर्य की तेज किरणों से भी रक्षा करती है.

अनेकानेक परिश्रमों द्वारा यह बात मालूम की जा चुकी है कि सन्तरे की बागवानी की जमीन समुद्र की सतह से १,००० एक हजार फुट ऊपर होनी चाहिये. ४,००० चार हजार फुट से अधिक ऊंची जमीन पर भी सन्तरे की खेती के लायक उचित जलवायु ही मिलती है. मध्य प्रदेश में अच्छा और अधिक सन्तरा पैदा होने का एकमात्र कारण यह भी है कि वहा की जमीन दो सौ फुट के लगभग ऊंची है. यह एक मुख्य कारण है और इसी कारण से नागपुर का सन्तरा इस ऊंचाई से अधिक ऊंचे स्थान पर अच्छी पैदावार नहीं देता.

भूमि का चुनाव —

सन्तरे की खेती करने के लिये भी सन्तरे के योग्य भूमि की अत्यन्त आवश्यकता है. यदि भूमि अच्छी होगी तो निश्चित ही सन्तरे की पैदावार भी बहुत अच्छी होगी. इसमे कोई सन्देह नहीं कि सबसे पहले सन्तरे की खेती करने के लिये जलवायु देखने की आवश्यकता होती है जो कि उसके उपयुक्त होनी चाहिये इसके बाद भूमि का नम्बर आता है.

मध्यप्रदेश की भूमि और वहां की जलवायु सन्तरे की खेती के लिये बहुत अच्छी मानी जाती है. भूमि की उपयुक्तता की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उसमें पर्याप्त मात्रा में पौधों के लिये पोषक द्रव्य होना चाहिये. भूमि गहरी होनी चाहिये और उसमें से पानी का निथार अच्छा होना चाहिये.

वास्तव में पेड़ पौधों की जड़ों के फैलाव के लिए जितना अच्छा स्थान मिल जायेगा सन्तरे की खेती भी उतनी ही अच्छी होगी. अतः पौधों की बाढ़ और इसके फलने की दृष्टि से भूमि की गहराई का ध्यान रखना एक विशेष महत्व की बात है.

पेड़ों में अच्छे फल तभी आ सकते हैं जब कि पेड़ों की जड़ों में अच्छी बाढ़ हो और जड़ों की अच्छी बाढ़ के लिये भूमि में वायु का प्रवेश अत्यन्त आवश्यक है. अतः जिस भूमि में पानी फैलता है और जो हमेशा गीली रहती है उसमें सन्तरे की खेती अच्छी तरह से नहीं की जा सकती.

भूमि का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि जहां सन्तरे की खेती करनी हो उसके आस पास सिंचाई का पूरा पूरा प्रबन्ध रखना चाहिये, यदि कहीं पर सिंचाई का पूरा प्रबन्ध न हो तो ऐसी भूमि पर सन्तरे की खेती नहीं करनी चाहिए.

यदि पास में ही पानी का अच्छा प्रबन्ध हो तो चिकनी मटियार भूमि और हल्की कमजोर भूमि में भी सन्तरे की अच्छी खेती की जा सकती है. जो भूमि कमजोर हो उसे खाद आदि डाल कर सुधार लेना चाहिये. जितनी भी मटियार भूमि होती हैं वैसे तो उनमें पोषक द्रव्य अधिक होते हैं, किन्तु फिर भी इस भूमि में पेड़ की जड़ें अच्छी तरह से फैल नहीं पातीं और इस कारणवश

पेड़ों की जड़ों को थोड़े स्थान में ही अपने योग्य सामग्री ढूंढनी होती है अतः मटियार भूमि मे सन्तरे की खेती करना कठिन है. कई स्थानों पर मटियार भूमि के नीचे भी अच्छे निथार वाली तलमट होती है. ऐसी भूमि को हरा खाद, चूना और गोबर की खाद आदि डालकर सन्तरे के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है क्यों कि चूने और खाद के प्रयोग से मिट्टी भुरभुरी हो जाती है और इसमे वायु का प्रवेश भी ठीक हो जाता है.

वास्तव में सन्तरे की खेती के लिये भूमि में चूने का अधिक होना आवश्यक है. साथ ही साथ भूमि ढुमट या मध्यम प्रकार की होनी चाहिये जो अपने अन्दर अधिक पानी का भराव तो न रहने दे और अधिक पानी सोखने वाली हो.

उथली भूमि में भी सन्तरे की खेती नहीं करनी चाहिए जिस की नीचे की तह की मिट्टी में चूना अधिक हो या मोटी रेत अथवा मुरम का आधिक्य हो.

ऐसी भूमि मे भी सन्तरे की खेती नहीं करनी चाहिए, जो मुरम जैसी और चिकनी हो. ऐसी मिट्टी, काली कपासी भूमि कहलाती है जिसकी निचली सतह की मिट्टी मे चिकटापन पाया जाता है.

जिस भूमि में अम्लता अधिक हो, रेत अधिक हो या कंकड़ पत्थरों की अधिकता हो ऐसी भूमि मे भी सन्तरे की खेती नहीं करनी चाहिए.

यह देख लेना चाहिए कि भूमि पर्याप्त गहराई तक एक सी ही हो और बताई खराबियां उसमे न हों. भूमि के पानी का थल

चार फीट से अधिक न हो. भूमि में दो गज तक के गहरे गड्ढे खोद कर यह देखा जा सकता है.

निम्न प्रकार की भूमि में सन्तरे की खेती नहीं करनी चाहिए.

१. खारी भूमि,

जो भूमि अधिक क्षार-युक्त, या सिंचाई के लिये जहां पर आस पास खारा पानी मिलता हो वह भूमि सन्तरे की खेती के लिए अनुपयुक्त है.

२. दोष पूर्ण तल भूमि,

जिस भूमि की सतह के भीतर की मिट्टी में निथार न हो या चीकट हो, जो तल भूमि की सी वनावट वाली हो, वह भी सन्तरे की खेती के लिये अनुपयुक्त है.

३. उथली भूमि,

जो भूमि उथली होती है, वास्तव में उसमें सन्तरे के पेड़ों की जड़ें ठीक प्रकार से फैल नहीं पातीं. जिस प्रकार गमलों आदि में पेड़ लगा दिया जाता है तो उसके फूलने फलने की शक्ति कुण्ठित हो जाती है. इस प्रकार यदि सन्तरे के झाड़ उथली भूमि में लगा दिये जाते हैं तो उनकी जड़ें फैलने से रुक जाती हैं, तथा वे पेड़ फसल नहीं दे पाते. इस प्रकार उथली भूमि सन्तरे की खेती के लिये विल्कुल उपयुक्त नहीं.

४. पानी की ऊंची सतह वाली भूमि,

जो भूमि पानी की सतह से नीचे होती है, उसमें नदी नाले या वर्षा का पानी भर सकता है, और फसल को खराब कर सकता

है इस प्रकार जो भूमि पानी की सतह से आठ फुट तक ऊंची न हो सन्तरे की खेती के लिए सदा अनुपयुक्त है.

५. भरेल भूमि,

भरेल भूमि में पेड़ों की शाखायें भली भांति बढ़ती नहीं और पेड़ों में रोग हो जाते हैं. इसी कारण से वह फल देने योग्य नहीं रहते कई बार भरेल भूमि को तय्यार करने की कोशिश की गई है लेकिन ऐसी भूमियां कठिनता से ही सन्तरे की खेती के योग्य हो पाती हैं. अतः इसके लिए अनुपयुक्त हैं.

ऊपर जो जो दोष पूर्ण भूमियां बताई गई हैं, उनमें यद्यपि थोड़ा बहुत परिश्रम करके अच्छी तैयारी की जा सकती है, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन भूमियों मे परिश्रम करने के बावजूद अनेकानेक ऐसे दोप रह जाते हैं, जो ठीक नहीं हो पाते और भूमि धीरे धीरे नष्ट हो जाती है.

खेत की तैयारी —

जिस समय मिट्टी का चुनाव कर लिया जाय उस समय सर्वप्रथम यह जांच कर लेना चाहिए कि मिट्टी में सन्तरे की खेती के लिये किन किन तत्वो की कमी है. उन तत्वो की कमी को पूरा कर देना खेत की तैयारी का एक बड़ा हिस्सा होता है. इसके बाद देखना चाहिये कि सन्तरे की खेती के लिये मिट्टी मे जो गुण आवश्यक हैं, वास्तव मे कहीं मिट्टी में उन गुणों की कमी तो नहीं अर्थात मिट्टी मे चीकट तो नहीं है, या मिट्टी पानी के निथार के उपयुक्त नहीं है तो उस मिट्टी को तैयारी करने के लिए निर्दोप बनाना होगा, यदि इस प्रकार की मिट्टी दोप रहित हो जाती है तो उसमे सन्तरे की खेती ठीक प्रकार से की जा सकती है.

बाग की तैयारी —

जो भूमि चिकनी और काबर हो उसे सुधारने के लिये उस में बालू मिला देना चाहिये, और जो भूमि हल्के स्तर की हो उसके पोत को उत्तम बनाने के लिए भारी मिट्टी मिला देनी चाहिये. जो भूमि भारी हो उसे ठीक करने के लिये हरी खाद और राख का प्रयोग अच्छा रहता है क्योंकि यह अच्छा खाद माना गया है.

जो भूमि भारी हो उसे विरला करना आवश्यक होता है. अतः उसमें घोड़े की खाद अच्छी लाभप्रद रहती है. जो भूमि हल्की हो उसमें गोबर की कृत्रिम या साधारण खाद मिला देनी चाहिये.

जिस भूमि में अम्लता का आधिक्य हो वहां ठीक परिमाण में चूना डालने से वह भूमि ठीक हो जाती है. जिन भूमियों में पानी का निथार अच्छा न हो उनमें जहां तक संभव हो अच्छी अच्छी और ऐसी नालियां बना देनी चाहियें जिनसे पानी का निथार पूर्ण सम्भव हो जाय.

सन्तरे की बागवानी के लिए वृक्षों की अधिक बाढ़ होना आवश्यक है. इसके लिए भूमि भुरभुरी तथा उपयुक्त होनी चाहिये. ऐसी भूमि गहरे परिश्रम से तैयार की जाती है. अर्थात खेत की बहुत ही अच्छी जुताई करके मिट्टी का आवश्यकतानुसार भुरभुरा बना लेना चाहिये. खेत की मिट्टी का आवश्यकतानुसार जितना भी अच्छा पानी का निथार होगा तथा मिट्टी जितनी भुरभुरी होगी सन्तरे की खेती उतनी ही अच्छी की जा सकती है.

वास्तव में बात यह है कि यदि गीली भूमि मे हल बराबर चलाया जाय तो भूमि का पोत बिगड़ जाता है और यदि जुताई

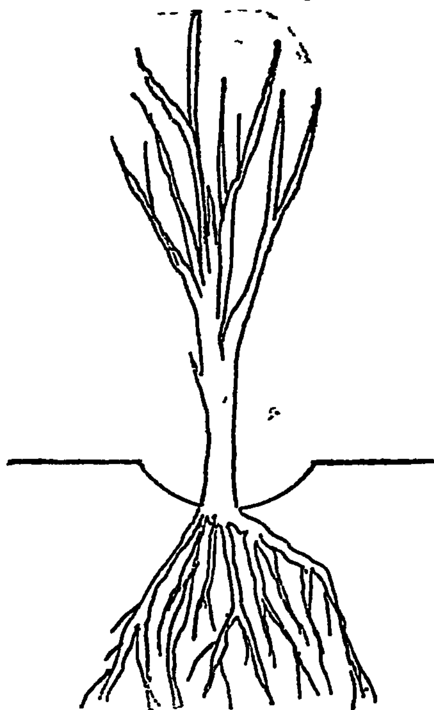
करने में देर हो जाती है तो भूमि सख्त हो जाती है और उस समय उस सख्त भूमि पर हल नहीं चल पाता.

जिस समय खेत की जुताई की जाय उस समय भी मिट्टी को भली भांति जांच लेना चाहिये और जुताई भी बहुत ही अच्छी और एकसार होनी चाहिए. यह जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से गहराई के साथ करनी चाहिये. यदि भली प्रकार बखर चला दिया जाता है तो गेदा कांस आदि नष्ट हो जाते हैं. आज के युग में अनेक प्रकार की मशीने प्रयोग मे लाई जाती हैं इनमें ट्रेक्टर मुख्य हैं. यदि ट्रेक्टर से जुताई की जाय तो अच्छा रहता है.

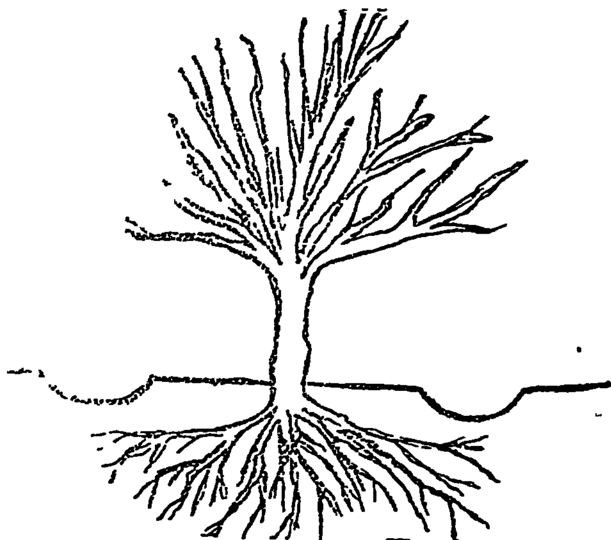
भूमि की तैयारी करते समय यह भी अवश्य ही ध्यान मे रखना चाहिए कि खेत कुछ टेढ़ा रखा जाय जिससे आवश्यकता से अधिक पानी का भराव खेत में न हो सके, क्योंकि आवश्यकता से अधिक पानी के भराव को वह सहन नहीं कर सकती. यदि कहीं पर पानी खड़ा रह जाता है तो जड़ें गल जाती हैं जिससे पौधे नष्ट हो जाते हैं.

निथार का प्रबन्ध —

सन्तरे की बागबानी करने वालों को निथार का ध्यान रखना अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि यदि निथार ठीक नहीं होता है तो फसल बिगड़ जाती है और कम होती है. जहा जहां पर खेत में पौधे लगाने हों खेती करने वाले को यह देख लेना चाहिये कि उसके आस पास कहीं भी छोटे गड्ढे न रह जायें, जिनमें पानी भर जाय. जिससे कि जड़ों के गलने का भय न रहे.



सिंचाई
का
गलत तरीका



सिंचाई
का
सही तरीका

मिट्टी में यदि गीलापन हो जाता है तो जितना भोजन पाकर पेड़ पनपते हैं जड़े उतना भोजन प्राप्त करने मे असमर्थ रह जाती हैं और इस प्रकार पौधे अपना पूरा भोजन प्राप्त नहीं कर पाते, फिर ठीक प्रकार से फल देने मे भी असमर्थ रहते हैं. इस पानी से दो प्रकार की हानि होती है. पहली बात तो यह है कि पेड़ों की जड़ों को ठीक प्रकार से गीलेपन के कारण वह वायु नहीं मिल पाती जो पौधों मे जीवन भरती है और दूसरी बात यह है कि अधिक गीलेपन के कारण जड़ें सड़-गल जाती हैं. फलतः जड़ें मर जाती हैं, और पेड़ पौधे समय से पूर्व ही मुरझाने लगते हैं. अत. खेत की तय्यारी के समय ही निथार की ऐसी नालियां बना लेनी चाहिए जिनमे से पानी पझरता रहे.

पौधों की तैयारी —

वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है कि बीज बोकर तय्यार किये गये पौधे अच्छी बाढ़ नहीं लाते और न सन्तरे ही अच्छे होते हैं.

उपरोक्त तथ्य से यह सिद्ध हो जाता है कि अच्छी और लाभप्रद बागवानी के लिए सन्तरे का बाग लगाने के लिए कलमे लगाकर ही बाग तैयार करना चाहिए. यदि अच्छे किस्म के बीज उपलब्ध हों तो इनको नर्सरी के द्वारा तय्यार करके बागवानी के लिए चुना जा सकता है.

बीज का चुनाव —

बीज का चुनाव करने के लिए किसी संतरे के बाग मे स्वय जाकर ही उत्तम जाति के पेड़ मे से जिसमे कोई रोग न हो,

जिसके पत्ते और शाखाएं स्वस्थ हों, ऐसे पेड़ पर से अच्छे और पके हुए श्रेष्ठ संतरे तोड़ लेने चाहिएं. फल तोड़ते समय इस बात का ध्यान विशेष रखना चाहिए कि वे अधिकतर एक ही आधार के हों. फल छांट लेने के बाद इन्हें काट कर या मसल कर बीज निकाल लेने चाहियें. तत्पश्चात इन बीजों को स्वच्छ पानी से धो डालना चाहिए. जल से धोते वक्त इनको मसलना नहीं चाहिए. यदि बीजों को हाथों से मसल दिया जायगा तो उनके ऊपर का हल्का छिलका, जो उस समय बहुत कोमल होता है अपना स्वाभाविक रूप बिगाड़ लेगा, और बीज की शक्ति नष्ट हो जायगी.

धोने के पश्चात बीजों को किसी बर्तन में डाल कर देखना चाहिए कि उसमे कुछ बीज तैरते तो नहीं हैं. जो बीज तैरते हों उन्हे खयाल कर फेंक देना चाहिए क्योंकि ऐसे बीज बोने के उपयुक्त नहीं होते. इस प्रकार अच्छे बीजों को ही नर्सरी में उसी समय लगाया जा सकता है. यदि किसी कारणवश उस समय इनके बोने की क्यारियां तय्यार न की जा सकें तो इन बीजों को उसी के फलों के रस में कुछ दिनों तक रखा जा सकता है. ऐसा करते समय यह बात ध्यान में रखने की है कि जिस रस में यह बीज रख गये हों, वो ४-५ दिन के बाद बदल देना चाहिए. ऐसा करने से बीज सूखेंगे नहीं और खराब भी नहीं होंगे तथा बोने योग्य बने रहेंगे.

पौधों का चुनाव —

सन्तरे की बागवानी का कार्य जुलाई के महीने से लेकर जनवरी तक किया जा सकता है, पर प्रत्येक कार्य को करने के लिये श्रेष्ठ पदार्थ और समय की दृष्टि से संतरे की बागवानी

सितम्बर के महीने में प्रारम्भ करना ही ठीक रहता है क्योंकि इस महीने के वाद का मौसम इसके पौधों के लिये वहुत अनुकूल रहता है. अधिक वर्षा की सम्भावना नहीं रहती जिससे संतरे के पौधों के विगड़ने का भय नहीं रहता. साथ ही इस ऋतु में थोड़ा वहुत पानी पड़ने की आशा रहती है. इस वजह से इस समय लगाये गए पौधे जल्दी जम जाते हैं.

पौधे लगाने की प्रारम्भिक तैयारी करने के पश्चात पौधे के चुनाव का नम्वर आता है. पौधों का चुनाव ही वागवानी का मुख्य आधार होता है. अनेकानेक व्यक्ति जो वागवानी का चाव रखते हैं ऐसे समय पर गल्ती कर जाते हैं. परिणाम यह होता है कि उनका सारा परिश्रम और धन उनकी आशा के अनुकूल लाभकारी नहीं होता.

वाग में पौधे लगाने के लिये यों तो किसी भी नर्सरी या वाग के पौधे ३ आने से लेकर सात आने के मूल्य तक मे खरीदे जा सकते हैं. लेकिन इस प्रकार के सस्ते पौधे विश्वस्त नहीं होते पौधे के चुनाव में पौधे की ऊंचाई अधिक देखकर ही सन्तोप नहीं कर लेना चाहिये. वरन उसके डंठल और रंग पर भी ध्यान रखना आवश्यक है क्योंकि जैसे जैसे पौधा वढता है उसका डंठल अपना हरा रंग छोड़कर कुछ कुछ भूरा होने लगता है, यह भूरा रंग जड़ से कुछ ऊंचाई तक ही ठीक होता है. क्योंकि नर्सरी की अवस्था के पौधों की समस्त डालियां भूरी नहीं हो पातीं.

जो कलमे कहीं वाहर से मंगाई जाये उन्हें आते ही सवसे पहले शुद्ध हवा मे पृथक-पृथक रख देना चाहिये, जिससे कि उनकी कोमलता अधिक समय तक वनी रहे. जिस समय

कलमें बन्द होकर आती हैं तो उनमें उचित प्रकाश नहीं पहुँच पाता अतः थोड़ी देर तक इन कलमों को धूप दिखाकर छाया में रख लेनी चाहिये और फिर थोड़ी देर के वाद उन कलमों के ऊपर भली प्रकार से पानी छिड़क देना चाहिए जिससे कि उसके पत्ते और टहनियां भीतर हो जायें.

पौधों का स्थानान्तरण —

पौधों का स्थानान्तरण करने के लिये उचित समय का ध्यान रखना चाहिये. इसके लिये सवसे अच्छा समय वर्षा के पहले का है जिससे कि वर्षा आरम्भ होते ही पौधों की वाढ़ भी अच्छी होने लगे. वैसे सन्तरे के पौधों का स्थानान्तरण जून, जुलाई और सितम्बर के अन्त से लेकर नवम्बर तक भली-भांति हो सकता है लेकिन यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जहां वर्षा अधिक होती हो वहां पर स्थानान्तरण अक्टूबर नवम्बर में ही किया जाये.

यदि खेती के लिये निर्धारित स्थान पर सिंचाई का ठीक प्रवन्ध हो तो पौधों के स्थानान्तरण के लिये वसन्त ऋतु अच्छी होती है किन्तु जिन स्थानों पर गर्मी की तीव्रता अधिक होती हो वहां पर वसन्त ऋतु में पौधों का स्थानान्तरण करना ठीक होता है.

पौधों को जहां तक सम्भव हो सांयकाल के लगभग ५ बजे लगाना चहिये जिससे कि रात भर विश्राम का समय पाकर पौधों की जड़ें भूमि में अच्छी तरह जम जायें. पौधे यदि आरम्भ से ही ठीक प्रकार से जमते नहीं तो वाद में कठिनाई का सामना करना पड़ता है.

काट-छांट —

सन्तरे के पौधों की कटाई छंटाई का ध्यान रखना चाहिए अन्यथा जहां पेड़ों की बनावट बिगड़ जाती है, वहां साथ ही साथ फलों की पैदावार भी कम होती है. अतः पेड़ पौधों की उचित और आवश्यक काट-छांट समय-समय पर अवश्य करते रहना चाहिये.

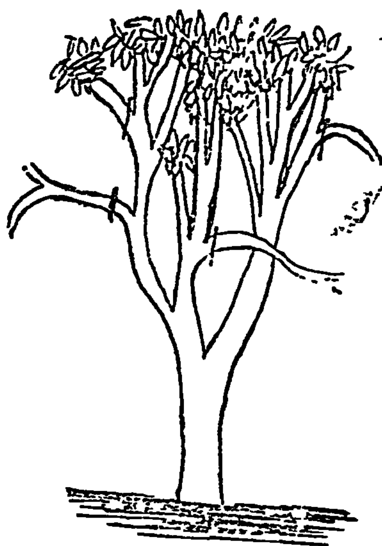
काट-छांट के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि अनुचित स्थान पर कोई भी औजार न लगे वरन छंटाई वहीं से हो जहां से पौधों का संतुलन ठीक बन जाता हो. इसके लिए पेड़ पौधों की टहनियों में स्थान निर्धारित होता है. छंटाई उसी स्थान पर आवश्यकतानुसार तथा सावधानी के साथ करनी चाहिए.

वास्तव में पौधों की कटाई छंटाई एक कला है. साथ ही साथ ऐसा करने के अनेक कारण और उद्देश्य हैं. उन्हीं को ध्यान में रखकर उसी दृष्टि से यह काम सम्पादित करना चाहिए.

पौधों को यदि छत्तेदार बनाना हो अर्थात छतरी की भांति उन्हें ऊपर से रखना हो तो भूमि की सतह से लगभग एक गज ऊपर तक कोई शाखा नहीं रहने देनी चाहिए और साथ ही साथ ऊपर के हिस्से मे भी गोलाई के साथ आवश्यकतानुसार काट-छांट करते रहना चाहिए.

पेड़ों में अनेक बेकार की शाखायें निकल आती हैं. उसके कारण फलों पर बुरा प्रभाव पड़ता है. अतः इन बेकार की शाखाओं को काट देना चाहिये.

बहुत से पेड़ों में कुछ शाखाओं पर अनेक प्रकार के रोग लग जाते हैं. यदि तुरन्त ही इन शाखाओं की कटाई-छंटाई न कर



काट-छांट



जल-शाखाएं

दी जाय तो इनकी शाखाओं के द्वारा अन्य शाखाओं में भी रोग लग जाता है.

कई बार पेड़ों में जल-शाखायें निकल आती हैं. जिन्हें पनिहा शाखायें भी कहते हैं. यदि ये शाखायें थोड़ी भी पनप जाती हैं तो फल वाली शाखायें ठीक प्रकार से पुष्ट नहीं रह पाती हैं.

कभी कभी सन्तरे के पेड़ों में फूलों की बहुत अधिक बाढ़ आ जाती है. उस समय यदि फूलों को झाड़ दिया जाय तो फसल बढ़िया आती है. इसे बहार लाना भी कहते हैं.

उचित समय — वास्तव में काट-छांट के लिए सबसे अच्छा समय वह होता है जब पौधे विश्राम करते हैं. बहुत सी जगह पर सर्दियों में भी काट-छांट करना अच्छा होता है किन्तु साधारणत. उचित और आवश्यक काट छांट फल ले लेने के पश्चात करनी चाहिए.

शाखाओं को इस भांति काटना चाहिए जिससे कि शाखायें फटें नहीं. यदि शाखायें फट जायेंगी तो उनमें रोग और कीटाणुओं का आक्रमण हो जायेगा. दूसरी बात यह है कि शाखाओं को जोड़ पर से काटा जावे और काट लेने के पश्चात फटे हुए सिरे पर तारकोल पोत दिया जावे. ऐसा करने से बाह्य वायु के द्वारा पौधे में किसी प्रकार का रोग नहीं लग पाता. जिस समय शाखा काटी जाय सिकेटियर का फना ऊपर रखना चाहिए.

छोटी छोटी पतली टहनियां काटने के लिए एक विशेष प्रकार का चाकू होता है जिसे सिकेटियर कहते हैं. जिसके द्वारा इन शाखाओं को ठीक प्रकार से काटा जा सकता है क्योंकि यदि

साधारण चाकू से शाखाओं को काटा जाता है तो इसके फटने का भय रहता है.

जड़ों का सुधार — इस रीति को चालनी देना भी कहा जाता है, बहुत से पौधे फल देना बन्द कर देते हैं. उनके काया कल्प के लिए जड़ों की काट-छांट अत्यन्त उपयोगी रहती है. पौधे के आस पास लगभग तीन फुट गहरी और ढाई फुट चौड़ी नाली खोदनी चाहिए. तथा उसमें ऐसी जड़ों को जो अधिक गहराई तक गई हों, जो जड़ें ऊपर की ओर फैली हों उन्हें नहीं काटना चाहिए क्योंकि उनमें खाद्य पदार्थ खींचने की शक्ति नहीं होती है. यह क्रिया करने के समय इतनी सावधानी रखनी चाहिए, इससे पौधों की उत्तम बहार आती है.

सन्तरे के बाग में जब जब सिंचाई की जाय उसके तुरन्त बाद उसमें लगभग ३ इंच गहरी जुताई करके निराई-गुड़ाई करते रहना चाहिए. ऐसा करने से भूमि में जो कड़ाई आ जाती है वह विरलता में परिवर्तित हो जाती है तथा जो पानी भूमि सोख लेती है, वह भाप बनकर उड़ नहीं पाता.

जब सन्तरे के पौधे कुछ बड़े होने लगें तब वर्षाकाल के आरम्भ में तथा वर्षान्त में हर बार एक खड़ी और एक आड़ी जुताई करना अत्यन्त आवश्यक है, ऐसा करने से जो जल भूमि को वर्षा से प्राप्त होता है, भूमि उसे आसानी से सोखने योग्य हो जाती है, तथा भूमि में जो नोंदे उत्पन्न हो जाते हैं वे दबकर मर जाते हैं साथ ही साथ गलकर खाद का काम देते हैं.

अन्य फसलें —

सन्तरे की बागवानी आरम्भ करने के लगभग ५ वर्ष

तक खेती करने वाले को केवल पौधों की ही रक्षा करनी होती है. उनसे फल की प्राप्ति नहीं हो पाती. इस मध्य काल में पौधों के छोटे होने के कारण इनके मध्य में जो खाली स्थान रहता है उनमें उस ऋतु की तरकारियां लगाकर भूमि का सदुपयोग करना चाहिये. तरकारियों के चुनाव में यह देख लेना चाहिये कि लगाई जाने वाली तरकारियां छोटी हों और पौधों के बराबर आ जाने वाली न हों. इस काल मे भी सन्तरे के पौधों में सिंचाई का सही सही प्रबन्ध रखना चाहिये. तरकारियों को पौधों से लगभग एक एक फुट या आवश्यकतानुसार उससे कुछ कम दूरी पर लगा देना चाहिए. इन तरकारियों के अलावा लाखौरी, मटर, चना लगाया जाना उचित है.

रोग और उपचार —

सन्तरे के झाड़ों में अनेक प्रकार के रोग लग जाते हैं, जिनमें से सिरा सूखना (मर) और (गाद छोड़ना) प्रमुख हैं. ये रोग साधारणतः सन्तरे मे लग ही जाते हैं. इन रोगों का पृथक विवरण संक्षिप्त मे नीचे दिया जाता है.

गाद छोड़ना — रोग ग्रसित पौधे की छाल मे से जहां तहां गोंद सा निकलने लगता है, जिससे पौधों मे टहनियों की बाढ़ पूरी सी नहीं आ पाती और फिर फलो मे भी कमी पड़ जाती है. उस रोग से अविलम्ब संरक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए अन्यथा यदि यह तीव्रता पकड़ जाता है तो सम्पूर्ण खेती को पूर्ण रूपेण नष्ट कर डालता है.

उपचार — यदि नालियों के द्वारा पेड़ों की सिंचाई जाय तो

इस रोग का आक्रमण शीघ्रता से नहीं हो पाता. भूमि में एक प्रकार की फफूंदी होती है, जो तरी पाकर तने पर आंख तक जा पहुँचती है, अतः इससे बचाव के लिये भूमि की सतह से लगभग एक गज ऊपर तक तने के पास मिट्टी का ढेर कभी भी नहीं लगाना चाहिए, तथा भूमि की सतह से लगभग एक गज ऊपर तक तने पर वोर्डो-मिश्रण का अच्छा लेप कर देना चाहिए. तने की छाल में जिस स्थान पर गाद लगी दृष्टि पड़े उस स्थान को भली भांति स्वच्छ कर लेना चाहिए और फिर उसके ऊपर १ पौंड जिंक फास्फेट, २ गैलन पानी, १ पौंड नीले थोथे और २ पौंड चूने के अच्छे मिश्रण का भली-भांति लेप कर देना चाहिए.

मर रोग — जिस समय नर्सरी में कलमें लगाई जाती हैं, उस समय इस का आक्रमण होते देखा गया है. इसका लक्षण यह है कि कलमें मर जाती हैं, तथा उन्हें कोई भी उपचार नहीं बचा पाता. अतः जब इसका पता लगे, अर्थात कलम की तरी नष्ट हो जाती सी प्रतीत हो तो वहां पर बहुत ही हल्का तैयार किया हुआ पुटेशियम परमेगनेट का घोल डालना चाहिए.

सिरा-सूखना — बहुत से स्थानों पर तो यह रोग बड़ी भयंकर परिस्थितियां बना देता है, जैसे मध्य प्रदेश के बालाघाट के संतरे के क्षेत्र पर यह रोग इतना अधिक हो जाता है कि मध्य प्रदेश सरकार ने उस स्थान पर सन्तरे की बागबानी न करने की ही सलाह दी है. लगभग हर स्थान के सन्तरा-क्षेत्रों पर न्यूनाधिक मात्रा में यह रोग हो ही जाता है.

जिस समय इस रोग का आक्रमण होता है तो पेड़ पौधों की पत्तियां पीली होकर झड़ने लगती हैं और टहनी सिरे की ओर से

सूखना आरम्भ कर बड़ी होने से पूर्व सूखकर झड़ जाती हैं. इस रोग को सन्तरे के लिए क्षय रोग की भांति ही मानना चाहिए.

चितकबरी पत्तियां — जिस भूमि में सन्तरे के बाग लगाये जाते हैं, वहां की मिट्टी में यदि लोहे और जिक की कमी होती है तो पेड़ों के पत्ते हरे पीले रंग के चितकबरे से होकर झड़ जाते हैं और फल रसहीन से आते हैं.

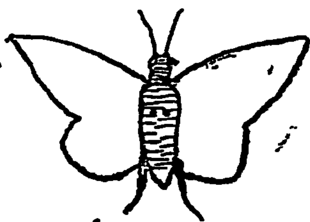
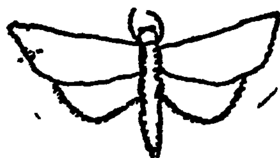
इस रोग का उपचार करने के लिए लगभग ६ मन पानी मे ढाई पौन्ड जिंक सल्फेट घोलकर मिश्रण बना लेना चाहिये और जब पेड़ पौधों मे नई पत्तियां फूटने लगें तो इस घोल का आवश्यकतानुसार छिड़काव कर देना चाहिये. यदि बागों मे सेन्द्रिय खाद अधिक दिया जाय तो भी इस रोग से छुटकारा मिल जाता है.

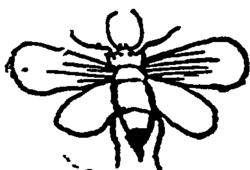
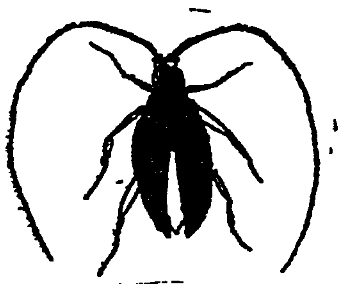
गुलाबी रोग — यह रोग भी एक प्रकार के फफूंद के कारण ही होता है. यह रोग विशेषतः उस समय लगता है जब वर्षा का समय हो क्योंकि फफूंद जल स्पर्श से शीघ्र प्रभावित हो जाती है.

जड़-पीड़ सड़न — इस रोग का आक्रमण पानी के अधिक या कमी, जड़ों या छाल के कट जाने से अथवा जड़ों के फैलाव मे अड़चन आ जाने से होता है. इसका उपचार करने के लिये ऊपर दिये गये कारणों से संरक्षण करना चाहिये.

शत्रु कीड़ों की रोक थाम —

सन्तरे के पेड़ों पर बचपन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक अनेकानेक प्रकार के कीड़े आक्रमण करते हैं. कुछ कीड़े कोमल पत्तियां खाने वाले होते हैं, वे छोटे छोटे पौधों की पत्तियां खाकर उन्हें हानि पहुंचाते हैं. कुछ ऐसे होते हैं जो पौधों के बड़े होने पर

शत्रु कीड़े

उनके पत्तों पर छेद कर डालते हैं तथा कुछ पंखियां ऐसी होती हैं जो फलों को खराब कर देती हैं. इस प्रकार इन कीडों से पौधे को आरम्भ से ही बचाना चाहिये. नीचे हम उन कीड़ों मे से कुछ प्रमुख कीड़ों का पृथक पृथक संक्षिप्त वर्णन करेंगे.

जाली वाला कीड़ा — इस कीडे को इन्डरवेला क्वाड़ी नोटाटा कहते हैं. वैसे तो साधारणतः यह कीड़ा पुराने झाड़ों का ही शत्रु होता है, किन्तु एक साल के पौधों को भी इस कीड़े से पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है.

जब इसका आक्रमण होता है तो कभी कभी छोटी बड़ी टह-नियां सूख तक जाती हैं. यदि पेड़ पर कहीं जाला दीख जाय तो समझ लेना चाहिये कि कीड़े का आक्रमण है और तुरन्त ही इस की रोकथाम करनी चाहिये.

काला कीड़ा — इस कीड़े को स्टोमेशियम बारबेटमर्या कहते हैं यह कीड़े भी सन्तरे के बागो मे काफी नुकसान पहुँचाते हैं. इन कीड़ों का हमला १०-१२ वर्ष से अधिक आयु के पेड़ों पर ही होता है. इसकी इल्ली का रंग सफेद तथा जबड़े काले होते हैं. यह इल्लियां अन्दर ही अन्दर नालिया बना कर पेड़ों की शाखाओं को पोला कर देती हैं और अपने खोदे हुए बुरादे से बन्द करती जाती हैं. पेड़ों की डालियों और शाखाओं पर जो छोटे मोटे छिद्र दिखाई देते हैं वे इसी कीड़े के द्वारा बनाये जाते है.

रोक थाम — इन कीड़ों के अन्डे दरारों मे रहते हैं इसलिए इन स्थानों पर औषधियों के द्वारा इनका नाश किया जा सकता है. अन्डे के स्थानों पर क्रूड क्रिया जोट और क्रूड इमल्शन और

५ प्रतिशत वी० एच० सी० अथवा डी० डी० टी० का लेप करके इनकी बढ़ोत्तरी को रोका जा सकता है.

तितली — वास्तव में यह तितलियां पेड़ों को विशेष हानि नहीं पहुँचाती हैं किन्तु इनकी इल्लियां सन्तरे के पौधों को बहुत नुकसान पहुँचाती हैं.

रोक थाम — इन इल्लियों की रोकथाम करने के लिए सरल विधि यही है कि इनकी इल्लियों को पौधों पर से चुन लिया जाय.

सुरंग वाला कीड़ा — इस कीड़े को फाइलो पनिटिस सिटोला कहते हैं. सामान्यतः सन्तरे के वृक्षों पर ही होता है. इसकी जो इल्लियां होती है वह छोटे छोटे पत्तो के भीतरी भाग पर भीतर की ओर मुड़ जाती हैं, जिससे उनका बढ़ना बन्द हो जाता है, और फसल को हानि होती है. जब इन इल्लियों का आक्रमण होता है तो पत्तियों पर एक प्रकार की चिकनाहट सी आ जाती है और तब पौधों की बाढ़ रुक जाती है. जितने भी रोपे के द्वारा लगाये हुए पौधे होते हैं यदि इन पर इल्लियों का आक्रमण होता है तो वे पौधे नष्ट हो जाते हैं.

रोक थाम — जिस समय इनका आक्रमण हो, तो ३२ गैलन पानी में ५० प्रतिशत शक्ति का एक पौन्ड डी० डी० टी० मिश्रित करके छिड़कना चाहिए.

सन्तरा-इल्ली — वह इल्ली केवल सन्तरे पर ही लगती है.

रोक थाम — सन्तरे की खेती करने वालों के लिए अपने बागों में चक्कर लगा कर इन इल्लियों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए.

सन्तरे की मक्खी — इसे एल्यूरो केथन्स इस्परानी फेरस कहा जाता है. पत्तियों पर काले रंग की फफूंद सी लग जाती है और पौधों की उत्पादन शक्ति अप्रत्याशित रूप से कम हो जाती है. यह पत्तियों के भीतरी भाग पर अंडे देती है.

रोक थाम — जिन जिन पत्तियों पर इनका आक्रमण हुआ हो उन्हें तोड़ कर नष्ट कर डालना चाहिये.

फल पंखी — इस कीड़े को आथरीस स्पी भी कहते हैं. यह पंखी फलों के लिये हानिकर होती है.

इन पंखियों के मुंह पर नुकीली सूंड होती है जिसके द्वारा रात्रि के समय में फफूंद आदि लग जाता है तथा वे गलने लगते हैं.

रोक थाम — इन की रोक थाम करने के लिये सर्व प्रथम तो गुरवेल की लताओं को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए. ऐसा करने से इन पंखियों की वृद्धि न होगी.

रासायनिक दृष्टि से ५० प्रतिशत की शक्ति के १ पौन्ड डी० डी० टी० को ३२ गैलन पानी में घोल कर थल वाले पौधों पर घोल छिड़कना चाहिये. ऐसा करने से पंखिया फलो पर न बैठ सकेंगी और फलों की भी कोई हानि न होगी

पत्तो का कीड़ा — इस कीड़े को ओरंजलीफ माइनर कहते हैं, वैसे यह कीड़ा सन्तरे के पौधों का विशेष हानि नहीं पहुंचाता और सर्वत्र पाया जाता है. इन कीड़ों को खत्म करना जरा कठिन कार्य होता है. इसके लिए साधारण विधि यही है कि तम्बाकू के घोल का छिड़काव किया जाय तथा जिन स्थानों पर कीड़ों ने आक्रमण कर दिया हो, उन्हें नष्ट कर दिया जाए.

– डः सौ निहसर –

साइला कीड़ा — इसे ओरेन्ज स्पाइला कहते हैं. यह कीड़ा पत्तियों की बाजू पर आक्रमण करके उन्हें निष्काम बना देता है. रोजिन के मिश्रण को छिड़क कर इन कीड़ों का नाश किया जा सकता है.

सावधानियां —

१. पौधों को बीमारी से बचाने के लिए नालियां और पारे बना कर सिंचाई करनी चाहिए.

२. पेड़ों की पीड़ के पास मिट्टी का टीला नही होना चाहिए.

३. पीड़ पर जमीन से ३ फुट की ऊंचाई तक बोर्डो मिश्रण का लेप पोत देना चाहिए.

४. बीमारी का पता लगते ही रोग-ग्रस्त गाद लगी छाल को सावधानी से कुछ स्वस्थ छाल सहित काट लेना चाहिए. छाल काटे हुये स्थान पर जिंक, फास्फेट १ पौन्ड, चूना २ पौन्ड, नीला थोथा (तूतिया) १ पौन्ड, पानी २ गैलन, इन सब औषधियों का मिश्रण उस स्थान पर पोत देना चाहिये जहां से रोग-ग्रस्त छाल काटी गई है.

सिरा सूखना — आज कल इस बीमारी का जोर सन्तरे के बागवानी का दुश्मन बनता जा रहा है.

यह सिरा सूखने की बीमारी वास्तव में सन्तरे के पौधों का एक प्रकार का क्षय रोग ही है. इस रोग के दो ही कारण पाये जाते हैं. पहला कारण कालेक्टोटियम ग्लोसपौरिओड्स के आक्रमण से तथा दूसरा कारण जमीन की भौतिक एवं रासायनिक कमी का होता है.

इस रोग के आक्रमण से पौधों की पत्तियां पीली होकर झड़ने लगती हैं. पौधों की छाल सिकुड़ने लगती है. पौधों के सिरों का हिस्सा सूखना आरम्भ होकर सारा पेड़ सूख जाता है. यह रोग बहुधा पहली और दूसरी फसल के बाद ही होता है.

रोक थाम — सन्तरे के पौधों के अनुकूल जमीन में पानी का जमाव न होने देना. पौधो के अनुकूल जमीन होना, आवश्यकतानुसार खाद देना, बाग की जमीन में चूने का अभाव न होने देना, उचित समय पर घास नींदा आदि को अधिक मात्रा में न उगने देना.

अन्य सजातीय वृक्षों की अपेक्षा सन्तरे के पौधों पर इसकी बीमारी का आक्रमण विशेषतः हुआ करता है.

बहार लाना —

जिन वृक्षों में मृग बहार लानी हो, उनमें यह छाल काटने का कार्य अप्रैल के अन्तिम पक्ष मे करना चाहिए. यह छाल काटने की विधि हर वर्ष उपयोग मे लानी चाहिए क्योंकि काटी हुई छाल लगभग ३ माह में पुनः जुड़ जाती है तथा इसका प्रभाव एक वर्ष तक ही रहता है.

जिन वृक्षों पर ये विधियां कार्यान्वित की जायें. उनमे ठीक ढंग से आवश्यकतानुसार जल और खाद देते रहना चाहिए.

पेड़ों की छाल काटने के लिए, लोहे के सरिये काटने का जो आरी-पाना होता है वह उपयोगी और सस्ता रहता है और आम मिल जाता है. अतः जहां से छाल काटनी हो उस शाखा पर एक वृत बनाकर उसकी पूरी गोलाई जितनी छाल शाखा के

चारों ओर से इस प्रकार से काटनी चाहिए कि पेड़ की हड्डी (भीतर की लकड़ी) में आरी न लगे. यदि छाल काटते समय हड्डी में छा ही जाता है तो पेड़ की शाखायें सूखने लगती हैं. छाल काटने के पश्चात जो भाग खुल जाता है, इस पर लसीला फीता लपेट देना चाहिए, जिससे किसी रोग का या कीटाणुओं अथवा जीवाणुओं का आक्रमण होने का भय न रहे.

लसीला फीता वनाने के लिये आवश्यकतानुसार राल लपेट उसे बारीक पीस लेना चाहिए तथा उससे तिगुना मोम लेकर पिघलाना चाहिए. फिर पिछले मोम में थोड़ी थोडी राल डाल कर उसे घोलते रहना चाहिए. जब यह घोल तय्यार हो जाय तो गरम गरम में ही कपड़े की पट्टी लेकर एक ओर से आरम्भ करके डुबोते हुये दूसरी ओर को समेट लेनी चाहिये, बस यही लसीला फीता तय्यार हो जाता है.

फल चुनना —

फसल उतारने के वाद फलों का ढेर खुली भूमि पर न लगाकर टाट आदि किसी विछावन के ऊपर ही लगाना चाहिए. फलों के ढेर में से उन सारे फलों को पृथक कर लेना चाहिए जिनके खरौंच लग गई हो, सड़े हुए हों, दागी हों, कीट आदि के खाये हुये हो या अधिक पक गये हों.

इस प्रकार जो अच्छे फल शेष रहें उनकी भी पृथक श्रेणियां कर देनी चाहिएं अर्थात वड़े आकार के फलों को प्रथम श्रेणी मे रखना चाहिए. मध्यम आकार के फलों को दूसरी श्रेणी में और छोटे फलों को तीसरी श्रेणी में रखना चाहिए. जहां सन्तरे की

यह खेती बड़े पैमाने पर की जाती है, इस कार्य के लिए निर्धारित मशीन का प्रयोग किया जा सकता है.

दूर के बाजारों में जो फल भेजे जायें वे बड़े और मध्यम आकार के ही भेजे जायें. शेष फलों को पास के बाजारों में ही निकालने का प्रयास करना चाहिए.

सन्तरे की पैदावार —

भारत में जो सन्तरे की पैदावार की जाती है वह लगभग सौ मन प्रति एकड़ की औसत मे पाई जाती है. मध्य प्रदेश मे इसकी उपज अच्छी होती है अर्थात अस्सी से दो सौ पचास मन प्रति एकड़ मिली है. वैसे यदि औसत देखा जाये तो एक सौ पच्चीस मन के लगभग इसकी पैदावार प्रति एकड़ बैठती है.

सामान्यत: यदि प्रति झाड़ की दृष्टि से देखा जाये तो हर झाड़ में स्वस्थ स्थिति मे लगभग पांच सौ (५००) फल प्राप्त हो हो जाते हैं यदि झाड़ मे कोई खराबी हो जाती है तो उसी के अनुपात से सन्तरों की यह संख्या भी कम होती चली जाती है.



अमरूद

यह भारत में सर्वत्र पैदा होने वाला फल है, किन्तु इलाहाबाद के अमरूद अपनी जाति की श्रेष्ठता तथा स्वाद के कारण अधिक प्रसिद्ध हैं. अमरूद गुण की दृष्टि से रक्त, पित्त और वायु को शांत करने वाला फल है. दिमाग की गरमी को भी इसके अहार द्वारा लाभ पहुँचता है. कच्चा फल शीघ्र नहीं हजम होता है जब कि अच्छा पका हुआ फल दस्तावर होता है. आम तौर पर अमरूद वैसे ही खाये जाते हैं पर कुछ लोग इसकी चटनी और जैली बनाकर भी खाते हैं.

भारत वर्ष अमरूदों की जन्म भूमि नहीं है कही किसी संस्कृत ग्रन्थ में इसके नाम का उल्लेख नहीं मिलता है. इसके विपरीत अमरीका के जंगलों में अमरूदों के वृक्ष बहुतायत से पाए जाते हैं. इसलिए ऐसा माना जा सकता है कि अमरीका से ही इसके बीज अथवा पौधों का निर्यात हुआ होगा.

जमीन और जलवायु — अमरूद की थोड़ी बहुत खेती सभी प्रकार की भूमि में हो जाती है. बढ़िया बागवानी करने के लिए दोमट और बलुआ दोमट मिट्टी ही श्रेष्ठ रहती है. अमरूद का पौधा आम के पौधे के समान ही होता है इसलिए उन जमीनों में जिनमें थोड़ा बहुत पानी लगता हो तो इसकी खेती हो जाती है. यदि जमीन में पानी का निथार अच्छा होता है तो फल अच्छे आते हैं.

अमरूद ऊष्ण प्रधान जलवायु का फल है. इसकी बागवानी

निचले मैदानों में ठीक होती है तथा शीत प्रधान पहाड़ी में अच्छी फसल नहीं आती है. अमरूद की कुछ जातियां २-३ हजार फुट की ऊंचाई पर दार्जिलिंग जैसे स्थानों पर भी फल देती हैं, किन्तु उनके फलों में वह माधुर्य नहीं होता जो मैदानी इलाकों के फलों में होता है. अमरूद के पौधे बीज बोकर अथवा कलमें लगाकर दोनों ही भांति से तैयार किये जाते हैं. यद्यपि बीज द्वारा तैयार किये गये पौधे बड़े होते हैं. पर वे देर से पकते हैं साथ ही उनके बारे में यह भी विश्वास नहीं किया जा सकता कि उनके पौधे वैसे ही फल जैसे कि बीज डाले गये हैं, देंगे अथवा नहीं. इसलिए व्यवसाय के लिए अमरूद की बढ़िया बागवानी करने के लिये पौधे कलम के द्वारा ही तैयार करने चाहियें

पौधे तैयार करने के लिए मेरे कलम-पद्धति अथवा गूटी कलम पद्धति कोई भी प्रयोग में लाई जा सकती है. कलमें बांधने की विधियां पृथक पृथक होती हैं.

बाग की तैयारी — बाग के लिये जमीन का चुनाव कर लेने के बाद सर्व प्रथम बाग की बंधान अथवा पेड़ का प्रबन्ध करना आवश्यक होता है ताकि पौधों को संरक्षण भली प्रकार हो सके इसके साथ ही सिंचाई आदि का प्रबन्ध भी कर लेना आवश्यक होता है. बाग की ऊपरी तैयारी कर लेने के बाद जिस प्रकार आम और सन्तरे की बागवानी में बाग की रचना की विधियां विस्तार से बताई जा चुकी हैं उसी भांति अमरूद के लिए पौधों के स्थान निश्चित करके गढ़े बना लेने चाहिए

अमरूद के पौधों का आपसी अन्तर १५ फुट से २० फुट तक पौधों की जाति के अनुसार रखा जा सकता है प्रत्येक गढ़ा

तीन फुट व्यास का ३-४ फुट गहरा खोदा जाना चाहिए. गढ़ों की खुदाई ग्रीष्म ऋतु में कर देनी चाहिए और खुदाई करते में गढ़े की ऊपरी सतह की मिट्टी एक डेढ़ फुट की गहराई तक की पृथक तथा निचली सतह की मिट्टी पृथक रखनी चाहिए. वर्षा आरम्भ होने से पूर्व गढ़े की निचली सतह की मिट्टी में प्रति गढ़े में २०-२५ सेर गोवर का खाद तथा दो सेर हड्डी का चूर्ण मिलाकर गढ़े भर देने चाहिएं. जैसा कि सन्तरे की वागवानी में वताया गया है कि गढ़े में हड्डी का चूर्ण पृथक से विलकुल नीचे भी डाला जा सकता है. इस प्रकार से तैयार किये गये गढ़ों में वर्षा आरम्भ होने पर अर्थात दो एक अच्छी वारिश हो जाने पर इन गढ़ों में वाहर से मंगाई गई कलमें अथवा स्वयं की नर्सरी में तैयार की गई कलमें लगा दी जानी चाहिएं. यदि धूप अधिक पड़ती हो तो छाया का प्रवन्ध कर देना आवश्यक है.

गढ़ों में कलमें लगाने का समय वर्षा ऋतु का ही श्रेष्ठ रहता है पर कहीं कहीं शीत काल के अन्त में भी कलमें लगाई जाती हैं.

नर्सरी — अमरूद की कलमें स्वयं तैयार करने के लिए १० फीट लम्बी ५-६ फीट चौड़ी क्यारी वनानी होती है. क्यारी तैयार करते समय मिट्टी में ८-१० सेर वढ़िया सड़ा-गला गोवर का खाद दे देना चाहिए. वनाई गई क्यारी की भूमि अन्य धरातल से ऊंची रहनी चाहिए, जिससे जल का भराव अधिक न हो सके. वीज वोने से पूर्व क्यारी को २-३ वार सींच देना चाहिये. तत्पश्चात वढ़िया स्वस्थ वृक्षों से तोड़े अथवा मंगाए गए अमरूदों के वीज ८-१० इंच के अन्तर से १-१॥ इंच की गहराई में वो

देने चाहिएं यदि शाम को बीज बोए गए हों तो प्रात सिंचाई कर देनी चाहिए. १५-२० दिन मे बीज के छोटे छोटे पौधे तैयार हो जाएंगे जिन्हें बराबर सींचते रहना चाहिए. इन पौधों मे जो पौधे निर्बल हों उन्हें उखाड़ कर सारे पौधों का आपसी अन्तर दूर करते रहना चाहिए. इस प्रकार के साल भर की आयु के पौधे १॥-२ फुट के अन्तर पर रहें. साधारणत २ वर्ष के पौधे कलम के योग्य हो जाते हैं.

कलमें बांधने का काम भी उन्हीं दिनों करना चाहिए जब कि आकाश मे बादल हों और हल्की हल्की बूंदें पड़ती हो कलम बांधने का समय सायंकाल का ही ठीक रहता है.

सिंचाई और तैयारी — बीज द्वारा तैयार किये गये पौधों मे कलमी पौधों की अपेक्षा अधिक समय मे फल आते हैं इसलिये आजकल कलमी पौधे लगाने का प्रचलन बढता जा रहा है, साथ ही कलमी पौधों द्वारा फल भी आशानुकूल बढ़िया प्राप्त होते हैं. साधारणतया कलमी पौधे ३-४ वर्ष मे फल देने लगते हैं तथा बीज द्वारा तैयार किये गये पौधे ५-६ साल में फल देते हैं.

फलों की बागवानी सिंचाई किए बिना बढिया नहीं होती, इसलिए सिंचाई का प्रबन्ध होना आवश्यक है. कुछ तराई के स्थान ऐसे भी होते हैं जहां सिंचाई किए बगैर भी फसल हो जाती है. पर हर जगह पौधों को सिंचाई आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए. फलों के वृक्षों की सिंचाई करने मे वही विधियां और सावधानी रखनी चाहिएं, जो सन्तरे की बागवानी के लिए बताई गई हैं. सिंचाई के साथ साथ पौधों की आवश्यक काट-छांट भी बागवानी का महत्वपूर्ण अंग है. बहुत से बागवान अमरूद के पौधों की उचित कटाई-छंटाई नहीं करते हैं.

अच्छे और अधिक फल प्राप्त करने के लिए पौधों की काट छांट अवश्य ही करते रहना चाहिए. काट-छांट का महत्व वास्तव में उस समय और भी अधिक होता है जब कि बाग नया लगाया गया हो. अर्थात जब से कलमें बढ़नी शुरू हों उस समय से ही उनकी उचित बाढ़ के लिए कटाई-छंटाई करते रहना आवश्यक है. काट-छांट इस प्रकार की जाय कि प्रत्येक पौधे की पीड़ पर तीन चार मुख्य शाखाएं तथा प्रत्येक शाखा पर ४-५ उपशाखा हों. इस प्रकार से उचित कटाई-छंटाई करने से फल अधिक प्राप्त होंगे तथा पौधे की बनावट भी संतुलित बनी रहेगी.

फ़सल लेना -- जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि कलम द्वारा तैयार किए गए पौधे ३-४ वर्ष में फल देने लगते हैं, किन्तु बीजू पौधों के फलने का समय ५-६ वर्ष होता है. अमरूद की फसल साल में दो बार फल देती हैं. चैत में फूलने वाले पौधे असाढ़, सावन, भादों के महीने में फल देते हैं, इन्हीं पौधों पर जबकि इन पर जेठ अषाढ़ में फल पकने शुरू होते हैं, पुनः नए फूल आने लगते हैं तथा दूसरी फसल के अमरूद कार्तिक अगहन तक मिल जाते हैं. अमरूद का कच्चा फल हरा होता है जबकि पकने पर यह पीला, सफेद अथवा कुछ गुलाबी हो जाता है. पके हुए फलों मे कीड़े लगने का भय रहता है. प्रति पेड़ फलों का अनुमानित उत्पादन १ मन के करीब होता है. पौधों की आयु के अनुसार फल भी कम ज्यादा होते हैं.

अमरूद के पौधों से फल उतार लेने के बाद पौधों की जड़ों के आस पास की मिट्टी सावधानी से बिना जड़ों को नुकसान

पहुँचाए खोद देनी चाहिए, इस प्रकार १०-१२ दिन तक जडो को धूप और हवा खिलाने के बाद खोदी हुई मिट्टी मे खाद मिलाकर भर देना चाहिए. ऐसा करने से अगली फसल मे फलो की प्राप्ति में कमी नहीं होती है.

—०—

अनार

वैसे अनार हमारे देश के सभी भागो मे थोड़ा बहुत होता है किन्तु इसका जन्म स्थान भारत के पश्चिमी प्रान्त अफगानिस्तान और अरब आदि में हैं. भारत के समतल मैदानो मे कुछ थोडे परिश्रम से इसकी खेती की जा सकती है. सन्तरे और आम की भांति वह भू भाग जिसमे नमी रहती हो अनार की बागवानी के लिए उपयुक्त नहीं रहते हैं क्योकि यह फल ऊष्ण-कटिबन्ध मे तथा रोठर जमीन मे अच्छा होता है, इसलिए इसकी बागवानी करने के लिए यदि जमीन इसके अनुकूल न हो तो उसे कुछ परिश्रम के द्वारा तैयार किया जा सकता है. विशेषत इसके पौधे तथा फल तीन जाति के होते हैं जिन्हें वेदाना, मरकट और अनार कहा जाता है.

जमीन की तैयारी — जहां अनार की बागवानी करनी हो उस प्रदेश का वातावरण अधिक ठण्डा न होना चाहिए जिस प्रकार सन्तरे के पौधों के लिए निथार वाली भूमि अच्छी मानी जाती है उसी प्रकार अनार की बागवानी के लिए भूमि की निचली ननह

रोठर होनी चाहिए क्योंकि अनार के पौधों की जड़ें अधिक गहराई तक न जाकर ऊपर ही ऊपर फैलती हैं इसलिए वह जमीनें जो काफी गहराई तक भुरभुरी मिट्टी वाली होती हैं उनमें यदि अनार के पौधे लगा दिये जाते हैं तो फल बढ़िया नहीं आते इसलिए ऐसी जमीन को कुछ परिश्रम से तैयार कर लेना चाहिए.

बागवानी के लिए जो स्थान चुना गया हो उसकी प्रारम्भिक तैयारी कर लेने के बाद जो गड्ढे खोदे गये हों उनमें पांच छः फुट की गहराई पर ईंटों के रोड़े अथवा पत्थर के टुकड़े डेढ़ दो फुट तक भर देने चाहिएं उसके ऊपर की मिट्टी में बीस सेर गोबर का खाद दो सेर हड्डी का चूरा मिलाकर भर देना चाहिए. यदि बाग की मिट्टी में अम्ल (तेजाब) के तत्व मौजूद हों तो गड्ढों की मिट्टी में एक सेर बुझा हुआ चूना डाल देना आवश्यक है.

नर्सरी — अनार की बागवानी करने के लिए उसके पौधे बीज से तैयार किये जा सकते हैं किन्तु आजकल बीजू पौधों का प्रचलन लगभग समाप्त सा ही है क्योंकि बीज द्वारा तैयार किये गये पौधे उत्तम जाति के फल नहीं देते इस लिए पौधे दाब-कलम अथवा भेंट-कलम द्वारा तैयार किये जाने चाहिएं. नर्सरी में पौधे तैयार करने के लिए आधार-तरु बीज द्वारा तैयार करके वर्षा ऋतु में अच्छे जाति के पौधों की भेंट-कलम लगाकर पौधे तैयार किये जा सकते हैं. यदि कलम द्वारा पौधे तैयार करने हों तो शरद ऋतु में यह कार्य करना चाहिए.

सिचाई और काट-छांट — नर्सरी मे तैयार किये गये पौधों में अधिक से अधिक दो वर्ष की आयु तक के पौधे बाद मे तैयार किये गये गडढों मे स्थानान्तरित कर देने चाहिएं. पौधों की सिंचाई

आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए. पहली फसल आने से पूर्व पौधों की काट-छांट उचित ढग से करते रहना फलों की बागवानी का आवश्यक अंग है. पौधों की सिंचाई एवम् काट-छांट की विधियां आम तथा सन्तरे की बागवानी मे वर्णित है.

फसल लेना — अनार के पौधों की अच्छी फसल लेने के लिये इनके पौधों को फूलने से पहले कुछ खाद दिया जाना आवश्यक है. इसलिए सितम्बर अथवा अक्तूबर के महीने में पौधों की जड़ों को सावधानी के साथ दस पन्द्रह दिन के लिए धूप और प्रकाश ग्रहण करने के लिए फैला देना चाहिए, तत्पश्चात दस सेर बढ़िया गोबर का खाद तथा आधा सेर हड्डी का चूरा जड़ों से हटाई गई मिट्टी मे मिलाकर जड़ों को ढक देना चाहिए. यह क्रिया प्रति वर्ष करते रहने से पौधों पर फल पर्याप्त आते रहते है. सामान्यत: एक अनार का पौधा सौ सवा सौ फल दे देता है लेकिन फलों की संख्या उन्हीं बगीचों मे प्राप्त की जा सकती है जिनमे पर्याप्त परिश्रम किया गया होगा.

अनार के पौधों पर कुछ शत्रु कीड़े और इल्लियाँ आक्रमण करके बागवानी को नुकसान पहुँचाते है. इसलिए उनका आक्रमण होते ही फलों के शत्रु कीड़ों से बचाव की जो विधियाँ है उनको प्रयोग मे लाना चाहिए. तितली जाति के कीड़े फलो पर अण्डे दे देते हैं तथा उनके बच्चे फलो मे घुसकर उन्हे खराब कर देते हैं इनसे बचने का एक मात्र उपाय यही है कि जिस समय छोटे २ फल पौधों पर लगे हों उन पर पुराना कपड़ा लपेट दिया जाये.

—०—

सेव

सेव की गणना सबसे अच्छे फलों में की जाती है, क्यों कि इसमें पौष्टिक तत्वों की मात्रा पर्याप्त होती है. सेव में श्वेतसार की मात्रा पर्याप्त होने के कारण यह दीर्घायु और स्वास्थ्य के लिये अमूल्य फल है. इसका गुण शीत प्रधान है. जहां यह अधिक गुणकारी है वहां साथ ही इसकी पैदावार कम होने के कारण मूल्य अधिक है तथा इसका प्रयोग उच्च वर्गीय धनी परिवार ही अधिक कर पाते हैं.

जमीन और जलवायु --

सेव के पेड़ समुद्र के तल से ३ हजार फुट से ५ हजार फुट की ऊंचाई के स्थानों पर ही अधिक सफलता से लग पाते हैं, क्योंकि यह शीत प्रधान पर्वतीय स्थानों का फल है किन्तु कुछ वर्षों के परिश्रम के वाद विस्मार्क और क्राव जाति के सेवों की ऐसी किस्में तय्यार की गई हैं जिनकी वागवानी भारत के कुछ समतल मैदानों में भी की जाने लगी है. समतल मैदानों में होने वाले यह सेव पहाड़ी इलाके के सेव की अपेक्षा भिन्न होता है. इसका रंग अधिकतर हरा, कुछ पीलापन अथवा सफेदी लिये हुए होता है, जव कि काश्मीरी सेव लाल छिलके का होता है. इसके अतिरिक्त झालना नाम की जाति का सेव भारत के समतल मैदानों में बहुत अच्छी तरह पैदा होता है.

भारत के वे पहाड़ी स्थान जो ग्रीष्म काल में भी पर्याप्त ठन्डे रहते हैं, उन स्थानों पर सेव की खेती में अन्य इलाकों की अपेक्षा

अधिक सफलता होती है. भारत के दक्षिणी भाग में कुछ दिनों से सेव की खेती पर्याप्त भागों मे होने लगी है. इसके अतिरिक्त आसाम की खसिया पहाड़ी पर तथा मंसूरी और शिमला आदि मे भी सेवों के पर्याप्त बाग हैं. बंगाल प्रान्त भी एक ऐसा प्रान्त है, जहां की भूमि इतनी नीची है कि वहां सेव के बाग नहीं लगाए जा सकते हैं. इससे स्पष्ट हो जाता है कि समुद्र से ऊंचे मैदानों पर ही इसकी बागवानी की जा सकती है.

सेव की बागवानी करने के लिए पथरीली और पहाड़ी भूमि ही श्रेष्ठ रहती है. मैदानी इलाकों मे ऐसी भूमि का अभाव होने पर मजबूत भूमि या दोमट भूमि में सेव के पौधे लगाए जा सकते है. वास्तव में सेव की बागवानी के लिए ऐसी भूमि उपयुक्त रहती है जिसमे पानी का ठहराव तनिक भी नहीं होता है.

फलों के कुछ पौधों की बागवानी जमीन मे पानी का कृत्रिम निथार का प्रबन्ध करके की जा सकती है, पर सेव के लिए इस प्रकार के निथार का प्रबन्ध सर्वथा अनुपयुक्त रहता है, क्योंकि निथार का प्रबन्ध होने पर भी जमीन मे थोड़ा बहुत पानी तो ठहरता ही है, लेकिन सेव के पौधों की जड़ें जरा भी पानी का ठहराव सहन नहीं करती हैं इसके विपरीत सेव के पेड़ों को पानी की आवश्यकता भी बहुत होती है. इसका अर्थ यह हुआ कि सेव की बागवानी के लिए वह भूमि ठीक रहती है जहां वर्षा पर्याप्त होती हो अथवा सिंचाई के लिए जल की व्यवस्था हो. साथ ही भूमि ऐसी रोठर हो जिसमें पानी अधिक जब्ब न हो और उस पर से बह जाय.

यदि बाग की जमीन मे वर्षा के पानी के निकास के योग्य

ढाल न हो तो पौधों के बीच खुली नालियां बना देनी चाहिएं जिससे वर्षा का पानी शीघ्रता से बाग के बाहर बहकर चला जाए.

बाग की तैयारी — सेव के लिए जैसे वातावरण और भूमि की आवश्यकता होती है वह ऊपर बताया जा चुका है. अतएव बागवानी के योग्य भूमि मिल जाने पर बाग की प्रारम्भिक तैयारी कर लेने के बाद पौधों को लगाना चाहिए. सेव के पौधों के लिए जमीन मे उर्वरा शक्ति का पर्याप्त मात्रा में होना नितान्त आवश्यक है, इसलिए यदि बाग की जमीन कमजोर दिखाई पड़े तो खाद देकर भूमि को उर्वर बनाना चाहिएं. इस प्रकार भूमि तैयार करके पौधों के लिए गढ़े खोदने चाहिए. प्रत्येक पौधे में २०-२५ फुट का अन्तर पर्याप्त है, अतः बाग की जमीन में २०-२५ फुट की दूरी पर निशान लगाकर ३ फुट व्यास के ४ फुट गहरे गढ़े खोदने चाहिएं. गढ़ों की मिट्टी में लगभग २० सेर गोबर की खाद तथा ५ सेर खली की खाद प्रति गढ़े के हिसाब से मिलाकर भर देना चाहिए.

इन गढ़ों में पौधे लगाने का कार्य शरद ऋतु में करना चाहिए. शरद ऋतु में सेव के पौधों के पत्ते झड़ जाते हैं इसलिए इन दिनों पौधे लगाने से वे शीघ्र तैयार हो जाते हैं क्योंकि पौधों पर पत्ते न होने के कारण जड़ों पर पौधों का अधिक भार नहीं पड़ता है, इसलिए जब पौधे नर्सरी मे लाए जाते हैं तब उनकी पोषण शक्ति के क्षीण हो जाने का प्रभाव पौधे पर नहीं होता.

नर्सरी और पौधो की तैयारी — सेब की बागवानी करने के लिये यदि किसी नर्सरी से बढ़िया पौधे प्राप्त न हों तो स्वतः ही

नर्सरी में इसके पौधे तैयार कर लेने चाहिएं. नर्सरी का काम करने वाली अनेक फर्में सभी किस्म के पौधों की कलमे बेचती हैं पर भारत मे सेव की खेती सभी स्थानों पर नहीं होती, अत. पौधे मिलने में कठिनाई हो सकती है. यदि विश्वसनीय बीज न मिल सके तो बीजू पौधे तैयार करके भेंट कलम द्वारा पौधे तैयार किये जा सकते हैं. बीज के अभाव में दाब कलम द्वारा पौधे तैयार करना भी बढ़िया रहता है.

दाब कलम तैयार करने का श्रेष्ठ समय वर्षा ऋतु का ही है, अतएव इन्हीं दिनों दाब कलम के द्वारा पौधे तैयार करने चाहिएं. दाब कलम द्वारा तैयार किया गया पौधा अपने मात्र वंश के पौधे के अनुसार ही फल देगा. इसलिए कलम तैयार करने के लिये अच्छी जाति के पौधे का चुनाव करना चाहिये.

जो शाखा दाब कलम के लिए चुनी गई हो अधिक पुरानी तथा बिलकुल नई भी न हो. कम से कम एक वर्ष और अधिक से अधिक २-२॥ वर्ष की आयु की टहनी की दाब कलम तैयार की जा सकती है. जो शाखा कलम तैयार करने के लिए चुनी गई हो यदि वह जमीन तक झुक सके तो उसे झुका लेना चाहिये, अन्यथा किसी बड़े गमले को मचान पर रखकर दाब कलम तैयार करनी चाहिए.

सिंचाई — सेव की बागवानी पर्याप्त सिंचाई की सुविधा वगैर की ही नहीं जा सकती. केवल पहाड़ी स्थान जहां वर्षा अधिक होती है वहा सिंचाई की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती है, किन्तु उन स्थानो पर भी यदि उस समय जब पौधों मे फल आ रहे हो और वर्षा न हुई हो तो सिंचाई कर देने से फल अच्छे प्राप्त होते हैं.

मैदानी इलाकों में तो सिंचाई का पूर्ण प्रवन्ध किये विना सेव की वागवानी करना धन का अपव्यय होगा. सिंचाई के साथ साथ पानी के निथार का होना भी सेव के पौधों के लिए अति आवश्यक है. इसके लिए यदि ढालू जमीन पर वागवानी की जाय तो अच्छा रहता है. कारण कि ढालू स्थान पर पानी का भराव नहीं हो पाता है. यदि जमीन में पर्याप्त ढाल न हो तो खुली नालियां पौधों के चारों तरफ वनाकर पानी के निकास का पूर्ण प्रवन्ध कर देना चाहिए.

जिस समय वाग में कलमें लगाई जाती हैं उस समय ४-६ सिंचाई के वाद पौधों की जड़ों के आस पास की मिट्टी वैठ जाती है. इससे पानी के भराव का भय पैदा हो जाता है अतएव कभी-कभी पौधों की जड़ों को वर्ष में एक वार खोदकर धूप और हवा खिला देनी चाहिए.

फसल — सेव के पौधे लगभग ६-७ वर्ष में फल देने लगते हैं. पौधे के फलने का समय वर्षा के प्रारम्भ से शीत काल तक रहता है. पौधों में फूल अप्रैल में आ जाते हैं तथा फलों की प्राप्ति जुलाई और अगस्त के महीनों में होने लगती है. पौधों के फूलने के समय से २-३ महीने पूर्व काट-छांट करने के लिए नई शाखाएं निकल आती हैं किन्तु पौधों की काट-छांट का कार्य अत्यन्त सावधानी से करना चाहिए.

अच्छे और वढ़िया फल प्राप्त करने के लिए, जव फल आंवले के वरावर हो जाए तव देख लेना चाहिए कि पेड़ में आवश्यकता से अधिक फल तो नहीं हैं, यदि फल अधिक हों तो उन में से कुछ तोड़ डालने चाहिएं, ऐसा करने से फलों का आकार और उत्पादन अच्छा होगा.

अंगूर

अंगूर की बागवानी के योग्य भारत में बहुत थोड़े स्थान हैं. इसका एक मात्र कारण यही है कि यहा की जलवायु इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं रहती है. भारत का सीमा प्रान्त जो अब पाकिस्तान का अंग है, अंगूर की बागवानी के लिए बहुत अच्छा कटिबन्ध है. क्वेटा और चमन के अंगूर तो भारत में अपने नाम से ही प्रसिद्ध हैं. दक्षिणी भारत में नासिक, पूना तथा हैदराबाद मे और गोवा आदि में इसकी बागवानी को पर्याप्त सफलता मिली है.

अंगूर का उपयोग ताजे फल में तो धनी वर्ग के परिवार करते ही हैं किन्तु इसके फल सुखा कर भी उसी तादाद मे प्रयोग मे आते हैं. जैसे कि जाति के अनुसार छोटे, बीज रहित और बड़े बीज वाले अंगूर होते हैं उसी प्रकार इनके सुखाये हुए मेवे किशमिश और मुनक्का कहलाते हैं जिनका प्रयोग प्रत्येक घर मे थोड़ा बहुत होता है. ताजा अंगूर बल और रक्त का वर्धक और खांसी बुखार के लिए उपयोगी पाचक और नेत्र ज्योति को बढ़ाने वाला है. किन्तु वायु विकार के रोगियो को इसका उपयोग उचित नहीं रहता है.

जमीन और जलवायु — अंगूर का उत्पत्ति-स्थान वनस्पति शास्त्रियो के अनुसार दक्षिणी योरुप माना जाता है. अब भी फ्रांस और इटली में जितना अंगूर होता है उतना विश्व के किसी

भाग में नहीं होता, किन्तु धीरे धीरे सभी देशों में इसकी बाग-बानी का प्रसार होने लगा है.

जाति की दृष्टि से तो अंगूर दो ही प्रकार के माने जाते हैं एक छोटे बीज रहित जो मोतिया रंग के गोलदाने वाले होते हैं तथा दूसरे बीज वाले. ये छोटे अंगूरों की अपेक्षा दुगुने और तिगुने आकार के होते हैं. इनके अन्दर बीज भी होता है. बड़े अंगूरों में कुछ बैंगनी रंग के भी पाये जाते है. छोटे अंगूरा को सुखाकर किशमिश तथा बड़ों से मुनक्का तैयार किए जाते हैं. वैसे भिन्न भिन्न प्रदेशों में वहां की जलवायु के अनुसार इनके रंग और छिलके की मोटाई में तथा स्वाद में भी थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है.

अंगूर के पौधे न होकर सेम की भांति लताएं होती हैं जो किसी सहारे पर फलकर गुच्छों में फलती हैं. अंगूर की बेल नमीदार अथवा शीलयुक्त वातावरण नहीं चाहती हैं. गीली जल-वायु के स्थानों पर इसकी लताएं नष्ट हो जाती हैं. अंगूर के लिए शुष्क और ठन्डा वातावरण अच्छा रहता है. अंगूर की बागवानी के लिए दोमट एवं बलुआ दोमट जिसमें पानी का भराव न होता हो अच्छी रहती है. जिस भूमि में पानी का निथार होता हो अंगूर की बागवानी नहीं की जा सकती.

बाग की तैयारी — जो बाग का स्थान अंगूर की जलयायु के अनुसार उपयुक्त हो उसकी भूमि को खाद आदि देकर भली भांति तैयार कर लेना चाहिए. प्रति एकड़ भूमि में ४०० मन बढ़िया सड़ा गला गोबर का खाद लगभग तीन मन हड्डी का चूरा डालकर ग्रीष्म ऋतु में जमीन को तैयार कर लेना चाहिए.

अ गूर की बेलों को चूने की पर्याप्त मात्रा में आवश्यकता होती है. अतः यदि खेत में चूने के तत्व का अभाव प्रतीत हो तो खेत में उपरोक्त खाद देने से पूर्व बाग में चूना डालकर हल और बखर चला देने चाहिएं. उसके बाद ऊपर बताई गई खाद देनी चाहिए. अंगूर की बागवानी में मछली की खाद भी बढिया रहती है. इसलिए यदि आवश्यकता हो या खेत की उर्वरा शक्ति कम हो तो मछली का खाद दिया जा सकता है.

नर्सरी -- अन्य फल वृक्षों की भांति अंगर की लताये कलम के द्वारा ही तय्यार की जाती हैं, कलमे लगाने का काम वर्षा ऋतु के आरम्भ होने पर करना चाहिये, कलमों की तय्यारी के लिये पृथक से नर्सरी की क्यारी बनाने की आवश्यकता नहीं होती है. कलमें लगाने के लिये अंगूर की पूर्ण बाढ़ की फलों वाली शाखाओं से आँख वाली शाखायें ले लेनी चाहियें. इन अखुएदार डालियों को एक फुट से तीन चार फुट की लम्बाई तक रखा जा सकता है.

यदि नर्सरी में ही कलमे तय्यार करनी हों तो तीन चार गज के फासले पर लताओं की अंखुए वाली शाखाये लगानी चाहियें, क्योंकि अंगूर के पौधे बेलदार होते हैं इसलिए बेलों को चढ़ाने के लिये सहारे का प्रबन्ध होना आवश्यक होता है. अंगूर के पौधों की तय्यारी लताओं की कलमे लगाने के अतिरिक्त इसकी बेल को मिट्टी मे दाबकर कलम की भांति ही नया पौधा तय्यार किया जा सकता है.

पौधे का स्थानान्तरण — नर्सरी में तैयार की गई लतायें उस बाग मे जो इसके लिए पहले ही तैयार किया गया हो लगा देनी

चाहियें. प्रत्येक पौधे में ८-८ फीट का अन्तर रखना आवश्यक है क्योंकि इसकी वेलें पर्याप्त मात्रा में फैल जाती हैं, वेलों के चढ़ने तथा फैलने के लिये सहारे का प्रबन्ध करना होता है. इसके लिये भी कई विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं.

किन्हीं स्थानों पर थोड़ी थोड़ी दूर पर पक्के ईंट के खम्भें अथवा लकड़ी के स्लीपर गाड़कर उनके सहारे कांटेदार तार लगा दिये जाते है जिनके ऊपर ये लतायें फैलती रहती हैं इसके अतिरिक्त वांस की टट्टियां व मचान वनाने की विधि भी उपयोगी है. पाकिस्तान के सीमा प्रान्त में जहां इसकी खेती पर्याप्त मात्रा में होती है वहां पर लताओं के फैलने के लिये मिट्टी की दीवार वाग़ के चारों तरफ वना दी जाती है.

लताओं के लिये इतने नीचे मचान वनाये जाते हैं कि वाग़ वानों को फल तोड़ने के लिये घुटनों के वल चलना पड़ता है.

अंगूर की पूर्ण वयस्क वेलों की जड़ों को प्रति वर्ष दिसम्वर के महीने में खोल देना चाहिए, जड़ों को दस-पन्द्रह दिन वायु, धूप और प्रकाश लग जाने के वाद पुनः उसकी मिट्टी में वढ़िया गोवर की खाद अथवा मछली की खाद दे कर जड़ों को ढक देना चाहिये. ऐसा करते रहने से जमीन की उर्वरा-शक्ति क्षीण नहीं हो पाती साथ ही वेलों में फल भी पर्याप्त मात्रा में मिलते रहते हैं.

सिचाई और काट छांट — फलों की वाग़वानी करने वाले किसानों को इस वात का ध्यान रखना चाहिये कि फलों के पौधों में सिचाई और कांट छांट का विशेष महत्व होता है. इसी प्रकार अंगूर की वेलों की भी उचित काट छांट समयानुकूल आवश्यक है.

जिस समय बाग में बेल लगाई जाये और जड़ पकड़ कर बढ़ना शुरू करे उस समय उसके ऊपरी सिरे को काट देना चाहिये. ऐसा करने से नई अनेक शाखायें निकल पड़ेंगी और बेल अच्छी तरह फैल सकेगी.

इसके अतिरिक्त हर साल अंगूर की फसल लेने के बाद मुख्य शाखा को छोड़ कर शेष सभी बेलों के आगे के हिस्से काट डालने चाहियें, इस प्रकार प्रति वर्ष नये फल नई शाखाओं पर बैठेंगे और अच्छी फसल देंगे, कभी कभी ऐसा भी देखने में आया है कि बेलों मे फलों की बाढ़ मारी जाती है, उस समय बेल को कुछ हिस्सा छोड़ कर काट देना चाहिये.

जहां से बेल काटी गई है उससे कुछ नीचे सुतली अथवा किसी पतली डोरी से कसकर बाध देना चाहिये. इस प्रकार का प्रबन्ध न करने से बेल को पत्तों के द्वारा जो नत्रजनीय तत्व तैयार होते हैं और भाड़ों के पोषनार्थ नीचे की ओर आते हैं, उनके मार्ग मे बाधा आ जाने के कारण वे जड़ों पर नहीं पहुंचते तथा बेल का पोषण करते हैं; यदि स्वस्थ बेलों पर भी यह क्रिया एक दो वर्ष के अन्तर से की जाये तो फलों का आकार बढ़ जाता है और मिठास अच्छी हो जाती है.

पाला — अंगूर के बागों को कभी कभी पाले से बहुत हानि उठानी पड़ती है. बेलों को पाले से बचाने के लिये निम्न लिखित उपाय काम मे लाने चाहिये, अस्थाई क्रियाओं के अतिरिक्त स्थायी रूप से भी कुछ ऐसे साधन हैं जिनसे पाले का बचाव किया जा सकता है.

स्थायी प्रबन्ध उन्हीं स्थानों पर लाभप्रद रहता है जहां पाला

पड़ने की सम्भावनायें अधिक रहती हैं, स्थायी प्रबन्ध में बाग के चारों ओर दीवार बनाना तथा अन्य पौधे बाग के बीच में लगाना अथवा बांस की टट्टियों से पाले की ठंडी २ हवा का सीधा झोंका न लगने देना मुख्य हैं.

यदि अंगूर के बाग में पौधे लगाने हों तो इसके लिये शहतूत का वृक्ष अधिक उपयुक्त रहता है क्योंकि शहतूत अंगूर जैसे वातावरण के स्थानों में हो जाता है, दूसरे यह कि इन वृक्षों को कांट छांट करते हुये छोटा रखा जा सकता है और उनसे अंगूर की बेलों के लिये मचान का काम लिया जा सकता है.

अस्थायी विधियां —

सिंचाई — जब मौसम के द्वारा अर्थात दिन में तेज ठंडी हवा चले और आकाश स्वच्छ हो उस दिन रात को पाला पड़ने की सम्भावना होती है इसलिये जब भी पाले की सम्भावना हो बाग की सिंचाई कर देनी चाहिये, यह सिंचाई न तो बहुत कम ही हो और न इतनी अधिक कि पौधों के थालों में पानी भरा रहे, इस सिंचाई का उद्देश्य यही होता है कि अंदर की मिट्टी कुछ गीली बनी रहे. मिट्टी गीली रहने से उसके अंदर की गर्मी शीघ्र नष्ट नहीं हो पाती.

धुआ — अंगूर की बेलों को पाले से बचाने के लिये धुंए का प्रयोग भी लाभप्रद रहता है. बाग में धुंआ देने के लिये सूखी बेल अथवा पत्तियां जलाने के काम में लाई जा सकती हैं, इसके अतिरिक्त उपलब्ध हों तो तारकोल या डांबर का तेल भी प्रयोग में लाया जासकता है. जब तेल या तारकोल का प्रयोग किया

जाये तो उन्हें छोटे २ डिब्बों में बाग के कई स्थानों मे रख कर आग लगा देनी चाहिये.

पत्तों अथवा घास की ढेरियों से धुआं करने के लिए हवा का ख्याल रखना आवश्यक है जिस दिशा से हवा चल रही हो उस तरफ की चार दीवारी के पास कई स्थानों पर ऐसी ढेरियां जलाने से यह धुंआं स्वतः ही वायु के भार से ही पूर्ण बाग में फैल जायगा.

फसल — देश और स्थान के वातावरण के अनुसार इसकी फसल कुछ आगे पीछे तैयार होती है. दक्षिणी भारत मे मार्च के महीने में बेलों पर से फल प्राप्त लेने शुरू हो जाते हैं जबकि हिमालय की तराई में अंगूर की बेलें सितम्बर के महीने मे फल देती हैं. क्वेटा और चमन के बाग जून जुलाई मे फल देती हैं. अंगूर की लताओं में इसके फल गुच्छेदार लटकते हैं. जिस समय फल कच्चे होते हैं अथवा उनमे खटास होती है उस समय उनका रंग हलका गहरा होता है किन्तु जैसे जैसे फल पकते हैं फलों का रंग मोतिया हो जाता है.

बड़ी किस्म के फल जो पक कर बेंगनीयां फल होते हे, उनका यह रंग पकने पर ही होता है, अन्यथा वे भी हरे ही होते हैं, फलों को गुच्छे सहित कैंची के द्वारा काट लेना चाहिए. दूर स्थानों पर भेजने के लिये फलों को ऐसी अवस्था मे उतारना चाहिये कि न तो वे अधिक कच्चे हों और न इतने पके हुये कि रास्ते ही में गल जायें. यह अनुमान कुछ अनुभव के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है.



केला

केला एक ऐसा फल है जिसके सभी भाग उपयोगों में आते हैं. केले का जन्म-स्थान भारत वर्ष ही है और यह यहां के सभी प्रान्तों में बहुतायत से पैदा होता है. इस फल की गणना संसार के श्रेष्ठतम फलों में की जाती है. इसकी इस विशेषता का एक कारण यह भी है कि अन्य फलों की भांति इसे खाने में बीज और गुठली आदि की झंझटें नहीं होतीं. बढ़िया जाति का केला मक्खन की तरह मुलायम, शहद की तरह मीठा तथा मन भावनी सुगन्धि से युक्त होता है.

इसकी खेती बंगाल की निचली भूमि से लेकर समुद्र की सतह से ६००० फुट की ऊंचाई तक की जा सकती है. आयुर्वेदिक दृष्टि से भी केला बहुत गुणकारी फल है. इसके निरन्तर सेवन से दीर्घकालीन कोष्ठ के कठिन के रोग भी नष्ट हो जाते हैं. यह पित्त को शान्त करता है तथा कृमि नाशक होता है. इसमें श्वेत सार की मात्रा भी पर्याप्त होती है.

पके हुए केले तो फल के रूप में खाये ही जाते हैं किन्तु आम की भांति कच्चे केलों की तरकारी भी भारतीय परिवारों में अति-चाव से खाई जाती है. कुछ लोग केले के फूल जो उंगलियों के बराबर होते हैं साग बनाने के काम में लाते हैं. बंगाल निवासी केले की पीड़ के अन्दर का सफेद भाग भी खाना पसन्द करते हैं.

केले के पत्ते, तथा पीड़ पूजा आदि के काम मे तो आते ही हैं किन्तु अब विज्ञान के सहयोग से इनके द्वारा कागज और टाट आदि भी बनाया जाने लगा है. केले के पत्तों मे क्षार की मात्रा भी पर्याप्त होती है इसलिए धोबी उन्हें जलाकर कपड़ा साफ करने के काम में लाते हैं. केले के पेड़ की जड़ें गला देने के बाद बढ़िया खाद बन जाती है.

जमीन और जलवायु — जलवायु की दृष्टि से केले की बागवानी लगभग भारत के सभी स्थानों मे की जा सकती है, किन्तु ६००० फुट से अधिक ऊंचाई पर बढिया केले प्राप्त नहीं हो सकते. इसी प्रकार बलुआ भूमि में भी केले की बागवानी अच्छी नहीं होती. साथ ही अधिक चिकनी मिट्टी भी इसके लिए उपयुक्त नहीं. ऐसी मिट्टी को बालू, राख घास पात अथवा गौशाला की बुहारन मिलाकर उपयोगी बनाया जा सकता है.

केले की बागबानी करते समय यह बात भी विशेष रूप से ध्यान मे रखनी चाहिए कि केले के पौधों के आस-पास अन्य फलदार पौधे नहीं लगाये जा सकते. यदि ऐसे पौधे लगाने ही हो तो उन्हें पर्याप्त दूरी पर लगाना चाहिए इसका एकमात्र कारण यह है कि केले का पौधा पनिया होता है तथा इसकी जड़ें आस-पास की भूमि का जल पूर्ण रूप से खींचती रहती है.

बाग की तैयारी —

जो जमीन बागवानी के लिए चुनी गई हो उसकी गहरी जुताई करके दस दस फुट के अन्तर पर पौधे लगाने के लिए लगभग डेढ़ फुट गहरे तथा इतने ही व्यास के गढ़े बना लेने चाहिए तथा

प्रति गढ़े में दस सेर गोवर और पत्तों का खाद एक सेर हड्डी का चूर्ण तथा ढाई सेर राख मिलाकर डाल देनी चाहिए. इस प्रकार तैयार किये गये गढ़ों में वर्षा ऋतु आरम्भ होने पर पौधे लगाये जा सकते हैं.

केले के पेड़ में न तो शाखायें होती हैं और न ही इसके फल में वीज होते हैं जिसके द्वारा नये पौधे तैयार किये जा सकें किन्तु प्रकृति ने फिर भी इनकी फसल को फैलाने का सरलतम उपाय प्रदान किया है अर्थात जिस स्थान पर केले का एक पौधा लगा दिया जाता है उसकी जड़ के आस-पास एक प्रकार से शाखाओं के रूप में अन्य पौधे उत्पन्न हो जाते हैं. चूंकि एक पौधा एक ही वार फल देता है इसलिए जिस पौधे से फल प्राप्त हो जाता है वह काट डाला जाता है, तब तक उसके आस-पास के उगे अन्य पौधे फल देने के योग्य हो जाते हैं. यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है. वागवानी करने के लिए नर्सरी से बच्चे पौधे प्राप्त किये जा सकते हैं.

जातियां — केले के पौधों की जातियों को हम मुख्यतः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं. एक वे जिनकी वागवानी साग सब्जी के उपयोग में आने वाले कच्चे फल के लिए ही की जाये. दूसरे वो जिसके फल खाने के काम में लाये जाते हैं. हम केले की कुछ जातियों का तथा उनके गुणों का संक्षिप्त वर्णन दे रहे हैं.

ढाके का मर्तमान — इस जाति के पौधे में जो पत्ते होते हैं वे जड़ की तरफ कुछ लचकदार होते हैं तथा पत्तों के पिछले भाग पर सफेद-सफेद दाग होते हैं. इसकी पैदावार ढाका जिले में पाई जाती है.

कटहली — कटहली केलों के पेड़ मर्तमान की अपेक्षा अधिक अच्छे होते हैं किन्तु इसके फल इतने स्वादिष्ट नहीं होते हैं जितने कि मर्तमान के.

मर्तमान जाति के पौधे के फूलों में चम्पा जैसी महक आती है और इसके फल भी चम्पा जाति के केले से आकार मे बड़े होते हैं. फल भी पकने पर अधिक मुलायम हो जाता है. चम्पा के पत्तों पर रेशे की जो नसें होती हैं वे हल्की लालिमायुक्त होती हैं. इसका फल ५-६ इंच लम्बा तथा इसका स्वाद मीठा और खुशबूदार होता है.

उपरोक्त जातियों के अतिरिक्त अमृत सागर और कन्हाई बन्भी दो जातियां मुख्यतः बढ़िया होती है. इनमे कन्हाई बन्भी के केले की विशेषता यह है कि यह पकने पर हरे रहते हैं तथा केले की लम्बाई ६ इंच तक पाई जाती है तथा इनका आकार गोलाकार न होकर पहलूदार होता है. प्रत्येक पौधे पर से ७०-८० केलों की चखरी प्राप्त होती है.

इसी प्रकार अमृत सागर जाति का केला ढाका जिले मे अधिक होता था किन्तु अब अन्य प्रान्तों मे भी इसकी बागवानी होने लगी है जो बहुत बढ़िया होता है. इसके फल ७-८ इंच लम्बे अवश्य होते हैं पर अन्य केलों की अपेक्षा इसका स्वाद भी बढिया होता है.

बाग और फसल — जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है पौधे के लिए जमीन तैयार करके तथा गढ़े खोदकर वर्षा ऋतु में पौधों की कलमे जो नर्सरी से प्राप्त की गई हों अथवा किसी अन्य बाग से ली गई हों लगा देनी चाहिएं. इसके अतिरिक्त सर्क्स पद्धति

द्वारा ३ इंच ऊंचे लम्बे केले के डोंडे लगाकर भी पौधे तैयार किये जा सकते हैं.

अपनी जाति के अनुसार केलों का पौधा १ वर्ष से ३ वर्ष तक के समय में फलने लगता है. काबुली या बौना जाति के केले का पेड़ ३-४ फुट ऊंचाई का रहता है और इतने छोटे पेड़ में भी ३ ४ फुट लम्बी फलों की चखरीयां लगती हैं. पौधे से फसल उनकी जाति तथा भूमि की तैयारी पर निर्भर करती है.

बाग में जहां पौधे लगाये जाते हैं एक वर्ष के अन्दर उगने शुरू हो जाते हैं. यदि यह पौधे अधिक संख्या में उगने दिये जायें तो फसल की पैदावार घटिया हो जायेगी इसलिए प्रति पौधे पर दो तीन पौधों को छोड़कर शेष को काट डालना चाहिए.

जब पहले पौधे से फल की चखरी (छोंद) उतार ली जाय तब उस पेड़ को भी जड़ से काट डालना चाहिए. यदि हो सके तो उसकी जड़ भी उखाड़ देनी चाहिए, जिससे अन्य पौधों की जड़ों के फैलाव में बाधा न पड़े.

केले के पौधों की जड़ों को पर्याप्त पानी की आवश्यकता होती है और निरन्तर उचित सिंचाई करते रहने से जड़ों में आस-पास की मट्टी बैठ जाती है इसलिए हर महीने केलों की जड़ों के आस-पास की मट्टी निंदाई करके पोली करते रहना चाहिए. अतिरिक्त बढ़िया फसल लेने के लिए जब पौधों में फूल आने लगे तब खाद दे देना चाहिए.

केलों को यदि निकट के शहर में ही बेचना हो तो उन्हें तभी तोड़ना चाहिए जब वे पूर्ण तथा पक गये हों, किन्तु यदि बाग के

निकट कोई मन्डी या बाजार न हो और इन्हें दूर भेजने की आवश्यकता हो तो फलों को कुछ कच्ची अवस्था में ही तोड़ कर भेजना चाहिए जिससे वे वहां के बाजार मे पहुँचते पहुँचते पक जाएं.



पपीता

यद्यपि पपीते का जन्म स्थान भारतवर्ष नहीं है फिर भी इसकी खेती सभी प्रान्तों में होती है और भारतवर्ष इसका उपयोग बड़े चाव से करता है. पपीता खाने मे स्वादिष्ट और मीठा तो होता ही है साथ ही पेट के विकारों को दूर करने की क्षमता भी उसमे पर्याप्त मात्रा में होती है. वैज्ञानिकों ने इसके गुणों को पहचान कर कच्चे पपीते से पेन्स्लीन नाम की दवा तैयार की है जो लाखों रुपये की बाजार मे बिकती है.

पपीते का पौधा जाति और भूमि की उर्वरा शक्ति के अनुसार ७-८ फुट से लेकर १५-२० फुट ऊंचा होता है. पेड़ों मे प्रारम्भिक अवस्था मे एक ही पीड़ होता है और उस पर ही फल लगते हैं किन्तु बाद में कुछ शाखायें भी निकल आती हैं. इसका पेड़ एक वर्ष की आयु में भी फल देने लगता है. इसके फल भी अपने पेड़ की जाति के अनुसार आधा सेर से लेकर ३ सेर वजन तक के होते हैं.

भारतवर्ष में जो भी पपीते की खेती करते हैं वे बागवान इस के ऊपर जरा भी परिश्रम न करके खेत की शक्ति और जलवायु का सहारा लेते हैं इसलिए बहुधा हमें बाजार में बढ़िया फल प्राप्त नहीं होते इसका एक कारण यह भी है कि पपीते का पौधा बीजू आम के समान बिना अधिक परिश्रम के बढ़कर फल देने लगता है. किन्तु यदि इसकी बागवानी पर थोड़ा भी परिश्रम किया जाय तो जहां हमें फल बढ़िया मिलेंगे साथ ही पैदावार भी अधिक होगी.

जमीन — पपीते की बागवानी करने के लिये दोमट, बलुआ दोमट और लाल मिट्टी भी अच्छी रहती है. जिस भूमि में पौधे लगाये गये हों वह भूमि कुछ ऊंची हो तो अच्छा रहता है क्योंकि वर्षा ऋतु में ऊँची जमीन में पानी का जमाव भी नहीं हो पाता. वैसे इसकी बागवानी थोड़ी ऊंचाई की पहाड़ी जमीनों में भी अच्छी प्रकार हो जाती है. भारतवर्ष में गोहाटी, हजारीबाग रांची, दुमका और सन्थाल परगने की भूमि पपीते की बागवानी के लिए बहुत अच्छी सिद्ध हुई है.. बाग में पौधों के लिए दस फुट के अन्तर से १॥-२ फुट व्यास के इतने ही गहरे गढ़े बनाकर हड्डी का चूर्ण युक्त खाद दे देना चाहिये.

नर्सरी — पपीते का पौधा बीज द्वारा तैयार किया जाता है इस लिए इसके पौधे तैयार करने के लिए अच्छे बीज का चुनाव इसकी बागवानी का मुख्य अंग हो जाता है. बाजार से खरीदे गये बीज उतने विश्वसनीय नहीं हो सकते जितने स्वयं के तैयार किये हुए, इसलिए किसी बाग में जाकर बीजों के लिए ज्यादा पके फल ले लेने चाहिए.

पपीते को चीर कर बीज निकाल लेने चाहिएं यहां एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि फल से प्राप्त हुये सभी बीज बागवानी के लिये ठीक नहीं होते हैं. फलों मे डन्ठल के पास जो बीज होते हैं, उन से मादा पौधा तैयार होता है, तथा नीचे की ओर के बीजों से नर, इसलिए डंठल के आस पास के बीज ही अधिक से अधिक आधे बोने के ले लिये जाएं. इन बीजों को छायादार स्थान में सुखा लेना चाहिये.

बीजों को अंकुरित करने के लिए लकड़ी का बना हुआ अंकुर दान प्रयोग में लाना चाहिये. अंकुरदान मे घास पात की सूखी खाद और थोड़ी सी कंडे की राख मिलाकर मिट्टी भरनी चाहिए. शरद ऋतु की समाप्ति पर इन अंकुरदानों में बीज डाल देने चाहिएं. लगभग दो सप्ताह के अन्दर बीज अंकुर फेंक देते हैं, अंकुरदान को ऐसी जगह पर रखना चाहिए जहां सुबह शाम की नरम धूप पौधों को मिलती रहे. मई और अप्रैल के महीने मे भी पौधे तैयार किए जा सकते हैं.

जब ये पौधे पांच छः इंच के हो जाएं तो उन्हें अंकुरदान से सावधानी के साथ उठाकर बाग की किसी भी बडी क्यारी में जो पहले से ही तैयार कर ली गई हो एक एक फुट की दूरी पर लगा देना चाहिये. इन पौधों को भी कडी धूप से बचाने के लिए छाया का प्रबन्ध करना चाहिए. जब पौधे दो-ढाई फुट के हो जाएं तब बाग के बनाये गए स्थानों में स्थानान्तरित कर देना चाहिए.

फसल — पीपते के पौधे समान्यतः एक वर्ष की आयु से फल देने लगते हैं. यद्यपि किसी वर्ष फल थोड़े बहुत मिल जाते हैं किन्तु यदि पहले वर्ष के फूलों को तोड़ कर उन्हें न फलने दिया जाय

तो दूसरे वर्ष अच्छी फसल प्राप्त होगी. पपीते के पौधे चार-पांच वर्ष तक अच्छे फल देते रहते हैं तथा प्रति पौधा ५०-६० फल प्राप्त हो जाते हैं. इसी समय इसमें अन्य शाखायें निकल आती हैं; इसलिये पहले मुख्य सिरे को काट देने से नव अंकुरित शाखाओं में पुनः अच्छे फल आ जाते हैं.

नर-मादा — पपीते के पौधों में जैसा कि लिखा जा चुका है कि नर, मादा जाति के दो प्रकार के पौधे पाये जाते हैं. नर जाति के पौधों में फलों के स्थान पर सुनहरी जुट्टी की तरह लम्बे डंठलों पर केवल फूल ही लगते हैं, कुछ कृषि विशेषज्ञों का मत है कि यदि नर का सिर काट दिया जाये तो वह फल देने लगता है. पीपीते की बागबानी में इन पौधों का पर्याप्त महत्व है.

यदि सारे बाग में मादा ही पौधे लगाये जायें (यद्यपि यह बाग-बान के हाथ में नहीं होता है क्योंकि जब तक पौधा फलने योग्य नहीं होता उसकी जाति का पता नहीं लगता) तो उन पर भी नर पौधों के अभाव में अच्छे फल नहीं लगेंगे, इसलिए बाग के अंदर प्रति ५०-६० मादा पौधों के बीच एक नर पौधा भी लगाना आवश्यक है. नर और मादा पौधों के समन्वय के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार का अनुभव देखने में आया है कि मधु मक्खियां नर पौधों के फूलों से रेणु-तत्व का संग्रह करके जब मादा जाति के पौधों पर मधु लेने जाती हैं तो इनकी इस क्रिया से मादा पौधों की प्रजनन शक्ति बढ़ जाती है.

—◆—

जामुन

जामुन के पेड़ पहाड़ी स्थानों को छोड़कर भारत के सभी मैदानी स्थानों पर पाये जाते हैं. जामुन साधारणतया दो प्रकार के एक छोटे तथा दूसरे बड़े होते हैं और सब प्रकार की जलवायु में हो जाते है.

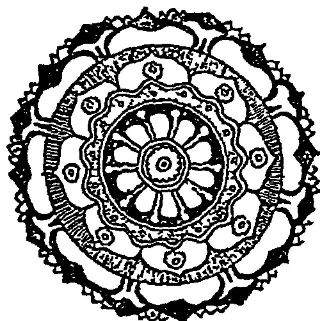
जमीन और पौधा — जामुन के पेड़ बीज बोकर तैयार किये जाते हैं. फलों की बागवानी करने वाले अपने बाग में दो-एक जामुन के वृक्ष लगा लेते हैं. कुछ वर्षो मे इसका पेड़ पर्याप्त बड़ा हो जाता है, और प्रति वर्ष १०-१५ मन की फसल दे देता है, इसके पेड़ के फैलाव के लिये लगभग पच्चीस तीस फुट व्यास की भूमि छोड़नी चाहिये, वर्षा ऋतु के आरम्भ मे दो चार बीजों को बोकर पौधे तैयार कर लेने चाहियें तथा उनमे से जिन पौधों की बाढ़ अच्छी हो उन्हें छांटकर उपयुक्त स्थान पर स्थानान्तरित कर देना चाहिये.

सिंचाई और काट छांट — जब इसका पेड़ दो तीन साल तक का हो उस समय तक इसे सिंचाई की आवश्यकता होती है क्योंकि बड़ा होने पर इसकी जड़ें पर्याप्त गहराई तक जाती हैं और जल ग्रहण कर लेती हैं. पौधों की काट छांट अपनी इच्छानुसार करते रहना चाहिये.

फसल — जामुन का पेड दस बारह साल मे अच्छे फल देता है, इसलिये इसकी तरफ बागवान विशेष ध्यान नहीं देते. बढ़िया

और अच्छे फल लेने के लिये पौधों को फल आने से दो महीने पूर्व थोड़ी खाद देकर सिंचाई कर देनी चाहिये तथा जाड़े के दिनों में इसकी जड़ को। धूप खिला देनी चाहिये, जामुन का उपयोग अधिकतर खाने के लिये ही किया जाता है, तथा बहुत मात्रा में फलों के रस से सिरका भी तैयार किया जाता है. उदर शूल के लिये जामुन और इसका सिरका अत्यन्त उपयोगी होता है.





कमरख

कमरख के पौधे पन्द्रह बीस फुट ऊंचे होते हैं, और मैदानी इलाकों पर तैयार किये जा सकते हैं. इनमें सामान्यत: दो जातियां पाई जाती हैं, एक के फल मीठे तथा दूसरी के खट्टे होते हैं. इसका फल चार पांच धारियोंदार आकार में लम्बा होता है. कच्ची अवस्था में मीठी जाति के फल भी खट्टे होते हैं.

जमीन और पौधे — इसके पौधे बीज बोकर तैयार किये जाते हैं. दिसम्बर अथवा जनवरी के महीने मे पौधे तैयार करने चाहियें. नर्सरी में भी इसकी पौध फैल जाती है, पौधे लगाने के लिये कम से कम तेरह चौदह फुट के अंतर पर गढ़ा खोद कर हड्डी का चूर्ण मिला हुआ गोवर का खाद डालना चाहिये, बाहर से मंगाये गये अथवा नर्सरी मे तैयार किये गये पौधे बरसात के दिनों में गढ़ों में स्थानान्तरित कर देने चाहियें.

सिंचाई और काट छांट — छोटे पौधों की सिंचाई पर्याप्त करनी चाहिए, किन्तु जब वे बड़े हो जावें तो गर्मी के दिना मे एवं फूलने के समय सिंचाई कर देनी चाहिये. पेड़ की काट छांट का काम फल आ लेने के बाद करना चाहिये.

फसल — कमरख का पौधा छ. सात साल मे फल देने लगता है, अक्तूबर और नवम्बर के महीने मे पौधे फल देने हैं.

कमरख का उपयोग सागभाजी के लिये और अचार मुरब्बे के लिये प्रयोग में लाया जाता है, मीठे कमरख का शरबत शीत-लता प्रदान करता है.



अनन्नास

अनन्नास का पेड़ शीतकटिबन्ध में सरलता से फलता फूलता है, भारतवर्ष में इसकी बागवानी बंगाल में बहुत अधिक होती है. उन स्थानों पर जहां की हवा में नमी रहती हो, अनन्नास के पेड़ लगाये जा सकते हैं, यद्यपि भारतवर्ष के सभी स्थान इसकी बागवानी के लिए उपयुक्त नहीं हैं किन्तु ऐसे भी स्थान प्रर्याप्त हैं जहां इसकी बागवानी की जा सके.

जमीन और पौधे — इसकी बागवानी के लिए तो जमीन तय ही होनी चाहिए. साथ ही साथ उसका रसदार होना भी आवश्यक है. दोमट अथवा बलुआ दोमट मिट्टी यदि अम्लता युक्त हो तो अच्छी रहती है. जमीन में लगभग ढाई सौ मन गोवर का खाद, १ मन हड्डी का चूर्ण और १ मन राख मिला कर जुताई कर देनी चाहिए. जुताई करने के बाद तीन तीन फुट के फासले पर नालियां बना कर उन से जो मिट्टी निकले, प्रत्येक दो नालियों की बीच की भूमि ऊंची बना दे. वर्षा ऋतु के आरम्भ में इन ऊंची तैयार की गई मेंढ़ों पर दो-दो फुट के फासले पर जहां कि इसका पौधा लगाया जाये पाव-पाव भर अरण्डी, अथवा नीम या सरसों की खली दे देनी चाहिए.

अगस्त और सितम्बर के महीने में किसी नर्सरी से लिए गए प्राकृतिक सकर्स रोपने चाहियें. बागवानी करने के लिए प्रथम बार तो इसका पौधा कहीं से उपलब्ध करना ही होता है. बाद

मे इसकी जड़ों पर से ही जो पौधे निकलते आएं उनसे बाग का विस्तार किया जा सकता है

सिंचाई और काट छाट — इसके पौधों को नमी की आवश्यकता होती है, इसलिए सिंचाई करते रहना चाहिए. फलों का उत्पादन कम होने पर तो और भी अधिक सिंचाई की आवश्यकता हो जाती है. अनन्नास की बागवानी पपीते के पौधों के साथ भी अच्छी रहती है क्योंकि इन दोनों की संयुक्त बागवानी मे कोई भी पेड़ एक दूसरे को हानि और बाधा नहीं पहुँचाता है, अपितु पपीते के ऊंचे वृक्ष अनन्नास के पौधों पर छाया बनाकर इनका वातावरण शीतल बनाये रहते है. तीन चार फसल लेने के बाद पौधों की जड़ों की मिट्टी मे पर्याप्त खाद दे देना चाहिए.

फसल — अनन्नास का पेड़ एक डेढ़ वर्ष मे फलने लगता है तथा जुलाई, अगस्त मे इसके फल प्राप्त हो जाते है. इसके पके हुए फल और कच्चे फल मे अगूर की भांति थोड़ा ही अन्तर होता है. पक जाने पर फल का रंग गहरा हरा न होकर कुछ मोतिया हो जाता है, तथा कुछ उसकी सुगन्धि भी अच्छी मालूम पड़ती है फलों को उस समय तोड़ना चाहिए जबकि कम से कम उनके नीचे का आधा भाग रंग बदल चुका हो.



तरबूजा

ग्रीष्मकाल में गरीब अमीर सभी परिवारों में शीतलता प्रदान करने वाला एक मात्र तरबूज का फल ही है. इसकी गणना खेती ही में करनी चाहिये क्योंकि प्रत्येक वर्ष के लिए इसकी पौध लगानी होती है. फल इसका आकार में लगभग सभी फलों से बड़ा होता है और यह जमीन पर बेलों में फलता है.

जमीन और पौध — तरबूजे की खेती करने के लिए वैसे बलुआ और बलुआ दोमट मिट्टी में अच्छी होती है, किन्तु अधिकांश में इसकी खेती पड़ती के खेतों में और नदियों के खादरों तथा धारा के द्वारा छोड़ी गई भूमि पर ही कर ली जाती है, नदी की रेत में खेती करनी हो तो थोड़ा बहुत खाद अवश्य देना चाहिए तथा ५-५ फुट के फासले पर जनवरी-फरवरी में बीज की बुवाई करनी चाहिए.

फसल — तीन चार महीने के बाद फल लग जाते हैं तथा ये बैसाख और जेठ के महीने तक पक जाते हैं. कच्चे और पके फल पहचानने में जरा कठिनाई होती है किन्तु साधारणतया पके हुए फल का डन्ठल फल के ऊपर से जरा से इशारे से ही टूट जाता है.

तरबूजे के फल राजस्थान में बहुत ही अच्छे और बड़े होते हैं क्योंकि इसकी खेती के लिये सूखा वातावरण अच्छा रहता है. वैसे भी अन्य स्थानों पर बढ़िया फसल लेने के लिए एक बेल में ८-१० फल से अधिक नहीं लेने चाहियें. जिन फलों को बीज के लिये रखना हो उस बेल में ३-४ से अधिक फल नहीं छोड़ने चाहियें जिससे बीज की नस्ल न बिगड़ने पाये.



खरबूजा

खरबूजा तरबूजा के समान ही पैदा होने वाला फल है. इस की खेती भी नदियों के रेत में की जाती है. वैसे भारत में लखनऊ के खरबूजे अपने नाम से सवर्ग प्रसिद्ध है लखनऊ के खरबूजे आकार में छोटे और कुछ चपटे होते हैं किन्तु इनका स्वाद मधुर और सुगन्धि युक्त होता.

जो भूमि खरबुजे की खेती के लिये चुनी गई हो उसमे खाद देकर तरबूज की नालियों की भांति ही नालियां बना लेनी चाहियें, ये नालियां १॥ फुट चौड़ी तथा ३ फुट के अन्तर पर होनी चाहिये. पौधों का परस्पर में २॥-३ फुट का अन्तर रखा जा सकता है. बीज जहां तक हो सके नये ही लेने चाहिएं. पुराने बीज यद्यपि अच्छे फल देते हैं किन्तु उनकी लेले स्वस्थ नहीं होती हैं.

फसल — खरबूजा की बेलों को उस समय तक सिंचाई की थोड़ी बहुत आवश्यकता बनी ही रहती है जब तक कि उनमे फल आवें, जब फल पकने लगें उस समय सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए. बढ़िया और अच्छे फल प्राप्त करने के लिए बेलों की शुरू से ही छांटने की आवश्यकता होती है. इसलिए जब २-३ फुट लम्बी हो जाये तो उन का आगे का सिरा तोड़ देना चाहिए ऐसा करने से बेल मे नई शाखाएं फूट आयेंगी.

इन नई शाखाओं पर तीसरे-चौथे दिन फल लगने वाले फूल खिलते हैं, यदि फूल आने मे विलम्ब प्रतीत हो तो उन शाखाओं

के अग्र भाग भी तोड़ देने चाहिएं. ऐसा करने से फल अच्छे प्राप्त होते हैं. इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक बेल में ३-४ उप शाखाओं से अधिक नहीं रहनी चाहिएं, तथा प्रत्येक शाखा में ३-४ से अधिक फल नहीं लगने देने चाहिएं, यदि इससे अधिक फल लगने दिये जायेंगे तो फलों का आकार छोटा हो जाएगा. क्योंकि सभी फलों को उसी एक ही बेल से जो रस प्राप्त होगा वह बट जायेगा.

खरबूजा खाने मे दस्तावर किन्तु बलदायक फल है. हरे फलों की तरकारी भी बनाई जाती है, फलों से जो बीज निकलते हैं उन्हें छील कर विभिन्न खाद्यान्नो में मेवे के रूप में मिलाया जाता है. बीजों का मग्ज़ ठण्डा और शक्ति वर्धक होता है.



ककड़ी

ककड़ी भी खरबूजा और तरबूज के दिनों में पैदा होती है, इसकी गणना फलों मे तो नहीं की जा सकती न ही यह फल है. सामान्यत: यह दो जाति की होती है पहली जाति की ककड़ियां पतली एक सवा इंच मोटी और एक फुट लम्बी होती हैं तथा दूसरी २॥ तीन इंच मोटी और २-२॥ फुट लम्बी होती हैं, बड़ी ककड़ियां खाने में इतनी स्वादिष्ट नहीं होतो जितनी कि छोटी होती है.

जमीन और पौधा — तरबूज-खरबूज की भांति ही इसकी खेती भी उन्हीं स्थानों पर अधिक होती है. यदि जमीन मे खाद दे दिया जाता है तो फसल अच्छी हो जाती है, वैसे बिना खाद के भी हो जाती है, किन्तु नहर की रेत मे खेती करते समय खाद अवश्य देना चाहिए. इसकी बुवाई करने के लिए २ फुट चौड़ी २ इंच गहरी तथा ३ फुट की दूरी पर नालियां बनाकर ३-३ फुट की दूरी पर २-२ बीज जनवरी फरवरी के महीने में बो देने चाहिएं, निंदाई करते समय दोनों बेलों मे से जो निर्बल हो उसे उखाड़ देना आवश्यक होता है.

फसल — अप्रैल मई के महीने मे ककडिया फलने लगती हैं. यदि खाने के लिए बेचना हो तो छोटी २ ककडियों का मूल्य भी लगभग उतना ही मिल जाता है जितना कि बड़ी होकर साग के लिए बिकने वालियों का.

प्रत्येक वर्ष की फसल मे अच्छी स्वस्थ लताओं मे बीज के लिए ककड़ियां छोड देनी चाहिएं और जब वे पूर्णतया पक जायें तो उन्हें अगलो फसल के बीजों के लिए रखा जा सकता है.

कटहल

कटहल की बागवानी कहीं भी पृथक से नहीं की जाती है इसका एक मात्र कारण यही है कि इसका पेड़ जो २५-३० फुट ऊंचा होता है ७-८ वर्ष में जाकर फल देता है. इसलिए बागवान अपने अपने बगीचों में दो एक पेड़ लगा देते हैं. बंगाल बिहार और दक्षिणी भारत तथा गुजरात में इसकी पर्याप्त खेती होती है.

जमीन और पेड़ —वैसे कटहल के लिए कछार की भूमि अच्छी रहती है पर यह हर प्रकार की भूमि में हो जाता है. वर्षा ऋतु में इसके बीज के द्वारा आम की भांति गढ़ा तय्यार करके पौधा लगाना चाहिए, गढ़ों में पौधों के बीज सीधे न बोकर अलग क्यारी में १०-५ बीज बोकर उनमें से जिनकी बाढ़ अच्छी हो उन्हे गढ़ा मे स्थानान्तरित कर देना चाहिए, पौधा जब छोटा हो तो उसकी देख रेख और सिंचाई की आवश्यकता होती है तथा थोड़ी खाद भी देते रहना चाहिए.

फसल — अप्रैल-मई-जून के महीनों में कटहल के पेड़ फलते हैं. इसके फल तरबूज की तरह काफी बड़े होते हैं, ऊपर का छिलका मोटा और नोकदार दानों का होता है. पेड़ की आयु के अनुसार बड़े कटहल लगने लगते हैं, जिनका वजन १५-२० सेर तक पाया जाता है, पेड़ों म इसके फल मोटी शाखाओं और पीड़ पर लगते हैं. प्रत्येक पेड़ से २०-२५ से

लेकर सौ सवा सौ फल तक प्राप्त हो जाते हैं. कभी कभी बड़ी आयु के पौधों पर जड़ों मे भी कटहल पाये जाते हैं, जब जड़ों में दो चार फल लग जाते हैं उस समय वहां की भूमि कट जाती है, और पता चल जाता है कि जड़ मे कटहल लगा है.

कच्चे कटहलों का साग बनाया जाता है जो अन्य सब्जियो से अधिक अच्छा और कीमती समझा जाता है, किन्तु पक जाने पर इसका गूदा मीठा हो जाता है. पके फल में मिठास कुछ ऐसी होती है कि बहुत से लोगो को पके फल अच्छे नहीं लगते, कटहल के पेड़ों के पत्तो की पत्तलें बनाई जाती हैं तथा लकड़ी का फर्नीचर बनता है.

—०—



आडू

यद्यपि आडू भारतवर्ष का फल नहीं है फिर भी इसके पेड़ यहां की जलवायु में अनेक स्थानों पर पाये जाते हैं, वास्तव में आडू शीत कटिबन्ध का फल है और पहाड़ी भूमि में सरलता से हो जाता है. इसका फल आकार में आंवले के बराबर होता है ऊपर का छिलका बहुत पतला एवं बैंगनी और लाल रंग का होता है. प्रत्येक फल में बादाम के आकार की एक गुठली होती है.

इसके पौधे बीज के द्वारा अथवा आंख बांध कर और भेंट-कलम से भी तैयार किये जा सकते हैं. बीज से नर्सरी में पौधा तैयार करके यदि निकट ही अन्य पौधे हों तो कलम बांध कर अथवा चश्मा चढ़ा कर पौधे तैयार कर लेने चाहिएं. बीज बोने अथवा कलम या चश्मा चढ़ाने का कार्य मार्च-अप्रैल के महीने में करना चाहिए. वर्षा के अन्त में अथवा शीतकाल के प्रारम्भ में तैयार किये गये पौधों को बाग के गढ़ों में स्थानान्तरित कर देना चाहिए.

सिंचाई, काट छांट — आडू का पौधा पर्याप्त पानी चाहता है इसलिए इसकी सिंचाई करनी चाहिए. पेड़ों से जब पत्ते झड़ने लगें, तब तो और अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है. फरवरी के महीने में काट-छांट करने और खाद आदि देने से फल अच्छे आते रहते हैं.

जिस समय पेड़ों पर फल आ रहे हों उस समय तो पानी दिया जा सकता है किन्तु जब फलों का पकना शुरू हो सिचाई बन्द कर देनी चाहिये. वर्षा ऋतु समाप्त होने पर तथा फसल ले लेने के बाद कुछ दिनों (१०-१२) पौधों की जड़ों को खोल कर धूप और हवा भी दिखा देनी चाहिए.

फसल — आड़ू का पेड़ तीन चार साल की आयु में फल देने लगता है और फल देने का क्रम सात वर्ष तक चलता रहता है. इसलिए यदि निरन्तर ही इसकी बागबानी करनी हो तो जब पहले पौधे चार वर्ष के हो जायं तो दूसरे स्थान पर अन्य नये पौधे तैयार कर लेने चाहिएं जिससे कि पहले पौधों के वृद्ध हो जाने पर उन्हें काटा जा सके.

मई और जून के महीने में आड़ू के पेड़ों से फल प्राप्त होते रहते हैं तथा प्रति पेड़ तीस चालीस सेर फल मिल जाते हैं. आड़ू के बीजों से तेल भी तैयार होता है. फल खाने के काम में आते हैं जो कि उदर शूल नाशक और कुछ रेचक होते हैं.

— - —



शरीफा

शरीफा खाने में अत्यन्त मधुर और ठन्डा होता है. इसका जन्म स्थान अमरीका माना जाता है किन्तु भारत के लगभग सभी स्थानों में इसकी बागवानी होती है. इसकी बागवानी उन सभी स्थानों पर की जा सकती है जहां का वातावरण समशीतोष्ण हो.

जमीन और पौधा — इसकी बागवानी के लिए जमीन का चुनाव करते समय एक विशेष बात का यह ध्यान रखना चाहिए कि उस भूमि में पानी का भराव नहीं होना चाहिये क्योंकि इसके पौधे की जड़ें अधिक पानी सहन नहीं कर पाती हैं. वैसे बलुआ दोमट अथवा हल्की दोमट मिट्टी में इसकी पौध अच्छी लग जाती है.

शरीफे का पौधा १५-१६ फुट ऊंचा होता है इसलिए पौधों को २०-२० फुट की दूरी पर लगाया जाना आवश्यक है. पौधों के लिए जो गढ़ा तैयार किया जाय, वह ३-४ फुट के व्यास में ६ फुट गहरा खोदा जाना चाहिए. गढ़ों को खाद आदि देकर वर्षा ऋतु से पहले ही तैयार कर लेना चाहिए.

बाग लगाने के लिए पौधों को बीज के द्वारा नर्सरी में तैयार करना चाहिये. यदि निकट ही दूसरे बागों में इसके पेड़ हों और दाब कलम तैयार की गई हो तो उसे ६-७ महीने नर्सरी में पालकर तैयार किये गये गढ़ों में लगाना चाहिए. दाब कलम तैयार करने का कार्य वर्षा ऋतु में करना चाहिए.

सिंचाई, काट-छाँट — बाग में पौधों को लगाने के बाद कुछ दिनों सिंचाई करते रहना चाहिए किन्तु जब पौधे बड़े हो जाएं तो आवश्यकता होने पर ही पानी देना चाहिए. वर्षा ऋतु में पौधों की पीड़ के पास जल का भराव नहीं होना चाहिए क्योंकि इसकी जड़ें अधिक जल सहन नहीं करतीं.

जड़ों को ठीक प्रकार से बचाने के लिए या तो बाग की सारी जमीन ही ढालू बना देनी चाहिए, अन्यथा प्रत्येक पौधे की जड़ के पास मिट्टी डाल कर उन्हें ऊंचा कर देना चाहिए. इसी प्रकार बच्चे पौधों को अधिक धूप से भी बचाने की आवश्यकता होती है. पौधों की जड़ों की मट्टी पोली करते रहने से इसके पेड बड़ी शीघ्रता से बढ़ते हैं. फसल देने के बाद डालों की कटाई छंटाई कर देनी चाहिए.

फसल — शरीफे के पेड़ ५-६ वर्ष की आयु में फल देने लगते हैं. इनके पेड़ों पर मार्च अप्रेल के महीनों मे फूल आ जाते हैं तथा अगस्त सितम्बर मे फल पक कर तोड़ने योग्य हो जाते हैं. पौधों के फूलने से पहले यानी जनवरी के महीने मे जड़ो को खोलकर धूप और हवा देकर जब उन्हें ढका जाए उस समय पत्तियों की खाद हड्डी के चूर्ण के साथ दे देने से फसल तो अच्छी आती ही है, साथ ही फलों का आकार भी बड़ा हो जाता है.

शरीफा पूर्ण रूपेण पक कर खाने योग्य पेड़ पर नहीं होता है बल्कि इसे मटकों में बन्द करके अथवा नाज और भुस की कोठियो (भण्डार) मे बन्द करके पकाया जाता है. शरीफे का फल बाल-अवस्था मे दाने रहित होता है किन्तु जैसे जैसे फल

बड़ा होता जाता है, इसके ऊपर उलटी रखी हुई गोल कौड़ियों के समान दाने उठते जाते हैं.

जब ये दाने पूर्ण तथा विकसित हो जाते हैं और दो दानों के बीच लाल रेखा सी दिखाई पड़ने लगती है तब फल तोड़ लेने योग्य हो जाता है, फिर नाज की गोलों में रखकर पका लिया जाता है. इस प्रकार पाल में रखे गये फलों को भी एक दिन के अन्तर से देख लेना चाहिए ताकि अधिक पक कर गल न जाएं. साधारणतः दो दिन से एक सप्ताह में फल पक कर खाने योग्य हो जाते हैं.

शरीफा जब कच्चा होता है तब इसका रंग सफेदी लिए हुए होता है किन्तु जैसे जैसे यह बढ़ता और पकता है हरा हो जाता है. पूर्ण पक जाने पर इसके दानों पर काले धब्बे बन जाते हैं. एक एक शरीफे से २५-३० तक बीज प्राप्त होते हैं.



नासपाती

बाजारों में दो तरह की दिखाई पड़ती हैं. एक देशी जाति की होती है जिसका फल छोटा और छिलका कुछ सख्त होता है. यह मैदानी इलाकों में पैदा होती है. दूसरी जाति के फल आकार में बडे तथा कोमल छिलके वाले होते हैं. इनकी बागबानी पहाड़ी इलाकों पर अच्छी होती है नासपाती के पौधे शरीफे के समान ही बड़े होते हैं पर इनके लिए शीत वातावरण आवश्यक होना है इसलिए पहाड़ी इलाकों की नासपाती अच्छी होती है.

जमीन और पौध — नासपाती के लिए बलुआ दुमट जमीन जिसमें आडू के पेड़ अच्छे लगते हों श्रेष्ठ रहती है. देशी नास-पाती लगभग सभी जमीनों पर अच्छी हो जाती है, वैसे इसके लिए तर जमीन ही अच्छी रहती है. नासपाती के पौधे लगाने के लिए बाग की प्रारम्भिक तैयारी शरीफे के समान ही की जाती है. २०-२० फुट की दूरी पर ३ फुट व्यास के ५-६ फुट गहरे गढ़ों मे नर्सरी से खरीदे गये या स्वयं तैयार किये गये पौधे दिसम्बर और जनवरी के माह में स्थानान्तरित किये जाने चाहिएं.

नर्सरी — नासपाती के पौधे चश्मा चढा कर. कलम बांध कर दोनों रीति से तैयार किये जा सकते हैं. देशी जातियां कलम बांध कर तैयार की जाती हैं. कलम बांधने का कार्य नवम्बर-दिसम्बर में किया जाना चाहिए. विदेशी जाति के पौधों को चश्मा चढ़ाकर जनवरी के महीने में तैयार किया जाता है.

उपरोक्त विधि से तय्यार किये गये पौधे दिसम्बर और जनवरी के महीने में बाग के गढ़ों में स्थानान्तरित किये जाने चाहिएं क्यों कि ये दिन पौधों के विश्राम करने के होते हैं.

सिंचाई, काट-छांट — पौधों के फलने से पूर्व के समय तक सिंचाई आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए. शरद ऋतु के मध्य में जिस समय पौधों के पत्ते बढ़ें, अधिक बढ़ी हुई और व्यर्थ की शाखाओं की काट-छांट कर देनी चाहिए.

फसल — नासपाती का पेड़ जून से सितम्बर तक वर्षा ऋतु में फल देता है. बाग में लगने के बाद ५-६ वर्ष में पौधे फल देने लगते हैं. जिन दिनों पौधों पर फल आने लगें उस समय सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए अन्यथा फलों की मिठास कम हो जायगी.

नासपाती छीलकर खाया जाने वाला फल है. फल के अन्दर बीजों के तीन चार घर होते हैं. कच्चे फलों की तरकारी भी बनाई जाती है. नासपाती अपने गुण के अनुसार कफ-पित्त का नाश करके बल वीर्य को बढ़ाती है.



लोकाट

भारतवर्ष का जलवायु और भूमि में लोकाट प्रायः सभी स्थानों पर सफलता पूर्वक हो जाते हैं. चीन और जापान इसकी जन्म भूमि है, और वहां इसकी बागवानी सर्वत्र होती है.

पौधा — लोकाट का पौधा बीज के द्वारा तो तय्यार किया ही जा सकता है किन्तु यदि अन्य पौधों से कलम तैयार कर ली जाय तो अच्छा रहता है, इसके पौधे कलम बांध कर अथवा चश्मा चढ़ाकर या गूटी-दाब कलम से भी तय्यार हो जाते हैं. दाब कलम अथवा भेंट कलम तय्यार करने का कार्य जून-जुलाई अर्थात वर्षारम्भ में करना चाहिए और चश्मा चढाने का कार्य मार्च-अप्रैल मे किया जा सकता है.

बाग की प्रारम्भिक तय्यारी कर लेने के बाद २०-२० फुट के अन्तर पर २-२॥ फुट गहरे तथा इतने ही चौड़े गड्ढे तैयार करके प्रति गढ़ा २० सेर गोबर की खाद, दो सेर हड्डी का चूर्ण, ५ सेर राख मिलाकर गढ़ों को भर कर जनवरी में पौधे लगा दिये जायें.

सिंचाई, काट-छांट — लोकाट के पौधो को सिंचाई की आवश्यकता पर्याप्त होती है. इसलिए सिंचाई का प्रबन्ध होना चाहिए. इसके पेड़ों मे जब फल आ रहे हों उस समय भी सिंचाई की जानी चाहिए. काट-छांट का काम पेड़ की बाढ़ और आवश्यकतानुसार किया जा सकता है. फसल ले लेने के बाद आगे के महीने मे पौधों की जड़े १०-१२ दिन को खोल देनी चाहिएं. जड़ों में मिट्टी भरते समय प्रत्येक पौधे मे नत्रजन पहुँचाने के लिए खली अथवा

कृत्रिम नत्रजन की खाद दे देनी चाहिए. यदि एक सेर हड्डी का चूर्ण भी दिया जा सके तो अगली फसल बढ़िया खिल जाती है.

फसल -- लोकाट का पेड़ मार्च और अप्रेल के महीने में फल देता है और प्रथम वार की फसल ५-६ साल की आयु के पेड़ों पर ही आती है. पकने पर फल का रंग नारंगी अथवा पीला हो जाता है. ऊपर का छिलका कागज की पतली झिल्ली के समान होता है, जो नाखून के सहारे से छिलकर पृथक हो जाता है.

एक फल के अन्दर मूंगफली के दाने के समान एक से लेकर चार तक बीज के दाने होते हैं. फल का गूदा अधपकों का खटमिट्ठा तथा पूर्ण पक जाने पर मीठा हो जाता है. इसका गुण शीतल होता है.



आम

भारत की जमीन पर पैदा होने वाले आम से कौन परिचित न होगा, सारे उच्च श्रेणी के लोग अंगूर को फलों का सम्राट कहते हैं, किन्तु वास्तविकता और उपयोगिता की दृष्टि से देखा जाय तो उपरोक्त कथन सत्य प्रमाणित नहीं होगा. अंगूर भारत की भूमि में इतना फूलता फलता भी नहीं है साथ ही सर्व साधारण तथा भारत के ग्रामो मे उनकी पहुँच न के बराबर ही है. इसके विपरीत भारत का आम प्रत्येक छोटे बड़े नगर और परिवार मे आदर की दृष्टि से खाया जाता है. इसलिए हम आम को फलो का राजा कहें तो अतिशयोक्ति न होगी.

आयुर्वेद के अनुसार आम खाने के बाद दूध पीना सोने में सुहागे का काम करता है. ग्रीष्म ऋतु की ऊष्णता और दाह को भी इसके प्रयोग से शान्ति मिलती है. गांवो मे जब किसी को लू लग जाती है तब आम की कच्ची क्यारियों (अम्बियों) का पना बहुत लाभकारी होता है. आम एक ऐसा फल है, जिसका उपयोग इसके फलते ही किया जा सकता है. कच्चे और छोटे फलों की चटनी, पना, अचार, मुरब्बे आदि बनाये जाते हैं. इतना ही नहीं आम की गुठली का प्रयोग भी आजकल बहुतायत से किया जाने लगा है.

आवश्यकताएं —

फलों की बागवानी करने के लिए इस फल की पैदावार के अनुसार भूमि और जलवायु के बारे में पूर्ण रूप से अध्ययन करना जरूरी ही नहीं बल्कि अत्यावश्यक होता है. प्रायः देखने में आता है कि अनेक उत्साही कृषक इस कमी के कारण लाभ की बजाय हानि ही अधिक उठाते हैं, अतः बागवानी के लिये जिस भूमि का चुनाव किया जाये उसके बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये.

जमीन — भारतवर्ष में आम की पैदावार थोड़ी बहुत हर जगह ही होती है, क्योंकि आम का वृक्ष एक ऐसा वृक्ष है जिसे किसी विशिष्ट जलवायु और भूमि की आवश्यकता नहीं होती, समुद्र की सतह से ३,००० फुट की ऊंचाई पर आम के पेड़ बिल्कुल ठीक प्रकार से फलते फूलते हैं. किन्तु इससे अधिक ऊंचाई पर इनकी बाढ़ में कुछ कमी हो जाती है, फिर भी परीक्षणों द्वारा पता चलता है कि आम का पेड़ समुद्र की सतह से ५,००० फुट की ऊंचाई पर भी लग सकता है.

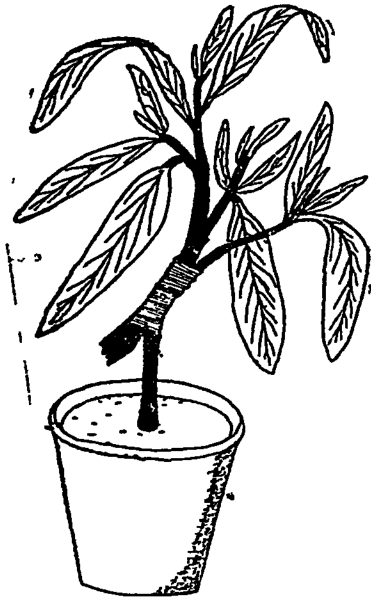
आम के बगीचों के लिये किसी विशेष प्रकार की मिट्टी वाली भूमि की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि बगीचे की जमीन पर पानी का निथार ठीक रूप में होता है, अर्थात पानी के भराव वाली जमीन में आम के बगीचे ठीक प्रकार नहीं लगते. आम के पेड़ों की जड़ें काफी गहरी जाती हैं इसलिये उथली भूमि में भी आम के बगीचे लगाना कठिन होता है.

इसके लिये जो स्थान चुना जाये उसमें कई जगहों पर गढ़े खोदकर देख लेना चाहिए कि जमीन में ४-६ फुट की गहराई के बाद चट्टानें तो नहीं हैं, कहीं कहीं पर चट्टानें न होकर भी २-४ फुट नीचे की भूमि कड़ी तह (हार्ड पेन) वाली होती है जो इसके नीचे उपयुक्त नहीं होती. बागवानी के विशेषज्ञों के अनुसार बगीचों के लिये हल्की कावर (वाइट लोम अथवा मध्यम अथवा दोमट जमीन ठीक रहती है गंगा के कछार की कंकर हीन भूमि भी आम की बागवानी के लिए उत्तम है.

कावर जमीन भी यदि भारी हो तो पानी का जमाव होने लगता है, इस प्रकार भारी कावर जमीन भी उपयुक्त नहीं रहती, साथ ही हल्की जमीन का परिणाम भी ऐसा ही होता है. हल्की रेतीली जमीन पर शुरू में पौधों की बाढ़ अच्छी होती है, लेकिन पौधों की आयु कम हो जाती है, और फल भी उत्तम प्राप्त नहीं होते.

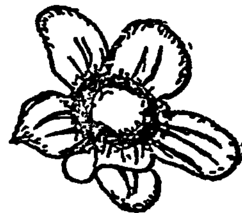
अनेकानेक प्रयोगों के बाद ऐसी विधि निकाली जा रही है कि चट्टान की भूमि को छोड़कर शेष सभी प्रकार की जमीनों को थोड़ा सा परिश्रम करके आम की बागवानी के उपयुक्त बनाया जा सकता है. आम का बाग लगाने के लिये जो जमीन चुनी जाये उसकी वैज्ञानिक जाच अवश्य कर लेनी चाहिये.

इस से बागवान के श्रम और धन का अपव्यय नहीं होता. अधोभूमि की जाच करने के लिए बागवानी के लिए चुनी गई जमीन पर अनेक स्थानों पर ७-८ फुट गहरे गढ़े खोदने चाहिए जब इस प्रकार के गढ़े खोदे जायेंगे तो जमीन के अन्दर पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की मिट्टियों की तह स्पष्ट दिखाई पड़ने



कलम बांधना





बौर

लगेगी. उपरोक्त बताई गई विधियो से भली प्रकार जांच करके बगीचा लगाने का निर्णय करना चाहिए.

जल का नियार — यद्यपि आम के वृक्षो के लिए जमीन में पानी का भराव और उसके निथार के प्रति विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि सन्तरे जैसे कोमल वृक्षों के अपेक्षा आम के वृक्ष अधिक कठोर होते हैं, और थोड़ा बहुत पानी सहन कर सकते हैं. किन्तु फिर भी आवश्यकता से अधिक पानी का जमाव हो जाने पर आम के वृक्षों मे फलों की बाढ़ मारी जाती है.

वर्षा के दिनों मे विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बगीचे में पानी का भराव न हो पाये. यदि बगीचे में पानी का भराव होता हो तो उसके निकास का प्रबन्ध करना चाहिए. यदि पानी का निथार स्वतः न हो तो बगीचे मे पेड़ों की चौथी कतार के बाद १॥ फुट चौड़ा और ६ इंच गहरी नालियां खोदे. प्रत्येक चौथी कतार के बाद की पानी की नाली को एक मुख्य नाली मे मिलाएं जिसकी चौडाई २ या २। फुट और गह-राई लगभग १ फुट के हो.

चुनाव में सावधानी — आम के बगीचे के लिए ऐसे स्थानों को चुनना चाहिए जहां पर ५० इंच से अधिक वर्षा होती हो. क्योंकि इसे वर्षा की बहुत अधिक आवश्यकता होती है. जहा पर पानी की कमी होती है वहां पर इसकी बागवानी अच्छे ढंग से नहीं की जा सकती. जहां पर वर्षा ५० इ च से कम होती है वहा पर यह देख लेना चाहिए कि सिंचाई का पूरा प्रबन्ध है अथवा नहीं.

जहां पानी का प्रवन्ध हो वहां पर भी कम वर्षा में अच्छी बागवानी की जा सकती है. इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि आमों की बागवानी के लिए सिंचाई का अच्छा प्रवन्ध बहुत महत्व रखता है. जहां पर वर्षा अधिक होती है वहां पर सबसे बड़ा लाभ यह है कि सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं होती या कम होती है, जिसके कारण खर्चा भी कम पड़ता है और फसल भी अच्छी प्राप्त की जा सकती है.

आम के बाग जहां तक सम्भव हो नहरों के आस-पास की भूमि पर लगाने चाहिएं जिससे कि आवश्यकतानुसार सिंचाई का जल ठीक समय पर और सस्ते से सस्ता प्राप्त हो सके. जहां पर नहर न हो तो भूमि का चुनाव किसी ऐसे स्थान पर करना चाहिए, जहां तालाब या बावड़ी हो, क्योंकि तालाब अथवा बावड़ी से भी जल की पर्याप्त सुविधा रहती है.

धरातल — भूमि का चुनाव करते समय यह भी देख लेना अत्यन्त आवश्यक है कि भूमि का धरातल कैसा है ? वास्तव में आम के बाग लगाने के लिए धरातल ऊंचा होना चाहिए, भूमि नितान्त सपाट होनी चाहिए. इसका कारण यह है कि आम के वृक्ष पानी का भराव नहीं चाहते. अतः ऐसी भूमियों से पानी स्वतः ही निथर, बागों के बाहर चला जाता है जिससे पौधों की बाढ़ बहुत ही अच्छी, घनी और बढ़िया तैयार होती रहती है.

वातावरण — आम के वृक्षों के लिये वातावरण का शुद्ध होना भी अत्यन्तावश्यक है, जिससे वृक्षों और फलों के ऊपर केवल बाह्य जलवायु का ही प्रभाव रहे अन्य किसी कृत्रिम दूषित वातावरण का प्रभाव न पड़ सके. गांव और शहरों के आस पास

वहुत से स्थानों पर ईंटों की भट्टियां लगाली जाती हैं या कहीं चूना पकाया जाता है.

ऐसे स्थानों पर भट्टियों का दूषित धुआं वायु के साथ मिलकर वायु को भी दूषित कर देता है. इन भट्टियों के तैयार होने का समय विशेषतः अप्रेल और मई का होता है. इस समय यदि इनके आस-पास छोटे पौधे हों तो उनकी पत्तियां जल जाती हैं, और इस प्रकार पौधे नष्ट हो जाते हैं. वहुत से स्थानो पर जहां इन दिनों में तेज हवा चलती है इन भट्टियो की गर्मी के कारण वह हवा गर्म होकर पेड़, पौधों को वुरी तरह से जला और झुलसा डालती है.

जलवायु — हमारे देश मे आम के वागों के लिए वहुत ही अनुकूल जलवायु रहता है. भारत मे जितने भी मैदानी हिस्से हैं, लगभग उन सभी में आम के वगीचे वहुत ही आसानी से तैयार किये जा सकते हैं. आम के वाग लगाने के लिए वैसे तो समुद्र तट से ५००० फुट तक के ऊंचे पहाड़ी मैदानों का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु साधारणतः जो मैदान समुद्र सतह से ३००० फुट से अधिक ऊंचे हों वहां पर आमों की वागवानी अधिक अच्छी नहीं हो सकती.

आम के वाग लगभग सारे ही प्रकार के जलवायु से लगाए जा सकते हैं. केवल देखने की वात यह है कि जिन स्थानों पर यह वाग लगाए जाएं वहां वर्षा ५० इंच के लगभग हो जाती है अथवा नहीं. यदि सिंचाई का अन्य प्रवन्ध अच्छा हो तो वर्षा का कम होना हानिप्रद नहीं रहता. एक वात यह भी अवश्य देख लेनी चाहिए कि जहां पर आमों के वाग लगाए जायें वहां पाला

न पड़ता हो, क्योंकि जहां पाला अधिक पड़ता है उन स्थानों पर इसके वाग अच्छी प्रकार नहीं लगाए जा सकते, यदि लगा भी लिये जाते हैं तो उनसे विशेष लाभ की आशा नहीं होती.

जिन स्थानों में वर्षा अधिक होती है या जलवायु सदा आर्द्र रहता हो वहां भी आम की वागवानी सफल नहीं होती क्योंकि जिन स्थानों पर सूखा और ऊष्ण जलवायु होता है वहीं पर आम के अच्छे और उत्तम बौर आते हैं. वास्तव में वौर आने का समय ही जलवायु की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है क्योंकि जो वौर आता है उस पर ही जलवायु का अच्छा वुरा प्रभाव शीघ्र पड़ता है.

वैसे आम के पेड़ में वौर आने का समय संक्रमण काल का है, और क्योंकि विभिन्न प्रदेशों में थोड़े वहुत अन्तर पर ही यह मौसम आ पाता है इस कारण बौर आने का समय भी पृथक-पृथक प्रदेशों में भिन्न ही है. आम के वृक्षों के लिए हर तरह से उत्तम जलवायु वह माना जाता है जहां पर वर्षा के दिनों में अच्छी वर्षा हो और फिर वर्षा काल के पश्चात जव पेड़ों में फल लगने लगें तव तक वर्षा न हो और पाला विलकुल न पड़े, आकाश खुला रहे, वायु बिलकुल रूखी न हो वरन नम रहे.

वाग की रचना के लिए भी ठीक प्रकार से जव तक प्रवन्ध नहीं हो जाता तव तक न तो सुविधा पूर्वक उसमें काम ही किया जा सकता है, न ही उसका भली प्रकार से संरक्षण हो सकता है. अतः रचना वहुत ही अच्छे ढंग से करनी चाहिए. वैसे तो जिन लोगों को घरों में ही आम के वृक्ष लगाने हों वे लोग मकान के पीछे के हिस्से में उचित तैयारी करके लगा सकते हैं. इसके लिए

केवल इतना ही ध्यान रखना आवश्यक है, कि स्थान की सीमाएं दीवारों से घिरी होनी चाहिएं और वे दीवारें ऐसी होनी चाहिए जिन पर चढ़कर बाहर का कोई भी व्यक्ति फल न तोड़ सके.

जो लोग व्यापार की दृष्टि से आमो की बागवानी करना चाहें उन्हें चाहिए कि वे बाग के लिए कम से कम दस एकड़ का क्षेत्र तैयार करें, क्योंकि इन मे उतना श्रम करना चाहिए जिससे कि इसके व्यापार मे लाभ हो. बगीचे मे जितने भी पेड़ पौधे लगाये जाये उन्हें शीघ्र पकने वाली एक स्थान पर, मध्यम पकने वाली जातियां, एक स्थान पर तथा देर से पकने वाली जातियां एक स्थान पर पृथक पृथक रहें.

साधारणतः शीघ्र पकने वाले तथा विलम्ब से पकने वाले पौधों को ४०-४० प्रतिशत और मध्य के मौसम मे फलने वाले पौधों को २० प्रतिशत के हिसाब से लगाना लाभदायक रहता है. जिस समय जाति का चुनाव किया जाय उस समय बाजार भाव का ध्यान रख कर ही करना चाहिए.

कांटेदार तारों की अच्छी बाढ देनी चाहिए और इन्हीं के सहारे सहारे भीतर की ओर लगभग डेढ फुट की चौड़ाई मे कटीले झाड़ इस प्रकार से लगा देने चाहिएं कि इन मे से हो कर कोई बाग के अंदर न घुस सके.

बहुत से स्थान ऐसे भी हैं जहां पर बॉस पर्याप्त सस्ते मिल जाते हैं ऐसे स्थानों पर बांसों की टट्टियां बना कर भी बाग के चारों ओर से हाता बन्दी की जा सकती है. बहुत से स्थानों पर बागुड़ लगाने की प्रथा भी प्रचलित है, लेकिन जब तक बागुड़ के झाड़ बड़े नहीं हो जाते इनकी बहुत देख भाल करनी पड़ती है.

जातियां —

हमारे देश में विभिन्न स्थानों पर सैकड़ों प्रकार के आमों की बागवानी की जाती है. इन में से बहुत सी जातियां साधारण हैं और बहुत सी जातियां बढ़िया मानी गई हैं, वैसे इसकी जितनी भी जातियां भारत में उपजाई जाती हैं, उनमें बहुत सी जातियां ऐसी हैं जिन्हें एक ही जाति होते हुए भी विभिन्न प्रान्तों में पृथक पृथक नाम दिये जाते हैं, और बहुत सी जातियाँ ऐसी हैं जो पृथक होते हुए भी विभिन्न प्रांतों में एक नाम से पुकारी जाती हैं.

वास्तव में इसका कारण यह है कि प्रान्तों के जलवायु तथा वहां की मिट्टी के अंतर के कारण आम के स्वाद में कहीं कहीं पर अन्तर पड़ जाता है. अतः एक ही जाति वाले आमों को पृथक पृथक समझ कर पृथक पृथक ही नाम दे दिया जाता है. सामान्यतः आम दो प्रकार के होते हैं, अर्थात एक तो वह आम जो चूस कर खाया जाता है उसे टपका कहते हैं और जिसे चाकू से काटकर खाया जाता है उसे कलमी आम कहते हैं.

श्री एलन का मत है कि यदि आमों का वर्गीकरण किया जाए तो उनकी दृष्टि से एक तो वे आम होते हैं जिनमें रेशा नहीं होता, गाढ़े रस के होते हैं किन्तु चूस कर भी खाये जा सकते हैं, दूसरे गाढ़े रस के गूदेदार वे आम होते हैं जिन्हें काट कर खाया जाता है. ये भी रेशे रहित ही होते हैं. तीसरे आम वे होते हैं जो चूस कर खाये जा सकते हैं तथा काट कर भी खाये जा सकते हैं और चौथे वर्ग के वे आम माने जा सकते हैं जो केवल अचार के ही काम आते हैं अर्थात खट्टे होते हैं.

विभिन्न प्रान्तों की जातियां —

१. बम्बई — पायेरी, कावसजी पटेल और हापुस आदि
२. मैसूर — चित्तूर, विचकाई, वदकामी, नगी भाई और चिटकाई आदि.

३. गोआ — फरनामदीस, मातेच, विपय और गोआ हापुस आदि.

४. बनारस — लंगड़ा.
५. बंगाल — गोपाल भोग, कृष्ण वती और फजली आदि.
६ बिहार — मिठुआ, अल्फांजो और सिपिया आदि.

वैसे श्री सेन का मत है कि बिहार के अंदर शीघ्र पकने वाली जातियां मिठुआ, बम्बई की जर्दालू, खासुलखारा और पूना की गुलाब खास अच्छी रहती है, विशेष जातिया किसान भोग, मालदर चीना, लंगड़ा, हेम सागर, अमन बेनाचिर, आबेहयात, घोमीरा. पायेरी, देसा बनारसी लंगड़ा अच्छी रहती है.

देर से पकने वाली जातियों में बारह मासिया, सिन्दूरिया, गुकुल, पहाड़ पुर, फजली, केतकी, समर, बहिश्त, इलाहाबाद, हिमाम बसन्त, चौसा, अलम पुर बनेसहान, तथा मद्रास की कन्नी जातियां अच्छी रहती हैं. इन जातियों के अलावा चूस कर खाये जाने वाली अच्छी रसगार फरंजी ललुआ तथा बेरू कुनूमस जातियां भी अच्छी रहती हैं.

बाग की तैयारी —

आम का बाग लगाने से पूर्व यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे पूर्ण रूपेण इस प्रकार से तैयार कर लिया जाय कि वह आम के

पौधों का ठीक प्रकार से पोषण कर सके. क्योंकि यदि खेत की तैयारी आरम्भ से ही ठीक नहीं होती है तो पौधों को आगे चलकर कठिनाई का सामना करना पड़ता है और वे पनप नहीं पाते.

कुआ — बाग तैयार करने के लिए सबसे पहले यह देख लेना चाहिए कि उस स्थान पर कभी भी सिंचाई के लिए आवश्यक जल की कमी तो नहीं पड़ेगी और यदि पास में किसी नहर, तालाब या बावड़ी से जल प्राप्त करने का प्रबन्ध न हो तो बाग के मध्य में एक बड़ा कुआ अवश्य ही खोद लेना चाहिए.

स्थान निर्धारण —

जिस समय बाग की तैयारी की जाय उस समय उसके धरातल को देख लेना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यदि भूमि सम धरातल में होती है तो सिंचाई करने में बहुत बड़ी सुविधा रहती है. जहां पर धरातल ठीक नहीं होता वहां पर या तो बागों में से खादमय तत्व बाहर बह जाते हैं, या एक स्थान पर जो हिस्सा नीचा है इकट्ठे हो जाते है और पेड़ पौधों को हानि होती है.

भूमि को ढालू रखने में यह ध्यान रखना चाहिए कि २५० फुट से अधिक उतार न हो और यदि कम अधिक उतार है तो उस भूमि में उतार के टुकड़े बना लेने चाहिये.

बाग की उचित जुताई और उसका धरातल आदि ठीक कर देने के पश्चात पौधों के स्थान के लिये ठीक प्रकार से नकशा तैयार करना चाहिये.

बहुत से पौधे बीज बोकर तैयार किये जाते हैं, इन पौधों

की बाढ़ अन्य पौधों से अधिक होती है अतः इनको एक दूसरे से लगभग ४५ फुट के अन्तर पर लगाना चाहिये तथा कलमी आमों के जो भी पौधे होते हैं, उन्हे ३० से ४० फुट तक की दूरी पर लगाना चाहिये.

वास्तव में यह दूरी इसलिए छोड़ी जाती है कि जिस समय वृक्ष बड़े हों तो उस समय न तो इनकी जड़ें ही आपस मे उलझ पायें और न ही एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की टहनियां ही टकरायें.

पौधों की रचना अनेक प्रकार से की जा सकती है किन्तु हम चार प्रकार की अच्छी रचना पद्धति का विवरण कर रहे हैं.

पहली पद्धति मे पौधों को बिल्कुल वर्गाकार लगाया जाता है और यह तरीका इतना सरल भी है कि अधिकाश लोग इसे ही प्रयोग में लाते हैं.

इस पद्धति से एक दूसरा लाभ यह भी है कि प्रारम्भिक अवस्था मे प्रत्येक वर्ग के बीच में एक वृक्ष और लगा लिया जाता है.

आयताकार पद्धति उन वृक्षों के लिये ही उपयोगी होती है, जिनको अपने बाग में स्वतः ही बीज द्वारा बोया जाता है क्योंकि ऐसे तैयार किये गये पेड़ों की बाढ अधिक होती है और उनको आपस में लगभग ४०-५० फुट के फासले पर लगाना आवश्यक होता है.

चौथी विधि में वृक्षों के लगाने के लिये पंचभुज क्षेत्र का आकार देना होता है. वास्तव मे यह पंचभुज क्षेत्र का निर्माण

भी आयताकार वृक्षों के बीच में एक वृक्ष और लगाकर कर लिया जाता है.

गढ़ों की तैयारी —

जिस समय गढ़े पूरे खोद दिये जायें तो उसके तुरन्त बाद उन्हें नहीं भरना चाहिए वरन लगभग पूरे माह तक खुले छोड़ देना चाहिए और जून के प्रथम पखवाड़े में उन्हें भरना चाहिये.

गढ़े भरने के लिये २० डलिया अच्छी सड़ी गली गोबर की खाद लगभग ४ सेर लकड़ी की राख और लगभग ५ सेर हड्डी का चूरा भली प्रकार मिला लिया जाये, इसमें तालाब की कपा अथवा मिट्टी इतनी मिलानी चाहिए कि गढ़े का दो तिहाई भाग ही भरे.

शेष एक तिहाई भाग में मिट्टी भरने के लिये लगभग २ सेर हड्डी का चूरा लगभग एक सेर नीम की खली तथा अन्य प्रकार से सड़ा गला लगभग ५ सेर गोबर का खाद इतनी ही मिट्टी में मिलाकर गढ़े में डालना चाहिये कि गढ़ा भूमि की सतह से लगभग आधा फुट ऊपर तक भर आये.

पौधों की तैयारी —

आम के बाग की प्रारम्भिक सभी तैयारियां कर लेने के बाद आम के पौधों की तैयारी की जाती है, आम के पौधे तैयार करने की साधारणतया तीन विधियां प्रचलित हैं. प्रथम विधि में बीज लगाकर अर्थात आम की गुठली बोकर पौधा तैयार किया जाता है. दूसरी विधि में कलम बांधकर तथा तीसरी चश्मा चढ़ाकर तैयार करने की है.

भारतवर्ष में जो आम की बागवानी की जाती है उसमें जितने देशी आम लगाये जाते हैं, उन्हें अधिकतर बीज बोकर ही तैयार किया जाता है. उसका एक कारण यह भी है कि हमारे देश के बागवान उन्नति की ओर अग्रसर होने का ध्यान नहीं रखते, न ही नया प्रयोग करते हैं और यही कारण है कि भारत वर्ष में आम की जितनी बागवानी की जाती है इसकी लगभग ९० प्रतिशत बागवानी इसी पद्धति से होती है.

बीज बोते समय यह तो चुनाव कर लेना चाहिए कि बीज अच्छी नस्ल का हो साथ ही उसके बोने के समय पर भी ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि अधिक दिनों तक बीज को नहीं रखे रहना चाहिए. जो बीज अधिक दिन तक रख कर बोये जाते हैं, उनकी उत्पादन शक्ति नष्ट हो जाती है.

भेंट कलम —

भेंट कलम द्वारा तैयार किये गये पौधों के फलों का गुण अवगुण उसकी तैयारी पर ही निर्भर होता है. इसी कारण से साधारण किसान इसकी झंझटों में पड़ना पसन्द नहीं करते क्योंकि भेंट कलम की क्रिया जटिल होने के साथ साथ परिश्रम भी अधिक मांगती है.

पर इस बात में सन्देह नहीं करना चाहिए कि इस विधि से तैयार किये गये पौधों की फसल बीज द्वारा लगाये गये वृक्षों की अपेक्षा कई गुणी अधिक लाभदायक होती है.

पौधों पर स्थायी जगह कलम बांधना —

आधार तरु को उखाड़ कर गमले में लगाकर कलम बांधने

से पौधों की जड़ों का विकास स्वतन्त्र रूप से नहीं हो पाता है, और उसकी वाढ़ कम हो जाती है. इस वाधा से वचने के लिये अनुभवों द्वारा आधार तरु को निश्चित स्थान पर अर्थात जहां पेड़ लगा कर फल लेने हों उसी स्थान पर पौधा लगाकर कलम वांधने की विधि अपनाई जाती है.

भेंट कलम चढ़ाने के लिये भी दो तरीके प्रयोग में लाये जा सकते हैं. पहले में पोषक तरु को किसी वड़े गमले में लगाकर इस योग्य वना लिया जा सकता है कि उसकी कई शाखायें और कलम चढ़ाने योग्य हो जायं. इस प्रकार का पोपक तरु उसी फल वृक्ष के आम की गुठली से तैयार किया जाय जो इसके लिये छांटा गया हो और पूर्णरूप से स्वस्थ तथा निरोगी हो.

मुख्य वातें — चश्मा चढ़ाकर आम के पौधे तैयार करने में कुछ विशेष परिणाम इस प्रकार निकले हैं, सफेदा लंगड़ा, और नासपाती जाति के आमों के पौधों में शीघ्र आंखें वंध जाती हैं.

चश्मा चढ़ाने का कार्य हमेशा ही उपयुक्त मौसम मे करना आवश्यक है. साधारणतया चश्मा चढ़ाने के लिये अगस्त और सितम्वर के महीने मौसम की दृष्टि से ठीक रहते हैं.

एक कृषि विशेषज्ञ ने नागिन जाति के आम के पौधों पर चश्मा चढ़ा कर यह निर्णय दिया है कि नागिन जाति के आम के पौधों पर आंख वहुत जल्द आती है.

पुनः वहार लाना —

आम की वागवानी करने के लिये यह उस समय और भी आवश्यक हो जाता है जव वागवानी व्यापार की दृष्टि से की

जाती हो. आम के पेड़ कुछ वर्ष फल देने के बाद वृद्ध हो जाते हैं और आम की फसल कम आने लगती है. इस अवस्था मे पेड़ का काया-कल्प सिर बन्धन द्वारा आवश्यक होता है.

सिर बन्धन द्वारा पेड़ का कायाकल्प हो जाता है, और पेड़ों पर फिर से बढ़िया फल आने लगते हैं. बीज द्वारा तैयार किये गये पौधों मे भी सिर बन्धन करने से अच्छी नस्ल के फल प्राप्त किये जा सकते हैं. विदेशों मे इस पद्धति का प्रचलन बहुत है वहां इस पद्धति से आम के पौधों का सिर बन्धन करके बहुत अच्छी किस्म के आम तैयार किये जाते हैं.

यह वैज्ञानिक पद्धति वास्तव मे आम की बागवानी के लिये अत्यन्त लाभदायक है परन्तु भारत मे इस पद्धति का चलन अभी पूर्ण रूप से नहीं हुआ है, भारतीय बागवान वृक्षों के वृद्ध होने पर पुन. नये सिरे से बाग लगाना ही पसंद करते हैं. वास्तव मे यदि देखा जाय तो इस पद्धति को निःसंकोच अपना कर लाभ उठाया जा सकता है.

उपयुक्त खाद —

आम के वृक्षो मे खाद पहुँचाने के लिये समूचे खेत मे खाद देना आवश्यक नहीं है वरन खाद उसी भाग मे डाली जानी आवश्यक है, जिसमे पेड़ की जड़ें फैली हो, जिससे कि जड़ें आवश्यक तत्व समय पर उचित मात्रा मे अपने पास से प्राप्त कर सके

आम के पेड़ की जड़ें वास्तव मे मिट्टी मे चारों तरफ उतनी ही परिधि में फैली होती हैं. जितनी परिधि मे पेड़ के ऊपर का भाग, अत. खाद भी आवश्यकतानुसार उसी भाग

में डालनी अधिक लाभप्रद रहती है. इससे एक तो खाद का अपव्यय नहीं होता और दूसरे पेड़ की जड़ें आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में खाद प्राप्त भी कर लेती हैं.

सामान्यतः यदि वर्षा की दृष्टि से निम्न प्रकार खाद दी जाय तो उत्तम फसल होती है.

वृक्ष रोपने से पहले उसके लिये जो गढ़ा खोदा जाये उसकी मिट्टी को गढ़े में भरने से पूर्व जिस समय वृक्ष लगाया जाय उसमें निम्न खादों को मिश्रित करना चाहिये.×

	प्रति वृक्ष	
	सेर	छटांक
गोबर की खाद	५०	०
मूंगफली या अरंडी की खली	२	०
लकड़ी की राख	५	०
हड्डी का चूरा	२	८

एक वर्ष के पश्चात खाद की मात्रा कम कर देनी चाहिये जैसा कि नीचे दिया जाता है.

	प्रति वृक्ष	
	सेर	छटांक
गोबर की खाद	१०	०
मूंगफली या अरंडी की खली	१	०
हड्डी का चूरा	१	०
पोटाशियम सल्फेट	०	८

× श्री० रा० अ० रामैय्या, प्रधान सम्पादक 'किसानी समाचार'

फिर दूसरे वर्ष से नवें वर्ष तक इस खाद को हर प्रकार से बढ़ाते जाना चाहिए.

	प्रति वृक्ष	
	सेर	छटाक
गोबर की खाद	५	०
मूंगफली या अण्डी की खली	८	०
हड्डी का चूरा	८	०
पोटाशियम सल्फेट	०	२

इसके बाद दसवें वर्ष में और उसके पश्चात आम के वृक्षों में निम्न प्रकार से खाद देते रहना चाहिए.

	प्रति वृक्ष	
	सेर	छटाक
गोबर की खाद	५०	०
मूंगफली या अण्डी की खली	५	०
हड्डी का चूरा	५	०
पोटाशियम सल्फेट	१	०

सिंचाई—

प्रत्येक किस्म के फल वृक्ष के लिए वृक्ष की जाति और प्रकृति के अनुसार ही उसकी सिंचाई करनी आवश्यक होती है. इनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के फलों की बागवानी में पृथक-पृथक रीति से ही उनकी आवश्यकता के अनुसार सिंचाई करनी आवश्यक होती है. यह तो निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक पेड़ अपने पोषक तत्वों को ग्रहण जड़ों के द्वारा ही करता है. पोषक तत्वों को पौधे में पहुँचाने के लिए ही खाद आदि

का प्रबन्ध करना पड़ता है किन्तु जमीन पर खाद डाल देने से ही काम पूरा नहीं होता है जब तक उसकी सिंचाई न की जाय.

उन स्थानों पर जहां जमीन के अन्दर के पानी की सतह गहरी नहीं है अर्थात जहां के कुओं में अधिक गहराई पर पानी नहीं निकलता है वहां की जमीन अधिक सूखी नहीं होती है. इस कारण से ऐसे स्थानों पर पानी की आवश्यकता थोड़ी होती है. इसके विपरीत उन स्थानों पर जहां पृथ्वी के भीतर के पानी की सतह अधिक नीची है वहां पर आम के बागों की सिंचाई अधिक करनी पड़ती है.

ऋतु परिवर्तन के अनुसार भी पानी देने के समय में परिवर्तन करना पड़ता है अर्थात यदि पौधों की आवश्यकता के अनुसार शीतकाल में कभी पन्द्रह दिन या एक माह में पानी की अत्यावश्यकता पड़ती है और गर्मियों में सप्ताह में एक बार या इस से भी कम समय मे पानी देने की आवश्यकता पड़ सकती है.

उपरोक्त सिद्धान्तों को सिचाई करते समय सदैव ध्यान में रखना चाहिए. सारांश यह है कि बागवानी का उचित फल परिश्रम के अनुसार ही मिलता है. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये ही परिश्रम करने में कमी नहीं करनी चाहिए और सदा ही पौधों का आवश्यकतानुसार सिंचाई का प्रबन्ध करना चाहिए. साथ ही सिचाई करने की जो विधियां हैं उन पर पूरा-पूरा अमल करना अत्यावश्यक है.

आम के बागों को समय-समय पर निराई गुड़ाई की आवश्यकता भी पड़ती रहती है इसलिए निराई गुड़ाई के लाभ और करने का समय जान लेना आवश्यक है. जब आम के पौधे छोटे

होते है और उनकी जड़ें भी पर्याप्त नहीं फैली होती है उस समय बाग में बहुत सी भूमि फालतू पड़ी रहती है. इस फालतू भूमि मे अनावश्यक रूप मे घास पात तथा खरपतवार आदि भूमि का रस पाकर बढ़ने, पकने और फूलने लगते है.

ये जंगली पौधे एक ओर जहा आम के पौधों को दिया गया पानी ग्रहण कर लेते हैं वहां बाग की भूमि को अन्य पोषक तत्वों को ग्रहण करने मे भी आम के पौधों का मुकाबला करने लगते है. इस प्रकार से आम के पौधो की बाढ मारी जाती है साथ ही इनकी बाढ़ से भूमि मे कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा भी बढ़ जाती है जो आम के पौधों के लिए हानिकारक होती है

इस प्रकार की हानि से बचने के लिए भी निराई गुडाई अत्यन्त आवश्यक है. यदि ऐसे समय मे उचित निराई-गुडाई-जुताई आदि नहीं की जायेगी तो पौधों की बाढ बहुत कम हो जायगी. निराई गुडाई करने के लिए जब भी जुताई की जाए तो बखर का प्रयोग करना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद रहता है

प्रौढ़ वृक्षों के लिए भी एक साल में दो बार जुताई कर देना चाहिए, वर्षा ऋतु के प्रारम्भ मे तथा उसकी समाप्ति के बाद. प्रारम्भिक जुताई से जमीन टूटकर भुरभुरी हो जायगी और वर्षा का पानी अच्छी तरह सोख सकेगी वर्षा के बाद मे जुताई करने से तमाम खरपतवार उखड़ कर जमीन मे मिल जायगा और इस प्रकार पौधों को हरी खाद सुगमता से प्राप्त हो सकेगी. पौधों की कतारों मे एक बार खड़ा तथा एक बार आड़ा बखर चलाना चाहिए

आम की बागवानी करने वालो को पेडो की कटाई-छंटाई का

पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए. यदि ठीक समय पर पेड़ों की आवश्यकतानुसार कटाई छंटाई आदि न की गई तो जहां एक ओर पेड़ों की बनावट बेढंगी हो जायगी वहां इसकी और फसल भी अच्छी तरह तैयार न होगी. इसलिए आम के पौधों की उचित और आवश्यकतानुसार काट-छांट करना भी आम की बागवानी का एक मुख्य अंग है.

४. काट छांट के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि अनुचित स्थान पर कोई भी औजार आदि लगकर पेड़ के किसी अन्य भाग को कोई भी हानि न पहुँचने पाये. काट-छांट वहीं से होनी चाहिए जहां से पेड़ का संतुलन बिगड़ रहा हो. किस शाखा को कहां से काटना चाहिए इसके लिए पेड़ का बड़े ध्यान से अध्ययन करके स्थान निर्धारित करना होता है. स्थान निर्धारित करने के बाद ही उचित स्थान पर सावधानी के साथ कटाई-छंटाई कर देनी चाहिए.

समय — वास्तव में काट-छांट करने का उत्तम समय वही होता है जब पौधे विश्राम कर रहे हों, यह समय पौधों की बाढ़ के अनुपात से वर्ष में दो तीन बार ही आता है. फल देने वाले पौधों की काट छांट वर्षा ऋतु के अंत में ही करना उत्तम है. किन्तु छोटे पौधों की आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुसार काट-छांट करते रहना चाहिए. उचित और आवश्यक काट छांट के समय रोग ग्रस्त शाखा भी काटी जा सकती है.

ऐसा देखा गया है कि इस दीर्घ कालीन परिश्रम और निरन्तर काम के कारण बागवानों की आर्थिक दशा बहुत खराब हो जाती है और उन्हें अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता

है. इन आपदाओं से बचने के लिए विशेषज्ञों ने आम की बागवानी शुरू करने वालों के लिए बाग की वह भूमि जो पौधों के बीच में फालतू पड़ी रहती है उसमे अन्य कई प्रकार की फसलें करने की सिफारिश की है. किन्तु इस प्रकार की सहायक फसलों को पैदा करने के लिए कुछ आवश्यक बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है. अतएव यहां पर संक्षिप्त मे निम्नलिखित बातें ध्यान रखने योग्य हैं. इन बातों पर ध्यान रखने से उचित लाभ होता रहेगा और साथ ही आम के पौधों को भी किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकेगी.

कभी कभी आम के पौधों के बाग की स्थिति ऐसी होती है कि उसमे सहायक फसलें नहीं की जा सकती. ऐसे स्थानों पर और फसले अति लाभदायक सिद्ध हुई हैं. इन फसलों के लगाने से जहा लाभ होना है वहां खाली पड़े रहने के कारण भूमि भी नहीं बिगड़ने पाती. जो भूमि कुछ समय तक खाली पड़ी रहती है, वहा पर खरपतवार अथवा जंगली घास स्वतः ही उग आती है. इनके कारण भूमि खराब हो जाती है और कठिनता से ठीक हो पाती है. फसले लगाने से बाग की उस खाली भूमि की जगली घास से रक्षा होती है.

जिस समय कोई भी भूमि खाली छोड़ दी जाती है उसमें पानी को खींचकर नम रहने की शक्ति नहीं रहती किन्तु जब उसमे कोई फसल लगाई जाती है तब क्योंकि फसल भोजन व पानी को खींचती है, भूमि नम हो जाती है. इस कारण से बाग की खाली जामीनों मे की गई फसलें लगाने से भूमि आर्द्र बनी रहती है.

अनेक स्थानों पर आम के लिए वड़े-वड़े परीक्षण किये गरे जिनमें अनुसंधानवेत्ताओं का यही मत स्थिर हो गया है वि आमों का उत्पादन नियमित रूप से प्रतिवर्ष कर लेना अत्यन कठिन है. इस कार्य के लिए अनेकानेक प्रयोग करके देखे ग किन्तु ठीक प्रकार से आम के वृक्षों को नियमित फल देने वात नहीं किया जा सका.

जव तक आम का फल पर्याप्त वड़ा नहीं हो पाता तव त मौसम कोई भी खरवी पैदा कर सकता है. यदि वौर के सम पर तीव्र और तेज गरम हवा चलने लगती है, तो भी बौर भ कर गिर जाता है. वौर के समय पर ही यदि ओले पड़ने लगते आंधी आ जाती है या कभी अन्य व्याधिमय हवा चल निकल है तो भी फलों को प्राप्त करना कठिन ही नहीं वरन असम्भ सा हो जाता है.

मौसमी वाढ़ --

आम में जो वौर आने का मौसम होता है 'वही इस मौसमी वाढ़ का मौसम होता है, जिस समय शरद ऋतु चरण चल रहा होता है तभी आम वृक्षों में वौर आने मौसम होता है. तत्पश्चात जिस समय वसन्त ऋतु आगमन होता है उस समय पौधों में वाढ़ आती है और तीसरी नई वाढ़ अप्रैल मई के महीनों (गर्मी) मे आती जिस समय वरसात समाप्त हो जाती है और सर्दियां प्रार हो जाती हैं, तव इसकी यह वाढ़ वन्द हो जाती है, तथा अंकुरों का निकलना आरम्भ हो जाता है, जिनमें नये आने लगते हैं.

व्याधियां और रोक थाम —

आम के पौधों में अनेकानेक प्रकार की व्याधियां हो जाती हैं जिन पर यदि समय रहते ध्यान नहीं दिया जाता है तो बहुत ही बड़ी हानि का सामना करना पड़ता है, वैसे तो जो व्याधियां सामान्यतः इन वृक्षों में होती हैं उनकी रोकथाम हम उ· करण में संक्षिप्त में लिख रहे हैं, किन्तु बहुत सी व्याधि हो जाती हैं, उनके लिये अपने पास के कृषि विभाग के अधि· यों से सलाह कर लेनी चाहिये

हानिप्रद कीड़े और बचाव —

आम के बागों में जहां बागवानी करने वाले सावधानी से नहीं करते अथवा पेड़ पौधों की उचित देख रेख करते वहां उन पर कीड़ों का आक्रमण हो जाता है, और कीड़े पर्याप्त मात्रा में आम की फसल को बरबाद कर डालते आम की बागवानी करने वाले बागवानों को इन कीड़ों की थाम करना अत्यन्त आवश्यक है. कुछ कीड़ों से बचने उपायों का वर्णन संक्षिप्त में नीचे किया जा रहा है.

स· पौधों पर गंधक का चूर्ण बुरकना चाहिए, जिन और आ जाय तो तुरन्त गंधक का बारीक चूर्ण पौधों पर पर बुरक देना चाहिये, तत्पश्चात दो बार पन्द्रह दिन के से यह चूर्ण पुनः बुरक देना चाहिये, यह ध्यान रखना हिय कि चूर्ण उस समय बुरका जाये, जब कि हवा न चल रहा हो, तथा चूर्ण बुरकने के दो तीन दिन बाद वर्षा हो जाय तो वर्षा के पश्चात चूर्ण पुनः बुरकना चाहिये. क्यों कि वर्षा

से चूर्ण धुल जाता है तथा अनेक पौधों पर उसका कोई प्रभाव नहीं रहता।

पौधों के ऊपर यदि रीठे का घोल रोजिनसोप या फिश आयल छिड़का जाय तो इन कीड़ों से पर्याप्त बचाव हो जाता है. यदि मिश्रण बनाना हो तो १० गैलन पानी में एक पौं फिश आयल रोजन सोप घोलकर पौधों पर छिड़कना चाहिये.

यदि बागवानी करते समय उपरोक्त विधियों को प्र में लाया गया तो फलों की बागवानी करने वालों को सफ तो मिलेगी ही साथ ही होने वाली सम्भावित हानियों क कोई भय नहीं रहेगा.

